मुग़ल सम्राट हुमायूं

मुग़ल सम्राट

हुमायूं

लेखक

हरिशंकर श्रीवास्तव, एम.ए., पी-एच.डी.

अध्यक्ष, इतिहास विभाग

गोरखपुर विश्वविद्यालय

आमुख लेखक

ताराचंद, एम.ए., डी. फिल. (आक्सन)

सदस्य राज्य सभा

भूतपूर्व उपकुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

माता-पिता के
चरणों
में

आमुख

हिन्दी में अभी ऐसी ऐतिहासिक पुस्तकों की कमी है जो मूल ग्रन्थों के आधार पर लिखी गयी हों। डाक्टर हरिशंकर श्रीवास्तव की पुस्तक इस कमी को पूरा करने में मदद देती है। इन्होंने हुमायूं के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सभी फारसी ग्रन्थों का अवलोकन किया है और अंग्रेजी में जितनी जीवनियाँ और मुग़लकालीन इतिहास लिखे गये हैं उन सबका अच्छा निरीक्षण किया है। जीवन की घटनाओं और राज्य की कृतियों की पूरी जाँच-पड़ताल की है और अन्य लेखकों के विचारों पर युक्तियों के साथ निर्णय दिया है। हुमायूं का विस्तृत, गम्भीर विद्वत्तापूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है जिससे विद्यार्थियों को इस बादशाह का अच्छा ज्ञान मिल जाएगा।

हुमायूं तैमूरीवंश का विचित्र रत्न था। उस वंश में अद्भुत विभूतियों ने जन्म लिया, जिनका सिलसिला तैमूर से लेकर औरंगजेब तक, दस-बारह पीढ़ियों तक चलता रहा। मुश्किल से कोई राजवंश ऐसा होगा जिसमें इतने ओजस्वी नायक पैदा हुए हों। हुमायूं इस लम्बी अनूठी जंजीर की एक विलक्षण कड़ी था। उसका चरित्र गुणदोषों का अनोखा समूह था जिन्होंने उसे एक तरफ हिन्दुस्तान का बादशाह और दूसरी तरफ देश निर्वासित ईरान के बादशाह का अनुजीवी बना दिया। एक समय वह दिल्ली का सम्राट था जिसके सामने राजे और नवाब सिर झुकाते थे और वही हुमायूं राजस्थान के रेतीले मैदानों में निर्धन, निस्सहाय घूमता था। पर वह हर परिस्थिति में खुश था, न कभी निराश होता था, न हार-जीत से विह्वल। उसे अपने पच्चीस वर्ष के राज्यकाल में से पन्द्रह वर्ष विदेश में बिताने पड़े। भाइयों ने उसे धोखा दिया। कभी वह दुनिया से ऐसा उदासीन होता था कि राज्यकाज को छोड़ने पर उद्यत हो जाता था। कभी विलास में ऐसा लीन हो जाता था कि दोस्त-दुश्मन की परवाह नहीं रहती थी। जब वह राज्य सिंहासन पर बैठा उस समय कठिनाइयों से घिरा था। इन कठिनाइयों ने उससे साम्राज्य छुड़वाया। फिर ईरानियों की थोड़ी-सी मदद के साथ सब शत्रुओं को परास्त कर दोबारा दिल्ली का बादशाह बना। ऐसे

आश्चर्यजनक उतार-चढ़ाव का ब्यौरा सचमुच हृदय को आकर्षित करता है। काल की निठुरता और मनुष्य के धैर्य का अद्‌भुत संघर्ष हुमायूं की कहानी को अत्यन्त रोचक बनाता है। इतिहास की दृष्टि से ही नहीं मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को समझने के लिए भी हुमायूं के इतिहास को जानना आवश्यक है। डा. हरिशंकर श्रीवास्तव ने इस पुस्तक को लिखकर लाभदायक साहित्य में अच्छा इजाफ़ा किया है।

ताराचन्द

दो शब्द

मुग़ल काल के सम्राटों में हुमायूं का अपना एक अलग स्थान है। वह मुग़ल वंश के संस्थापक बाबर का पुत्र तथा उस वंश के महान सम्राट अकबर का पिता था। उसके जीवन की उथल-पुथल कुछ ऐसी समस्याएँ उपस्थित करती हैं जो मुग़लकाल के इतिहास के अध्ययन के लिए आवश्यक हैं। मुग़ल सम्राटों में हुमायूं का राज्य-काल सबसे विवादग्रस्त रहा है। उसके निष्कासन तथा पराजय के वातावरण से प्रभावित होकर इतिहासकारों ने उसके सभी कार्यों को आलोचनात्मक तथा संशयात्मक दृष्टि से देखा है। इसके विपरीत उसके जीवन की घटनाएँ इतनी मार्मिक हैं कि बरबस उसके प्रति हमारी सहानुभूति हो जाती है। इस तरह उसके पक्ष तथा विपक्ष में तर्क का एक ऐसा वातावरण-सा छा गया है जिसमें उसका वास्तविक रूप प्रायः लुप्त-सा हो जाता है। भावनाओं से प्रभावित ऐतिहासिक अध्ययन इतिहास नहीं रह जाता। इस तरह हुमायूं का अध्ययन हमारे अनुशासित विचार की परख है। ऐसे विवादग्रस्त व्यक्ति का अध्ययन ऐतिहासिक तटस्थता की वास्तविक कसौटी उपस्थित करता है।

हुमायूं से सम्बन्धित समकालीन ग्रन्थ अधिकतर फारसी भाषा में हैं। इनमें से अधिकांश उसकी मृत्यु के काफी दिनों बाद उसके पुत्र के काल में लिखे गये। इन ग्रन्थों की सूची तथा संक्षिप्त परिचय पुस्तक के अन्त में दी गयी है जिससे उनका मूल्यांकन हो सकेगा। अंग्रेजी में हुमायूं से सम्बन्धित कई उपयोगी ग्रन्थ हैं जो हुमायूं के प्रति इतिहासकारों की विशेष रुचि के प्रमाण हैं।

प्रस्तुत पुस्तक गोरखपुर विश्वविद्यालय की एम.ए. कक्षाओं को दिये गये मेरे व्याख्यानों का विस्तृत तथा परिवर्तित रूप है। यह समकालीन ग्रन्थों पर आधारित है। हुमायूं से सम्बन्धित आधुनिक लेखकों के विचारों का भी मैंने अध्ययन किया है तथा अनेक स्थानों पर अपना तर्क प्रस्तुत करते हुए मैंने उनके विचारों से नम्र असहमति भी प्रकट की है। पाठक इन विचारों का अनुशीलन कर अपने विचार स्वयं निश्चित कर सकते हैं। हुमायूं से सम्बन्धित सभी प्रमुख घटनाओं को जहाँ तक संभव हो सका है मैंने स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। ऐतिहासिक स्थानों की भौगोलिक स्थिति भी मैंने फुटनोट में प्रकट कर दी हैं,

जिससे स्थानों को निश्चित करने में सुविधा होगी तथा पुस्तक में दिये गये मानचित्र में ये स्थान देखे जा सकते हैं। हुमायूं से सम्बन्धित तिथियों की भी विवेचना की गयी है जिससे हुमायूं का कालक्रम निश्चित हो सकेगा। चौसा तथा कन्नौज के युद्धों के मानचित्र भी दिये गये हैं जिनसे इन युद्धों को समझा जा सकेगा। भौगोलिक स्थान, व्यक्तियों के नाम तथा फारसी शब्दों का जहां तक सम्भव हो सका है सही तथा प्रचलित उच्चारण देने का प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रन्थ से सम्बन्धित फारसी पुस्तकों के अध्ययन में मौलवी मुहम्मद सादिक हुसेन से मैंने बड़ी सहायता प्राप्त की है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग के अध्यक्ष डा. महमूद इलाही ने फारसी के अनेक शब्दों की विवेचना कर मेरी कठिनाइयां दूर की हैं। पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने में श्री भगवानप्रसाद एम.ए., श्री रघुनाथप्रसाद एम.ए. तथा मेरी पुत्रियों, मधु तथा नीलिमा, ने मेरी सहायता की है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डा. रामचन्द्र तिवारी तथा श्रीमती शान्ता सिंह ने पुस्तक की भाषा को परिष्कृत करने में सहायता दी है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के आनरेरी लाइब्रेरियन डा. के. एस. भार्गव तथा असिस्टेण्ट लाइब्रेरियन श्री त्रिभुवननाथ गौड़ ने भिन्न-भिन्न पुस्तकालयों से पुस्तकें मंगाकर मुझे सुविधा प्रदान की है। पुस्तक के लिखने में जिन पुस्तकों से मैंने सहायता प्राप्त की है उनके लेखकों तथा प्रकाशकों के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूं। पुस्तक में दिये गये दोनों चित्र भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।

मेरे पूज्य गुरुवर, प्रसिद्ध इतिहासकार डा. ताराचन्द, ने अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी समय निकालकर पूरी पाण्डुलिपि पढ़कर अपने अमूल्य सुझाव देने तथा पुस्तक का आमुख लिखने की महती कृपा की है। इस कृपा के लिए मैं उनका विशेष आभार प्रकट करता हूं।

प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्ययन करते समय मुग़लकाल के इतिहास के प्रति मेरी रुचि जागृत हुई थी। तभी से इस विषय पर लिखने की आकांक्षा रही है किन्तु अनुकूल परिस्थिति के अभाव में यह सम्भव न हो सका। विगत बीस वर्षों के अध्ययन तथा अध्यापन से मुग़ल इतिहास के प्रति आकर्षण बढ़ता ही गया है। आज मुग़ल सम्राट हुमायूं के जीवन तथा शासन का इतिहास प्रस्तुत कर एक संतोष का अनुभव कर रहा हूं।

पुस्तक की कमियों से मैं अभिज्ञ हूं। सन्तोष केवल इस बात से है

कि अनेक कठिनाइयों के बावजूद यह ग्रन्थ हिन्दी में प्रस्तुत कर सका हूं। विश्वविद्यालय उच्चतम शिक्षा-केन्द्र हैं। उनके सम्मुख हिन्दी माध्यम की समस्या एक ज्वलन्त समस्या है। ऐसी स्थिति में हम लोगों पर, जो विश्वविद्यालयी शिक्षा से सम्बद्ध हैं और जो हिन्दी प्रदेश के निवासी है, विशेष दायित्व है। प्रस्तुत प्रयत्न इस दायित्व को निभाने की दिशा में एक विनम्र प्रयासमात्र है। इस पुस्तक से विद्यार्थियों के लाभ के अतिरिक्त हुमायूं सम्बन्धी ऐतिहासिक समस्याओं का निराकरण तथा हिन्दी की कुछ सेवा हो सकी तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

हरिशंकर श्रीवास्तव

विषय-सूची

हुमायूं का मकबरा

१. प्रारम्भिक जीवन

नसीरुद्दीन मुहम्मद हुमायूं मिर्ज़ा का जन्म काबुल के क़िले में मंगलवार, ६ मार्च सन् १५०८ को रात्रि में हुआ था।[1] उस समय उसका पिता ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर काबुल प्रदेश का अधिपति था। हुमायूं के शरीर में एशिया के दो प्रमुख विजेताओं—चंगेज़ तथा तैमूर—का रक्त था। बाबर के पिता उमर शेख़ मिर्ज़ा तैमूर की चौथी पीढ़ी, तथा माता कुतलूक निग़ार चंगेज़ ख़ां की तेरहवीं पीढ़ी में थी। इस तरह हुमायूं पिता की तरफ़ से तैमूर की छठी पीढ़ी में तथा अपनी दादी की तरफ से चंगेज़ की पन्द्रहवीं पीढ़ी में आता है।[2]

१ दि मेमार्यस ऑफ बाबर, (बाबरनामा), अंग्रेजी अनुवाद, अनुवादक, श्रीमती ए. एस. बेवरिज, पृ. ३४४; अकबरनामा, फ़ारसी, भाग १, पृ. २१, मुस्लिम तिथि के अनुसार चौथी ज़ीकाद, ९१३ हिजरी। बाबर अपनी आत्मकथा में लिखता है कि मौलाना मसनदी नामक कवि ने 'सुल्तान हुमायूं ख़ां' नामक अक्षरों से तथा काबुल के एक अन्य साधारण कवि ने 'शाह फ़ीरोज़ क़द्र' के अक्षरों से हुमायूं की जन्म तिथि निकाली। अरबी अक्षरों का वह क्रम जिसमें हर अक्षर का मूल्य एक से हज़ार तक निर्धारित है, अब्जद कहलाता है। अब्जद के आधार पर दोनों उपर्युक्त अक्षरों का जोड़ ९१३ हुआ।

२ अमीर तैमूर (तुर्क)
- मिर्ज़ा मिरान शाह
- सुल्तान मुहम्मद मिर्ज़ा
- सुल्तान अबु सईद मिर्ज़ा
  - अहमद मिर्ज़ा (समरक़न्द तथा बुख़ारा)
  - महमूद मिर्ज़ा (बल्ख तथा बदख़्शां)
  - उलूग बेग मिर्ज़ा (काबुल एवं ग़ज़नी)
  - उमर शेख़ मिर्ज़ा (चौथी पीढ़ी) (फ़रगना)
    - ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर
      - हुमायूं

चंगेज़ ख़ां (मंगोल)
- यूनस ख़ां (बारहवीं पीढ़ी)
- कुतलूक निगार (तेरहवीं पीढ़ी)

हुमायूं की माता माहम बेगम के प्रारम्भिक जीवन के विषय में हमें अधिक ज्ञान नहीं है।[3] समकालीन इतिहासकारों से केवल यही पता चलता है कि वह सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा (बाइक़रा) तथा ख़ुरासान के प्रसिद्ध सन्त शेख़ अबु नस्र अहमद जाम[4] के वंश से सम्बन्धित थी। इससे स्पष्ट है कि वह एक कुलीन परिवार की तथा शिआ मतावलम्बी थी। बाबर ने १५०६ में हिरात में उससे विवाह किया था। धार्मिक भिन्नता होने पर भी दोनों का वैवाहिक जीवन सुखी था। बाबर की कई पत्नियां थीं[5] किन्तु माहम उसकी प्रमुख पत्नी थी तथा उसे उन सबसे अधिक महत्त्व प्राप्त था।

३ गुलबदन बेगम ने माहम के लिए 'आक़ा' शब्द का प्रयोग किया है। यह तुर्की भाषा का शब्द है, जो वयोवृद्ध महिला के लिए प्रयोग किया जाता था। आक़ा का अर्थ प्रभु, मालिक, अध्यक्ष या सरदार है (गुलबदन, हुमायूं-नामा, बेवरिज, पृ. २५६-५८)। श्रीमती बेवरिज लिखती हैं कि माहम के वंश का पता लगाना कठिन है (बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ३४४, टिप्पणी)। डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार यह निश्चित ही है कि वह मुग़ल नहीं थी (ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १)। माहम बाबर के ट्रान्स-ऑक्सियाना अभियान के समय उसके साथ थीं (९१६-२० हि.)। ऊज़बेकों से पराजित होकर बाबर जिस समय ९१८ हि. (अप्रैल-मई १५१२) में हिसार में था, तब भी माहम उसके साथ थीं (बाबरनामा, बेवरिज, १, पृ. ३५८; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ९१)।

४ अबू नस्र अहमद जाम 'ज़िन्दा पील' ईरान के एक प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त थे। उनका जन्म सन् १०४९ (४४१ हि.) में हुआ था। २२ वर्ष की अवस्था में उन्होंने धार्मिक जीवन अपना लिया। वे अट्ठारह वर्ष तक जंगलों तथा पर्वतों में घोर तपस्या करते रहे। उसके पश्चात् उन्होंने विवाह किया। उनके ३९ पुत्र तथा ३ पुत्रियां हुईं। उनकी मृत्यु के समय (फरवरी १४४२, ५२६ हिजरी) तीनों पुत्रियां तथा चौदह पुत्र जीवित थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें रिसाला-ए-समरक़न्दी, बहरुल हक़ीक़त इत्यादि प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि उन्होंने साठ हजार व्यक्तियों को इस्लाम धर्म का अनुयायी बनाया। (एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम, भाग १, पृ. १९७; बील तथा कीन, दि ओरिएन्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी, पृ. २७)।

ईरान तथा निकट के भागों में उनका नाम बड़े आदर से लिया जाता था। तैमूर ने स्वयं इनके दरगाह की यात्रा की थी। हुमायूं की 'सन्त ज़िन्दा-पील के दरगाह' की यात्रा के लिए इस पुस्तक का नवां अध्याय देखिए।

५ बाबरनामा तथा गुलबदन बेगम के हुमायूंनामा से हमें बाबर की नौ पत्नियों का ज्ञान प्राप्त होता है :

हुमायूं का जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। बाबर अपनी आत्म-कथा में लिखता है: "जब वह (हुमायूं) पांच-छह दिन का हो गया तो मैं चारबाग़ पहुँचा, जहाँ उसके जन्म का समारोह मनाया गया। सभी छोटे-बड़े बेग

(१) आयशा सुल्तान बेगम—यह बाबर के चाचा सुल्तान अहमद मिर्ज़ा की पुत्री थी। जिस समय बाबर की अवस्था पांच वर्ष की थी, इसकी मँगनी उससे हुई, किन्तु विवाह ख़ोजन्द में, मार्च १५०० में हुआ। १५०१ ई. में इसके एक पुत्री पैदा हुई, किन्तु यह एक महीने में ही मर गयी (गुलबदन, हुमायूंनामा, टिप्पणी, पृ. २०९-१०)।

(२) ज़ैनब सुल्तान बेगम—यह सुल्तान महमूद मिर्ज़ा की पुत्री थी। इसका विवाह १५०४ में हुआ। दुर्भाग्यवश २ वर्ष पश्चात् ही ज़ैनब की मृत्यु हो गयी। (बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४८)।

(३) मासूमा सुल्तान बेगम—यह सुल्तान अहमद मिर्ज़ा की पांचवीं पुत्री थी। इसकी माता हबीबा सुल्तान बेगम अर्ग़ून थी। यह बाबर की पहली पत्नी आयशा की सौतेली बहन थी। यह प्रेमविवाह था जो १५०७ में सम्पन्न हुआ था। दो वर्ष पश्चात् पुत्र-जन्म में इसकी मृत्यु हो गयी। इसकी पुत्री का नाम इसी के नाम पर (मासूमा सुल्तान बेगम) रखा गया (गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ९० तथा २६३)। बाद में इस लड़की का विवाह मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा से हुआ।

(४) माहम बेगम—इसका उल्लेख ऊपर किया गया है। माहम बेगम के पांच सन्तानें हुईं—बारबुल मिर्ज़ा, मिहिर जहां, एशान दौलत बेगम, फ़ारूक़ मिर्ज़ा तथा हुमायूं मिर्ज़ा। प्रथम चार सन्तानें बचपन में ही मर गयीं।

(५) गुलरुख़ बेगम—इसके वंश का परिचय हमें प्राप्त नहीं है। सन् १५०८ में बाबर के साथ इसका विवाह हुआ। इसके पांच पुत्र हुए जिनमें दो—कामरान तथा अस्करी—हुमायूं के राज्य काल में जीवित रहे और उसके दुर्भाग्य के कारण बने (बाबरनामा, बेवरिज, पृ. २७४-३८८; तारीख़े रशीदी, पृ. १८३, २४८, २६४-६५, २८०,३०८, ३२६; गुलबदन बेगम, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. २३३-३४)।

(६) दिलदार अग़ाचा—यह बाबर की दूसरी पत्नी ज़ैनब बेगम की बहन थी। इससे बाबर का विवाह कदाचित् १५०९ या इसके पश्चात् हुआ था। इसकी पांच सन्तानें हुईं—गुलरंग, गुलचेहरा, हिन्दाल, गुलबदन तथा अलवर। इनमें दो—हिन्दाल मिर्ज़ा (१५१८–५१) तथा गुलबदन बेगम (१५२३–१६०३)—ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। (गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. २२५-२६; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ३०-३१; अर्सकिन, २, पृ. १६४, २२०, ३०२)।

उपहार लाये, चांदी के टनकों का इतना ढेर लग गया कि इससे पूर्व ऐसा ढेर न देखा गया। यह बहुत ही बढ़िया प्रकार का समारोह हुआ।"[६]

बाबर 'पादशाह'

हुमायूं के जन्म के समय बाबर की अवस्था लगभग २६ वर्ष की थी। उसका प्रारम्भिक जीवन कठिन परिस्थितियों में व्यतीत हुआ था। काबुल पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् उसका अनाश्रित जीवन समाप्त हो गया था और वह अपने जीवन में स्थिरता का अनुभव कर रहा था। हुमायूं के जन्म के

(७) मुबारिका बीबी—यह शाह मन्सूर यूसुफ़ज़ई की पुत्री थी बाबर ने केहरास में ३० जनवरी १५१९ को इससे विवाह किया था। यह विवाह यूसुफ़ज़ई को अपने में मिलाने के लिए किया गया था। इसके कोई सन्तान नहीं हुई। कदाचित् बाबर की उपपत्नियों ने इसे ऐसी दवा खिला दी थी कि कोई सन्तान न हो सकी। (गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ० ९१-९२, २६६; अकबरनामा, अं. अनु., १, पृ. ३१५; एशियाटिक क्वार्टरली रिव्यू, अप्रैल १९०१, एच. बेवरिज, 'ऐन अफ़ग़ान लिजेंड,' (तारीख़े हाफ़िज़े रहमतख़ानी का अनुवाद)।

(८) गुलनार अघाचा और (९) नारगुल अघाच—ये कदाचित् दासियां थीं जिन्हें शाह-तहमास्प ने बाबर को उपहार के रूप में १५२६ में दिया था। प्रारम्भ में ये रखैलें थीं किन्तु बाद में इनकी गणना राजभवन की सम्भ्रान्त महिलाओं में होने लगी। गुलबदन बेगम ने अपने संस्मरण में कई बार उत्सवों तथा पारिवारिक विचार-विमर्शों में इन्हें भाग लेते हुए वर्णन किया है। गुलनार हिन्दाल के विवाह के उत्सव में उपस्थित थी तथा गुलबदन बेगम के साथ १५७५ में हज को गयी थी। अपने जीवन के अन्तिम समय में इन दोनों पर बाबर की आसक्ति बहुत बढ़ गयी थी (गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. २३२, अकबर-नामा, अं. अनु., ३, पृ. १४५)।

इन नौ पत्नियों के अतिरिक्त तारीख़े शाहरुख़ के लेखक नियाज़ मुहम्मद ख़ुकंडी ने सायीदा आफ़ाक़ नाम की एक दसवीं पत्नी का भी उल्लेख किया है। हो सकता है कि बाबर की और भी पत्नियां तथा रखैलें रही हों।

गुलबदन ने बाबर की १९ संतानों का उल्लेख किया है, किन्तु नाम उन्होंने केवल १८ के लिखे हैं। हुमायूं के केवल तीन सौतेले भाई तथा चार सौतेली बहनें जीवित रहीं।

६ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ३४४।

कुछ ही दिन पूर्व उसने दो बार भारत की पश्चिमोत्तर सीमाओं पर आक्रमण करने में सफलता प्राप्त की थी। इस तरह उसका जीवन एक नयी दिशा की ओर अग्रसर हो रहा था।

अब तक बाबर के पूर्वज अपने को 'मिर्ज़ा' लिखते थे। हुमायूं के जन्म के वर्ष उसने 'पादशाह' की उपाधि धारण की। बाबर अपनी आत्मकथा में लिखता है: "उस समय तैमूर बेग के उत्तराधिकारियों को, चाहे वे राज्य ही क्यों न कर रहे हों, लोग 'मिर्ज़ा' कहते थे, किन्तु इस समय मैंने आदेश दिया कि लोग मुझे 'पादशाह' कहा करें।"[७]

हुमायूं का जन्म तथा बाबर द्वारा 'पादशाह' की उपाधि धारण करना, ये दोनों घटनाएं एक ही वर्ष में कुछ दिनों के अन्तर से हुईं। इस कारण यह प्रश्न उठता है कि क्या इन दोनों घटनाओं में कोई सम्बन्ध है? बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम हुमायूं के जन्म का उल्लेख करने के पश्चात् ही लिखती है: "उसी वर्ष हज़रत फ़िरदौस मकानी (बाबर) ने अपने अमीरों तथा सब लोगों को आदेश दिया कि उन्हें बाबर पादशाह कहा जाया करे अन्यथा हुमायूं बादशाह के जन्म के पूर्व उन्हें मिर्ज़ा बाबर के नाम से पुकारा जाता था। सभी बादशाह के पुत्रों को मिर्ज़ा कहा जाता था। हुमायूं बादशाह के जन्म के वर्ष में उन्होंने अपने आपको बादशाह कहलाया।"[८] इस वर्णन के आधार पर डा. बनर्जी लिखते हैं कि "हुमायूं के जन्म के सम्बन्ध में मनाये जा रहे उत्सवों के

७ वही।

८ गुलबदन; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ९०; फ़ारसी पृ. ६; गुलबदन के शब्द इस प्रकार हैं:—

و در همان سال حضرت فردوس مکانی خودرا فرمودند بهامرا و سایر الناس
که مرا بابر پادشاه گوئید والا اوایل قبل از تولد حضرت همایون پادشاه مرزا بابر
موسوم و مرسوم بودند بلکه همه بادشاه زاد هائے را مرزامی گفتند و در سال
تولد ایشان خودرا بابر بادشاه گویانیدند -

व दरहमां साल हज़रते फ़िरदौस मकानी ख़ुद रा फ़रमूदन्द ब उमरा व सायरुन्नास कि मरा बाबर बादशाह गोयेद। व इल्ला अवायल क़ब्ल अज़ तवल्लुदे हज़रत हुमायूं बादशाह मिर्ज़ा बाबर मौसूम व मरसूम बूदन्द बल्कि हमा बादशाह ज़ादाहारा रा मिर्ज़ा मी गुफ़्तन्द व दर साले तवल्लुदे एशां ख़ुद रा बाबर बादशाह गोयानीदन्द।

समय बाबर ने मिर्ज़ा के स्थान पर पादशाह की उच्च उपाधि धारण की।"[९] इसके विपरीत श्रीमती बेवरिज इन दोनों घटनाओं में कोई सम्बन्ध नहीं स्वीकार करतीं।[१०] वे अपना मत बाबर की आत्मकथा पर आधारित करती हैं। दोनों मतों में श्रीमती बेवरिज का ही मत सही मालूम होता है, क्योंकि बाबर ने अपनी आत्मकथा में पहले पादशाह की उपाधि धारण करने का वर्णन किया है और उसके पश्चात् वह लिखता है कि उस वर्ष के अन्त में हुमायूं का जन्म हुआ।[११] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं के जन्म के पूर्व ही बाबर ने पादशाह की उपाधि धारण कर ली थी। बाबर तथा गुलबदन बेगम के वर्णनों में बाबर निश्चय ही अधिक विश्वसनीय है। गुलबदन बेगम का उस समय जन्म भी नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त किसी अन्य समकालीन इतिहासकार से भी डा. बनर्जी के मत का समर्थन नहीं प्राप्त होता।

बाबर द्वारा 'पादशाह' की उपाधि धारण किये जाने के कुछ विशेष कारण थे। तैमूर के वंशजों में उस समय बाबर का ही स्थान सबसे प्रमुख था। ख़ाक़ान मुग़ल पादशाह कहलाते थे। बुग़रा ख़ां इतिहास में पादशाह ग़ाज़ी कहलाता था। ख़ाकानों की यह उपाधि धारण कर बाबर अपने को चग़ताइयों, मिर्ज़ाओं तथा मुग़लों का सर्वोपरि घोषित करना चाहता था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बाबर ने यह उपाधि राजनीतिक दृष्टि से धारण की थी, न कि पुत्र-जन्म की प्रसन्नता के कारण।

पुत्र का जन्म बाबर के लिए प्रसन्नता तथा आनन्दोत्सव का विषय अवश्य था, किन्तु यह कहना कि पुत्र-जन्म ने "बाबर के वंश तथा उसके शासन के सिद्धान्तों को निरंतरता प्रदान की,"[१२] सत्य नहीं है। बाबर की अवस्था अधिक नहीं थी। उसके सन्तानें भी हो रही थीं, यद्यपि वे जीवित नहीं थीं। इस कारण, पुत्र न होने का दुख नहीं था। सन्देह इस बात का था कि क्या

९ बनर्जी (हुमायूं १, पृ. २) लिखते हैं, "The occasion was marked by rejoicing amidst which he assumed the higher title of Padshah in preference to that of Mirza so long used by him."

१० बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ३४४, फु. नो. २।

११ वही, पृ. ३४४।

१२ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २, "The birth of a son ensured the continuity of his line and the principles of his Government."

नवजात शिशु जीवित रहेगा ? ऐसी स्थिति में पुत्र-जन्म से वंश की निरंतरता की आशा हो सकती थी, निश्चय नहीं। मुग़ल शासन के सिद्धान्तों का अभी विकास ही नहीं हुआ था, जिनमें नये शिशु द्वारा स्थायित्व प्रदान करने की आशा की जाती। उपर्युक्त कथन के प्रथम भाग में कुछ सत्यता हो भी सकती है, किन्तु दूसरे का तो अस्तित्व ही नहीं था।

हुमायूं का बालपन

हुमायूं के जन्म के समय मध्य एशिया क्रान्तिकारी परिस्थितियों से गुज़र रहा था। उसी वर्ष, बाबर की अनुपस्थिति में उसके विरुद्ध काबुल के भूतपूर्व शासक के पुत्र अब्दुर्रज़्ज़ाक को गद्दी पर बैठाने के लिए एक षड्यन्त्र रचा गया। मई १५०८ में काबुल वापस आने के पश्चात् बाबर को इस षड्यन्त्र की सूचना मिली किन्तु उसने इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया। एक दिन वह चारबाग़ में बैठा था। उसी समय अचानक लगभग तीन हज़ार सैनिकों ने, जिनमें भाड़े के मुग़ल सैनिक भी थे, उस पर आक्रमण कर दिया। उस समय बाबर के पास केवल पांच सौ स्वामिभक्त सैनिक थे। आक्रमण इतना अचानक हुआ था कि वह या तो मार डाला जाता या विद्रोहियों द्वारा बन्दी बना लिया जाता। बाबर ने पहले तो भागना चाहा, किन्तु फिर मन को दृढ़ करके उसने विद्रोहियों का सामना किया। विद्रोही संख्या में अधिक होने पर भी पराजित हुए तथा उनका नेता अब्दुर्रज़्ज़ाक बन्दी बनाया गया। बाबर यदि चाहता तो उसे मरवा सकता था, किन्तु उसने दया कर उसे स्वतन्त्र कर दिया। अब्दुर्रज़्ज़ाक ने कुछ दिन पश्चात् पुनः विद्रोह किया जिसके उपरान्त वह मार डाला गया।[१३]

मध्य एशिया में शैबानी ख़ां ने तैमूर तथा चंगेज़ के वंशजों को पराजित कर उनके राज्यों पर अधिकार कर लिया था। शक्ति से मदान्ध होकर उसने इसी बीच ईरान के शाह से शत्रुता मोल ले ली। ऊज़बेक तथा ईरानियों में भयंकर युद्ध की तैयारी होने लगी। दिसम्बर १५१० में मर्व के भयंकर युद्ध में शैबानी ख़ां मारा गया तथा उसकी सेना बुरी तरह पराजित हुई।[१४] शैबानी

[१३] तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास, पृ. २०४; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. २६-३०; रशब्रुक विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर ऑफ दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी, पृ. ६६-६७।

[१४] तारीख़े रशीदी, ए. तथा रा., पृ. २३७; अर्सकिन, १, पृ. २६८–३००; अहसानत् तवारीख़, सं. सेडन, पृ. ५७ तथा ११६; विलियम्स, पृ. ६७–१०१।

खां के पराजित होते ही मध्य एशिया में अराजकता फैल गयी। तैमूर वंशियों ने उसके साम्राज्य पर अधिकार करने का पुनः प्रयत्न किया। बाबर को भी निमन्त्रण मिला। काबुल को अपने भाई नासिर मिर्ज़ा के नियन्त्रण में रखकर बाबर अपने दो पुत्रों (हुमायूं तथा कामरान) के साथ १५११ के प्रारम्भ में कुन्दुज़ पहुँचा। यहीं पर शाह इस्माईल ने उसकी विधवा बहन ख़ानज़ादा बेगम को, जिसका विवाह शैबानी ख़ां से हुआ था, वापस भेजा। शाह ने बाबर को सूचित किया कि वह उसे समरक़न्द देने को तैयार है यदि बाबर शिआ धर्म को प्रोत्साहित करने का वचन दे। बाबर ने इसे स्वीकार किया और समरक़न्द पर तीसरी तथा अन्तिम बार उसका अधिकार हुआ,[१५] किन्तु वह अधिक दिनों तक उसे अपने अधिकार में न रख सका। आठ महीने के पश्चात् ही नवम्बर १५१२ में, वह उबैदुल्ला खां ऊज़बेक द्वारा गज्दवान के युद्ध में पराजित हुआ। कठिन परिस्थितियों में कुछ दिन हिसार तथा कुन्दुज़ में व्यतीत कर १५१४ में बाबर को पुनः काबुल लौट आना पड़ा।[१६] इस बीच हुमायूं कहां था, यह निश्चित रूप से बताना कठिन है। कदाचित् वह कामरान के साथ सुरक्षा के लिए काबुल भेज दिया गया था।[१७]

शिक्षा

हुमायूं के प्रारम्भिक जीवन तथा शिक्षा के विषय में हमें अधिक ज्ञान नहीं है। उसने न स्वयं अपनी आत्मकथा लिखी, न उसके पिता की आत्मकथा में ही इनका वर्णन है। समकालीन इतिहासकार भी मौन हैं। इस कारण उसकी शिक्षा कब प्रारम्भ हुई[१८] तथा उसकी प्रगति कैसी थी इत्यादि बातों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं है। हमें केवल उसके दो शिक्षकों—मौलाना मसीहुद्दीन रूहुल्लाह[१९]

१५ विलियम्स, पृ. १०१–१०३; रजब ९१७ हिजरी, सितम्बर-अक्टूबर १५११।

१६ अहसानत् तवारीख़, १, पृ. १२७–३६; तारीख़े रशीदी, ए. तथा रा., पृ. २४६-४७ तथा २६०–६८, विलियम्स, पृ. १०३–१०९।

१७ ईश्वरी प्रसाद, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ हुमायूं, पृ. ४।

१८ ला, प्रोमोशन ऑफ लर्निंग इन इंडिया ड्यूरिंग मोहम्डन रूल, पृ. १२८। चार वर्ष चार महीना तथा चार दिन की अवस्था में हुमायूं का विद्यारंभ संस्कार हुआ तथा उसे शिक्षकों के सुपुर्द किया गया।

१९ ख्वन्दमीर, क़ानूने हुमायूंनी, डा. बेनी प्रसाद (अं. अनु.) पृ. २४; अबुल फ़ज़्ल इसका नाम केवल रूहुल्लाह लिखता है, अकबरनामा, १ पृ. ३५७।

तथा मौलाना इलियास[२०] का केवल उल्लेख मिलता है। हुमायूं कई भाषाओं का जानकार था। वह कवि, ज्योतिष तथा नक्षत्रशास्त्र का विद्वान तथा साहित्यकारों का पोषक था। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उसकी प्रारम्भिक शिक्षा अच्छी हुई होगी।

बाबर की आत्मकथा में भी तीन ऐसे उल्लेख हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि बाबर हुमायूं की शिक्षा के विषय में सतर्क था। जनवरी १५२६ में बाबर ने मिलावत पर अधिकार किया और ग़ाज़ी खां का पुस्तकालय उसे प्राप्त हुआ। उस पुस्तकालय की कुछ पुस्तकें उसने हुमायूं को भेंट कीं।[२१] जनवरी १५२९ में बाबर ने हुमायूं को अपनी कुछ रचनाएं भेजीं।[२२] नवम्बर १५२८ में हुमायूं ने बाबर को एक पत्र लिखा, उसके उत्तर में बाबर हुमायूं के पत्र की आलोचना करता है तथा उसे शुद्ध लिखने का परामर्श देता है।[२३]

शासन तथा सैनिक शिक्षा

बाबर ने हुमायूं को सैनिक ज्ञान तथा उससे सम्बन्धित शारीरिक कार्य तथा

२० ग़नी, ए हिस्ट्री ऑफ पर्शियन लैंगुएज एण्ड लिटरेचर ऐट दि मुगल कोर्ट, २, पृ. ५३।

२१ सात व आठ जनवरी १५२६ को बाबर लिखता है, "उस टीले पर दो रातें व्यतीत करने के उपरान्त मैंने दुर्ग का निरीक्षण किया। मैंने ग़ाज़ी खां के पुस्तकालय में प्रवेश किया। वहां बहुत से उत्तम बहुमूल्य ग्रन्थ मिले। उनमें से कुछ मैंने हुमायूं को दिये और कुछ कामरान को भेज दिये। उनमें बहुत से ग्रन्थ पांडित्यपूर्ण विषयों पर थे, किन्तु उनकी संख्या इतनी अधिक न थी जितनी सर्वप्रथम दृष्टिगत हुई थी। मैंने वह रात्रि किले में व्यतीत की। दूसरे दिन प्रातःकाल मैं अपने शिविर में चला आया।" बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४६०।

२२ "मुल्ला बहिश्ती के हाथ हिन्दाल को एक जड़ाऊ पेटी सहित कटार, एक जड़ाऊ कलमदान, एक मोतियों के काम की चौकी, एक कबा एवं एक पेटी तथा बाबरी लिपि के कुछ विभिन्न पत्र एवं बाबरी लिपि में लिखे हुए क़ते भेजे। हिन्दुस्तान में मैंने जिस अनुवाद और जिन पद्यों की रचना की थी उन्हें हुमायूं के पास भेजा। हिन्दाल तथा ख्वाजा कलां को भी अनुवाद एवं पद्य भेजे गये। उन्हें कामरान के पास भी बाबरी लिपि में लिखे हुए नमूनों के साथ मिर्ज़ा बेग तग़ाई के हाथ भेजा गया।" बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६४२।

२३ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६२४–२८। यह पत्र आगे टिप्पणी सं. ६९ में उद्धृत है।

शक्ति संचय में भी प्रवीण करने का प्रयत्न किया। बाबर का जीवन एक ऐसा जीवन था जिसमें वह बराबर एक स्थान से दूसरे स्थान पर युद्ध, शासन तथा शिकार के लिए जाया करता था। हुमायूं भी उसके साथ जाता रहता था। वहां उसे सैनिक हथियारों के प्रयोग की शिक्षा मिलती थी। बाबर अपनी आत्मकथा में लिखता है कि १२ नवम्बर १५१६ में कोह दमन की सैर करते समय हुमायूं ने एक बत्तख़ पर बड़ा ही अच्छा निशाना लगाया।[२४]

कुछ महीने पश्चात्, जब हुमायूं की अवस्था लगभग १२ वर्ष की थी, हमें एक ऐसा उदाहरण मिलता है जब हुमायूं अपने पिता के व्यस्त जीवन से अलग होकर आलस्यपूर्ण शान्तिमय जीवन व्यतीत करने की इच्छा प्रकट करता है। १ जनवरी १५२० को लमग़ान की यात्रा का वर्णन करते हुए बाबर लिखता है : "सोमवार को हम लोग लमग़ान की सैर के उद्देश्य से रवाना हुए। मुझे आशा थी कि हुमायूं हमारे साथ चलेगा किन्तु जब ऐसा ज्ञात हुआ कि वह ठहरना चाहता है तो कूरा दर्रे से उसे वापस जाने की अनुमति दे दी गयी।"[२५]

मध्य युग में बालपन से ही राजकुमारों को शासन की शिक्षा दी जाती थी। हुमायूं को भी इसी तरह की शिक्षा दी गयी। १५२० में बाबर के चाचा सुल्तान महमूद मिर्ज़ा के पुत्र मिर्ज़ा ख़ां की मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र सुलेमान नाबालिग़ था। मिर्ज़ा ख़ां बदख़्शां का शासक था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र काबुल लाया गया और बाबर के पुत्रों के साथ उसकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया गया। बदख़्शां के निवासियों ने सुलेमान की नाबालिग़ी के काल में बाबर से वहाँ का शासन प्रबन्ध करने की प्रार्थना की। इसके परिणाम स्वरूप बाबर ने हुमायूं को बदख़्शां का गवर्नर नियुक्त किया।[२६] माता

२४ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४१७।

२५ वही, पृ. ४२१।

२६ श्रीमती बेवरिज ने गुलबदन बेगम के हुमायूंनामा के अंग्रेजी अनुवाद में (पृ. ९२-९३) यह मत प्रकट किया है कि हुमायूं को नियुक्त करने में बाबर के संकोच का कारण उसकी अल्पावस्था थी। श्रीमती बेवरिज का यह मत सत्य नहीं प्रतीत होता क्योंकि मध्य युग में हुमायूं से कम अवस्था के राजकुमारों को भी उत्तरदायित्व का पद दिया जाता था। हिन्दाल ११ या १२ वर्ष की अवस्था में बदख़्शां का तथा कामरान १५ वर्ष की अवस्था में काबुल का गवर्नर नियुक्त हुआ था। अस्करी ने, घाघरा के युद्ध में १३ वर्ष की अवस्था में सेना के एक भाग का नेतृत्व किया था। हुमायूं की अवस्था इस समय लगभग तेरह वर्ष की थी।

और पिता हुमायूं को नये पद पर आसीन करने के लिए उसे साथ लेकर बदख़्शां गये और उसे पद सम्हालने का कार्य सौंपकर काबुल लौट आये।[२७]

१५२३ से १५२९ तक हुमायूं बदख़्शां का शासक रहा। इस बीच भारत पर आक्रमण के समय (नवम्बर-दिसम्बर १५२५) वह बाबर के साथ भारत आया। पुनः खनुवा (खानवा) के युद्ध के पश्चात् वह बदख़्शां भेजा गया (१५२७)। १५२९ में वह पुनः भारत लौट आया। वास्तविक रूप में बदख़्शां का शासन उसके परामर्शदाताओं तथा प्रतिनिधियों के हाथ में था। ऊज़बेक लोग बराबर बदख़्शां में कठिनाइयां उपस्थित करते रहते थे। बाबर स्वयं बदख़्शां को बहुत महत्त्वपूर्ण समझता था। इस कारण वह सदा उस पर अपनी दृष्टि रखता था। इस तरह हुमायूं को बदख़्शां के शासन में बाबर का परामर्श और सहयोग सदा प्राप्त रहा।[२८]

भारत पर आक्रमण

बाबर भारत पर आक्रमण करने के लिए तैयारी कर रहा था। चौथे आक्रमण के पश्चात् उसने समझ लिया कि उसे अपने ऊपर निर्भर रहकर आक्रमण करना होगा। उसने अपनी सेनाएं संगठित कीं तथा हुमायूं को भी बुलाया। भारत की तरफ आगे बढ़ने के पूर्व उसने वहां के शासन का भी प्रबन्ध किया।

बाबर को संकोच कदाचित् इस कारण था कि बदख़्शां पर सुलेमान का दावा हुमायूं से अधिक था। किन्तु बदख़्शां से एक निमन्त्रण पत्र आया जिसमें लिखा था कि "मिर्ज़ा खां की मृत्यु हो गयी है। मिर्ज़ा सुलेमान अभी लड़का है। ऊज़बेक निकट हैं। विचार करें कि कहीं बदख़्शां शत्रु के हाथ में न चला जाए।" (हुमायूंनामा, गुलबदन, बेवरिज, पृ. ९२)। इस पत्र को प्राप्त करने के उपरान्त बाबर ने तत्काल निर्णय कर हुमायूं को वहां भेज दिया।

२७ माहम के साथ बाबर की बदख़्शां यात्रा केवल पुत्र प्रेम के कारण न थी। बाबर ने वहां पहुँचकर स्थिति का अध्ययन किया तथा उसे वहां का प्रबन्ध करने में सुविधा भी हुई। बाबर की उपस्थिति का प्रभाव वहां के निवासियों पर पड़ना स्वाभाविक था। हुमायूं के साथ उसके अधिकार में एक बड़ी सेना रखी गयी जिसमें बैरम खां भी था जो भविष्य में अकबर के राज्यकाल में उसका प्रधान मन्त्री बना।

२८ हुमायूं के बदख़्शां के शासन का पूर्ण ज्ञान हमें प्राप्त नहीं है। निश्चयपूर्वक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इस बीच वहां शान्ति रही तथा कोई विशेष महत्त्वपूर्ण घटना नहीं हुई। (डा. ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ७)

उसने हुमायूं को आज्ञा दी कि वह एक सेना लेकर अपने पिता की सहायता के लिए बाग़ेवफ़ा में पहुँच जाए। बाबर अपनी आत्मकथा में लिखता है कि उसे हुमायूं की प्रतीक्षा करनी पड़ी, क्योंकि वह धीरे-धीरे आ रहा था। १७ नवम्बर १५२५ को बाबर ने काबुल से प्रस्थान किया। उसे आशा थी कि हुमायूं निश्चित दिन तक अवश्य ही आ जाएगा, किन्तु वह उस दिन भी नहीं पहुँचा और बाबर को हुमायूं की प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब हुमायूं बाबर से मिला तो बाबर उस पर नाराज हुआ और उसने उसे उसकी इस सुस्ती के लिए डांटा। वह अपनी आत्मकथा में लिखता है : "शनिवार (२५ नवम्बर १५२५) को हमने बाग़ेवफ़ा में पड़ाव डाला। कुछ दिन तक हम लोग हुमायूं तथा उस ओर की सेना की प्रतीक्षा में बाग़ेवफ़ा में ठहरे रहे।..........हुमायूं के निश्चित अवधि से अधिक ठहर जाने के कारण मैंने क्रोध प्रदर्शित करते हुए कठोर भाषा में पत्र लिखकर उसके पास भिजवाया। रविवार १७ सफर (३ दिसम्बर) को प्रातःकाल के उपरान्त हुमायूं उपस्थित हुआ। उसके विलम्ब कर देने के कारण मैंने उसे बहुत डांटा-फटकारा।"[२९]

हुमायूं बाबर की आज्ञानुसार समय से क्यों नहीं पहुँचा ? कुछ विद्वान इस विलम्ब का कारण परिस्थितियां बताते हैं। इसके विपरीत दूसरे उसकी आलोचना करते हैं तथा उसकी चारित्रिक दुर्बलता को इसका कारण मानते हैं। हुमायूं के पक्ष में कहा गया है कि हुमायूं के पास समय कम था। उसे बाबर का आदेश ज़िल-हिज्जा के महीने में मिला तथा उसे बाग़ेवफ़ा में मुहर्रम महीने में पहुँचना था। इस तरह उसके पास केवल एक महीने का समय था। इस बीच में सेना एकत्र कर उस स्थान पर पहुँचना सम्भव नहीं था। सैनिक तैयारियों में समय लगता है तथा बाबर ने यद्यपि मुहर्रम मास में पहुँचने की आशा की थी, किन्तु वह ९ सफर (२५ नवम्बर) को पहुँच सका और हुमायूं ३ दिसम्बर को। इस तरह हुमायूं के पहुँचने के लगभग एक सप्ताह पूर्व ही वह वहां पहुँच सका। उसे बदख़्शां के सैनिकों को इस यात्रा के लिए तैयार करने में, उन्हें समझाने में समय लगा होगा, क्योंकि वे लोग अनिश्चित स्थान में बहुत समय के लिए जाने को तैयार नहीं थे।[३०]

२९ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४४७।

३० बाबर को बाग़ेवफ़ा से प्रस्थान करने में एक मास का विलम्ब करना पड़ा। कुछ हस्तलिखित पोथियों में हुमायूं की एक टिप्पणी मिलती है : "हमारा प्रस्थान आशुरा (१० मुहर्रम) के उपरान्त निश्चय हुआ था। हम लोग १० सफर के बाद पहुँचे। विलम्ब करना आवश्यक

डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "कदाचित् यह अभियान हुमायूं की रुचि के अनुकूल नहीं था। उसे बाबर के इस अभियान की सफलता की आशा नहीं थी अथवा कुछ समय स्वतन्त्र शासन करने के पश्चात् ऐसे व्यक्तियों के अधीन कार्य करना उसे रुचिकर न प्रतीत हुआ हो, इसकी हम कल्पना कर सकते हैं। उसकी अवस्था इस समय १७ वर्ष की थी, जब राजत्व का आनन्द लेने पर भी अपनी आत्मचेतनावस्था में वह बालक ही था"।[31]

वास्तविक रूप में यदि हुमायूं के बाद के चरित्र को भी ध्यान में रखा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ से ही उसमें आंशिक रूप से उत्तर-दायित्वहीनता तथा आलस्य था। कुछ ही मास पश्चात् उसने आगरे का खजाना लूटा तथा बाद में कई महत्त्वपूर्ण अवसरों पर (जैसे बंगाल तथा गुजरात के अभियानों में) उसका यह आलस्य दोष स्पष्ट हो जाता है। यदि उसके पास समय की कमी होती अथवा सैनिकों को भर्ती करने तथा समझाने के कारण समय लगता तो उसने बाबर को उत्तर में अपनी सफाई दी होती और बाबर ने अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख अवश्य किया होता। बाबर हुमायूं के पहुँचने के केवल एक सप्ताह पूर्व ही क्यों पहुँच सका, इसका उत्तर स्पष्ट है कि उसे हुमायूं की गतिविधि का ज्ञान था। इस कारण वह भी धीरे-धीरे यात्रा कर रहा था जिससे हुमायूं से उसकी मुलाकात हो जाए।

भारत पर आक्रमण में हुमायूं को भी एक प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ। २६ फरवरी १५२६ को हुमायूं ने हिसार फ़िरोज़ा के शिक़दार हामिद ख़ां के विरुद्ध आक्रमण किया। हुमायूं की सहायता के लिए ख़्वाजा कलां, हिन्दू बेग, सुल्तान मुहम्मद इत्यादि उमरा भी थे। हुमायूं की सेना को देखकर अफ़ग़ान भाग गये। सेना ने हिसार फ़िरोज़ा पर अधिकार कर लिया।[32] हुमायूं को लगभग सौ युद्धबन्दी तथा सात-आठ हाथी लूट में प्राप्त हुए। भेंट लेकर वह बाबर के

था। बाबर के पत्र सूचना प्राप्त करने के लिए थे। उत्तर में निवेदन किया गया कि बदख़्शां की सेना की तैयारी में देर हो गयी। यदि यह दास अपने पिता की कृपा पर भरोसा करते हुए और अधिक विलम्ब करता तो दास का पिता और दुखी होता।" बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४४७, टिप्पणी, ३।

३१ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १०।

३२ हुमायूं के साथ भेजे गये उमरा बाबर के प्रमुख अमीरों में से थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं का यह नेतृत्व केवल नाम मात्र का था। ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १४।

सामने उपस्थित हुआ। सभी बन्दी बाबर की आज्ञा से मार डाले गये। इससे लोगों में आतंक छा गया। बाबर हुमायूं की इस विजय से बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपनी आत्मकथा में लिखता है कि "यह हुमायूं का प्रथम युद्ध तथा पहला अभियान था। यह सब भविष्य की सफलता के लिए बहुत ही शुभसूचक था।"[३३] प्रसन्न होकर बाबर ने हुमायूं को एक करोड़ टनके[३४] तथा हिसार फ़िरोज़ा की जागीर जिसकी आमदनी लगभग एक करोड़ वार्षिक थी, पुरस्कारस्वरूप प्रदान की।[३५]

यहां से बाबर की सेना शाहाबाद पहुँची। यहां हुमायूं ने प्रथम बार उस्तरे से दाढ़ी बनायी। चग़ताई तुर्कों में यह अवसर बड़े धूमधाम से मनाया जाता था। किन्तु इस समय युद्ध के मैदान में यह सम्भव न था। इस कारण यह उत्सव साधारण रूप में ही मनाया गया। उसी समय अफ़ग़ानों के पानीपत के मैदान की तरफ बढ़ने के समाचार प्राप्त हुए।

पानीपत के युद्ध में

पानीपत के युद्ध में हुमायूं दाहिने आन्तरिक चक्र (राइट इनर विंग) का सेनापति था। उसके साथ ख़्वाजा कलां और हिन्दू बेग जैसे अनुभवी सरदार भी थे। युद्ध में पहला आक्रमण इसी चक्र (विंग) के ऊपर हुआ जिसमें हुमायूं ने योग्यता दिखायी।[३६] युद्ध के पश्चात् बाबर द्वारा उसे और भी उत्तरदायित्व का भार सौंपा जाना इस बात का प्रमाण है।[३७]

आगरा में

पानीपत के युद्ध के पश्चात् हुमायूं को उसी दिन यह आदेश देकर आगरा भेजा गया कि वह मृत सुल्तान इबराहीम लोदी की राजधानी तथा उसके कोष पर अधिकार कर ले।[३८] आगरा के दुर्ग में सोना तथा बहुमूल्य रत्न संरक्षित थे। जिस समय हुमायूं वहां पहुँचा उस समय आगरा में बहुत-से अफ़ग़ान,

[३३] बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४६६।

[३४] ये टनके चांदी के थे अथवा तांबे के यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अर्सकिन के अनुसार उनका मूल्य ढाई लाख रुपये के बराबर था। अर्सकिन, १, पृ. ३४५।

[३५] बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४६६।

[३६] विलियम्स, पृ. १३१–३७।

[३७] ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १६।

[३८] बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४७५।

भारतीय सैनिक तथा उनके परिवारों ने वहाँ शरण ली थी। इनमें इबराहीम लोदी तथा ग्वालियर के राजा विक्रमादित्य[३९] का परिवार भी था। यहां हुमायूं के समक्ष तीन प्रमुख समस्याएँ थीं :

(१) दुर्ग में स्थित लोगों में विश्वास पैदा करना जिससे वे धन बाहर न भेजें तथा मुग़लों का साथ दें।

(२) दुर्ग में छिपे अफ़ग़ान उमरा दुर्ग के धन को लूटकर भागना चाहते थे। इसकी सतर्कता से निगरानी करना आवश्यक था।

(३) मुग़ल सैनिक भी विजय के उल्लास में जो भी मिले उसे लूटना चाहते थे। उन्हें नियन्त्रित रखना आवश्यक था।

हुमायूं ने आगरा को घेर लिया। उसके प्रत्येक मार्ग पर उसने अपने सैनिक बैठा दिये, जिससे दुर्ग से कोई भी व्यक्ति या धन बाहर न जा सके और सतर्कता से बाहर प्रतीक्षा करता रहा। विक्रमादित्य के परिवार के लोग तथा सम्बन्धी आगरा छोड़कर भाग जाना चाहते थे, किन्तु जिस समय वे निकलकर भाग रहे थे, हुमायूं के मार्ग-रक्षकों द्वारा रोक लिये गये। हुमायूं की आज्ञा से वे लूटे नहीं गये। इन लोगों ने हुमायूं के सद्व्यवहार के कारण तथा उसे प्रसन्न करने के लिए उसे बहुत से अमूल्य रत्न भेंट किये। इसी में 'कोहेनूर' भी था।[४०]

३९ डा. बनर्जी अपनी पुस्तक हुमायूं बादशाह (भाग १, पृ. ५) में लिखते हैं कि हुमायूं ने ग्वालियर के राजा विक्रम को पराजित किया तथा राजा युद्ध-भूमि में मारा गया। डा. बनर्जी का यह मत सत्य नहीं है। बाबर अपनी आत्मकथा में स्पष्ट रूप से लिखता है कि इबराहीम की पराजय के समय पानीपत के युद्ध में ग्वालियर का राजा विक्रमाजित भी मारा गया था तथा आगरा में विक्रमाजित की सन्तान तथा परिवार वाले थे। वह आगे लिखता है—विक्रमाजित की सन्तान एवं परिवार वाले इबराहीम की पराजय के समय आगरा में थे। जब हुमायूं आगरा पहुँचा तो वे भागने का प्रयत्न करने लगे, किन्तु हुमायूं द्वारा मार्गों की रक्षा हेतु आदमी नियुक्त कर देने के कारण उनका भागना सम्भव न हो सका। हुमायूं ने स्वयं उन्हें भागने न दिया। उन लोगों ने हुमायूं को अपनी इच्छा से अत्यधिक जवाहरात एवं बहुमूल्य वस्तुएँ दीं जिनमें वह प्रसिद्ध हीरा भी था जिसे अलाउद्दीन लाया होगा। प्रसिद्ध है कि इसका मूल्य समस्त संसार के ढाई दिन के भोजन के व्यय के बराबर आंका जाता था। यह लगभग आठ मिस्काल के बराबर था। बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४७७; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ४६।

४० बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४७७।

पानीपत के युद्ध के दो सप्ताह पश्चात् १० मई को बाबर आगरा के निकट पहुँचा। वहां हुमायूं ने उसका स्वागत किया और उसे 'कोहेनूर' अर्पित किया, जिसे उसने पालिश कराकर और सुन्दर बनवा लिया था। बाबर ने उसे हुमायूं को लौटा दिया। अपनी आत्मकथा में बाबर इस हीरे के विषय में वर्णन करते हुए लिखता है: "प्रसिद्ध है कि इसका मूल्य समस्त संसार के ढाई दिन के भोजन के व्यय के बराबर आंका जाता था। वह लगभग आठ मिस्काल के बराबर था।"[४१]

बाबर के आगरा के निकट पहुँचते ही आगरा के दुर्गरक्षक ने समर्पण कर दिया। छह दिनों के बाद बाबर ने दुर्ग पर अधिकार कर उसमें प्रवेश किया। दूसरे दिन इबराहीम लोदी के कोष का वितरण हुआ। 'पाँच सम्राटों का धन' बाबर के हाथ लगा, किन्तु उसने वह सब वितरित कर दिया। इस वितरण में सबसे अधिक धन हुमायूं को प्राप्त हुआ। उसे सत्तर लाख (दाम) प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त एक खज़ाना इस बात का पता लगाये बिना कि इसमें क्या है तथा लिखे बिना ही उसे दे दिया गया।[४२] इसके दो महीने पश्चात् (जुलाई १२, १५२६) ईद के सुअवसर पर हुमायूं को एक चारक़ब, एक तलवार की पेटी और सुनहली जीन सहित एक तीपूचाक घोड़ा दिया गया। इसके अतिरिक्त उसे हिसार फ़िरोज़ा तथा सम्भल भी जागीर के रूप में प्राप्त हुए थे।[४३] सिपाहियों तथा सरदारों को भी बाबर ने इनाम दिया। इस वितरण से राजकोष रिक्त हो गया तथा गद्दी पर बैठने के पश्चात् हुमायूं को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा।

पूर्वी क्षेत्र में अभियान

पानीपत की विजय के पश्चात् अफ़ग़ान बिहार तथा बंगाल की ओर चले गये थे। जौनपुर में भी मुग़लों की स्थिति अच्छी नहीं थी। प्रारम्भ में मुग़लों ने सुल्तान मुहम्मद नुहानी को जौनपुर से भगाकर उस पर अधिकार कर लिया, किन्तु वे उस पर अधिक दिन तक अधिकार नहीं रख सके। मुहम्मद नुहानी ने पुनः उस पर अधिकार कर के मुग़ल गवर्नर फ़ीरोज़ खां को वहां से भगा दिया तथा एक सेना नसीर खां नुहानी तथा मारूफ़ फ़रमाऊली के नेतृत्व

४१ वही। भारतीय तौल से ३½ तोला।

४२ आगरे के खज़ाने के विवरण तथा बाबर के दान के लिए देखिए—बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५२२-२३; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ४८-४९।

४३ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५२७।

में कन्नौज की तरफ भेजी।[४४] दूसरी तरफ राणा सांगा (संग्रामसिंह) भी बाबर के विरुद्ध बढ़ रहा था। ऐसी परिस्थिति में दो तरफ़ से युद्ध की आशंका थी।

युद्ध समिति की बैठक हुई और यह निश्चय हुआ कि सबसे पहले अफ़ग़ानों को पराजित किया जाए, क्योंकि वे सबसे निकट थे। बाबर स्वयं इस अभियान का नेतृत्व करना चाहता था, किन्तु हुमायूं ने अंतिम क्षण में कहा: "बादशाह स्वयं क्यों जाएं, मैं यह कार्य करूंगा।"[४५] उसका यह निवेदन स्वीकार कर लिया गया। उसकी सहायता के लिए सुल्तान जुनायद बरलास, महदी ख़्वाजा इत्यादि को अपनी सेनाओं के साथ जाने की आज्ञा दी गयी। इस तरह हुमायूं अफ़ग़ानों से युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। यह उसका प्रथम स्वतन्त्र नेतृत्व था।

हुमायूं ने अपनी सेना संगठित की तथा अफ़ग़ानों की ओर कूच किया, जिन्होंने कन्नौज तथा जाजमऊ पर अधिकार कर लिया था और जो जाजमऊ[४६] के निकट चालीस-पचास हज़ार सेना के साथ डटे हुए थे। जलेसर[४७] नामक स्थान के निकट २१ अगस्त १५२६ को मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा तथा महदी ख़्वाजा हुमायूं से मिले। यहां से ये शत्रु की ओर बढ़े। मुग़ल सेना के पहुँचते ही अफ़ग़ानों का साहस टूट गया तथा वे भाग खड़े हुए। स्वर्गीय सुल्तान इबराहीम के अमीर फ़तेह ख़ां सरवानी ने दालमऊ[४८] में समर्पण किया। हुमायूं ने उसे बाबर के पास भेज दिया। वहां से गंगा नदी पार कर हुमायूं ने जौनपुर पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया।[४९] यहाँ से हुमायूं ग़ाज़ीपुर की तरफ बढ़ा, जहां अफ़ग़ान सरदार नासिर ख़ां लोहानी पड़ाव डाले पड़ा हुआ था। यहाँ भी अफ़ग़ानों ने युद्ध नहीं किया और घाघरा को पार कर पीछे हट गये।

४४ वही, पृ. ४३०।

४५ वही, पृ. ५३१।

४६ कानपुर के निकट उसके पूर्व गंगा नदी के तट पर।

४७ एटा जिले में।

४८ राय ब्रेली जिले में दालमऊ एक तहसील है। इम्पीरियल गज़ेटियर, २, पृ. १२७; असंकिन तथा श्रीमती बेवरिज (बाबरनामा, पृ. ५३४, टिप्पणी २) के अनुसार बरेली के निकट गंगा नदी के दक्षिण-पूर्व।

४९ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५४४, अकबरनामा, १, पृ. १०५, तबक़ाते अकबरी, पृ. ३१।

हुमायूं ने एक टुकड़ी उनका पीछा करने के लिए भेजी। उसकी सेना की एक टुकड़ी ने खरीद[५०] तथा बिहार को लूटा।

हुमायूं ने जुनायद बरलास तथा ख्वाजा शाह मीर हसन को जौनपुर का संयुक्त गवर्नर नियुक्त किया तथा फ़ीरोज़ सारंगकानी, क़ाज़ी अब्दुल जब्बार ख़ां इत्यादि को उसकी सहायता के लिए छोड़ दिया।[५१] इसके अतिरिक्त शेख़ बायज़ीद को अवध में नियुक्त किया गया। यह सब प्रबन्ध कर हुमायूं दोआब होता हुआ कालपी पहुँचा। कालपी आलम ख़ां के अधीन था। इसे अपने अधीन कर हुमायूं ६ जनवरी १५२७ को राजधानी आगरा में बाबर के समक्ष उपस्थित हुआ।[५२]

पूर्वी क्षेत्र के अभियान में हुमायूं को सफलता प्राप्त हुई। इस क्षेत्र का नेतृत्व कर उसने बाबर को आराम दिया। यद्यपि अफ़ग़ानों को पूर्णतया पराजित करने में उसे सफलता नहीं मिली फिर भी उसने उनका दर्प चूर्ण कर उन्हें उन प्रदेशों से भगा दिया जहां उन्होंने गड़बड़ी मचा रखी थी।[५३]

इस समय राणा सांगा अपनी सेना तथा अपने सहयोगियों के साथ आगे बढ़ रहा था। हुमायूं की सेना में बदख़्शां के सिपाही अधिक थे। वे सभी अपने देश को लौटना चाहते थे। हुमायूं ने भी लौटने की इच्छा प्रकट की। डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार हुमायूं युद्धों से थक चुका था। उसकी अवस्था बहुत कम थी। उसमें अभी पूर्ण शारीरिक बल नहीं था, भारतीय गर्म जलवायु उसे रुचिकर नहीं थी तथा उसके अधिकतर सिपाही बदख़्शां के थे। इन कारणों से हुमायूं अन्य सैनिकों की भाँति अनिच्छापूर्वक राणा सांगा के विरुद्ध युद्ध में आगे बढ़ा।[५४] कारण जो भी हो हुमायूं का इस प्रकार कठिन परिस्थितियों से विरक्त होना उसके चरित्र की कमजोरी का द्योतक है। योग्यता की निशानी तो यह थी कि वह इस परिस्थिति में उत्साह दिखाता तथा अन्य लोगों को भी प्रोत्साहित कर युद्ध के लिए प्रेरित करता।

आगरा में कुछ दिन रहने के पश्चात् बाबर के साथ हुमायूं राणा सांगा से

५० डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, यूनाइटेड प्राविन्सेज़, ३०, पृ. ४४, बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५४४।

५१ अकबरनामा, १, पृ. १०५, तारीख़े जौनपुर; बाबरनामा, बेवरिज, पृष्ठ ५४४।

५२ अकबरनामा, १, पृ. १०६।

५३ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १८।

५४ वही, पृ. १९।

युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। मार्ग का वर्णन करते हुए बाबर लिखता है कि मार्ग में सभाएं हुआ करती थीं और उसमें कभी-कभी हुमायूं भी शराब पीता था।[५५]

खानवा का युद्ध

राणा सांगा के साथ बाबर की दूसरी लड़ाई खानवा के मैदान में हुई जो फ़तेहपुर सीकरी से लगभग १६ किलोमीटर पर है। इस युद्ध में हुमायूं सेना के दायें चक्र (राइट विंग) का सेनापति था। राणा सांगा पराजित हुआ तथा उसकी सेना तितर-बितर हो गयी।[५६]

दिल्ली के कोष की लूट

राजपूतों की पराजय के पश्चात् मुग़ल सेना अलवर की तरफ बढ़ी और उसने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस दुर्ग का सम्पूर्ण कोष बाबर ने हुमायूं को पारितोषिक के रूप में दे दिया। इसके बाद हुमायूं को बदख्शां जाने की आज्ञा दी गयी। रविवार १६ अप्रैल १५२७ को अपने पिता से आज्ञा प्राप्त कर तथा पारितोषिक में प्राप्त धन, वस्त्र इत्यादि लेकर हुमायूं बदख़्शां की तरफ रवाना हुआ। मार्ग में वह दिल्ली से गुज़रा। यहाँ उसने कुछ घरों को, जिनमें राजकीय कोष रखा हुआ था, तोड़ डाला तथा उनमें संचित धन को अपने अधिकार में कर लिया। बाबर हुमायूं के इस व्यवहार से बहुत नाराज़ हुआ तथा उसे एक कड़ा पत्र लिखा।[५७]

हुमायूं ने यह कार्य क्यों किया? यह बताना बहुत ही कठिन है। यह स्पष्ट है कि उसे धन की कमी न थी। भिन्न-भिन्न स्थानों पर बाबर ने उसे इतना पारितोषिक दिया था कि धन की कमी की सम्भावना ही नहीं थी। डा. ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं: "ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूं, बाबर के और बहुत-से सेनापतियों के साथ, भारत के अभियान को केवल एक लूट का

५५ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५४५।

५६ इस युद्ध के वर्णन के लिए देखिए, बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५५०–७४; विलियम्स, पृ. १४६–५६; शर्मा, मेवाड़ एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स, ३३–४०; सरकार, मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. ५६–६१।

५७ "इसी बीच यह समाचार प्राप्त हुआ कि हुमायूं ने दिल्ली पहुँचकर वहां से बहुत-से खज़ानों को खुलवाया और बिना आज्ञा उनमें से कुछ पर अधिकार जमा लिया। मुझे उससे इस बात की तनिक भी आशा नहीं थी। मुझे इससे बड़ा दुःख हुआ। मैंने उसे परामर्श देते हुए कठोर पत्र लिखकर भेजा।" बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५८३।

साधन समझता था और उसे भी यह आशा थी कि शीघ्र ही इसका अन्त हो जाएगा।"[५८] यह मत बहुत अंशों में सत्य है, फिर भी राज्य के उत्तराधिकारी द्वारा राजसी सम्पत्ति का लूटा जाना ठीक नहीं प्रतीत होता। निश्चय ही इससे हुमायूं की बुद्धि की कमी प्रकट होती है। कदाचित् वह अपने लालची विदेशी सैनिकों पर नियन्त्रण नहीं रख सका था। इससे उसकी उत्तरदायित्वहीनता भी प्रकट होती है।[५९]

बदख़्शां में

दिल्ली के कोष को लूटने के पश्चात् हुमायूं बदख़्शां चला गया (अगस्त-सितम्बर १५२७)। यहां वह लगभग दो वर्ष (१५२७–२९) तक रहा।[६०] इस समय के उसके कार्यों का विशेष ज्ञान हमें प्राप्त नहीं है। डा. बनर्जी लिखते हैं कि इस बीच उसने शान्तिमय सरकार की स्थापना करने का प्रयत्न किया, किन्तु समय कम रहने के कारण वहां उसे बहुत अधिक सफलता प्राप्त न हो सकी।[६१] डा. ईश्वरी प्रसाद भी इस बात से सहमत हैं कि बदख़्शां में उसके चरित्र और व्यवहार में शक्ति और उत्साह का अभाव था, किन्तु वह वहां की प्रजा में लोकप्रिय था और उन्होंने उसे बहुत अधिक परेशान नहीं किया।[६२]

५८ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २०।

५९ हुमायूं के इस उच्छृंखल कार्य से मुग़ल अमीरों में भी असन्तोष फैला। कदाचित् प्रधान मन्त्री उसके इस कार्य से विशेष अप्रसन्न हुआ। बाबर की मृत्यु के पश्चात् हुमायूं के स्थान पर महदी ख़्वाजा को गद्दी पर बैठाने का विचार उसके मन की उपज थी, जो कदाचित् हुमायूं के ऐसे कार्यों के परिणामस्वरूप हुई।

एक और प्रश्न विचारणीय है : इस समय बाबर तथा हुमायूं का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा था ? दो परस्पर विरोधी घटनाएं हुमायूं के सम्मुख आती हैं। एक तरफ बाबर बारबार हुमायूं को पारितोषिक देकर प्रसन्न करना चाहता है, दूसरी तरफ हुमायूं बाबर से दूर होना चाहता है। खानवा के युद्ध के पश्चात् तो वह भागकर बदख़्शां जाना चाहता था। पुनः वहां से भागकर भारत आया तथा यहां से पुनः उधर जाना नहीं चाहता था। क्या इससे यह नहीं प्रतीत होता कि पिता-पुत्र का सम्बन्ध अच्छा नहीं था ?

६० हुमायूं के आगरा वापस आने का वर्णन दूसरे अध्याय में किया गया है।

६१ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ८।

६२ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २१।

बदख़्शां पहुँचकर हुमायूं ने देखा कि वहां की पुरानी समस्याएं उसकी तथा बाबर की अनुपस्थिति में और भी जटिल हो गयी थीं। ऊज़बेक अब भी शक्तिशाली थे। उस समय बुख़ारा में उबैदुल्ला ख़ां, समरक़न्द में कुचुम सुल्तान तथा अबू सईद, हिसार में हमज़ा सुल्तान के पुत्र, तथा बलख़ में कीतीन क़रा सुल्तान सत्तारूढ़ थे।[६३] ख़ुरासान ऊज़बेकों तथा ईरान के मध्य संघर्ष का विषय बना हुआ था। ईरान का सुल्तान, शाह तहमास्प, अभी बालक था। इस कारण ऊज़बेक उबैदुल्ला ख़ां के योग्य नेतृत्व में अधिक शक्तिशाली थे। १५२७ में उबैदुल्ला ख़ां ने मर्व, मशहद, अस्तराबाद तथा उसके अधीनस्थ स्थानों पर अधिकार कर लिया।[६४] ईरान के शाह ने इसके विरुद्ध जून १५२८ में ऊज़बेकों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। उबैदुल्ला ने भी शक्ति एकत्र की। ज़ाम के युद्ध में (२६ सितम्बर १५२८) शाह ने ऊज़बेकों को बुरी तरह परास्त किया। बड़ी कठिनाई से उबैदुल्ला ख़ां तथा कुछ अन्य साथियों ने भागकर अपनी जान बचायी।[६५] जिस समय ऊज़बेक युद्ध में लगे हुए थे, हुमायूं ने उनके द्वारा अधिकृत भागों पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। उसने अपनी सेना का तीन भागों में विभाजन किया।[६६] एक सेना शाह क़ुली के नेतृत्व में हिसार पर आक्रमण करने के लिए तैयार की गयी। दूसरी तरसून मुहम्मद सुल्तान के नेतृत्व में तिरमिज़ और क़बादीयान की ओर अग्रसर हुई और तीसरी हुमायूं के नेतृत्व में समरक़न्द पर आक्रमण करने वाली थी। शाह क़ुली ने हिसार में प्रवेश किया, किन्तु तरसून मुहम्मद सुल्तान को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। हुमायूं ने स्थानीय नेताओं की सहायता से चालीस हजार सेना इकट्ठी कर हिसार तथा क़बादीयान पर अधिकार कर लिया (जनवरी १५२९)। ये दोनों स्थान आमू नदी के उत्तरी किनारे पर थे। भारत के किसी भी मुग़ल बादशाह का अधिकार इससे अधिक उत्तर की तरफ नहीं बढ़ा।[६७] इसी बीच ऊज़बेकों के पुनः लौट आने के कारण मुग़लों को अपना आक्रमण रोक देना पड़ा। ये अभियान अधिक

६३ अहसानत् तवारीख़, १, पृ. १९०।

६४ वही, पृ. २००।

६५ वही, पृ. २००–१५। बाबर लिखता है (बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६३६) कि उबैदुल्लाह मारा गया, किन्तु अहसानत् तवारीख़ (भाग १, पृ. २१८) के अनुसार वह बच गया।

६६ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २२।

६७ "This was probably the northernmost point ever achedre by a Mughal prince of India." बनर्जी, हुमायूं १, पृ. ८,।

सफल नहीं हुए।[६८] १५२९ में दोनों दल युद्ध से थक गये थे, इस कारण संघर्ष की गति मन्द पड़ने लगी।

बदख्शां में पहुँचने के उपरान्त हुमायूं का विवाह यादगार बेग़म तग़ाई की पुत्री बेगा बेगम से हुआ। १५२९ के अन्त में बेगा बेगम के एक पुत्र हुआ। हुमायूं ने उसका नाम अलअमान रखा। इसकी सूचना पाकर बाबर ने हुमायूं को एक पत्र लिखा। इस पत्र में बाबर सर्वप्रथम अपने पुत्र को बधाई देता है। किन्तु नवजात पुत्र का जो नामकरण हुमायूं ने किया था वह उसे बहुत अच्छा नहीं प्रतीत हुआ। वह लिखता है कि अलअमान का अर्थ रक्षा होता है, किन्तु साधारण लोग इसे अलआमान अथवा अलआमा बोलते हैं। तुर्की में इस शब्द का अर्थ लुटेरा होता है। इस तरह बाबर हुमायूं द्वारा यह नाम चुने जाने की भर्त्सना करता है। पत्र के ठीक न पहुँचने की ओर भी वह संकेत करता है। हुमायूं ने अपने पत्र में यह बात बारबार दुहरायी थी कि वह अकेले रहना चाहता है। बाबर ने उसे समझाया कि उसकी यह इच्छा ठीक नहीं है, क्योंकि "एकान्तवास बादशाही का बहुत बड़ा दोष है।" अन्त में बाबर ने ऊज़बेकों के विरुद्ध अभियान की एक योजना भी निश्चित की। इस पत्र में बाबर ने उसे भाइयों के प्रति प्रेम का व्यवहार रखने को कहा तथा हुमायूं और कामरान के भागों के विभाजन में छह तथा पांच का अनुपात निश्चित किया। इस तरह इस पत्र से पिता का प्रेम, हुमायूं का चरित्र तथा बाबर की बदख्शां के भागों से दिलचस्पी का पता चलता है।[६९]

६८ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २२।

६९ बाबर का हुमायूं के नाम पत्र

हुमायूं, जिसे देखने की मेरी बड़ी अभिलाषा है, के प्रति शुभ-कामनाओं के बाद पहली बात इस प्रकार है:

उस ओर तथा इस ओर की घटनाओं का ठीक-ठीक वर्णन गीना तथा बीआन शेख़ द्वारा लाये हुए पत्रों से, जो वे सोमवार १० रबी-उल-अव्वल (२२ नवम्बर १५२८) को लाये, मिल गया।

छन्द

ईश्वर को धन्य है कि तेरे एक पुत्र का जन्म हुआ,
तेरे लिए वह पुत्र और मेरे लिए वह हार्दिक प्रसन्नता का विषय।
महान् ईश्वर तुझे और मुझे ऐसे ही सुखद समाचार पहुँचाता रहे।
एवमस्तु! हे लोक तथा परलोक के स्वामी।

तू कहता है कि तूने उसका नाम अलअमान रखा है। ईश्वर

डा. ईश्वरी प्रसाद ने उपर्युक्त पत्र से यह अनुमान लगाया है कि इस समय हुमायूं अवसाद की अवस्था में था। उसकी तबीयत कुछ गिरी-गिरी-सी रहती थी उनका यह अनुमान है कि इसी समय हुमायूं ने अफ़ीम खाना भी

उसे सौभाग्यशाली बनाये। तूने स्वयं अलअमान लिखा है किन्तु तूने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि साधारण लोग अधिकांशतः अलआमा अथवा अलआमान बोलते हैं। इसके अतिरिक्त नामों में अल का विरले ही प्रयोग होता है।

मंगलवार ११ (२३ नवम्बर) को यह झूठी अफ़वाह सुनी गयी कि बल्ख़ वाले आमंत्रित हुए थे और क़ुरबान को बल्ख़ ले जा रहे थे।

कामरान तथा काबुल के बेगों को आदेश दे दिया गया है कि वे तुझसे मिलें। उनके पहुँच जाने के उपरान्त हिसार, समरक़न्द, हेरी अथवा जिस दिशा में भाग्य तेरा साथ दे, तू आक्रमण कर। सम्भव है कि ईश्वर की अनुकम्पा द्वारा तू शत्रुओं को परास्त कर सके और विभिन्न स्थानों पर अधिकार प्राप्त कर ले जिसके फलस्वरूप मित्रों को हर्ष एवं शत्रुओं को शोक का अवसर प्राप्त हो। ईश्वर को धन्य है कि अब तुम लोगों के लिए प्राणों को खतरे में डालने तथा तलवार चलाने का अवसर आ गया है। जिस काम का अवसर मिल जाए उसकी उपेक्षा मत कर। **बादशाहों के लिए एकान्तवास का आलसी जीवन उचित नहीं।**

पद्य

वह संसार को विजय करता है जो शीघ्र बढ़ता है,
राज्य देर करने से साथ नहीं देता।
विवाह के लिए समस्त कार्य रुक जाते हैं,
केवल बादशाही के कार्य नहीं।

यदि ईश्वर की कृपा से बल्ख़ तथा हिसार के राज्य विजय हो जाएं तो तू अपने आदमियों को हिसार में नियुक्त कर दे और कामरान के आदमी बल्ख़ में। यदि समरक़न्द पर भी विजय हो जाए तो उसे तू अपनी राजधानी बना ले। यदि ईश्वर ने चाहा तो मैं हिसार को ख़ालसे में सम्मिलित कर लूंगा। यदि कामरान का विचार हो कि बल्ख़ उसके लिए कम है तो इसकी सूचना मुझे दे। यदि ईश्वर ने चाहा तो अन्य राज्यों से उसकी कमी की पूर्ति कर दूंगा।

जैसा कि तुझे ज्ञात है, सर्वदा यही नियम है कि **यदि तेरे अधीन छह भाग रहे हैं तो कामरान के अधीन पांच। यह नियम स्थायी रूप से चल रहा है। तू इसमें परिवर्तन मत कर।**

अपने छोटे भाई के साथ उत्तम व्यवहार कर। बड़ों को सहनशील

प्रारम्भ कर दिया था और अगले चार-पाँच वर्षों में अफ़ीम ने पूर्णतया उसके ऊपर अधिकार कर लिया जो आगे चलकर उसके लिए बड़ा हानिकारक सिद्ध हुआ। हुमायूं ने अफ़ीम खाना अपने अकेलेपन को (विशेषत: भारतीय अभियानों के पश्चात् जो अकेलापन आ गया था) दूर करने के लिए प्रारम्भ किया था।[७०]

यह कहना कि हुमायूं ने अकेलेपन के कारण अफ़ीम खाना प्रारम्भ किया, अधिक सत्य नहीं प्रतीत होता। वास्तव में यह हुमायूं के कुछ मित्रों की मित्रता की देन थी। मिर्ज़ा हैदर के अनुसार हुमायूं ने कुछ दुष्चरित्र व्यक्तियों के कारण कुछ आदतें डाल लीं जिनमें अफ़ीम भी थी।[७१]

हुमायूं का आगरा आगमन

उपर्युक्त अभियान के बाद हुमायूं लगभग आठ महीने बदख़्शां में रहा (९३५ हिजरी सफर से शव्वाल तक)। ६ जून १५२९ को हिन्दाल के गुरु

होना चाहिए। मुझे आशा है जहां तक तेरा सम्बन्ध है तू उसके साथ सद्व्यवहार बनाये रखेगा। जो तेज तथा चतुर युवक हो चुका हो वह तेरे प्रति उचित निष्ठा एवं सम्मान प्रदर्शित करने में कमी न करेगा।

तेरी ओर से बहुत कम बातें आती हैं। पिछले दो-तीन वर्षों से तेरे पास से कोई व्यक्ति नहीं आया है। जिस आदमी को मैंने तेरे पास भेजा वह तेरे पास से एक वर्ष से अधिक समय के बाद आया। क्या यह बात ठीक है ?

तू अपने पत्रों में 'एकान्तवास' 'एकान्तवास' की चर्चा करता है। एकान्तवास बादशाही का बहुत बड़ा दोष है।........तूने मेरे आदेशानुसार मुझे एक पत्र लिखा है किन्तु तूने उसे दुहराया क्यों नहीं ? यदि तू उसे पुन: पढ़ता तो फिर उसमें ऐसी भूलें न करता।........यद्यपि तेरा पत्र कठिनाई के उपरान्त पढ़ लिया जाता है किन्तु यह बड़ा भ्रमात्मक है।........तेरा अक्षर-विन्यास यद्यपि बुरा नहीं है किन्तु अधिक शुद्ध भी नहीं है।........तेरे पत्रों के अस्पष्ट होने का कारण यह है कि वे जटिल होते हैं। भविष्य में तू उन्हें जटिल बनाये बिना लिख और सरल एवं स्पष्ट शब्दों का प्रयोग कर। इस तरह तुझे तथा तेरे पत्र पढ़ने वालों को कम कष्ट होगा।

तू अब एक महान् कार्य के हेतु प्रस्थान करने वाला है। योग्य तथा अनुभवी बेगों से परामर्श करके कार्य किया कर। (बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६२४-२७)।

७० ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २२।

७१ तारीख़े रशीदी, ए. तथा रास, पृ. ४६९।

मीर फ़ख़अली को शासन का कार्य सौंपकर हुमायूं आगरा रवाना हुआ। दूसरे दिन (७ जून १५२९) वह काबुल पहुँचा। काबुल में अस्करी, हिन्दाल तथा कामरान से (जो उसी दिन काबुल पहुँचा था) उसकी मुलाकात हुई। तीनों भाइयों में परामर्श हुआ। इसके परिणामस्वरूप काबुल तथा क़न्धार का शासन कामरान को तथा बदख़्शां का हिन्दाल को सौंपकर हुमायूं आगरा रवाना हुआ। जून के अन्त तथा जुलाई के प्रारम्भ में (२७ जून–६ जुलाई १५२९) हुमायूं आगरा पहुँचा। इसी बीच २६ जून को हुमायूं की माता माहम आगरा पहुँची। काबुल से आगरा पहुँचने में उसने पांच मास से अधिक लगाये।[७२] जिस समय हुमायूं आगरा पहुँचा उस समय माहम तथा बाबर बातें कर रहे थे।[७३] उसके आगमन से दोनों को प्रसन्नता हुई। बाबर लिखता है कि इस अवसर पर हुमायूं तथा माहम ने उपहार प्रस्तुत किये।[७४]

कुछ दिन पश्चात् बाबर ने हुमायूं से पुनः बदख़्शां जाने के लिए कहा किन्तु हुमायूं इतने दूर जाने के लिए तैयार न हुआ। इसके पश्चात् बाबर ने प्रधान मन्त्री ख़्वाजा निज़ामुद्दीन ख़लीफ़ा को बदख़्शां जाने के लिए कहा। किन्तु उसने भी अस्वीकार कर दिया।[७५] कोई और उपाय न देख बाबर ने बदख़्शां का प्रान्त

७२ माहम बेगम २१ जनवरी १५२९ को काबुल से रवाना हुई तथा २६ जून १५२९ को आगरा पहुँची (बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६८६-८७)।

७३ अकबरनामा, भाग १, पृ. ११४-१५, बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६८७।

७४ वही; वही; विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १७२–७३।
इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं :

(१) हुमायूं के पहुँचने से बाबर को आश्चर्य हुआ। (२) माहम काबुल से धीरे-धीरे आ रही थी। हुमायूं इसके विपरीत काबुल से बहुत तेजी से आ रहा था। दोनों की मार्ग में मुलाकात क्यों नहीं हुई? क्या माहम को हुमायूं के आगरा पहुँचने की सूचना नहीं थी? अथवा माहम जानबूझकर बाबर के पास बैठी थी जिससे यदि बाबर नाराज हो तो माहम उसे समझाकर हुमायूं को माफी दिला दे। (३) हुमायूं के पहुँचने की खुशी में बाबर ने दावत दी। या तो यह एक औपचारिक दावत थी अथवा माहम के कहने से यह दावत दी गयी थी जिससे लोगों पर यह प्रभाव पड़े कि बाबर हुमायूं से प्रसन्न है।

७५ डा. ईश्वरी प्रसाद ने ख़लीफ़ा के अस्वीकार करने के दो कारण बताये हैं। प्रथम, वह वृद्धावस्था के कारण सेवा निवृत्ति की अवस्था में पहुँच गया था। शरीर से वह इतना योग्य नहीं था कि बदख़्शां जैसे कठिन प्रान्त का शासन सम्हाल सके। दूसरे, बाबर के बिगड़ते स्वास्थ्य को

वैस मिर्ज़ा के पुत्र सुलेमान मिर्ज़ा को दे दिया, यद्यपि बाबर ने ख़ुत्बा तथा सिक्के का अधिकार अपने नाम में रखा।[७६] इस प्रान्त पर सुलेमान मिर्ज़ा का पैतृक अधिकार भी था। इस तरह बाबर ने बदख़्शां की समस्या को सुलझा दिया।

बदख़्शां सुलेमान मिर्ज़ा को देकर बाबर ने बुद्धिमानी का परिचय दिया। अमीरों के विरोध में इतनी दूर से बदख़्शां पर अधिकार रखना कठिन था। सुलेमान मिर्ज़ा को राज्य तो प्राप्त हुआ, किन्तु उसे ख़ुत्बा तथा सिक्के का अधिकार न मिलने से बाबर वैधानिक शासक बना रहा।

हुमायूं की अनुपस्थिति में बदख़्शां

मिर्ज़ा हिन्दाल ज़िल-हिज्जा ९३५ हिजरी (अगस्त-सितम्बर १५२९) में बदख़्शां पहुँचा। इस बीच फ़ख़ अली के शासन से बदख़्शां के अमीरों में असन्तोष फैल गया। उन्होंने गद्दी के एक दूसरे वैध अधिकारी काशग़र के सुल्तान सईद को आमंत्रित किया। सुल्तान सईद ने उनके आमंत्रण पर बदख़्शां पर आक्रमण किया, किन्तु उसके पहुँचने के बारह दिन पूर्व हिन्दाल वहां पहुँच गया था। तीन माह 'क़िला-ए-ज़फ़र' का घेरा डालने के पश्चात् सफलता की आशा न होने के कारण वह वापस लौट गया।

बदख़्शां के अमीरों के असन्तोष के कई कारण थे। मीर फ़ख़ अली एक

देखकर वह उसके निकट रहना चाहता था। रशब्रुक विलियम्स का विचार है कि ख़लीफ़ा महदी ख़्वाजा को गद्दी पर बैठाना चाहता था, इस कारण वह भारत नहीं छोड़ना चाहता था। (ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २६; विलियम्स, पृ. १७३-७४)।

[७६] तारीख़े रशीदी, पृ. २०३, अकबरनामा, १, पृ. ११५; बनर्जी, हुमायूं, भाग १, पृ. १२।

सुलेमान मिर्ज़ा का अधिकार निम्नलिखित वंश वृक्ष से स्पष्ट हो जाता है:

शाह सुल्तान मुहम्मद–(बदख़्शां के शाह)
शाह बेगम : यूनस ख़ां (मंगोलों के ख़ां)

कुतलूग निगार ख़ानम : उमर शेख़ मिर्ज़ा	अहमद ख़ां	सुल्तान निगार ख़ानम : सुल्तान महमूद मिर्ज़ा
बाबर	सईद ख़ां (काशग़र के)	वैस मिर्ज़ा
		सुलेमान मिर्ज़ा
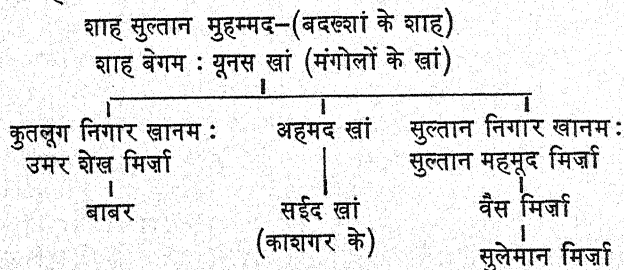
साधारण मुग़ल अमीर था। बदख़्शां के अमीरों का विचार था कि यह स्थान उनके योग्य नेता सुल्तान वैस को प्राप्त होना चाहिए था जिसने कुछ ही दिन पूर्व बाबर के पक्ष में ऊज़बेकों से युद्ध कर मुग़ल सीमा को बढ़ाया था। इसके अतिरिक्त आगरा से शासित होने में कदाचित् उन्हें मानहानि का अनुभव होता था। बदख़्शां का वास्तविक उत्तराधिकारी मिर्ज़ा सुलेमान अब बालिग़ हो गया था। ऐसी परिस्थिति में उनका विचार था कि उसे बदख़्शां का शासन भार सम्हालने का अवसर मिलना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि मीर फ़ख़ अली में योग्यता की भी कमी थी। इन्हीं कारणों से बदख़्शां के अमीरों ने काशगर के सुल्तान सईद ख़ां को निमंत्रित किया था।[७७]

बदख़्शां से भारत लौटने की समस्या

हुमायूं के बदख़्शां से लौटने के कारणों के विषय में इतिहासकार एक मत नहीं हैं। हैदर मिर्ज़ा स्पष्ट रूप में लिखता है कि बाबर ने हुमायूं को बदख़्शां से भारत इसलिए बुलवाया था जिससे यदि उसकी अचानक मृत्यु हो जाए तो उसका एक पुत्र तथा उत्तराधिकारी उसके निकट रहे।[७८] हैदर मिर्ज़ा उस समय बदख़्शां में था। उसका सम्बन्ध सुल्तान वैस मिर्ज़ा, सुलेमान मिर्ज़ा तथा बाबर से भी था। इस कारण स्थिति को समझने में उसे सुविधा थी। हैदर मिर्ज़ा के इस विचार का समर्थन तारीख़े ख़ानदाने तैमूरिया, तारीख़े अलफ़ी तथा फ़िरिश्ता ने भी किया है।[७९] इसके विपरीत अबुल फ़ज़्ल लिखता है कि हुमायूं बाबर के

७७ सईद ख़ां के पत्र में इस प्रकार निवेदन किया गया था :

हुमायूं मिर्ज़ा हिन्दुस्तान चले गये हैं और इस प्रदेश को फ़ख़ अली के हाथ में छोड़ दिया है जो ऊज़बेकों का कदापि मुक़ाबला नहीं कर सकता, अतः वह बदख़्शां में शान्ति स्थापित न रख सकेगा। यदि (अमुक तिथि तक) ख़ान आ जाएंगे तो बड़ा अच्छा है अन्यथा हमें ऊज़बेक लोग हड़प कर लेंगे। यदि ऊज़बेकों ने ख़ान के पहुँचने के पूर्व हम पर आक्रमण कर दिया तो हम (अमुक तारीख तक) अपने कदम न जमा सकेंगे। हम आपसे सहायता के लिए आग्रह करते हैं। सम्भवतः आपके द्वारा हमें मुक्ति प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त शाह बेगम के सम्बन्ध से, जो आपकी नानी हैं, बदख़्शां आपका ही है। आपके अतिरिक्त कोई अन्य इसका अधिकारी नहीं (तारीख़े रशीदी, पृ. ३८८-८९)।

७८ तारीख़े रशीदी, पृ. ३८७; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ६३।

७९ ख़ानदाने तैमूरिया के अनुसार—

وحضرت جنت آشیانی همایون مرزا دریں سال از بدخشاں به هندوستان طلب

"सम्मानित गोष्ठी के शौक से उससे मुलाकात करने के लिए रवाना हुआ।" [८०] काबुल में कामरान के पूछने पर हुमायूं ने बतलाया कि बाबर से भेंट की इच्छा मुझे यहां से खींचे लिये जा रही है। अकबरनामा लिखते समय अबुल फ़ज़ल के पास तारीख़े रशीदी भी थी, तथा वह लिखता है कि "मिर्ज़ा हैदर ने तारीख़े रशीदी में लिखा है कि ६३५ हिजरी (१५२८-२६) में जहां बानी गेती सितानी (बाबर) के बुलाने पर हिन्दुस्तान की ओर रवाना हुआ और फ़ख़ अली को बदख़्शां में नियुक्त कर दिया।" [८१]

आधुनिक इतिहासकारों में अर्सकिन तथा श्रीमती बेवरिज ने हैदर मिर्ज़ा के वर्णन को अस्वीकार किया है। [८२] उनका विचार है कि बाबर जैसे बुद्धिमान शासक ने कभी भी सीमा से गवर्नर को हटाकर उसे खतरे में नहीं डाला होगा। डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार हुमायूं को अपने पिता से मिलने की इच्छा के अतिरिक्त आगरा में बाबर के दरबार का आनन्द-विनोद प्राप्त करने की इच्छा भी थी। ऊज़बेकों के युद्धों से भी वह थक गया था। [८३] डा. बनर्जी के अनुसार हुमायूं ने अपने पत्रों में विरक्तता व्यक्त की थी। बाबर उसे इस विचार को त्यागने के लिए परामर्श देना चाहता था। इस कारण उसे बुलाया गया था। [८४]

فرمودندو هندال مرزابه حکومت بدخشاں فرستادند-

> "ब हज़रते जन्नत आशियानी हुमायूं मिर्ज़ा दरीं साल अज़ बदख़्शां ब हिन्दुस्ताँ तलब फ़रमूदन्द व हिन्दाल मिर्ज़ा ब हुकूमते बदख़्शां फ़रिस्तादन्द" अर्थात् "बाबर ने हुमायूं मिर्ज़ा को इसी साल बदख़्शां से हिन्दुस्तान तलब किया और हिन्दाल मिर्ज़ा को बदख़्शां की हुकूमत पर भेजा।" तारीख़े अलफ़ी के अनुसार—
>
> بادشاه بابر جنت آشیانی همایوں مرزا را ریں سال به هندوستاں طلب فرمودند و هندال مرزا به حکومت بدخشاں فرستادند -
>
> "पादशाह बाबर जन्नत आशियानी हुमायूं मिर्ज़ा रा दरीं साल ब हिन्दुस्तान तलब फ़रमूदन्द व हिन्दाल मिर्ज़ा ब हुकूमते बदख़्शां फ़रिस्तादन्द।"

८० अकबरनामा, १, पृ. ११५।

८१ वही।

८२ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १०।

८३ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३३।

८४ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ११।

हैदर मिर्ज़ा तथा अबुल फ़ज़ल के वर्णनों को ध्यान से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के बीच कोई कड़ी है जो टूट गयी है। अबुल फ़ज़ल का यह लिखना कि कामरान ने हैरान होकर उसके आगमन का कारण पूछा और हुमायूं ने उत्तर दिया कि बादशाह से भेंट की इच्छा मुझे खींचे लिये जा रही है, विशेष अर्थ रखता है। बाबरनामा के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं ने अवकाश ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की थी तथा बाबर ने उसे अपने पत्र में समझाया था कि वह विचार ठीक नहीं है। फिर भी हुमायूं की निराशाजनक मन:स्थिति बढ़ती गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि बाबर ने उसे समझाने के लिए बदख़्शां से बुलाया। कामरान को इसकी सूचना नहीं थी। इस कारण उसने आश्चर्य प्रकट किया। हुमायूं कामरान के सामने अपनी कमजोरी नहीं प्रकट करना चाहता था। इस कारण उसने कहा कि वह सम्राट् का दर्शन करना चाहता है। हुमायूं इतनी शीघ्रता से पहुँचा कि उसके इतनी जल्दी पहुँचने पर बाबर को आश्चर्य हुआ। हुमायूं ने वही यात्रा एक मास में तय की जिसे पूरा करने में माहम बेगम ने पांच माह लगाये थे। बाबर हुमायूं को स्थायी रूप में नहीं बुलाना चाहता था, यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि उसके आने के बाद तुरन्त ही उसने उसे वापस लौट जाने के लिए कहा।[८५] यदि उसे पास रहने के लिए बुलाया गया था तो फिर उसे वापस जाने के लिए तुरन्त क्यों कहा गया? हुमायूं का इनकार करना इस बात को स्पष्ट करता है कि वह बदख़्शां से तंग आ गया था तथा वहां लौटने के लिए इच्छुक नहीं था। हुमायूं के हठ को देखकर बाबर ने अधिक जोर नहीं दिया।

हुमायूं की अनुपस्थिति के समय बदख़्शां की घटनाओं का वर्णन हम कर चुके हैं। श्रीमती बेवरिज तथा अर्सकिन का विचार है कि बदख़्शां का प्रबन्ध किये बिना ही हुमायूं लौट आया। जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, हुमायूं ने बदख़्शां को खतरे में नहीं डाला था तथा हिन्दाल को वहां भेजकर उसने वहां का उचित प्रबन्ध कर दिया था।[८६]

हुमायूं की बीमारी

तीन महीने बाबर के पास रहने के पश्चात् हुमायूं सम्भल चला गया। वहां वह छह महीने रहा। १५३० में ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ होते ही वह बीमार

८५ अकबरनामा, १, पृ. ११५।

८६ वही, पृ. ११४; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ६३।

पड़ गया। दिन पर दिन उसकी अवस्था बिगड़ती गयी। अन्त में चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध करने के लिए उसे आगरा ले जाना आवश्यक हो गया। वह पहले दिल्ली लाया गया और वहाँ से नाव पर नदी के रास्ते आगरा भेजा गया। माहम बेगम इस समय धौलपुर में अपने पति के साथ थी। यहां उसे मौलाना मुहम्मद फ़रग़ाली (फ़रग़ारी) के पत्र द्वारा हुमायूं की बीमारी तथा उसकी नाज़ुक दशा की सूचना मिली।[८७] माहम यह समाचार पाकर बहुत घबड़ायी तथा तत्काल दिल्ली की तरफ रवाना हो गयी। मथुरा में उसकी हुमायूं से मुलाकात हुई। हुमायूं की दशा जैसी सुनी गयी थी उससे अधिक खराब थी। आगरा पहुँचने पर उसकी अवस्था और खराब हो गयी।[८८]

गुलबदन बेगम ने जब हुमायूं से मुलाकात की, उस समय वह बेहोशी की दशा में था। वह लिखती है कि कभी तो राजकुमार बहुत प्रेम से बात करता था, कभी बेहोश हो जाता था। इस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि उसे कदाचित् अल्पविरामी ज्वर था। आगरा में हुमायूं की चिकित्सा प्रमुख हकीमों द्वारा हुई,[८९] किन्तु हुमायूं के अच्छे होने का लक्षण नहीं था। इसी समय एक प्रमुख सन्त मीर अबू बक़ा ने पुरातन परम्पराओं के अनुसार यह परामर्श दिया कि यदि सबसे बहुमूल्य वस्तु दान कर दी जाए तो राजकुमार अच्छा हो सकता है।[९०] बाबर ने इसका उत्तर दिया कि वह स्वयं अपने पुत्र की सबसे बहुमूल्य वस्तु है और उसने अपने आप को हुमायूं के लिए बलिदान करने की घोषणा की। इस बात से अमीर तथा अन्य उपस्थित लोग बहुत ही चिन्तित हुए। उन्होंने बाबर को समझाया कि स्वयं प्राण देने के बजाय बहुमूल्य हीरा (कोहेनूर) दान कर दिया जाए, उसका मूल्य गरीबों में बांट दिया जाए। किन्तु बाबर स्वयं अपना ही जीवन अर्पण करने के निर्णय पर दृढ़ रहा। बाबर ने हज़रत अली के नाम पर प्रार्थना की और हुमायूं की शैया के चारों तरफ घूमकर उसने कहा : "हे परमेश्वर! यदि प्राण के बदले प्राण दिया जाता हो तो मैं,

८७ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०४; अकबरनामा, १, पृ. ११६।

८८ वही; वही।

८९ इन हकीमों में प्रधान मन्त्री खलीफ़ा भी था, जो एक अच्छा हकीम था। अकबरनामा, १, पृ. ११९।

९० तारीखे रशीदी, ए. तथा रास, पृ. ४७८; अकबरनामा, १, पृ. ११६; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०५।

बाबर, अपनी अवस्था और अपना प्राण हुमायूं को देता हूँ।" गुलबदन बेगम के अनुसार बाबर उसी दिन बीमार पड़ गया और हुमायूं को कुछ आराम मिला। बाबर ने दूसरे दिन से व्रत करना आरम्भ कर दिया जिससे उसका बलिदान सफल हो।[६१] हुमायूं धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा और कुछ दिनों में पूर्ण नीरोग हो गया।

स्वस्थ होकर हुमायूं अपनी जागीर में लौट गया। हुमायूं के जाते समय बाबर की अवस्था अधिक खराब नहीं थी। यदि ऐसा होता तो हुमायूं उसे छोड़कर नहीं जाता।

बाबर ने अपना जीवन अर्पण क्यों किया ?

बाबर, माहम तथा हुमायूं दोनों को प्यार करता था। हुमायूं की बीमारी, हकीमों की निराशा तथा माहम की घबराहट ने बाबर को अत्यन्त चिन्तित कर दिया। यदि उसकी मानसिक स्थिति तथा स्वास्थ्य अच्छा होता तो बाबर ने इतने शीघ्र अपने प्राण अर्पण करने की बात न सोची होती। परन्तु इस बीच उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था तथा उसकी मानसिक अवस्था भी ठीक नहीं थी। इस अवसाद की अवस्था में राज्य त्यागने की बात भी उसके मन में आयी।[६२] उसका 'जीवन अर्पण' केवल प्रेम के ही कारण नहीं बल्कि इस मन:स्थिति के कारण भी था।

गुलबदन बेगम के वर्णन को ध्यान से पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि बाबर ने हुमायूं की बीमारी में उस पर अधिक ध्यान नहीं दिया था जिससे माहम दुखी थी, क्योंकि हुमायूं उसका एकमात्र पुत्र था तथा उसकी और संतानें मर चुकी थीं। माहम का यह कहना कि "आप मेरे पुत्र की चिन्ता नहीं कर रहे हैं, आप बादशाह हैं, आपको क्या चिन्ता हो सकती है, आपके अन्य पुत्र भी हैं,"[६३] इस बात का बोधक है। सम्भव है, बाबर ने इसी शर्म में जीवन अर्पण किया हो जिससे दुखी माहम को सन्तोष हो।[६४]

६१ अकबरनामा, १, पृ. ११७।
६२ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०८।
६३ वही, पृ. १०४ तथा फ़ारसी पृ. २१।
६४ जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९२६, पृ. २८५-९८; स्टडीज़ इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री, प्रो. श्रीराम शर्मा का लेख, 'दि स्टोरी ऑफ बाबर्स डेथ', पृ. १५८-६३; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०४–१०।

उत्तराधिकारी

हुमायूं के स्वास्थ्य-लाभ करते ही बाबर ने उसे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। इसका वर्णन अहमद यादगार ने इस प्रकार किया है :

"जाड़े की एक रात्रि में बादशाह ने एक प्याला पिया और किसी कार्य से हुमायूं मिर्ज़ा को बुलाया। जब वह उपस्थित हुआ तो गेती-सितानी (बाबर) नशे में होने के कारण तकिये पर सर रखकर सो गये। शाहज़ादा उसी प्रकार हाथ बाँधे खड़ा रहा। जब आधी रात को गेती-सितानी जागे तो उसे खड़ा देखकर पूछा कि तू कब आया? शाहज़ादे ने निवेदन किया कि "जिस समय आपने मुझे बुलाया था।" बादशाह को याद आया और वे बड़े प्रसन्न हुए और उससे कहा कि "यदि ईश्वर तुझे राजसिंहासन और मुकुट प्रदान करे तो अपने भाइयों की हत्या न करना और उन्हें क्षमा करते रहना।" शाहज़ादे ने भूमि पर सिर रखकर स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त बादशाह ने उसे 'वलि अहद' की उपाधि से सम्मानित किया और प्रसन्न करके विदा कर दिया। यही कारण था कि मिर्ज़ा कामरान, मिर्ज़ा अस्करी तथा हिन्दाल ने सैकड़ों प्रकार से धृष्टता की और युद्ध किया परन्तु बादशाह (हुमायूं) विजय कर लेने के उपरान्त उनकी धृष्टता की तरफ ध्यान नहीं देता था और उनके उपस्थित होने पर वह उनके प्रति कृपा दृष्टि प्रदर्शित करता था। उनके दुराचार का उनसे कोई बदला नहीं लेता था।[९५]

कालिंजर का आक्रमण

इसी समय समाचार मिला कि कालिंजर के राजा ने विद्रोह कर दिया है तथा उसने कालपी पर आक्रमण किया है। हुमायूं ने कालिंजर पर आक्रमण किया तथा वहां शान्ति स्थापित कर पुनः सम्भल लौट गया।[९६]

९५ अहमद यादगार, तारीखे शाही; विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १७४।

९६ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०५; अकबरनामा, १, पृ. ११७। कालिंजर में एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जो इस प्रकार है :

محمد همایوں پادشاه غازی بتاریخ سلخ رجب المرجب ۹۳۶

"मुहम्मद हुमायूं पादशाह ग़ाज़ी ब तारीखे सलख रजबुल मुरज्जब ९३६ हि." अर्थात् "मुहम्मद हुमायूं बादशाह ग़ाज़ी तिथि रजब महीने का अन्तिम दिन ९३६ हिजरी।"

इसमें हुमायूं अपने को पिता के जीवन काल में ही बादशाह

बाबर की मृत्यु

बाबर की बीमारी धीरे-धीरे बढ़ती गयी। कुछ ही महीनों में उसकी दशा बहुत ही खराब हो गयी। मार्च-अप्रैल १५३० (रजब ९३६) को बाबर बीमार पड़ा था तथा (शव्वाल) जून-जुलाई तक वह शैयाग्रस्त रहा। अवस्था अधिक बिगड़ने पर उसने अपने पुत्र हुमायूं को बुलवाया। हुमायूं ने आकर देखा कि उसके पिता की अवस्था बहुत ही खराब है। इससे वह बहुत दुःखी हुआ और दासों से कहने लगा कि एकबारगी इनका ऐसा हाल क्यों हो गया? वैद्यों और हकीमों को बुलवाकर कहा कि मैं इनको स्वस्थ छोड़कर गया था, एकाएक यह क्या हो गया?[९७]

बीमारी की अवस्था में बाबर पूछा करता था कि हिन्दाल कहां है? वह कब आएगा? हिन्दाल कितना बड़ा हुआ है? इसी बीमारी की अवस्था में बाबर ने अपनी दो पुत्रियों के विवाह किये—गुलरंग बेगम का इसान तैमूर सुल्तान से और गुलचेहरा बेगम का तुख्ताबुगा सुल्तान से।[९८]

अपना अन्त समय देखकर बाबर ने अमीरों को बुलवाया जिसमें ख्वाजा ख़लीफ़ा, तरदी बेग, हिन्दू बेग और कम्बरे अली बेग प्रमुख थे। उनकी उपस्थिति में उसने हुमायूं को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और कहा "वर्षों से यह मेरी इच्छा थी कि हुमायूं मिर्ज़ा को बादशाही देकर मैं स्वतन्त्र ज़रश आबांफ़ग़ में एकान्त वास करूं। ईश्वरी कृपा से वही हुआ। पर यह नहीं हुआ कि मैं स्वस्थ अवस्था में ऐसा करता। अब जब रुग्णावस्था में पड़ा हूँ, मैं वसीयत करता हूँ कि हुमायूं मेरा उत्तराधिकारी होगा और आप सब उसका साथ चाहने में कमी न करें और उसके स्वामिभक्त रहें। एक हृदय और एक मन से आप सब उसकी तरफ रहेंगे और मुझे भरोसा है कि ख़ुदा हुमायूं को ऐसी बुद्धि देंगे कि वह मनुष्यों से अच्छा व्यवहार करेगा।"[९९] इतना कहने के पश्चात्

ग़ाज़ी के नाम से सम्बोधित करता है। जरनल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, १८४८, पृ. १८६।

९७ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०५।

९८ वही, पृ. १०६-१०७।

९९ गुलबदन, हुमायूंनामा, पृ. २४, बेवरिज, पृ. १०८-१०९।

الحال ایں تشویش موازبون کرده وصیت می کنم که همه ایشان همایون
را بجائے من دانندودر دولت خواهی او تقصیر دکنند و با او ناکنند موافق و یکجهت
باشند از حق سبحانه امیدوارم که همایون هم بمردم خرب پیش خواهد آمد۔

बाबर हुमायूं की तरफ घूमा और उसने उसके लिए यह अन्तिम सन्देश कहा : "तुझे, तेरे भाइयों एवं अपने सभी सम्बन्धियों तथा आदमियों को ईश्वर को सौंपता हूँ और इन लोगों को तेरे सुपुर्द करता हूँ।"[१००]

इस घटना के तीन दिन पश्चात् सोमवार २६ दिसम्बर १५३० को बाबर की मृत्यु हो गयी।[१०१]

बाबर की मृत्यु गुप्त रखी गयी जिससे विद्रोह न हो। इसी बीच अरेश खां नामक एक भारतीय अमीर ने यह सुझाव दिया कि बाबर की मृत्यु को छिपाने का परिणाम भयंकर हो सकता है और उसने कहा जब बादशाह की मृत्यु होती है तब अकसर लोग लूट-मार करते हैं। उसने यह सुझाव दिया कि एक आदमी को लाल वस्त्र पहनाकर हाथी पर बैठाकर मुनादी करा दी जाए कि बाबर बादशाह दरवेश हो गये हैं और राज्य हुमायूं बादशाह को दिया गया है। हुमायूं ने आज्ञा दी कि ऐसा ही हो। इससे प्रजा में सन्तोष हुआ।[१०२]

इसके चार दिन के बाद हुमायूं गद्दी पर बैठा। बाबर आगरा में चारबाग़

دیگر همایوں ترا و برادران ترا و همه خویشان و مردم خودرا و ترا بخدا
می سپارم واین هارا بتومی سپارم -
ازایں سخنان حاضراں و ناظراں راگریهوزاری دست داد و خود هم چشمان
مبارک پر آب گردید ند -

अलहाल इँ तशवीश मरा ज़बूं करदा वसीयत मी कुनम कि हमां ईशा हुमायूं रा बजाय मन दानन्द व दर दौलतख़्वाहिये ऊ तक़्सीर न कुनंद व बऊ मोआफ़िक व यकजेहत वाशंद अज़ हक़ सुभानहु उम्मीदवारम कि हुमायूं हम ब मर्दुम ख़ूब पेश ख़्वाहद आमद दीगर हुमायूं तुराव बिराद-राने तुरा व हमां ख़ेशां व मर्दुमें। ख़ुदरा व तुरा बख़ुदा मी सिपारम व ईहांरा बतो मी सिपारम।

अज़ीं सुख़नां हाजरां व नाज़रां रा गिरिया व ज़ारी दस्त दाद व ख़ुद हम चश्माने मुबारक पुर आब गरदी दन्द।

१०० गुलबदन, हुमायूंनामा, पृ. १०८-१०९।

१०१ गुलबदन, निज़ामुद्दीन तथा फ़िरिश्ता ने बाबर की मृत्यु तिथि पांचवीं जमादुल अव्वल अर्थात् २५ दिसम्बर दिया है। अबुल फ़ज़ल ने छठी जमादुल अव्वल अर्थात् २६ दिसम्बर लिखा है। इस प्रश्न की विवेचना के लिए देखिए, होदीवाला, हिस्टारिकल स्टडीज़ इन मुग़ल न्यूमिस-मेटिक्स, पृ. २६२-६३।

१०२ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०९।

या रामबाग़ में दफनाया गया। शेरशाह के समय बाबर की अफ़ग़ान रानी बीबी मुबारिका उसकी लाश को काबुल ले गयी, जहां वह पुनः दफनाया गया। आजकल वह स्थान शाहे काबुल कहलाता है। जहांगीर ने उसमें एक अभिलेख अंकित कराया तथा शाहजहां ने वहां एक सुन्दर मस्जिद का निर्माण कराया।[१०३]

बाबर की मृत्यु का कारण

बाबर की मृत्यु उसके प्राण अर्पण करने के कारण हुई अथवा हुमायूं का अच्छा होना तथा उसकी बीमारी केवल संयोग मात्र था ?

मध्य युग में यह विश्वास था कि प्रार्थना तथा किसी विशेष धार्मिक पुरुष की मध्यस्थता से रोग अच्छा हो सकता है तथा एक व्यक्ति के प्राण देने से दूसरे व्यक्ति का प्राण बच सकता था। बाबर ने अपना प्राण इसी अन्धविश्वास पर अर्पण किया। यदि जीवन, जीवन से बदला जाता तो बाबर को वही बीमारी होनी चाहिए थी। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। हुमायूं ज्वर से पीड़ित था तथा बाबर को पेट की बीमारी थी। गुलबदन बेगम कहती है कि "वैद्यों ने यह स्पष्ट रूप से कहा था कि बीमारी इबराहीम की माँ द्वारा दिये गये विष का परिणाम थी। इसी समय बादशाह के पेट में पीड़ा बढ़ गयी और हुमायूं पिता का बुरा हाल देखकर घबराने लगा। हकीमों को बुलाकर उसने कहा कि 'देखो और दवा दो।' हकीमों ने इकट्ठा होकर कहा कि 'हम लोगों का दुर्भाग्य है कि दवा काम नहीं देती। आशा है परमेश्वर अपने गुप्त कोष से कोई दवा देंगे।' इसी समय नाड़ी देखकर हकीमों ने कहा कि ये उस विष के चिह्न हैं जिसे सुल्तान इबराहीम की मां ने दिया था।"[१०४]

हुमायूं का स्वास्थ्य-लाभ तथा बाबर की बीमारी और मृत्यु में समय का अन्तर है। हुमायूं बाबर के प्राण-अर्पण के कुछ ही दिन बाद स्वस्थ हो गया। बाबर की बीमारी धीरे-धीरे बढ़ती गयी तथा उसका अन्त होने में लगभग दस माह लगे। अबुल फ़ज़ल का विचार है कि बाबर की मृत्यु उसके बलिदान के कारण हुई।[१०५] आधुनिक फ्रांसीसी लेखक ग्रेनार्ड ने गुलबदन बेगम के उपर्युक्त कथन के आधार पर यह मत व्यक्त किया है कि हुमायूं ने बाबर को

१०३ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १५।
१०४ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०४।
१०५ अकबरनामा, १, पृ. ११६-१७।

ज़हर देकर मार डाला।[१०६] गुलबदन के कथन से यह मत निकालना भूल है। इबराहीम की माँ द्वारा दिया गया विष बहुत ही तेज था तथा बाबर उससे भाग्य से ही बच गया। गुलबदन ने विष देने की घटना का भी वर्णन किया है जिससे स्पष्ट है कि उनका अर्थ अन्य किसी विष से नहीं है।[१०७]

वास्तविक रूप में बाबर की मृत्यु और हुमायूं के अच्छे होने की घटनाएं संयोग मात्र हैं। बाबर ने अपने जीवन भर शराब पी थी। अधिकतम नशा लाने के लिए शराब में भांग, धतूरा आदि चीजें भी मिलायी जाती थीं। ऐसी स्थिति में उसके पेट में रोग होना एक साधारण-सी बात थी। इसके अतिरिक्त इबराहीम की मां द्वारा दिये गये विष का प्रभाव भी उसके स्वास्थ्य पर पड़ा। इसके अतिरिक्त बाबर का सम्पूर्ण जीवन कठिन श्रम और संघर्ष का जीवन था। कठिन परिश्रम और अस्त-व्यस्त तथा अनियमित दिनचर्य्या ने उसके स्वास्थ्य को गिरा दिया। क़ाबुल, मध्य एशिया तथा भारत की जलवायु में अन्तर था। सम्भव है कि यह भी बाबर के शक्तिक्षय में सहायक हुआ। इसी बीच उसके प्रिय पुत्र अलवर की मृत्यु हो गयी जिससे बाबर का अस्वस्थ मन तथा शरीर और भी हिल गया। इन परिस्थितियों में सम्भव है कि जिस समय बाबर ने अपने जीवन को समर्पित किया तथा उसके बाद जब हुमायूं स्वस्थ होने लगा तो बाबर को यह विश्वास हो गया हो कि खुदा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। शारीरिक दुर्बलता की अवस्था में मनोवैज्ञानिक प्रभाव से वह धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर होने लगा। इस दृष्टि से उसकी मृत्यु अन्धविश्वास के मनोवैज्ञानिक प्रभाव के कारण हुई। उसका जीवन अर्पण तथा उसकी मृत्यु की घटनायें केवल संयोग मात्र थीं।

१०६ ग्रेनार्ड, बाबर फर्स्ट ऑव दि मुगल्स, पृ. २३२। इबराहीम की मां द्वारा दिये गये विष के लिए देखिए, बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५४१-४३।

१०७ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०८।

२. ख़लीफ़ा का षडयंत्र

बाबर की मृत्यु २६ दिसम्बर १५३० को हुई, किन्तु हुमायूं इसके चार दिन पश्चात् अर्थात् ३० दिसम्बर को गद्दी पर बैठा। साधारणतया शासक की मृत्यु के तत्काल बाद ही उसका उत्तराधिकारी गद्दी पर बैठा दिया जाता था, यद्यपि राजतिलक का समारोह कुछ दिन उपरान्त होता था।[1] बाबर की मृत्यु तथा हुमायूं के गद्दी पर बैठने में अन्तर के दो कारण हो सकते हैं। हुमायूं इस बीच अनुपस्थित था तथा उसके पहुँचने तक बाबर की मृत्यु छिपायी गयी, अथवा इस बीच हुमायूं के स्थान पर किसी दूसरे व्यक्ति को गद्दी पर बैठाने का षड्यन्त्र रचा गया।

बाबर की मृत्यु के समय हुमायूं कहां था?

गुलबदन बेगम लिखती है कि जब बाबर की हालत खराब होने लगी तो हुमायूं को कालिंजर से बुलाया गया। वह फौरन आ गया तथा दुख से बराबर यही कहता रहा कि बाबर की "यह अवस्था कैसे हो गयी! मैंने इन्हें अच्छी अवस्था में छोड़ा था। अचानक यह क्या हो गया!"[2] अबुल फ़ज़ल के वर्णन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं बाबर की मृत्यु के समय उपस्थित था।[3] इनके विपरीत निज़ामुद्दीन अहमद के अनुसार हुमायूं बाबर की मृत्यु के पश्चात् सम्भल से आया तथा गद्दी पर बैठा।[4] बाबर की मृत्यु के पश्चात्,

१ शेरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका दूसरा लड़का इस्लाम शाह पहले पहुँचने के कारण गद्दी पर बैठने में सफल हुआ। उसका बड़ा पुत्र आदिल ख़ां बाद में पहुँचने के कारण राज्य से वंचित रहा।

२ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०५। फ़िरिश्ता के अनुसार जब बाबर की बीमारी बढ़ गयी तो उसने हुमायूं को, जो कालिंजर के दुर्ग को घेरे हुए था, बुलाया। बाबर ने उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। ब्रिग्स, २, पृ. ६४।

३ अकबरनामा, १, पृ. ११८, १२१।

४ डे, तबक़ाते अकबरी, २, पृ. ४४। इस बात का समर्थन रौज़ातेअत् ताहीरी के लेखक ताहिर मुहम्मद ने भी किया है। बांकीपुर पुस्तकालय की

उसकी मृत्यु को छिपाया जाना तथा एक दूसरे व्यक्ति को उसके स्थान पर जनता को दिखाया जाना ऐसा सन्देह उत्पन्न करता है जिससे निज़ामुद्दीन अहमद की बात को समर्थन प्राप्त होता है। किन्तु, गुलबदन बेगम तथा अबुल फ़ज़ल के वर्णन इतने स्पष्ट हैं कि उन्हें अस्वीकार नहीं किया जा सकता और ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूं उस समय आगरा में उपस्थित था।

षड्यंत्र

बाबर के प्रधान मंत्री ख़लीफ़ा ने हुमायूं के स्थान पर महदी ख्वाजा को गद्दी पर बैठाने की योजना बनायी। यह योजना ख़लीफ़ा के मस्तिष्क की उपज थी तथा दरबार के अन्य अमीरों को कदाचित् इसका ज्ञान नहीं था। पारिभाषिक तौर पर यह षड्यंत्र कहा जा सकता है किन्तु वास्तव में यह ख़लीफ़ा की योजना की एक चर्चा मात्र थी।[५] फिर भी वैधानिक दृष्टि से तथा मुग़ल साम्राज्य की स्थिरता की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। इसके अतिरिक्त इस षड्यंत्र का प्रणेता बाबर का प्रधान मंत्री था, जिसने बाबर के साथ ३५ वर्ष व्यतीत किये थे; इससे इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

इस षड्यन्त्र का विशेष विवरण हमें केवल निज़ामुद्दीन अहमद द्वारा प्राप्त होता है, जिसके पिता की बुद्धिमानी से यह षड्यंत्र विफल हुआ। यदि इसका वर्णन केवल निज़ामुद्दीन अहमद ही ने किया होता तो यह कहा जा सकता था कि उसने यह वर्णन अपने पिता का महत्त्व बढ़ाने के लिए किया है। किन्तु इसका समर्थन अबुल फ़ज़ल के अकबरनामा तथा सलातीने अफ़ागेनां (अथवा तारीखे शाही) तथा कवित्त हुमायूंनामा ने भी किया है। इन समकालीन इतिहासकारों के वर्णनों के पश्चात् षड्यंत्र की वास्तविकता में सन्देह नहीं रह जाता।

षड्यंत्र का प्रणेता ख़लीफ़ा

इस षड्यंत्र का प्रणेता बाबर का प्रधान मंत्री सुल्तान सैय्यद हकीम ख्वाजा निज़ामुद्दीन अली मुहम्मद ख़लीफ़ा था। अपने अच्छे शासन, सेवा तथा युद्ध

हस्तलिखित प्रति। डा. रामप्रसाद त्रिपाठी ने इस मत को स्वीकार किया है। (त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फाल ऑफ दि मुग़ल एम्पायर, पृ. ५४)।

५ "It is technically correct to call this attempt of the Khalifah a conspiracy but in reality it was in the nature of what Mrs Beveridge calls a rumour of a plan of supercession of Babur's sons by Mahdi Khwajah at the instance of Mir Khalifah." (ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २४)।

कला की निपुणता के कारण उसने बाबर के मन में विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था।[६] उसे चार पद—वकील, अमीर, सुल्तान और खलीफ़ा—तथा तीन पारिवारिक उपाधियां—सैयिद, ख्वाजा तथा बरलास तुर्क—प्राप्त थीं, जो उच्च वंश के प्रतीक थे। इसके अतिरिक्त कुछ प्रमुख व्यक्तियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसने अपने को और भी शक्तिशाली बना लिया था। उसका छोटा भाई जुनायद बरलास बाबर की सौतेली छोटी बहन शहर-बानो से तथा उसकी लड़की गुलबर्ग बेगम सिंध के शासक शाह हुसेन अरगून से विवाहित थी। उसके पुत्र मोहीब अली का विवाह शाह हुसेन की सौतेली लड़की नाहीद से हुआ था।[७] पानीपत तथा खानवा के युद्ध के पश्चात् माहम तथा गुलबदन बेगम काबुल से भारत आयीं। गुलबदन को खड़े होकर खलीफ़ा का स्वागत करना पड़ा। खलीफ़ा ने ६००० शाहरुखी तथा ५ घोड़े और उसकी स्त्री ने ३००० शाहरुखी तथा तीन घोड़े गुलबदन को भेंट किये और उसे भोजन के लिए निमंत्रित किया।[८] बाबर के भारतीय अभियानों में भी खलीफ़ा ने महत्त्वपूर्ण भाग लिया तथा उसे पारितोषिक रूप में धन तथा उपाधि दोनों प्राप्त हुए। खानवा की लड़ाई के पश्चात् उसे 'मुक़र्रबुल हज़रत अल-सुल्तानी एतमादुद्दौला अल-ख़ाक़ानी' (अर्थात् सुल्तान का प्रमुख मित्र तथा उसके साम्राज्य का स्तम्भ) की उपाधि मिली। बाबरनामा के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह बाबर के जीवन के अन्त तक राज्य की समस्याओं में उसे परामर्श देता रहा। अहमद यादगार लिखता है कि उसकी आज्ञाएं बाद-शाह की आज्ञाओं जैसी थीं।[९] इस तरह खलीफ़ा बाबर के दरबार का सबसे प्रमुख अमीर था तथा राज्य के आर्थिक तथा राजनीतिक शासन का प्रमुख था।

हुमायूं का प्रतिद्वन्द्वी महदी ख्वाजा

खलीफ़ा बाबर के पश्चात् सैयिद महदी ख्वाजा को गद्दी पर बैठाना चाहता था।[१०] महदी ख्वाजा, ख्वाजा मूसा का पुत्र था। ख्वन्दमीर के अनुसार वह

६ बनर्जी, हुमायूं, १, पृष्ठ १८।

७ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ३७; आईने अकबरी, अं. अनु., ब्लाखमैन, पृ. ४६३-६४।

८ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १०१-१०२।

९ अहमद यादगार, तारीखे शाही, पृ. १३०।

१० श्रीमती बेवरिज तथा डा. बनर्जी (गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. २९८-९९; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २०) ने उसका नाम सैयिद

सैयद था तथा तिरमीज़ के धार्मिक वंश से सम्बन्धित था। ९१६ हिजरी (सन् १५१०-११) में वह बाबर का दीवान बेगी था तथा उसने १०,००० सैनिकों के साथ बाबर के पक्ष में बुख़ारा पर आक्रमण किया था।[११] इस अभियान के पश्चात् वह काबुल लौट आया। यहां तीन वर्ष पश्चात्, बाबर से ५ वर्ष बड़ी उसकी बहन ख़ानज़ादा बेगम के साथ उसका विवाह हुआ।[१२] इस समय इसका अधिक महत्त्व नहीं था। किन्तु बाबर के साथ भारतीय अभियानों में भाग लेकर उसने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की। पानीपत तथा खानवा के युद्धों में उसने बाएं तथा हुमायूं ने दाएं चक्र का नेतृत्व किया था। महदी ख़्वाजा के कार्यों से प्रसन्न होकर उसे सत्तर लाख भत्ते के साथ बयाना तथा इटावा की जागीर भी पहले ही दी जा चुकी थी।[१३]

महदी ख़्वाजा का भतीजा ख़्वाजा रहीमदाद ग्वालियर के दुर्ग का गवर्नर था। उसने बाबर के विरुद्ध विद्रोह किया तथा राजसी फ़रमान मानने से इनकार कर दिया। रहीमदाद मालवा के सुल्तान मुहम्मद ख़लजी के पास भाग जाना

मुहम्मद महदी ख़्वाजा बताया है। गुलबदन बेगम तथा बाबर दोनों उसे महदी ख़्वाजा के नाम से ही सम्बोधित करते हैं। शेख़ ज़ैन ने उसे सैयिद महदी ख़्वाजा लिखा है। इससे उसका नाम महदी ख़्वाजा ही प्रतीत होता है। महदी ख़्वाजा अबुल माली की क़ब्र के निकट दफ़नाया गया था जो तिरमिज़ी था। इस कारण श्रीमती बेवरिज लिखती हैं कि महदी ख़्वाजा भी तिरमिज़ी था। डा. बनर्जी का अनुमान है कि वह माहम से भी सम्बन्धित था।

११ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २०।

१२ इस समय ख़ानज़ादा बेगम की अवस्था लगभग चालीस वर्ष की थी। महदी ख़्वाजा भी लगभग इसी अवस्था का था। बाबर ने अपनी आत्मकथा में इस विवाह का उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि वह इसी वर्ष में लिखता है कि महदी ख़्वाजा ने मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा को काबुल आने से मना करके अच्छा नहीं किया। बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ३६४।

१३ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५३०। महदी ख़्वाजा तथा हुमायूं को पानीपत तथा खानवा के युद्धों में बराबर का स्थान देने के कारण डा. बनर्जी ने यह विचार प्रकट किया है कि दोनों पर बाबर की समान दृष्टि थी (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २०)। यह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि पानीपत के पूर्व हुमायूं को हिसार फ़िरोज़ा दिया गया और बाद में उसे सम्भल भी दिया गया। महदी को और कुछ प्राप्त नहीं हुआ। ईद के सुअवसर पर भी हुमायूं को 'चारक़ब' (एक प्रकार की ख़िलअत) के अतिरिक्त एक तलवार की पेटी तथा तीपूचाक़ घोड़ा सोने की ज़ीन

चाहता था तथा ग्वालियर एक राजदूत को समर्पित कर देना चाहता था।[१४] इसी सम्बन्ध में महदी ख़्वाजा अगस्त १५२९ में आगरा आया। ख़लीफ़ा तथा शेख़ मुहम्मद ग़ौस की सहायता से रहीमदाद के प्राण तो बच गये किन्तु कुछ समय उपरान्त ७ सितम्बर १५२९ को उसे अपने स्थान से हटा दिया गया तथा अबुल फ़तह शेख़ गुरान को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया।[१५] इस विद्रोह में महदी ख़्वाजा का कहां तक हाथ था यह बताना कठिन है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बाबर तथा महदी ख़्वाजा में इसके फलस्वरूप कुछ मनमुटाव हो गया, किन्तु इसी बीच महदी ख़्वाजा और ख़लीफ़ा एक-दूसरे के निकट आये। उसमें कुछ गुणों को देखकर खलीफ़ा उसकी तरफ आर्कषित हुआ। एक ऐसे व्यक्ति को, जिसे स्वप्न में भी राजत्व की आशा नहीं थी, गद्दी पर बैठाकर ख़लीफ़ा सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथ में रखना चाहता था।

महदी ख़्वाजा और बाबर का सम्बन्ध पुराना था। वंश, सेवा, सम्बन्ध एवं योग्यता की दृष्टि से महदी ख़्वाजा का एक महत्त्वपूर्ण स्थान था। बड़ी बहन होने के नाते ख़ानज़ादा बेग़म का बाबर पर प्रभाव माहम से कम न था।[१६]

डा. बनर्जी के अनुसार महदी ख़्वाजा का चुनाव अच्छा था। वंश, सेवा, अनुभव तथा सम्बन्ध से वह मुग़ल गद्दी पर बैठने की योग्यता रखता था। धार्मिक पंथ से सम्बन्धित होने के नाते ईरान के शाह इस्माईल और शाह तहमास्प की भांति उसे सफलता मिल सकती थी और उदार बाबर के साथ उसका इतने दिनों का सम्बन्ध एक जागृत मुग़ल शासन प्रणाली की प्रगति की गारंटी थी।[१७] विद्वान लेखक के मत से सहमत होना कठिन है। बाबर के परिवार को छोड़कर अन्य व्यक्तियों को चुनने का विचार भयंकर परिणामों

के साथ दिया गया। महदी ख़्वाजा को पानीपत तथा खानवा के युद्धों में बराबर का स्थान उसके सम्बन्धी होने के अतिरिक्त युद्ध में योग्यता के कारण भी था। दोनों की बराबरी का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

१४ तारीख़े ग्वालियरी ; बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६८८-८९।

१५ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६८९-९०।

१६ बनर्जी, हुमायूं, १ पृ. २१। बाबरनामा के अन्तिम भाग में महदी ख़्वाजा का नाम अकसर बाबर के प्रमुख अमीरों के साथ आता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय इसकी गणना उच्च अमीरों में हो रही थी। बाबर की आत्मकथा में महदी ख़्वाजा का नाम प्रथम बार १४९४-९५ में आया है।

१७ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २१।

से खाली नहीं था। इसका परिणाम गृहयुद्ध तो होता ही, साथ ही महदी ख़्वाजा किसी बात में हुमायूं से अधिक योग्य नहीं था। बाबर का पुत्र होने से जो सद्भावना हुमायूं को प्राप्त होती वह महदी को प्राप्त नहीं हो सकती थी। प्रख्यात मुग़ल शासन का अभी शुभारम्भ भी नहीं हुआ था, उसके मूल सिद्धान्तों के विकास का प्रश्न ही नहीं था।

श्रीमती बेवरिज के अनुसार ख़लीफ़ा का वास्तविक उम्मीदवार महदी ख़्वाजा नहीं बल्कि मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा था।[१८] यह तैमूर वंशी था तथा बाबर का सबसे बड़ा दामाद था। बाबर के चार पुत्रों के बाद यह सबसे प्रमुख तथा जवान था, (इसकी अवस्था उस समय ३५ वर्ष की थी)। इसकी स्त्री मासूमा सुल्ताना बेगम माता व पिता दोनों तरफ से तैमूर वंश की थी और इस तरह से उसका आदर तुर्क अमीरों में विशेष था। श्रीमती बेवरिज के अनुसार घाघरा के अभियान के पश्चात् (अप्रैल १९२९) उसे राजत्व का पद प्रदान किया गया।[१९] श्रीमती बेवरिज के मतानुसार बाबर अपने दामाद को भारत का शासक नियुक्त कर स्वयं काबुल या और उत्तर में चला जाना चाहता था। इसी के भय से माहम बेगम ने हुमायूं को आगरा बुलाया। बाद की घटनाएं इतनी शीघ्र हुईं कि बाबर अपने दामाद को नियुक्त नहीं कर सका। श्रीमती बेवरिज निज़ामुद्दीन अहमद के कथन को सत्य नहीं मानतीं, क्योंकि इस घटना के ६० वर्ष पश्चात् उसने अपनी पुस्तक की रचना की। घटना के २० वर्ष बाद निज़ामुद्दीन अहमद का जन्म हुआ था। विदुषी लेखिका के अनुसार महदी ख़्वाजा का चुनाव ठीक प्रतीत नहीं होता, विशेषतः इस कारण कि बाबर के

[१८] Epigraphica Indo-Muslimica 1915-16; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. २९८–३०१; बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ७०४–७०८। "If Mahdi or any other competent man had ruled in Delhi by whatever tenure, this would not necessarily have ruined Humayun, or have taken from him the lands most coveted by Babur. All Babur's plans and orders were such as to keep Humayun beyond the Hindukush, and to take him across the Oxus." गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, अनुवादक की भूमिका, पृ. २६-२७; तबक़ाते अकबरी के अंग्रेजी अनुवादक श्री डे ने भी श्रीमती बेवरिज के मत का समर्थन किया है। (डे, तबक़ाते अकबरी, २, पृ. ४१-४२)।

[१९] बाबरनामा, पृ. ७०४–७०८। बाबरनामा के अनुसार उसे एक राजकीय सरोपा, तलवार बेल्ट, एक तीपूचाक़ घोड़ा और एक छतरी दी गयी।

अन्य पुत्र थे तथा ख़्वाजा तैमूर वंश का नहीं था। खलीफ़ा जैसा बुद्धिमान व्यक्ति उसे नहीं चुन सकता था। महदी ख़्वाजा की अवस्था लगभग ५५ वर्ष की थी। निज़ामुद्दीन अहमद उसे अथवा ख़लीफ़ा के उम्मीदवार को दामाद और जवान कहता है, किन्तु ख़्वाजा जवान नहीं कहा जा सकता और वह दामाद भी नहीं था।

श्रीमती बेवरिज के इस मत को स्वीकार करना कठिन है,[२०] क्योंकि यह केवल कल्पना पर आधारित है। किसी भी समकालीन इतिहासकार ने इस सम्बन्ध में मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा के नाम का उल्लेख नहीं किया है। दामाद का अर्थ आधुनिक रीति या आधुनिक भारत में प्रचलित अर्थ से नहीं बल्कि समकालीन अर्थ से लेना चाहिए जिसमें दामाद, बहनोई और ससुर के लिए भी प्रयोग किया जाता था।[२१] गुलबदन बेगम उसे 'यज़ना' (बहनोई) लिखती है तथा हबीब अस्सियार का लेखक ख़्वन्दमीर स्पष्ट लिखता है कि उसने बाबर की बड़ी बहन ख़ानज़ादा बेगम से विवाह किया था। दोनों ही उसका नाम महदी ख़्वाजा लिखते हैं।[२२] जवान का अर्थ उसके स्वास्थ्य से लेना चाहिए और उसमें कोई अवस्था निर्धारित करना ठीक नहीं होगा।

यदि तैमूर वंश के ही व्यक्ति को चुनना था तो बाबर के पुत्रों के अतिरिक्त

इससे केवल एक प्रमुख पद का अनुमान लगाया जा सकता है और यह कहना कि उसे राजत्व का पद प्रदान किया गया, सही नहीं है। बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २३।

२० निज़ामुद्दीन के शब्द इस प्रकार हैं (तबकाते अकबरी, पृ. २८):
چون مهدی خواجه داماد حضرت فردوس مکانی جوان سخی و باذل بود و
بامیر خلیفه رابطه محبت داشت—

"चूं महदी ख़्वाजा, दामादे हज़रत फिरदौस-मकानी जवाने सखी व बाज़िल बूद, व बा अमीर-ख़लीफ़ा राब्तये मुहब्बत दाश्त।"

२१ बहारे अजम नामक शब्दकोश में दामाद का अर्थ इस प्रकार है:
"दुलहिन के सामने, हिन्द में उस व्यक्ति को कहते हैं जिससे पुत्री ब्याही जाए, किन्तु उत्तम शैली के स्वामियों की रचना में यह शब्द इस प्रकार प्रयुक्त नहीं हुआ है।" फ़रहगेनव में इस शब्द का अर्थ 'किसी की पुत्री का पति', स्टेइनगैस में इसका अर्थ "a son-in-law, a father-in-law, a husband of the king's sister; nearally; a wooer, a lover" दिया है।

२२ गुलबदन, हुमायूंनामा, पृ. २८, बेवरिज, पृ. १२६; ख़्वन्दमीर, हबीबुस्सियार; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २२–२७।

मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा, उसके पुत्र तथा अन्य अनुभवी व्यक्ति थे। निज़ामुद्दीन अहमद एक ऐसा लेखक है जिसके वर्णनों पर साधारणतया सन्देह नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त अबुल फ़ज़ल ने भी उसका समर्थन किया है। यह कैसे सम्भव माना जा सकता है कि इन लेखकों ने मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा के स्थान पर महदी ख़्वाजा का नाम लिख दिया है? मुहम्मद ज़मान ने हुमायूं के समय विद्रोह किया और वह उच्च स्तरीय मुग़ल अमीरों में से था। इस कारण उसमें उलटफेर होने की कोई सम्भावना भी प्रतीत नहीं होती। इसके अतिरिक्त निज़ामुद्दीन अहमद के पिता को इस षड्यंत्र का पूरा ज्ञान था। वह कैसे मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा तथा महदी ख़्वाजा में गड़बड़ कर देता? यदि यह कहा जाए कि बाबर मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा को कहीं स्थापित करना चाहता था तो बाबर को उसके पहले अपने पुत्रों के लिए प्रबन्ध करना चाहिए था। बदख़्शां सुल्तान मिर्ज़ा को दे दिया गया था तथा हिन्दाल वापस बुला लिया गया था। यदि भारत के भाग भी किसी दूसरे को दे दिये जाते तो फिर बाबर के अपने पुत्रों के लिए क्या बचता? फिर यदि मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा को कहीं स्थापित करना ही था तो महदी ख़्वाजा का भी उसके पद के अनुसार उपयुक्त प्रबन्ध करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त निज़ामुद्दीन अहमद तथा अबुल फ़ज़ल इस षड्यंत्र की बात करते समय 'सल्तनत' शब्द का प्रयोग करते हैं।[२३] इससे स्पष्ट है कि यह समस्या एक प्रान्त के गवर्नर की नहीं वरन् साम्राज्य के उत्तराधिकारी से सम्बन्धित थी। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट हो जाता है कि ख़लीफ़ा का उम्मीदवार महदी ख़्वाजा था, न कि मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा।[२४]

ख़लीफ़ा के निर्णय के कारण

ख़लीफ़ा, जिसने अपने जीवन का एक बहुत बड़ा भाग बाबर की सेवा में व्यतीत किया था, क्यों तथा कैसे हुमायूं से नाराज़ हो गया, यह बताना सरल नहीं है, क्योंकि समकालीन इतिहासकारों ने इस पर अधिक प्रकाश नहीं डाला है। यदि वह हुमायूं से नाराज़ होता तो भी बात कुछ समझ में आती, किन्तु

२३ डे, तबक़ाते अकबरी, २, पृ. ४२; अकबरनामा, १, पृ. ११७।

२४ मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा तथा मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा ने हुमायूं के समय में कई बार विद्रोह किया। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी महत्त्वाकांक्षा का हनन हुआ था और इस कारण उन्होंने विद्रोह किया। महदी ख़्वाजा ने हुमायूं के गद्दी पर बैठने के पश्चात् कभी भी विद्रोह नहीं किया। क्या वह महत्त्वाकांक्षी नहीं था? हो सकता है कि इसी कारण ख़लीफ़ा ने उसे चुना हो।

वह पूरे परिवार से ही नाराज़ था तथा हुमायूं के साथ-साथ उसने बाबर के सभी पुत्रों को त्याग दिया। इससे सन्देह होता है कि इसके पीछे महत्त्वपूर्ण कारण होंगे।

निज़ामुद्दीन अहमद तथा अबुल फ़ज़ल के वर्णन से यह स्पष्ट है कि ख़लीफ़ा हुमायूं से असन्तुष्ट था। मुग़ल साम्राज्य को स्थापित हुए बहुत दिन नहीं हुए थे। डा. बनर्जी के अनुसार ख़लीफ़ा को कदाचित् यह विश्वास हो गया था कि हुमायूं यदि गद्दी पर बैठेगा तो मुग़ल साम्राज्य का नाश हो जाएगा। इस दृष्टि से हुमायूं को उत्तराधिकार से वंचित कर वह समझता था कि वह राज्य का भला ही कर रहा है।[२५] हुमायूं द्वारा दिल्ली के खजाने की लूट के कारण भी वह नाराज था तथा उसने हुमायूं को इसके लिए क्षमा नहीं किया। बेवरिज का अनुमान है कि ख़लीफ़ा कदाचित हुमायूं के अफ़ीम खाने तथा उसके एकाएक बदख़्शां छोड़ने से असन्तुष्ट था। नशे की वस्तुएं खाने के कारण राज्य से वंचित करना न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता, विशेषतः जब हम जानते हैं कि बाबर स्वयं नशे में चूर रहता था। अतएव सम्राट के अभिन्न मित्र मीर ख़लीफ़ा ने भी निश्चय ही शराब का प्रयोग किया होगा। शिआ रानी माहम के प्रभाव से वह कदाचित सशंकित था। सम्भव है ईरानी और तूरानी तथा शिआ और सुन्नी संघर्ष, जो बाद में मुग़ल अमीरों के वैमनस्य का प्रमुख कारण बना, उस समय भी रहा हो तथा ख़लीफ़ा और अन्य तुर्की अमीरों को यह भय हो कि हुमायूं के गद्दी पर बैठने से माहम का तथा उसके प्रभाव से शिआ धर्मावलम्बियों तथा ईरानियों का प्रभुत्व बढ़ जाएगा।

हुमायूं को गद्दी से वंचित करने के कारण हो सकते हैं, किन्तु तब उसके स्थान पर कामरान, अस्करी और हिन्दाल में से किसी को भी गद्दी पर बैठाया जा सकता था। ख़लीफ़ा ने क्यों बाबर के सभी पुत्रों को अस्वीकार कर दिया? और फिर, बाबर के पुत्रों के अतिरिक्त यदि किसी दूसरे को ही चुनना था तो

२५ डा. बनर्जी, (हुमायूं, १, पृ. १९) लिखते हैं कि हुमायूं को पानीपत और खानवा के युद्धों में अधिक पारितोषिक प्राप्त होने के कारण भी ख़लीफ़ा उससे द्वेष रखता था। किन्तु इसमें उसके नाराज होने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता। हुमायूं बाबर का सबसे बड़ा पुत्र था और राज्य का उत्तराधिकारी था। इस दृष्टि से उसका अधिक पारितोषिक प्राप्त करना न्यायसंगत था। जिस समय हुमायूं को पारितोषिक प्राप्त हुए उस समय तक हुमायूं ने कोष भी नहीं लूटा था। इस दृष्टि से उस समय उस पर क्रोध करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

और भी महत्त्वपूर्ण योग्य व्यक्ति, जैसे मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा, मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा, ख़िज्र ख़्वाजा ख़ां इत्यादि व्यक्ति उपलब्ध थे जो अच्छे वंश के थे। इन्हें क्यों नहीं चुना गया ? डा. बनर्जी का यह मत सत्य प्रतीत होता है कि उसका विचार व्यक्तिगत था।[२६] इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह उसकी बहुत बड़ी भूल थी। उसने बाबर की इच्छा, उसके वंश की भलाई इत्यादि सभी बातों को भुला दिया। यही नहीं, उसने एक ऐसी परिस्थिति उपस्थित कर दी जिससे बाबर के वंश को बहुत बड़ा खतरा उपस्थित हो गया। डा. बनर्जी के इस मत को स्वीकार करना कठिन है कि ख़लीफ़ा साम्राज्य की भलाई को दृष्टि में रखकर हुमायूं को राज्याधिकार से वंचित करना चाहता था।[२७] अबुल फ़ज़ल का यह कथन, कि उसने एक संकुचित दृष्टिकोण (आलमे बशरियत) अख़्तियार किया, बहुत कुछ सत्य है।[२८]

बाबर की इच्छा

इस षड्यंत्र में अर्थात् हुमायूं के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को गद्दी पर बैठाने में क्या ख़लीफ़ा को बाबर का भी समर्थन प्राप्त था ? ख़लीफ़ा तथा बाबर का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ था कि यह सन्देह हो जाता है कि उसने बाबर की इच्छा जाने बिना ऐसा कभी नहीं किया होगा। इसी आधार पर श्रीमती बेवरिज ने यह मत उपस्थित किया है कि हुमायूं को गद्दी से वंचित करने में बाबर की भी इच्छा थी। उनका विचार है कि भिन्न-भिन्न कड़ियों को जोड़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि केवल ख़लीफ़ा ही नहीं बल्कि कुछ अन्य अमीरों के साथ बाबर भी भारत में किसी अन्य व्यक्ति को शासक नियुक्त करना चाहता था तथा उसके पश्चात् काबुल लौट जाना चाहता था।[२९] प्रो. रशब्रुक विलियम्स ने भी इस मत का समर्थन किया है। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया

२६ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २०।

२७ "The Khalifah must have satisfied his political conscience that in rejecting Humayun he was furthering the interests of the state." (बनर्जी, हुमायूं १, पृ. १९)।

२८ अकबरनामा, १, पृ. ११७।

२९ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ७०५-७०६ विदुषी लेखिका के अनुसार : (१) बाबर के साम्राज्य का प्रमुख केन्द्र काबुल था, दिल्ली नहीं; (२) तैमूर वंशियों में साम्राज्य को विभाजित करने की परम्परा थी; (३) कई वर्षों से बाबर काबुल लौटना चाहता था; (४) बाबर को अपना उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार था; (५) बाबर मुहम्मद ज़मान

है कि ख़लीफ़ा तथा बाबर का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि ऐसा मालूम होता है कि हुमायूं के अनेक कार्यों, विशेषतया दिल्ली के कोष की लूट के कारण बाबर इतना दुःखी था कि सम्भव है उसी ने ख़लीफ़ा को प्रोत्साहित किया हो।[30]

घटनाओं तथा परिस्थितियों का अध्ययन करने से इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। बाबरनामा, गुलबदन बेगम के हुमायूंनामा तथा अन्य समकालीन ऐतिहासिक पुस्तकों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि बाबर अपने पश्चात् हुमायूं को गद्दी पर बैठाना चाहता था तथा उसने मृत्यु के पूर्व उसे अपना उत्तराधिकारी मनोनीत भी किया था। बाबरनामा के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बाबर हुमायूं के कार्यों से अकसर असन्तुष्ट रहता था। दिल्ली का कोष लूटने पर तथा बदख़्शां से अवसाद के पत्र लिखने पर बाबर ने उस पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता कि वह उसे उत्तराधिकार से ही वंचित करना चाहता था। भारतीय अभियानों में बाबर ने हुमायूं को बारबार पारितोषिक दिया, बदख़्शां से लौटने पर उसके स्वागत में दावत दी गयी तथा बाबर ने बारबार यह विचार प्रकट किया कि वह हुमायूं को ही अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करना चाहता है। हुमायूंनामा में गुलबदन बेगम लिखती है कि माहम के काबुल से लौटने के पश्चात् एक दिन बाबर ज़र अफ़शां बाग की सैर को गया। वहां एक वज़ूख़ाना (वह स्थान जहां नमाज़ के पूर्व हाथ-मुंह धोया जाता है) था। उसे देखकर बाबर ने कहा, "मेरा हृदय सल्तनत एवं बादशाही से भर गया है। मैं ज़र अफ़शां बाग में एकान्तवास ग्रहण करना चाहता हूँ। मेरी सेवा के लिए ताहिर आफ़ताबची बहुत है। मैं हुमायूं को बादशाही प्रदान करता हूँ।" इसी बीच आक़ा (माहम बेगम) तथा सभी पुत्रों एवं पुत्रियों ने रोना तथा विलाप करना प्रारम्भ कर दिया और कहा कि "ईश्वर आपको वर्षों तक बादशाही की मसनद पर आरूढ़ और अगणित 'करनों' तक अपनी रक्षा में रखे और सभी पुत्र आपके चरणों में वृद्धावस्था को प्राप्त हों।"[31]

मिर्ज़ा को कहीं बैठाना चाहता था। उन्होंने अन्त में स्वीकार किया है कि हुमायूं की बीमारी के पश्चात् बाबर ने यह विचार त्याग दिया था।

30 विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १७१।

31 गुलबदन, हुमायूंनामा, पृ. २०; बेवरिज पृ. १०३। गुलबदन बेगम के शब्द इस प्रकार हैं :

हुमायूं की बीमारी के समय उसकी शोचनीय अवस्था देखकर उसकी मां माहम तो चिन्तित थी ही, बाबर भी विचलित हो गया। माहम ने बाबर से कहा कि वह तो इसलिए दुःखी है कि हुमायूं उसका एकमात्र पुत्र है, किन्तु बाबर के तो अन्य पुत्र भी हैं। बाबर ने उत्तर दिया "माहम, यद्यपि मेरे अन्य पुत्र भी हैं किन्तु मैं तेरे हुमायूं के बराबर किसी पुत्र को प्रिय नहीं समझता, कारण कि मैं सल्तनत एवं बादशाही तथा समृद्ध संसार, दुनिया के अद्वितीय, अपने काल के विचित्र व्यक्ति, प्रतापी, सफल एवं प्रिय पुत्र हुमायूं के लिए चाहता हूँ न कि अन्य लोगों के लिए।"[३२]

ودر باغ مذکور وضو خانه بود - آں‌را که دیدند فرمودند - دل من از سلطنت و بادشاهی گرفته در باغ زر افشان بگوشه نشینم - واز برائی خدمتگاری طاهر آفتابچی بمن بسیار است - و بادشاهی رابه همایوں بد هم - دریں اثناء حضرت آقام و همه فرزندان گریه وبے طاقتی کرده گفتند که خدائے تعالی شمارا در مسند بادشاهی سالهائے بسیار وقرنهائے بیشمار درامان خود نگاه دارد و همه فرزندان در قدم شما بکمال پیری برسند -

"व दर बाग़े मज़कूर वज़ूख़ाना बूद आंरां कि दीदन्द फ़रमूदन्द दिले-मन अज़ सल्तनत व बादशाही गिरफ़्ता दर बाग़े ज़र-अफ़शां ब गोशा बनशीनम व अज़ बराय ख़िदमतगारी ताहिर आफ़ताबची बमन बिसियार अस्त व बादशाही रा ब हुमायूं बदेहम दरीं अस्ना हज़रत आक़ाम व हमा फ़रज़न्दाँ गिरया व बेताक़ती करदा गुफ़्तन्द कि ख़ुदायताला शुमा रा दर मस्नदे बादशाही सालहाय विसियार व करनहाय बे-शुमार दर अमाने ख़ुद निगाह दारद व हमा फ़रज़न्दां दरं क़दमे शुमा ब कमाले पीरी बरसन्द।"

३२ गुलबदन, हुमायूंनामा, फा. पृ. २१; बेवरिज—पृ. १०४।

ما هم اگرچه فرزندان دیگر داریم - اماهیچ فرزندے برابر همایوں دوست نمی دارم از برائے آن که سلطنت و بادشاهی و دنیائے روشن از برائے یگانه جهان و نادره دوران کامگار برخوردار فرزند دلبند همایون می خواهم نه برائے دیگران -

माहम अगरचे फ़रज़न्दाने दीगर दारेम अम्मा हेच फ़रज़न्दे बराबर हुमायूं दोस्तनमी दारम अज़ बराय आं कि सल्तनत व बादशाही व दुनियांये रोशन अज़ बराय यगानये जहाँ व नादिरये दौरां कामगार

अहमद यादगार ने भी हुमायूं के उत्तराधिकारी नियुक्त किये जाने का समर्थन किया है।[33] मृत्यु के पूर्व तो उसने उसे प्रमुख अमीरों के सम्मुख अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था।[34] हुमायूं के भारत निर्वासन के समय की घटनाओं का वर्णन करती हुई गुलबदन बेगम लिखती हैं कि हुमायूं ने ख़ानज़ादा बेगम को कामरान के पास भाइयों में पारस्परिक सहयोग स्थापित करने के लिए उसको समझाने के उद्देश्य से क़न्धार भेजा। कामरान ने इच्छा प्रकट की कि उसके नाम से ख़ुत्बा पढ़ा जाए। इस पर हिन्दाल ने उसका विरोध किया तथा कहा कि "बाबर ने अपने जीवन काल में हुमायूं बादशाह को स्वयं पादशाही प्रदान की थी और अपना उत्तराधिकारी बनाया था। हम सबने उसे स्वीकार किया था। उनके नाम से ख़ुत्बा इस समय तक पढ़वाया जाता रहा है। इस समय ख़ुत्बे में परिवर्तन करना उचित नहीं।" इस बात की जांच अन्य महिलाओं से हुई तथा सभी ने स्वीकार किया कि बाबर ने हुमायूं को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।[35] इस वर्णन से स्पष्ट है कि मुग़ल परिवार में यह सर्वविदित था कि बाबर ने हुमायूं को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था।

बाबर के जीवन के अन्तिम समय में हुमायूं ने कालिंजर पर आक्रमण किया। कालिंजर में एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिस पर राजब ९३६ हिजरी (फरवरी-मार्च १५३०) अंकित है तथा इसमें हुमायूं को 'पादशाह ग़ाज़ी' सम्बोधित किया गया है।[36] साधारणतया उत्तराधिकारियों को सम्राट अपनी कुछ उपाधियां धारण करने की आज्ञा देते थे। इससे भी हुमायूं के उत्तराधिकारी मनोनीत होने का समर्थन प्राप्त होता है। नफ़ायसुल मआसिर का लेखक अलाउद्दौला बिन यह्या कज़वीनी लिखता है कि "हुमायूं अपने पिता की वसीयत के अनुसार सल्तनत के राजसिंहासन एवं पादशाही के स्थायी स्थान पर आरूढ़ हुए।"[37] अबुल फ़ज़्ल स्पष्ट लिखता है कि बाबर ने ख़्वाजा ख़लीफ़ा, कम्बर अली बेग, तरदी बेग, हिन्दू बेग तथा अन्य अमीरों के सम्मुख उसे राज्य

बरख़ुरदार फ़रज़न्दे दिल बन्द हुमायूं मी ख़ाहम न बराय दीगरां।

३३ अहमद यादगार के वर्णन के लिए देखिए इस पुस्तक का पृ. ३१।

३४ गुलबदन, हुमायूंनामा, पृ. २४ ; अकबरनामा, १, पृ. ११७।

३५ वही पृ. ६२।

३६ जरनल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, १८४८, पृ. १८६।

३७ रिज़वी, हुमायूं, १, पृ. ४५९।

करने के सम्बन्ध में शिक्षा दी तथा अन्त में कहा कि "मेरी शिक्षा का सारांश यह है कि अपने भाइयों की हत्या का, चाहे वे इसके कितने भी पात्र क्यों न हों, विचार न करना।"[३८] इन वर्णनों से इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि बाबर की इच्छा अपने पश्चात् हुमायूं को ही गद्दी पर बैठाने की थी। इसके अतिरिक्त अबुल फ़ज़ल तथा निज़ामुद्दीन को इन घटनाओं के विषय में जानने के उपयुक्त साधन प्राप्त थे। दोनों इस षड्यंत्र को बाबर की बीमारी के समय का बताते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि षड्यंत्र का प्रारम्भ बाबर की इच्छा से नहीं वरन् उसकी शक्तिहीनता की अवस्था में हुआ था।

यह कहना कि बाबर भारत का राज्य किसी अन्य व्यक्ति को देकर स्वयं अपने परिवार के साथ काबुल लौट जाना चाहता था, सही नहीं है। बाबर की दृष्टि में काबुल तथा उसके निकट के भाग महत्त्वपूर्ण रहे हों, किन्तु भारत आने के पश्चात् वह अथवा उसका परिवार यहां से नहीं गया। उसके सभी प्रमुख अमीर यहीं थे। महमूद ग़ज़नी तथा मुहम्मद ग़ोरी की तरह यदि वह काबुल को केन्द्र बनाना चाहता तो इतने दिन भारत में कभी भी न रहता तथा अपना परिवार भारत न बुलाता। हुमायूं के बदख़्शां से वापस आने के पश्चात् तथा ख़लीफ़ा के भी जाने से इनकार करने के पश्चात् उसने सुलेमान मिर्ज़ा को क्यों बदख़्शां दे दिया? यदि उसकी इच्छा स्थायी रूप से काबुल को केन्द्र बनाने की रहती तो वह कभी भी ऐसा प्रबन्ध न करता।

सम्पूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखकर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूं के कुछ कार्यों को देखकर बाबर उससे दुखी था तथा उसने कई बार उसकी आलोचना भी की थी। ख़लीफ़ा उसका परम मित्र था तथा उसे इन सम्पूर्ण बातों का ज्ञान था। सम्भव है बाबर ने हुमायूं के प्रति निराशा का भाव भी प्रकट किया हो। ख़लीफ़ा ने इससे यह अनुमान लगाया हो कि बाबर हुमायूं से असन्तुष्ट है और इससे हुमायूं को गद्दी से वंचित करने के लिए उसे प्रोत्साहन मिला। यह निश्चय कर उसने अपना उम्मीदवार चुनना प्रारम्भ किया और उसमें महदी ख़्वाजा भी एक था। इस तरह ख़लीफ़ा का विचार भ्रामक कारणों तथा परिस्थितियों पर अवलम्बित था। बाद में अपनी भूल समझकर उसने अपना विचार त्याग दिया।[३९] बाबर द्वारा महदी ख़्वाजा के

[३८] अकबरनामा, १, पृ. ११७।

[३९] "There is no reason to think that Babur had any knowledge of the intrigue." (त्रिपाठी, सम एस्पेक्ट्स, पृ. १२४)।

समर्थन का तो प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि बाबरनामा से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह उससे अप्रसन्न था।[४०]

षड्यंत्र का प्रारम्भ कब हुआ

अर्सकिन के अनुसार यह षड्यंत्र बाबर की मृत्यु के समय का था।[४१] प्रोफेसर रशब्रुक विलियम्स अर्सकिन के मत से सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि जिस समय माहम काबुल से आगरा आ रही थी (सन् १५२६), मार्ग में महदी ख्वाजा की जागीर इटावा से गुजरी। यहां उसे इस षड्यंत्र की सूचना मिली। उसने हुमायूं को फौरन इसकी सूचना दी। सूचना पाते ही हुमायूं तुरन्त काबुल से रवाना हो गया। इस तरह विद्वान लेखक के अनुसार सन् १५२६ की गर्मियों में ही इस षड्यंत्र का प्रारम्भ हो गया था।[४२]

घटनाओं को ध्यान से देखने से प्रो. विलियम्स के मत को स्वीकार करना कठिन है। बाबरनामा के अनुसार बाबर २२-२३ जून, १५२६ को इटावा में था और २४ जून को आगरा पहुँचा। माहम २६ जून की रात को आगरा पहुँची। इससे यह स्पष्ट है कि वह बाबर के बाद अर्थात् २३ जून के बाद इटावा पहुँची होगी। हुमायूं ७ जुलाई १५२६ को आगरा पहुँचा। इस तरह माहम के पास तेरह-चौदह दिन से अधिक समय नहीं था (२४ जून से ७ जुलाई तक)। इतने कम समय में इटावा से बदख़्शां सूचना भेजना तथा हुमायूं को वहां से लौटा लाना असम्भव था। इसके अतिरिक्त हुमायूं ७ जून को काबुल में था। इस तरह वह माहम के इटावा पहुँचने के पहले ही बदख़्शां से रवाना हो गया था। अतएव प्रो. रशब्रुक विलियम्स का यह विचार कि माहम को इस षड्यंत्र का पता इटावा में लगा, असम्भव प्रतीत होता है।[४३]

हुमायूं बदख़्शां से लौटने के कुछ दिन बाद सम्भल चला गया। यदि उसे किसी भी तरह के षड्यंत्र का आभास होता तो इस संकटकालीन परिस्थिति में

४० बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६८८-८९।

४१ अर्सकिन, १, पृ. ५१४।

४२ विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १७१-७२।

४३ डा. ईश्वरी प्रसाद तथा अन्य इतिहासकारों का मत है कि दो सप्ताह में हुमायूं को बदख़्शां में सूचित करना तथा उसे वहां से वापस बुलाना असम्भव था। (ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३३-३४) किन्तु इटावा से समाचार भेजने का प्रश्न उठता ही नहीं, क्योंकि हुमायूं उस समय काबुल तथा भारत के मार्ग में था।
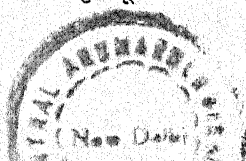
वह दरबार छोड़कर कभी भी सम्भल न जाता। इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रश्न भी विचारणीय है। यदि षड्यंत्र हुमायूं के बदख़्शां लौटने के पूर्व प्रारम्भ हुआ तो इतने दिनों तक यह बात गुप्त कैसे रही ? बाबर ने अपने जीवन का बलिदान हुमायूं के लिए किया और कोई ऐसा प्रमाण नहीं है जिससे यह ज्ञात हो सके कि ख़लीफ़ा ने सम्राट की इस इच्छा का विरोध किया हो। यदि ख़लीफ़ा ने हुमायूं को गद्दी से हटाने का विचार किया होता तो उसने निश्चय ही बाबर को अपना बलिदान करने से रोकने का प्रयत्न किया होता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि इस षड्यंत्र का विचार बाबर की बीमारी के समय प्रारम्भ हुआ। बाबर कई महीने बीमार रहा तथा लगभग ६ महीने बिस्तर पर पड़ा रहा। इस बीच बाबर के पुत्र वहां उपस्थित नहीं थे। हिन्दाल बाबर की मृत्यु के पश्चात् आगरा पहुँचा।[४४] अस्करी कामरान के साथ काबुल में था। इस समय मीर ख़लीफ़ा की शक्ति बहुत बढ़ गयी थी तथा वह मुग़ल सम्राट के नाम पर आज्ञापत्र निकालता था। इस परिस्थिति में उसके मन में आया कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को गद्दी पर बैठाये जो उसके अधिकार में रहे। इस तरह यह षड्यंत्र बाबर की बीमारी के समय रचा गया था।

षड्यंत्र का प्रारम्भ तथा अन्त

यह षड्यंत्र बहुत व्यापक नहीं था तथा इसकी घटनाएं भी अधिक वृहद् नहीं हैं। निज़ामुद्दीन अहमद ही इस षड्यंत्र की घटनाओं के जानने का प्रमुख साधन है यद्यपि इसका समर्थन अबुल फ़ज़ल तथा अन्य लेखकों से होता है।

निज़ामुद्दीन अहमद का वर्णन इस प्रकार है :[४५]

"जब हज़रत फ़िरदौस मकानी बाबर पादशाह का आगरा में निधन हो गया, तो उन दिनों इस इतिहास के संकलनकर्ता का पिता मुहम्मद मुक़ीम हरवी उसके सेवकों में सम्मिलित था और दीवान-ए-ब्यूतात की सेवा हेतु नियुक्त था। क्योंकि अमीर निज़ामुद्दीन अली ख़लीफ़ा, जिस पर शासन प्रबन्ध के कार्य अवलम्बित थे, भाग्यशाली शाहज़ादे मुहम्मद हुमायूं मिर्ज़ा से किन्हीं कारणों से, जो संसार में घटते रहते हैं, भयभीत था, अतः वह उनके पादशाह होने के पक्ष में न था। जब वह ज्येष्ठ पुत्र के पक्ष में न था तो छोटे पुत्रों के पक्ष में कैसे हो सकता था ? क्योंकि हज़रत फ़िरदौस मकानी का दामाद महदी ख़्वाजा दानी,

४४ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११०।
४५ तबक़ाते अकबरी, पृ. २८-२९; तथा डे द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, २, पृ. ४३-४४।

उदार एवं जवान था और अमीर ख़लीफ़ा की उससे बड़ी घनिष्ठता थी, अतः अमीर ख़लीफ़ा ने उसे पादशाह बनवाना निश्चय कर लिया। लोगों में यह बात प्रसिद्ध हो गयी। वे महदी ख़्वाजा के अभिवादन हेतु जाने लगे। वह भी इस बात को समझकर लोगों से पादशाहों के समान व्यवहार करने लगा।

"संयोग से मीर ख़लीफ़ा महदी ख़्वाजा से भेंट करने गया हुआ था। वह एक ख़रगाह में था। मीर ख़लीफ़ा, संकलनकर्ता के पिता मुहम्मद मुक़ीम एवं महदी ख़्वाजा के अतिरिक्त उस ख़रगाह में कोई अन्य न था। मीर ख़लीफ़ा थोड़ी देर ही बैठा था कि हज़रत फ़िरदौस मकानी (बाबर) ने उसे बुलवा लिया। जब मीर ख़लीफ़ा, महदी ख़्वाजा के ख़ेमे से बाहर जाने लगा तो महदी ख़्वाजा ख़रगाह के द्वार तक उसके साथ-साथ उसे पहुँचाने गया और द्वार के मध्य में खड़ा हो गया। संकलनकर्ता का पिता उसके सम्मान के कारण उसके पीछे-पीछे रहा। महदी ख़्वाजा थोड़े बहुत पागलपन के लिए प्रसिद्ध था। वह संकलनकर्ता के पिता की उपस्थिति को भूलकर मीर ख़लीफ़ा की बिदा के उपरान्त दाढ़ी पर हाथ फेरकर कहने लगा, 'ईश्वर ने चाहा तो सर्वप्रथम मैं तेरी खाल खिंचवाऊँगा।' यह कहने के उपरान्त उसकी दृष्टि संकलनकर्ता के पिता पर पड़ी। उसने उसके कान पकड़कर कहा कि 'हे ताज़ीक़ ! लाल जिह्वा हरे सिर को हवा में उड़ा देती है।"[४६]

"मेरा पिता बिदा होकर बाहर आया और शीघ्रातिशीघ्र मीर ख़लीफ़ा के पास पहुँचकर कहा कि आप मुहम्मद हुमायूं मिर्ज़ा एवं उनके भाइयों सरीखे योग्य व्यक्तियों के होते हुए नमकहलाली को त्यागकर यह चाहते थे कि राज्य अन्य वंश में चला जाए। इसका परिणाम इसके अतिरिक्त कोई अन्य नहीं।" यह कहकर उसने महदी ख़्वाजा की बात कही। मीर ख़लीफ़ा ने तत्काल किसी को मुहम्मद हुमायूं मिर्ज़ा को शीघ्रातिशीघ्र बुलाने के लिए भेजा। यसावलों को भेजकर उसने महदी ख़्वाजा को सूचना भिजवायी कि 'हज़रत पादशाह का

४६ निज़ामुद्दीन के शब्द इस प्रकार हैं :

زبان سرخ سر سبز می دهد باد

"ज़ुवान सुर्ख़ सरसब्ज़ मी दिहद बाद।"

यह वाक्य नखशबी के तूतीनामा की एक कहानी पर आधारित है जो संस्कृत के शुक सप्तती (अर्थात् तोते की सत्तर कहानियां) पर आधारित है। इसका अर्थ था कि यदि मुक़ीम हरवी यह बात किसी से कहेगा तो वह जीवित नहीं बचेगा।

होदीवाला, स्टडीज इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री, १, पृ. ५०५।

आदेश है कि तुम अपने घर चले जाओ।' उस समय महदी ख़्वाजा के लिए दस्तरख़्वान पर भोजन लगवाया जा चुका था। यसावलों ने तत्काल पहुँचकर उसे जबरदस्ती उसके घर भेज दिया।

"तदुपरान्त मीर ख़लीफ़ा ने आदेश दिया कि ढिंढोरा पिटवा दिया जाए कि कोई भी महदी ख़्वाजा के घर न जाए और उसके प्रति अभिवादन न करे, और वह भी दरबार में उपस्थित न हो।"

निज़ामुद्दीन के वर्णन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हो जाती हैं :

(१) ख़लीफ़ा बाबर के जीवन के अन्त समय बहुत शक्तिशाली हो गया था तथा मुग़ल साम्राज्य की बागडोर उसके हाथ में थी।

(२) वह हुमायूं पर विश्वास नहीं करता था। वह उससे भय खाता था तथा उस पर सन्देह करता था।

(३) वह बाबर के छोटे पुत्रों को भी गद्दी पर बैठाने के पक्ष में नहीं था।

(४) ख़लीफ़ा ने यह षड्यंत्र अपनी शक्ति को स्थायी बनाने के लिए किया था।

(५) महदी ख़्वाजा अपनी जनप्रियता तथा प्रधान मन्त्री से अपने अच्छे सम्बन्ध के कारण चुना गया था।

(६) यह षड्यंत्र ख़लीफ़ा द्वारा ही प्रारम्भ किया गया था।

(७) महदी ख़्वाजा गद्दी पर बैठना चाहता था पर ख़लीफ़ा के विषय में उसके विचार अच्छे नहीं थे तथा वह उसे नीच समझता था।

(८) निज़ामुद्दीन ने इस षड्यंत्र का ज्ञान अपने पिता से प्राप्त किया जो वहां उपस्थित था तथा षड्यन्त्र की असफलता का श्रेय भी उसी को है।

अबुल फ़ज़ल इस घटना का वर्णन इस प्रकार करता है :

"जब हज़रत गेती सितानी फ़िरदौस मकानी (बाबर) अत्यधिक रुग्ण हो गये तो मीर ख़लीफ़ा मनुष्य के मानवी स्वभाव[४७] के कारण जहां बानी (हुमायूं) से शंकित होने की वजह से अल्पदर्शी बनकर महदी ख़्वाजा को सिंहासनारूढ़ करना चाहता था और ख़्वाजा भी मूर्खता, बदमस्ती एवं अज्ञान के कारण मिथ्यापूर्ण विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान देकर नित्यप्रति दरबार में उपस्थित होकर भीड़भाड़ एकत्र किया करता था। अन्ततोगत्वा दूरदर्शी सत्यवादियों द्वारा मीर ख़लीफ़ा सन्मार्ग पर आ गया और उसने यह विचार त्याग दिया और ख़्वाजा को मना कर दिया कि वह दरबार में उपस्थित

४७ अकबरनामा, (पृ. ११७) عالم بشریت ('आलमे बशरियत') शब्द का प्रयोग करता है।

न हो और यह घोषणा करा दी कि कोई भी उसके घर न जाए। ईश्वर की कृपा से सब काम ठीक हो गया और सत्य अपने केन्द्र पर पहुँच गया।"[४८]

तारीख़े शाही के लेखक अहमद यादग़ार ने भी निज़ामुद्दीन के वर्णन का समर्थन किया है।[४९]

इन समकालीन लेखकों के वर्णनों से स्पष्ट है कि यह षड्यंत्र बाबर की बीमारी के समय प्रारम्भ हुआ था तथा उसकी मृत्यु के समय तक इसका अन्त हो गया, यद्यपि इसका अवशेष हुमायूं के राजतिलक तक रहा।

हुमायूं के शासन काल में महदी ख़्वाजा तथा ख़लीफ़ा

हुमायूं के गद्दी पर बैठने के पश्चात् ख़लीफ़ा शासकीय तथा राजकीय कार्यों से मुक्त कर दिया गया। उसका नाम ही हुमायूं के शासन काल में लुप्त हो जाता है। समकालीन ग्रन्थों में इसके पश्चात् कुछ ही स्थानों में उसका उल्लेख मिलता है। १५३७ में उसकी बहन सुल्तानम का विवाह हिन्दाल मिर्ज़ा से हुआ।[५०] इस अवसर पर ख़लीफ़ा ने अमूल्य उपहार दिये। ख़लीफ़ा के पुत्र मुहिब अली ख़ां तथा ख़ालिग बेग राज्य की सेवा में रहे।[५१] ख़लीफ़ा का छोटा भाई जुनायद बरलास बाबर के समय जौनपुर तथा अन्य स्थानों का गवर्नर था तथा हुमायूं के राज्यकाल में अपनी मृत्युपर्यन्त हुमायूं के लिए युद्ध करता रहा।[५२] इस तरह इतना तो स्पष्ट है कि ख़लीफ़ा के परिवार को कोई हानि नहीं पहुँचायी गयी, न उसे कुछ दण्ड ही दिया गया; किन्तु उसकी शक्ति समाप्त हो गयी। इससे सिद्ध होता है कि उसने हुमायूं के गद्दी पर बैठने में अड़चनें उपस्थित की थीं। वह कब तक जीवित रहा यह भी बताना कठिन है। वह बाबर से बड़ा था। ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूं के शेरशाह से पराजित

४८ वही।

४९ तारीख़ेशाही, पृ. १३०–१३२। कविता में हुमायूंनामा के अनुसार ख़लीफा ने षड्यंत्र का प्रारम्भ किया। इस पुस्तक से ऐसा अनुमान होता है कि काबुल में कुछ लोग हुमायूं को राजत्व तथा तुर्की अमीरों के नेतृत्व के लिए योग्य नहीं समझते थे। ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २९-३०।

५० गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १२६-२७।

५१ ब्लाख़मैन, आईने अकबरी, पृ. ४६३–६६।

५२ अर्सकिन, भाग २, पृ. ११०, १२२, १२३, १३१, १३३, १३९; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, भूमिका, पृ. २६, फुटनोट।

होने तथा साम्राज्य खो देने की तिथि (१५४०) तक उसकी मृत्यु हो चुकी थी।

महदी ख़्वाजा के विषय में भी हमें अधिक ज्ञान नहीं प्राप्त होता। तारीख़े इबराहीमी से पता चलता है कि वह कालपी का गवर्नर नियुक्त किया गया।[५३] इससे स्पष्ट है कि हुमायूं ने उसे क्षमा कर दिया। गुलबदन बेगम ने भी हिन्दाल के विवाह के वर्णन के समय उसका उल्लेख किया।[५४] ऐसा प्रतीत होता है कि इसके कुछ ही दिन पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। कदाचित् ख़ानज़ादा बेगम के कोई पुत्र नहीं था किन्तु उसकी दूसरी पत्नी से ज़ाफर ख़्वाजा नामक एक पुत्र था। महदी ख़्वाजा ने अमीर ख़ुसरू की क़ब्र की चहारदीवारी बनवायी तथा संगमरमर के एक फ़लक पर शिलालेख अंकित कराया।[५५]

षड्यंत्र की असफलता के कारण

यह षड्यंत्र, जैसा डा. ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, "असफल नहीं हुआ बल्कि उड़ गया।"[५६] वास्तव में षड्यंत्र की बातों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि यह एक विचार अथवा योजना की ही भांति था तथा इस योजना को कार्यान्वित करने के प्रयत्न नहीं हुए। ख़लीफ़ा ने अपने उम्मीदवार के विचार जानने के बाद तत्काल अपना सहयोग त्याग दिया।

वास्तव में ख़लीफ़ा का उम्मीदवार योग्य नहीं था। निज़ामुद्दीन के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि उसका मस्तिष्क ठीक नहीं था तथा उसमें कुछ पागलपन के चिह्न मौजूद थे।[५७] इस बात का समर्थन अहमद यादगार भी करता है।[५८] इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह न तो महत्त्वाकांक्षी था न उसमें अपना व्यक्तित्व ही था। अन्यथा ख़लीफ़ा के पीछे हट जाने पर भी उसने राज्य प्राप्त करने का कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य किया होता। ऐसे व्यक्ति को गद्दी पर बैठाने का प्रयास ही गलत था।

५३ तारीख़े इबराहीमी, रिज़वी, हुमायूं, २, पृ. ४।
५४ गुलबदन, हुमायूंनामा, पृ. २६।
५५ मिर्ज़ा, लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ अमीर ख़ुसरू, पृ. १३८।
५६ "The plot did not fail but fizzled out." (ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३६)।
५७ निज़ामुद्दीन के शब्द हैं: بشائیبۂ جنوں منسوب بود ("बशायबये जुनूं मन्सूब बूद।") होदीवाला, १, पृ. ५०५।
५८ तारीख़े शाही, पृ. १३१।

महदी ख्वाजा तथा हुमायूं में हुमायूं अधिक योग्य था।[५६] हुमायूं के चारित्रिक दोष, जो बाद में प्रखर हो उठे तथा उसकी असफलता के कारण बने, अभी तक स्पष्ट नहीं हुए थे। महदी ख्वाजा ऐसा मेधावी व्यक्ति भी नहीं था कि उसे हुमायूं से अधिक उपयुक्त कहा जा सके। वंश से भी हुमायूं का स्थान अधिक ऊँचा था। हुमायूं की माता माहम बेगम बुद्धिमती महिला थी तथा राज्य कार्य में उसकी सहायता भी मूल्यवान थी।

खलीफ़ा की सबसे बड़ी भूल बाबर के सभी पुत्रों को छोड़कर महदी ख्वाजा का पक्ष लेना था। मुग़ल वंश में साम्राज्य पुत्रों में विभाजित होने की परम्परा थी। बाबर के अमीर उसके वंश के प्रति स्वामिभक्त थे तथा उसके स्थान पर किसी दूसरे को गद्दी पर बैठाने के प्रयत्न में गृहयुद्ध निश्चित ही होता। हुमायूं के सभी भाई इस परिस्थिति में उसको सहयोग देते।

खलीफ़ा के विचार दोषपूर्ण थे। हुमायूं को गद्दी से वंचित कर वह बाबर के वंश से राजत्व को समाप्त कर देना चाहता था। इस तरह बाबर के सभी भारतीय युद्ध व्यर्थ हो जाते तथा बाबर के वंश का अन्त हो जाता। खलीफ़ा का निश्चय इस तरह गलत था।

५६ कुछ विद्वानों ने महदी ख्वाजा तथा हुमायूं में महदी ख्वाजा को अधिक उपयुक्त बताया है। प्रो. रशब्रुक विलियम्स लिखते हैं कि "Khalifah may have been convinced that Mahdi Khwajah would make a better emperor than Humayun. Indeed Humayun's conduct and bearing must have caused grave anxiety to all who had the welfare of the kingdom at heart." (विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १७१)।

३. हुमायूं की समस्याएं

बाबर ने जो साम्राज्य स्थापित किया था वह उसके जीवन काल में न तो संगठित हो सका था, न उसके शत्रु ही पूर्ण रूप से पराजित हुए थे। इसके अतिरिक्त उसकी मृत्यु के पश्चात् कुछ अन्य समस्याएं भी सामने आ गयी थीं। इस तरह ख़लीफ़ा का षड्यंत्र सम्राट हुमायूं के भविष्य की कठिनाइयों के शुभारम्भ की सूचना थी। उसकी कठिनाइयों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :

(१) आन्तरिक समस्याएं

(२) बाह्य समस्याएं

हुमायूं की आन्तरिक समस्याएं

मुग़ल साम्राज्य

बाबर की मृत्यु के समय मुग़ल साम्राज्य आक्सस नदी से बिहार तक फैला हुआ था। सिन्ध के पश्चिम काबुल, ग़ज़नी तथा कन्धार पर बाबर का पूर्ण अधिकार था किन्तु हिन्दुकुश के पहाड़ों में रहने वाले कबीले के लोगों ने उसकी अधीनता नाममात्र को ही स्वीकार की थी। सिन्ध नदी, काबुल, ग़ज़नी तथा कन्धार के बीच जलालाबाद, पेशावर, कोहदमन, स्वात तथा बजौर बाबर के अधिकार में थे। उत्तरी तथा दक्षिणी सिन्ध में उसके नाम से ख़ुत्बा पढ़ा जाता था।[1] इसके पूर्व पंजाब, मुल्तान तथा सतलज और बिहार के बीच के भाग (दिल्ली, सिरसा, हांसी इत्यादि) भी उसके अधिकार में थे। उत्तर में हिमालय, दक्षिण में मालवा, राजतापूना, बयाना, रणथम्भौर, ग्वालियर तथा

[1] बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५२६-२७। बाबर के मुल्तान पर अधिकार के लिए देखिए, अर्सकिन, १, पृ. ३६८। अबुहर, सिरसा, हांसी तथा हिसार बाबर के साम्राज्य में थे किन्तु गनेशगढ़, हनुमानगढ़ तथा जीतपुरा उसमें सम्मिलित नहीं थे। बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २९।

चन्देरी उसके साम्राज्य की सीमा बनाते थे। दक्षिणी बिहार के पहाड़ी भाग भी पूर्णतया उसके अधिकार में नहीं थे। इन पर अफ़ग़ान तथा हिन्दू सरदारों का राज्य था।[२] इस तरह उत्तर में हिमालय, दक्षिण में मालवा तथा बुन्देलखण्ड, पूर्व में बंगाल तथा उत्तर-पश्चिम में आवसस उसके साम्राज्य की सीमाएँ थीं। गंगा-यमुना के दोआब का भाग मुग़ल साम्राज्य का प्रमुख केन्द्र था।

बाबर ने अपने साम्राज्य का शासकीय विभाजन नहीं किया था। अतएव लोदी सुल्तानों के समय के ही विभाजन पर राज्य का शासन होता था। साम्राज्य दो तरह की राजनीतिक इकाइयों में बँटा हुआ था : ऐसी सरकारें जो पूर्ण रूप से शासनाधीन थीं तथा वे जो स्थानीय राजाओं अथवा ऐसे जमींदारों के अधीन थीं जिन्होंने अधीनता तो स्वीकार की थी किन्तु उन्हें आन्तरिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। ऐसे राज्य मुग़ल सम्राट को निर्धारित कर देते थे। इन राज्यों का क्षेत्रफल मुग़ल साम्राज्य के लगभग $\frac{१}{५}$ के बराबर था।[३] बाबर ने पानीपत तथा खानवा के युद्धों के पश्चात् प्राप्त भूभाग को अपने उमराओं में विभाजित कर दिया था। ये उमरा उन भागों के शासन के लिए उत्तरदायी थे। वहां का राजस्व वसूल करना तथा शासन का उत्तरदायित्व उन पर था। ये उन स्थानों के स्थायी स्वामी नहीं थे और उनका स्थानान्तरण भी होता था।[४]

शासन प्रबन्ध—मुग़ल साम्राज्य बड़ा अवश्य था किन्तु उसका संगठन अपूर्ण था। बाबर स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखता है कि योग्य व्यक्तियों को दूरवर्ती परगनों में भेजकर शासन प्रबन्ध कराने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त बाबर में शासन की योग्यता भी नहीं थी। बाबर को यह साम्राज्य जल्दी में प्राप्त हुआ था और इसके संगठन का प्रबन्ध ढीला था।[५] प्रान्तीय केन्द्रों में गवर्नर और दीवान तथा नीचे के भागों में कोतवाल और

२ शरण, प्राविन्शियल गवर्नमेण्ट ऑफ दि मुगल्स, पृ. ४६-४७।

३ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५२०-२१। बाबर लिखता है कि भीरा से बिहार तक जो प्रदेश उसके अधीन थे उनका राजस्व बावन करोड़ था, जिसमें आठ अथवा नौ करोड़ उन रायों तथा राजाओं के परगनों से प्राप्त होते थे जिन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली थी तथा जिन्हें ये परगने स्थायी रूप से दिये गये थे।

४ शरण, प्राविन्शियल गवर्नमेण्ट ऑफ दि मुगल्स, पृ. ४८।

५ "The kingdom had been hastily acquired and its provinces loosely knit." (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ३०)।

शिक़दार राज्य के प्रमुख अधिकारी थे। ये अधिकारी जागीरदारों से सहायता प्राप्त करते थे। देहात के भाग केन्द्रीय सरकार से पूर्ण रूप से नियंत्रित नहीं थे। बाबर ने इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया था। उसका परिणाम यह हुआ कि शासन केवल शक्ति के बल पर आधारित था।[६] जनसाधारण पर मुग़ल साम्राज्य की स्थापना का कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ था।[७] मुग़ल साम्राज्य की जड़ समाज के निचले स्तर तक नहीं पहुँच सकी थी। जनता मुग़लों को विदेशी समझती थी जिसके कारण उनमें विद्वेष की भावना थी तथा वे कभी भी विद्रोह कर सकते थे। मुग़ल साम्राज्य की स्थापना हुए अभी केवल पांच वर्ष हुए थे और यह काल युद्ध और संघर्ष का काल था। जनता में अफ़ग़ानों के मित्रों की कमी न थी और ये लोग भी दूर दूर तक फैले हुए थे। इस तरह हुमायूं के सम्मुख शासन को संगठित करने की समस्या सबसे महत्त्वपूर्ण थी।

राजकोष—मुग़ल साम्राज्य की आर्थिक अवस्था शोचनीय थी। बाबर ने पानीपत के पश्चात् धन का अपव्यय किया। हुमायूं, कामरान, अस्करी तथा अन्य अमीरों को इनाम देने के अतिरिक्त इराक़, काशगर, ख़ुरासान, समरक़न्द के

६ "The scheme of Government was still saifi (by the sword) not qalami (by the pen)." (कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ४, पृ. २१)।

"The administrative system was inefficient." (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ३०)।

"Had Babur been as successful in administration as he was in fighting the troubles of Humayun's reign would never have occurred. As it was he bequeathed to his son a monarchy which could be held together only by continuance of war conditions, which in times of peace was weak, structureless and invertebrate." (विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १६२)।

७ डा. बनर्जी का यह कथन (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ३१) कि जनता मुग़लों के आगमन से इस कारण प्रसन्न थी कि मुग़ल संस्कृति लोदियों की संस्कृति से अधिक स्वागत योग्य थी, सही नहीं प्रतीत होता, क्योंकि मुग़ल संस्कृति का जो अर्थ हम समझते हैं उसकी स्थापना बाबर नहीं कर पाया था। ऐसी परिस्थिति में उसकी कल्पना करना गलत होगा।

सम्बन्धियों को उपहार भेजे गये और काबुल तथा बरसक की घाटी (बदख़्शां में) के प्रत्येक नर-नारी, दास, स्वतन्त्र तथा बालिग़ एवं नाबालिग़ को एक-एक शाहरुखी इनाम में दी गयी।[८] वह अपने दान के कारण क़लन्दर कहा जाता था।[९] इस अपव्यय का परिणाम दो वर्ष के पश्चात् ही स्पष्ट हो गया। वह अपनी आत्मकथा में लिखता है कि अक्टूबर १५२९ तक सिकन्दर और इबराहीम लोदी का कोष समाप्त हो चला था और उसे अपने उच्च अधिकारियों पर तीस प्रतिशत कर लगाना पड़ा।[१०] इस तरह जिस समय हुमायूं गद्दी पर बैठा मुग़ल साम्राज्य की आर्थिक अवस्था शोचनीय थी तथा राजकोष रिक्त था। रशब्रुक विलियम्स का यह कथन सत्य है कि हुमायूं की कठिनाइयों में उसकी आर्थिक अवस्था का बहुत बड़ा हाथ था।[११]

सेना—बाबर ने अपने जीवन भर युद्ध और संघर्ष किया था। उसकी सेना में ऐसे लोग काफी संख्या में थे जिन्होंने उसके साथ अनेक वर्षों तक रहकर युद्ध किया था। ऐसी स्थिति में बाबर के साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हो गया था। बाबर की सेना में भिन्न-भिन्न देशों के लोग थे, जैसे चग़ताई, मुग़ल, ईरानी, अफ़ग़ानी तथा भारतीय। इन भिन्न-भिन्न धर्मों और जातियों के व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधने का उत्तरदायित्व बाबर पर था। उसकी मृत्यु के पश्चात् इन लोगों का दृष्टिकोण क्या होगा, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। सेना का संगठन कबीलों के आधार पर था तथा उसका नेतृत्व भी उन्हीं जातियों के लोगों पर था। व्यक्तिगत तथा कबायली (जातीय) द्वेष के कारण सेना में पूर्ण एकता असम्भव थी। द्वेष का परिणाम संकट के समय में राज्य के लिए भयंकर हो सकता था। इनमें बहुत-से ऐसे सरदार थे जो वृद्ध थे तथा जिन्हें हुमायूं की योग्यता पर अधिक विश्वास नहीं था। ऐसे लोग कहां तक हुमायूं के पक्ष का समर्थन करेंगे यह भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। इन अमीरों में ख़्वाजा ख़लीफ़ा तथा ख़्वाजा कलां ऐसे व्यक्ति भी थे जिन्होंने बाबर के साथ अनेक परिस्थितियों में सुख-दुख झेला था। इनके अतिरिक्त कुछ लोग ऐसे भी थे जो रक्त सम्बन्ध से बँधे थे। कुछ अन्य लोग भी थे जो बाबर के आमन्त्रण पर भारत में आये थे तथा उन्होंने बाबर की भारतीय विजयों में प्रमुख भाग लिया था।

८ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५२२-२३।
९ अयोध्या की बाबरी मसजिद का शिलालेख।
१० विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १६२।
११ वही।

क्या हुमायूं में ऐसी योग्यता थी कि वह भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को एक सूत्र में बाँध सके ? हुमायूं ने बाबर के प्रमुख युद्धों में भाग अवश्य लिया था किन्तु उसने अपनी युद्धकला का ऐसा प्रदर्शन नहीं किया था कि जो बाबर के अनुभवों के समकक्ष उत्साह प्रकट कर सकता। इस विश्वास की आवश्यकता इस कारण और बढ़ गयी थी क्योंकि मुग़ल साम्राज्य अभी-अभी स्थापित हुआ था और भारत में अभी भी मुग़ल विदेशी समझे जाते थे।[१२]

हुमायूं के भाई

इन कठिन परिस्थितियों में हुमायूं को अपने भाइयों से सहायता प्राप्त हो सकती थी। किन्तु दुर्भाग्यवश भाइयों का सहयोग उसे प्राप्त न हो सका। हुमायूं के तीन भाई थे—कामरान, अस्करी और हिन्दाल। कामरान बाबर की पत्नी गुलरुख़ बेगचिक का पुत्र था। उसका जन्म १५१४ में तथा अस्करी का १५१६ में हुआ था। बाबर की एक और पत्नी दिलदार अघाचा से हिन्दाल का जन्म १५१९ में हुआ था इस तरह बाबर की मृत्यु के समय हुमायूं की अवस्था २३ वर्ष, कामरान की १७ वर्ष, अस्करी की १५ वर्ष तथा हिन्दाल की १२ वर्ष थी।

बाबर की आत्मकथा तथा समकालीन इतिहासकारों के वर्णनों से स्पष्ट है कि बाबर ने अपने सभी पुत्रों को शिक्षा तथा शासन का अनुभव प्राप्त करने की सुविधा प्रदान की थी। कामरान १५ वर्ष की अवस्था में काबुल का गवर्नर नियुक्त हुआ तथा हिन्दाल ११-१२ वर्ष की अवस्था में बदख़्शां का गवर्नर बना। भारत में जैसे हुमायूं ने पानीपत तथा खानवा के युद्धों में भाग लिया था उसी तरह अस्करी १३ वर्ष की अवस्था में घाघरा की लड़ाई में लड़ा। १५२२ में जब कामरान की अवस्था केवल आठ वर्ष की थी बाबर ने इस्लामी कानून पर उसकी शिक्षा के लिए एक कविता लिखी थी। (दर फ़िक़्ये मुबाइ-यान)।[१३] जनवरी १५२६ में जब उसने ग़ाजी खां के पुस्तकालय से हुमायूं को पुस्तकें भेजीं तो उसने कामरान के लिए भी कुछ पुस्तकें भेजीं।[१४] जनवरी १५२९ में बाबर ने भारत में लिखी अपनी कविताओं का संग्रह कामरान तथा

१२ अमीरों के बारे में यह महत्त्वपूर्ण है कि इन्होंने हुमायूं का साथ दिया तथा विद्रोह नहीं किया। जिन लोगों ने हुमायूं से विद्रोह किया वे या तो हुमायूं के निकट सम्बन्धी थे अथवा उसके भाई।

१३ बनर्जी, हुमायूं, पृ. ५१-५२।

१४ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४६०।

हुमायूं दोनों को भेजा, तथा हिन्दाल को, जिसकी अवस्था केवल १०-११ वर्ष की थी, उसने बाबरी लिपी के अक्षर भेजे।[१५]

उपर्युक्त घटनाएं इस बात की प्रमाण हैं कि बाबर अपने चारों पुत्रों को सुखी तथा सम्पन्न देखना चाहता था। हुमायूं सबसे बड़ा था इस कारण उस पर विशेष कृपादृष्टि होनी स्वाभाविक थी। शिक्षा के अतिरिक्त बाबर की इच्छा साम्राज्य के विषय में क्या थी यह बताना कठिन है, किन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पांच वर्ष तक शासन करने के कारण कामरान का सम्पर्क काबुल और क़न्धार से अधिक हो गया था और ऐसी स्थिति में हुमायूं के लिए इन क्षेत्रों को अपने अधिकार में रखना सरल नहीं था।

इसके अतिरिक्त मृत्यु के पूर्व बाबर ने निश्चित कर दिया था कि हुमायूं और कामरान का भाग छह और पाँच के अनुपात में होगा। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि बाबर के चाचा और पिता में भी इसी तरह जागीरों का बँटवारा हुआ था। सबसे बड़े चचा सुल्तान अहमद मिर्ज़ा को समरक़न्द तथा उसके निकट के क्षेत्र प्राप्त हुए थे। ये भाग उसके सभी भाइयों में सबसे अधिक और महत्त्वपूर्ण थे। दूसरे चचा सुल्तान महमूद मिर्ज़ा को उससे कम तथा उसके छोटे चचा उलूग मिर्ज़ा को इनसे भी कम भाग प्राप्त हुए थे। इसी तरह बाबर ने भी अपने पुत्रों में विशेषतः कामरान का अनुपात निश्चित कर हुमायूं के सामने एक बड़ी सीमा उपस्थित कर दी थी। इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि बाबर ने क्यों केवल कामरान और हुमायूं का ही अनुपात निश्चित किया? अपने दो छोटे पुत्रों के बीच उसने क्यों कोई अनुपात निश्चित नहीं किया? यह कामरान के प्रति प्रेम के कारण था, अथवा बाबर यह समझता था कि कामरान महत्त्वाकांक्षी है तथा अनुपात निश्चित न होने पर वह समस्या उपस्थित करेगा, यह बताना कठिन है।

मृत्यु के पूर्व बाबर ने हुमायूं को यह आज्ञा दी थी कि वह अपने भाइयों के प्रति कोई ऐसा व्यवहार न करे जिससे उन्हें दुख और कष्ट हो।[१६] इस तरह बाबर ने हुमायूं की अपने भाइयों के प्रति नीति को भी निश्चित कर दिया था। इस सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होते हैं। नयी परिस्थिति में हुमायूं के प्रति उसके भाइयों का मनोभाव बताना कठिन था। कामरान का अनुपात निश्चित कर बाबर ने उसे प्रोत्साहित करने का तो अवसर दिया ही

१५ वही, पृ. ६४२।

१६ विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, १७४।

था, साथ ही अपने अन्य पुत्रों में इससे विद्वेष की भावना को भी जन्म दे दिया था। नयी स्थिति में भाइयों के बीच साम्राज्य के विभाजन की मांग के लिए हुमायूं को तैयार रहना था। सबसे कठिन समस्या इस कारण उपस्थित हो गयी थी कि प्रत्येक भाई के समर्थक कुछ मुग़ल अमीर थे जो अपने लाभ के लिए इन्हें आपस में झगड़ा करने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे।

बाबर के सम्बन्धी

हुमायूं के गद्दी पर बैठने के समय मध्य एशिया के कई प्रमुख वंशों के वंशज बाबर की सेना में उपस्थित थे। इनमें कई के साथ बाबर ने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था। बादशाह की मृत्यु के पश्चात् इनमें संशय, भय, तथा आशा का होना स्वाभाविक था। नये शासक के आगमन से ये सम्बन्धी उससे उन्नति का पद, अच्छी जागीरें इत्यादि प्राप्त करना चाहते थे। इनमें से बहुत-से ऐसे थे जिन्होंने मध्य एशिया में अपने पूर्वजों की भूमि को अधिकार में रखने में असफल होकर, भारत में शरण ली थी तथा यहां उन्हें बाबर से पद तथा आदर प्राप्त हुआ था।[१७]

इस समय मुग़ल दरबार में दो वंशों के वंशज विशेष महत्त्व के थे। यूनुस ख़ां के वंश से सम्बन्धित व्यक्तियों में इसान तैमूर, तुख़्ताबुग़ा सुल्तान तथा ख़िज्र ख़्वाजा ख़ां प्रमुख थे।[१८] बाबर ने अपनी तीन पुत्रियों का विवाह इनसे किया था। इसके अतिरिक्त वली ख़ूब मिर्ज़ा भी था, जिसे मुग़ल सुल्तान कहा गया है, किन्तु इसके विषय में हमें अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं है।

दूसरे वशं के अमीरों में ख़ुरासान के मिर्ज़ा थे, जिनमें मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा तथा मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा प्रमुख थे। मुहम्मद जमान मिर्ज़ा ख़ुरासान के

१७ तारीख़े ख़ानदान तिमूरिया, तारीख़े अलफ़ी।

१८

यूनस ख़ां
|
अहमद ख़ां (इलाचा ख़ां)
|
- एमन ख़्वाजा ख़ां
  - ख़िज्र ख़्वाजा ख़ां (गुलबदन बेगम से विवाहित)
- इसान तिमूर सुल्तान (गुलरंग बेगम से विवाहित)
- तुख़्ताबुग़ा सुल्तान ख़ां (गुलचेहरा बेगम से विवाहित)
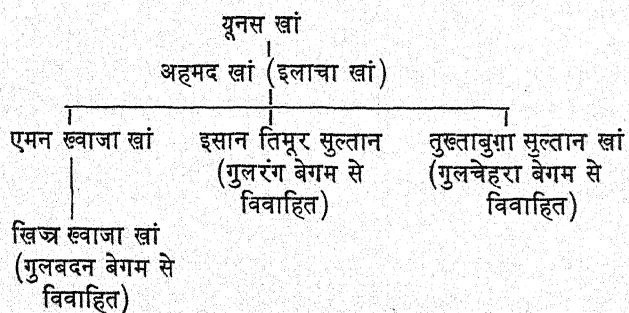
सुल्तान हुसेन बाइक़रा का पौत्र था।[१९] इसके पितामह की मृत्यु (५ मई १५०६) के पश्चात् ऊज़बेकों ने ख़ुरासान पर अधिकार कर लिया। मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा भागकर काबुल बाबर की शरण में आया। यहां बाबर ने अपनी पुत्री मासूमा सुल्तान बेगम से उसका विवाह कर दिया।[२०] उसी वर्ष यह बल्ख़ का गवर्नर नियुक्त किया गया। मार्च-अप्रैल, १५२६ में यह कास्कानकरा सुल्तान द्वारा वहां से भगा दिया गया।[२१] मुहम्मद ज़मान भागकर भारत आया तथा आगरा में बाबर से मिला। खानवा के युद्ध में तथा पूर्व में अफ़ग़ानों के विरुद्ध इसने मुग़ल सेना के साथ भाग लिया। बाबर ने प्रसन्न होकर इसे (१३ अप्रैल १५२९ को) सरो पा (सिर से पैर तक का वस्त्र), एक तलवार, एक पेटी, एक तीपूचाक़ घोड़ा, तथा एक छतरी प्रदान की तथा जौनपुर का गवर्नर बनाया।[२२] इसके पश्चात् बाबर की बीमारी तथा उसकी मृत्यु के समय तक मुहम्मद ज़मान के विषय में हमें अधिक जानकारी नहीं है।

मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा भी तैमूर का वंशज था तथा मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा का चचेरा भाई था। ख़ुरासान तथा मध्य एशिया से यह भी मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा के साथ भागकर भारत आ गया था। उच्च वंश का होने के कारण यह भी शक्ति प्राप्त करने के लिए सदा उत्सुक तथा उतावला रहता था। बाबर अपने दोनों दामादों का आदर करता था तथा उन्हें सुखी रखना चाहता था। राजवंश के होने के कारण दोनों मिर्ज़ाओं का राजसी लोभ समाप्त नहीं हुआ था। बाबर के

१९
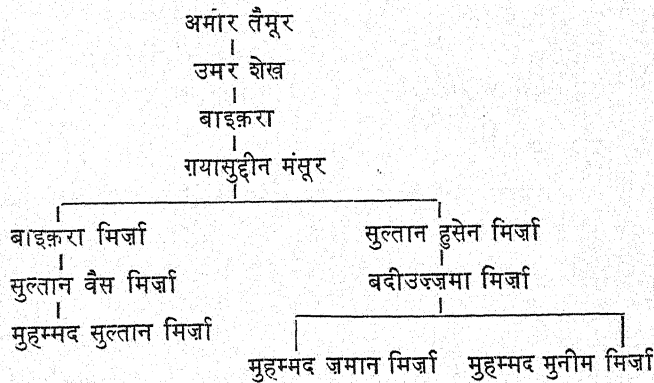
२० अहसानत् तवारीख़, १, पृ. १६७।

२१ वही, पृ. १६७-६८; बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ४५६।

२२ बाबरनामा, पृ. ६६२-६४।

सद्व्यवहार से अमीरों में भी इनका मान बढ़ गया था। ये लोग भी वंश तथा बाबर के व्यवहार के कारण अपने को गद्दी के निकट उत्तराधिकारियों में से समझते थे। मिर्ज़ाओं का अपने पूर्वजों के देश में कोई स्थान नहीं था। इस तरह भारत में अपना राज्य स्थापित करने की आकांक्षा सदा इनके मन में बनी रही। बाबर की दया ने इस तरह हुमायूं के राज्य में इनके विद्रोह का बीज डाल दिया।

मीर मुहम्मद महदी ख़्वाजा तथा प्रधान मन्त्री ख़लीफ़ा का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। इन प्रमुख अमीरों के अतिरिक्त भी बहुत-से उच्च कुल के तथा योग्य अमीर इस समय भारत में मुग़ल सेना में उपस्थित थे।

हुमायूं की बाह्य समस्याएं

उत्तरी भारत की राजनीतिक अवस्था

इन आन्तरिक समस्याओं के अतिरिक्त हुमायूं के सम्मुख कई महत्त्वपूर्ण बाह्य समस्याएं थीं। आन्तरिक समस्याएं तथा बाह्य समस्याएं एक दूसरे को प्रभावित कर सकती थीं। मुग़ल साम्राज्य की सीमा के निकट शक्तिशाली महत्त्वपूर्ण राज्य थे। इन राज्यों में मुग़ल साम्राज्य की दृष्टि से निम्नलिखित राज्य तथा शक्तियां महत्त्वपूर्ण थीं :

१ गुजरात
२ बिहार में अफ़ग़ान
३ बंगाल
४ सिन्ध तथा मुल्तान
५ मालवा
६ खानदेश
७ कश्मीर
८ राजपूताना

१. गुजरात

गुजरात मध्य युग के इतिहास में अपनी भौगोलिक परिस्थितियों, संस्कृति तथा उद्योग-धन्धों के कारण प्रसिद्ध रहा है। मोती के काम, चित्रकला, तथा भांति-भांति के सूती और रेशमी कपड़े, तलवार तथा कटारों इत्यादि के लिए यह बहुत ही प्रसिद्ध था। यहां से विदेशों को सामान जाता था जिससे बहुत आय हो जाती थी। यहां की उपजाऊ भूमि विशेषत: रुई की खेती के लिए प्रसिद्ध थी। अबुल फ़ज़ल ने आईने अकबरी में गुजरात की एक बाग से तुलना की है जहाँ तरह-तरह के फल पैदा होते थे।[२३]

[२३] आईने अकबरी, २, पृ. २४६-४७।

पौराणिक युग में भगवान श्रीकृष्ण की द्वारिका में मृत्यु होने के कारण गुजरात प्राचीन काल से ही हिन्दू धर्म का प्रमुख स्थान माना जाता था। प्राचीन काल में यहां कई राजवंशों के उत्थान-पतन हुए। मध्य युग के इतिहास में मुहम्मद ग़ोरी गुजरात के शासक द्वारा पराजित हुआ।[२४] १२८७ में अलाउद्दीन के सेनानायक ऊलूग ख़ां तथा नुसरत ख़ां ने गुजरात पर अधिकार कर इसे दिल्ली सल्तनत में मिला दिया।[२५] तुग़लक साम्राज्य के विघटन के समय दिल्ली सल्तनत द्वारा नियुक्त गुजरात का अन्तिम गवर्नर ज़फ़र ख़ां, जिसकी नियुक्ति १३९१ में हुई थी, १३९६ में स्वतंत्र हो गया। १४०४ में इसने सुल्तान मुज़फ़्फ़रशाह की उपाधि धारण की तथा गुजरात में एक नये राज्य की स्थापना की जो मुज़फ़्फ़रशाही वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस वंश में सुल्तान महमूद बेग़रा एक बहुत ही प्रसिद्ध सुल्तान हुआ (१४५८-१५११)। उसकी मृत्यु के पश्चात् १५११ में मुज़फ़्फ़रशाह द्वितीय गद्दी पर बैठा। यह वीर तथा योग्य शासक था। इसने ईदर, मालवा तथा चित्तौड़ के साथ युद्ध किया। इसके आठ पुत्र थे जिनमें सिकन्दर सबसे बड़ा था। इसने अपने प्रत्येक पुत्र को अलग-अलग जागीरें दीं। बहादुर को कज़ (अहमदाबाद से १८ मील), कोह (महमूदाबाद से २० मील) और नबता (वतोह के नज़दीक) प्राप्त हुआ।[२६] बहादुर इससे सन्तुष्ट नहीं था। इसके अतिरिक्त बहादुर को अपने बड़े भाई सिकन्दर से भी भय था क्योंकि उसने बहादुर को समाप्त करने की योजना बनायी थी। इस कारण १५२५ में बहादुर दिल्ली चला गया। मार्ग में वह चित्तौड़ में रुका। यहां राणा सांगा तथा उनकी माता द्वारा उसका स्वागत हुआ।[२७] यहाँ से वह मेवात आया। हसन ख़ां मेवाती ने गुजरात

२४ हबीबुल्ला, फाउण्डेशन ऑफ दि मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पृ. ५२-५३।

२५ लाल, हिस्ट्री ऑफ दि खाल्जीज, पृ. ८२-८६।

२६ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ४६।

२७ राणा के भतीजे ने बहादुर को अपने घर आमंत्रित किया। यहां वह एक नर्तकी के रूप को देखकर चकित हो गया। राजपूत कुमार ने उसके निकट आकर कहा, "तुम्हें मालूम है, यह मुझे कहाँ मिली? यह अहमदनगर (हिम्मतनगर) के क़ाज़ी की पुत्री है। जब राणा ने उस नगर को लूटा तो मैंने क़ाज़ी को उसी के घर में मार डाला तथा इस लड़की को उठा लाया जिससे इसे अन्य राजपूत न उठा ले जाएं।" बहादुर इससे इतना क्रोधित हुआ कि उसने इस राजपूत को वहीं मार डाला। उपस्थित राजपूतों ने बहादुर को दण्ड देना चाहा। बड़ी कठिनता से राणा की मां के बीच-बचाव से उसकी रक्षा हो सकी। काम्मिस्सारियट, पृ. २८०।

पर आक्रमण करने में उसकी सहायता के हेतु अपनी सेना देने का वचन दिया, किन्तु बहादुर ने अस्वीकार करते हुए उत्तर दिया कि अपने पिता के विरुद्ध युद्ध करने का उसका विचार नहीं है। यहां से बहादुर इबराहीम के दरबार में गया।

इस समय उत्तरी भारत में हलचल मची हुई थी। बाबर भारत पर आक्रमण करने की तैयारी कर चुका था। दिल्ली के सुल्तान इबराहीम ने बहादुर का स्वागत किया, किन्तु बाबर से लड़ने की तैयारी में वह इतना व्यस्त था कि बहादुर की तरफ अधिक ध्यान न दे सका। बहादुर अफ़ग़ान अमीरों में बहुत ही जनप्रिय हो गया और कदाचित् उसे दिल्ली की गद्दी पर बैठाने के लिए षड्यंत्र भी रचा गया।[२८] इस कारण इबराहीम लोदी बहादुर शाह से असन्तुष्ट हो गया। इसमें बहादुर शाह का कोई दोष नहीं था, न उसने इस विचार को प्रोत्साहित ही किया था। बाबर अपनी आत्मकथा में लिखता है कि जिस समय वह पानीपत के निकट था, बहादुर शाह ने उसको पत्र लिखा था। बाबर ने उसका उत्तर बहुत ही मीठी भाषा में दिया था तथा उसने उसे अपने पास आमंत्रित किया था। बाबर शिकायत करता है कि बहादुर शाह उसके पास नहीं आया और बाद में गुजरात चला गया।[२९]

इतना स्पष्ट है कि बहादुर शाह ने पानीपत के युद्ध में भाग नहीं लिया तथा उसने दूर से ही पानीपत के युद्ध को देखा था।[३०] इस युद्ध ने उसके मन

२८ बेले, गुजरात, पृ. २७८; तबक़ाते अकबरी (डे, भाग ३, पृ. ३२१) के अनुसार "क्योंकि अफ़ग़ान अमीर सुल्तान इबराहीम से घृणा करते थे अतः वे इस बात की इच्छा करने लगे कि उसे हटाकर सुल्तान बहादुर को सिंहासनारूढ़ कर दें।"

"There seems, however, no reason to think that Bahadur was privy to this plot." (काम्भिस्सारियट, पृ. २८१)।

२९ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ. ३२१-२२। बाबर लिखता है: "He had sent beautiful letters to me while I was near Panipat, I had replied my royal letters of favour and kindness summoning him to me. He had thought of coming, but changing his mind, drew off from Ibrahim's army towards Gujarat." (बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५३४)।

३० मीर अबू तुराब वली, तारीख़े गुजरात, पृ. २-३; काम्मिस्सारियट, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. २८१।

पर बहुत प्रभाव डाला। भविष्य में बहादुर शाह की पराजय का एक बहुत बड़ा कारण उसके मन का भय था जो पानीपत के युद्ध से उसके मन में बैठ गया था। पानीपत के युद्ध का वर्णन करते हुए उसने बाद में कहा कि यह लड़ाई शीशे और पत्थर की लड़ाई थी, जिसमें शीशा निश्चय ही टूटता, चाहे पत्थर शीशे पर पटका जाए या शीशा पत्थर पर, अर्थात् अफ़ग़ानों (शीशा) की पराजय मुग़लों (पत्थर) के मुकाबिले में निश्चित थी।[३१] अफग़ानों में बहादुर शाह जनप्रिय हो गया था। इस कारण जौनपुर के अमीर उसके पास आये और उन्होंने उसे जौनपुर की गद्दी पर बैठने के लिए निमंत्रित किया। बहादुर शाह जौनपुर जाने के लिए तैयार था। उसी समय उसे गुजरात में परिस्थितियों के परिवर्तन का समाचार मिला।

१५२६ के अप्रैल महीने के प्रथम सप्ताह में उसके पिता मुज़फ़्फ़र शाह की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् अमीरों के सम्मुख उत्तराधिकारी की समस्या आयी। कुछ अमीर मुज़फ़्फ़र शाह के प्रथम पुत्र सिकन्दर को, कुछ उसके दूसरे लड़के बहादुर को तथा कुछ उसके तीसरे लड़के लतीफ़ ख़ां को गद्दी पर बैठाना चाहते थे। सिकन्दर अपने पिता की मृत्यु के बाद उसी दिन गद्दी पर बैठा, किन्तु वह कुछ ही दिन सुल्तान रह सका।[३२] उसकी मूर्खता से अमीर बहुत ही परेशान थे। वह जूते या गन्ने को बँधवाकर उसे किसी अमीर का नाम देकर अपनी तलवार से काटता था। उसका विचार था कि वह इस तरह उनका सिर काट रहा है।[३३] उसकी मूर्खता के कारण इमादुल मुल्क ने २६ मई १५२६ को चम्पानीर में, जब वह सोया हुआ था, मार डाला।[३४] सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् इमादुल मुल्क खुशक़दम ने उसके छः वर्षीय पुत्र नासिर ख़ां को महमूद द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठाया,[३५] यद्यपि वास्तविक

३१ अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. २२९; बनर्जी, हुमायूं १, पृ. ७७।

३२ काम्मिस्सारियट, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३१०-११। सिकन्दर ५ अप्रैल १५२६ को गद्दी पर बैठा तथा २६ मई १५२६ को मार डाला गया। डा. बनर्जी (हुमायूं, १, पृ. ७८) लिखते हैं कि वह पांच दिन शासक रहा तथा १२ अप्रैल को मार डाला गया।

३३ अरेबिक, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. १३३।

३४ फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. ९८-१००; बेले, गुजरात, पृ. ३०७-३०८; काम्मिस्सारियट, पृ. ३११। मिराते सिकन्दरी का लेखक लिखता है कि सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् गुजरात में मानो शान्ति ही समाप्त हो गयी।

३५ काम्मिस्सारियट, पृ. ३१२।

रूप में शासन की बागडोर इमादुल मुल्क के ही हाथ में रही। उसने पद तथा इनाम देकर अमीरों को अपने वश में करने का प्रयत्न किया। प्रारम्भ से ही इमादुल मुल्क की नीति से कई अमीर सहमत नहीं थे। विशेषतया गुजरात के तीन प्रमुख अमीर—ख़ुदावन्द ख़ां मसनद अली जो मुज़फ़्फ़र द्वितीय के काल में वज़ीर रह चुका था; ताज ख़ां नरपाली जिसकी जागीर धुनधुका में थी; तथा मुज़फ़्फ़र का दामाद (सिकन्दर की खास बहन का पति)[३६] और सिन्ध का राजकुमार मजलिसे सामी फाथ ख़ां बलूच—उसके कार्यों से असन्तुष्ट थे। अमीरों के विरोध को शान्त करने के लिए इमादुल मुल्क ने निकट के शासकों से सहायता लेने का प्रयत्न किया। उसने बरहान निज़ामशाह के पास जवाहिरात तथा धन भेजकर उसे नन्दुरबर पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया। अहमदनगर के शासक ने धन तो स्वीकार कर लिया किन्तु उसने और कुछ नहीं किया। ख़ुशक़दम ने पोल के राजा उदय सिंह से भी चम्पानीर पर आक्रमण करने के लिए प्रार्थना की। उसने बाबर के पास भी सहायता के लिए पत्र लिखा तथा प्रार्थना की कि यदि बाबर सिन्ध नदी के मार्गों से ड्यू में सेना भेजे तो वह उसे एक करोड़ टनका देगा तथा गुजरात उसकी अधीनता स्वीकार करेगा। फ़िरिश्ता के अनुसार उसकी यह प्रार्थना बाबर तक नहीं पहुँची, क्योंकि डूंगरपुर के राजा ने उसे बीच ही में रोक लिया।[३७] मन्त्री के इन कार्यों से राष्ट्रवादियों को बड़ी निराशा हुई तथा उन्होंने उसके उस कार्य को गुजरात विरोधी समझा। गुजरात के कुछ राष्ट्रीय विचारों के अमीरों ने परामर्श कर पायन्द ख़ां को बहादुर शाह के पास भेजा और उसे गुजरात की गद्दी पर बैठने के लिए आमंत्रित किया। पायन्द ख़ां बहादुर से बागपत में[३८] मिला तथा उससे गुजरात चलने की प्रार्थना की। बहादुर के सामने एक कठिन समस्या थी। उसकी आंखों के सामने दो राज्य नाच रहे थे। जौनपुर के अमीरों से उसने वहां जाने का वचन दे दिया था, किन्तु मातृभूमि के प्रेम ने उसे गुजरात जाने को विवश किया। उसने जौनपुर के अमीरों को परिस्थिति समझाकर क्षमा मांगी और तीव्र गति से गुजरात की तरफ रवाना हो गया।

३६ वही, पृ. ३१३; बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३१२।

३७ काम्मिस्सारियट, पृ, ३१३; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. १०१-१०२; बेले, गुजरात, पृ. ३१८-१९; मीरआते सिकन्दरी, पृ. २०३।

३८ महाभारत काल में यह व्याघ्रपथ कहलाता था। आजकल यमुना के बायें तट पर मीरात जिले में, दिल्ली के उत्तर-पश्चिम एक छोटा-सा क़स्बा है। काम्मिस्सारियट, पृ. ३१४, टिप्पणी।

चित्तौड़ में बहादुर की मुलाकात उसके भाई चांद ख़ां और इबराहीम ख़ां से हुई। चांद ख़ां ने भय से सिसौदिया दरबार में रहने का निश्चय किया और बाद में भागकर उसने मांडू में शरण ली। दूसरा भाई इबराहीम ख़ां बहादुर शाह के साथ गुजरात रवाना हुआ। चित्तौड़ में बहादुर को सिकन्दर की हत्या का समाचार मिला। उसने सिकन्दर की मौत का बदला लेने की प्रतिज्ञा की, यद्यपि मन में उसे सन्तोष ही हुआ कि एक विघ्न समाप्त हो गया। जैसे-जैसे बहादुर आगे बढ़ता जा रहा था वैसे-वैसे उसकी सेना की संख्या भी बढ़ती जा रही थी और उसे अमीरों का सहयोग मिलता जा रहा था। उसके शत्रु उसकी इस जनप्रियता से भयभीत हुए। इमादुल मुल्क ने बहादुर की प्रगति को रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। बिना किसी कठिनाई के वह पाटन पहुँचा और ६ जुलाई १५२६ को वह गुजरात का सम्राट घोषित कर दिया गया। ११ जुलाई को अहमदाबाद में दरबार किया गया जहां बहुत-से अमीर उपस्थित थे। उसी महीने में उसने चम्पानीर पर अधिकार कर लिया। इमादुल मुल्क गिरफ्तार हुआ तथा उसे सिकन्दर के मारने के अपराध में मृत्युदण्ड दिया गया। २६ जुलाई को वह दो साथियों के साथ फांसी के तख्ते पर लटका दिया गया।[३९] १४ अगस्त १५२६ को चम्पानीर में बहादुर का पुनः राज्याभिषेक हुआ।

बहादुर ने एक-एक करके अपने भाइयों को मरवा डाला, केवल चांद ख़ां जिसने मांडू में शरण ली थी, बच रहा, क्योंकि मालवा के शासक सुल्तान महमूद द्वितीय ने चांद ख़ां को समर्पण करने से अस्वीकार कर दिया।

बहादुर ने लगभग ग्यारह वर्ष शासन किया (जुलाई १५२६ से फरवरी १५३७ तक) फिर भी उसकी गणना गुजरात के महान शासकों में होती है।[४०] गद्दी पर बैठने के समय वह अपनी योग्यता, शक्ति तथा धर्मनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध था। वह बोख़ारी सैयिदों के प्रधान हज़रत शाह शेख़ से[४१] विशेष प्रभावित था। बहादुर शाह

[३९] बेले, गुजरात, पृ. १३१-३२; काम्मिस्सारियट, पृ. ३१७।

[४०] "The entire country of Gujarat which had been left in darkness by setting of the sun of Government, began again to flourish on the rising of this sun of the kingdom, Bahadur Shah." (बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३२८)।

[४१] शेख़ का पूरा नाम सैयिद जलालुद्दीन शाह शेख़ जीयू था। इसका जन्म ८५३ हि. (१४४९-५०) में तथा मृत्यु ९३१ हि. (१५२४) में हुई। शेख़ द्वारा बहादुर शाह के सुल्तान होने की भविष्यवाणी के लिए देखिए, मिरआते सिकन्दरी, पृ. १८८-९१।

एक महत्त्वाकांक्षी एवं योग्य व्यक्ति था। उसने शासन के प्रत्येक अंग को प्रभावित किया। गद्दी पर बैठने के समय उसकी अवस्था केवल २० वर्ष की थी। किन्तु अपनी योग्यता से उसने कुछ ही दिनों में गुजरात का नक्शा ही बदल दिया।

सैन्य संगठन—सबसे प्रथम उसने अपनी सेना का संगठन किया। उसने अपना तोपखाना बहुत ही शक्तिशाली बनाया। दो तुर्की विशेषज्ञों—अमीर मुस्तफ़ा (जो बाद में रूमी खां के नाम से प्रसिद्ध हुआ) और ख्वाजा सफ़र (सलमानी)—की सहायता से उसने अपना तोपखाना शक्तिशाली तथा मजबूत कर लिया। उसकी सेना में लगभग १०,००० विदेशी सैनिक थे।[४२] अपने राज्य के हिन्दुओं के प्रति भी उसका व्यवहार अच्छा था। उसने हिन्दुओं को वजीफे दिये तथा उन्हें उच्च और विश्वसनीय स्थानों पर नियुक्त किया। यही नहीं, उसने कोल और भील लोगों के साथ भी अच्छा व्यवहार किया। उसने अपने दरबारे हाल का नाम 'श्रृंगार मण्डप' रखा तथा अपने हाथियों के भी इसी तरह संस्कृत नाम रखे। अपनी उदार नीति तथा सुशासन के कारण बहादुर ने अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर ली।

साम्राज्य विस्तार—गुजरात के निकट कई महत्त्वपूर्ण राज्य थे। बहमनी साम्राज्य के विघटन के पश्चात् उसके पांच राज्यों तथा खानदेश के बीच संघर्ष होता रहता था। मालवा का राज्य तथा राजपूताना के राज्य भी गुजरात के निकट थे। गुजरात के तट पर पुर्तगालियों का प्रभुत्व भी बढ़ रहा था। बहादुर शाह ने अपनी शक्ति तथा साम्राज्य के विस्तार हेतु इन राज्यों से युद्ध प्रारम्भ कर दिया तथा कुछ ही वर्षों में पश्चिमी भारत के महान शासकों तथा विजेताओं में उसकी गणना होने लगी।

सितम्बर १५२८ में खानदेश[४३] तथा बरार के शासकों की सम्मिलित सेना

[४२] ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ४८।

[४३] खानदेश का शासक मुहम्मदशाह फ़रूकी, बहादुर शाह की बहन का पुत्र था।

मुजफ़्फ़र शाह (१५११-२६)

सिकन्दर खां | बहादुर खां | लतीफ़ खां | चांद खां | नासिर खां | पुत्री (खानदेश के आदिल खां से विवाहित)

मुहम्मद द्वितीय

कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (भाग ३, पृ. ७११) का यह उल्लेख सही नहीं है कि नासिर खां तथा मुहम्मद खां दो व्यक्ति थे। उसका यह कथन कि चांद खां नासिर खां से छोटा था, इतिहासकारों द्वारा समर्थित नहीं है। (बनर्जी, हुमायूं, १ टिप्पणी)।

(लगभग एक लाख) के साथ बहादुर शाह ने दौलताबाद पर आक्रमण किया। किन्तु दुर्ग की शक्ति तथा अपनी सेना में आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण उसने घेरा उठा लिया तथा १५२६ में उसने अहमदनगर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस शर्त पर कि बीदर तथा अहमदनगर की मस्जिदों में उसके नाम से खुत्बा पढ़ा जाएगा, उसने सन्धि कर ली और १५३० के बसन्त में गुजरात लौट आया।[४४] १५३१ में बरहान निज़ाम शाह ७००० व्यक्तियों के साथ बहादुर से मिलने आया। बहादुर ने उसे निज़ामुल मुल्क की उपाधि दी। इससे उसकी प्रतिष्ठा और बढ़ गयी।[४५]

१५३१ में बहादुर शाह ने मालवा को अपने राज्य में मिला लिया। मालवा ने अपने निकट के राज्यों को असन्तुष्ट कर दिया था। चित्तौड़ के राजा रतनसिंह ने बहादुर के दरबार में मालवा के विरुद्ध यह शिकायत की कि उसके शासक ने अपने पुत्र तथा मन्त्री सारजा ख़ां को चित्तौड़ के दक्षिणी जिलों को विध्वंस करने के लिए भेजा है। रायसीन के राजपूत सरदार सिलहदी ने अपने पुत्र भूपतराय को बहादुर शाह के दरबार में मालवा से रक्षा के हेतु भेजा। मांडू से असन्तुष्ट मुसलमान सरदार भी बहादुर शाह के दरबार में आये। बहादुर शाह को मालवा से यह शिकायत थी कि वहां का शासक उसके राज्यारोहण के समय उसे बधाई देने नहीं आया था। इसके अतिरिक्त मालवा के सुल्तान महमूद ख़िलजी ने बहादुर शाह के भाई चांद ख़ां को शरण दी थी। चांद ख़ां बहादुर को गुजरात से हटाकर स्वयं गुजरात की गद्दी पर बैठना चाहता था।[४६]

४४ बेले, गुजरात, पृ. २४०-४६; अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, १, पृ. १५०-५४; काम्मिस्सारियट, पृ. ३२१-२२।

४५ फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. ११६; बेले, गुजरात, पृ. ३५८; काम्मिस्सारियट, पृ. ३२२।

४६ फ़िरिश्ता लिखता है कि रज़ाउल मुल्क नामक गुजराती अमीर बहादुर से असन्तुष्ट होकर बाबर के दरबार में चला गया। वहां बहादुर शाह को गद्दी से उतारकर चांद ख़ां को गद्दी पर बैठाने के लिए वह तरह-तरह के षड्यंत्र रचता रहता था। रज़ाउल मुल्क मांडू भी आता रहता था तथा चांद ख़ां से बात कर के आगरा लौट जाता था। निज़ामुद्दीन अहमद तथा अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात के लेखक इसका समर्थन करते हैं। अरेबिक हिस्ट्री के अनुसार रज़ाउल मुल्क ने हुमायूं के काल में भी यह प्रयत्न जारी रखा तथा चांद ख़ां के नाम हुमायूं का पत्र लाया। (अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. १८६, १९६; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. २६५; तबक़ाते अकबरी, फा, पृ. ४०४-४०५)।

इन परिस्थितियों से लाभ उठाकर बहादुर शाह ने मालवा पर आक्रमण किया तथा मार्च १५३१ में मांडू पर अधिकार कर लिया। मालवा का शासक महमूद मारा गया तथा मालवा पर बहादुर शाह का अधिकार हो गया (२८ मार्च १५३१)। मालवा की विजय एक महत्त्वपूर्ण विजय थी। अर्सकिन के मतानुसार अब गुजरात की दक्षिण-पूर्वी सीमाएं तथा मेवाड़ की दक्षिण-पश्चिमी सीमाएं एक दूसरी से मिलती थीं। इसके पश्चात् मेवाड़ तथा गुजरात दोनों अधिकता से एक दूसरे के विरोधी हो गये।[४७] बहादुर शाह ने राजनीतिक व्यक्तियों को भी शरण दी। जून-जुलाई १५२९ (शव्वाल ९३५ हि.) में सिन्ध के पदच्युत शासक जाम फ़ीरोज़ ने उसके यहां शरण ली तथा अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया।[४८] इसी समय राणा सांगा का भतीजा नरसिंह देव अपने बहुत से साथियों के साथ उससे आ मिला। अलाउद्दीन आलम खां लोदी (बहलोल लोदी का पुत्र) भी उसके दरबार में आ उपस्थित हुआ। बाबर के दरबार के कई अन्य अमीर (फ़तेह खां, कुतुब खां, उमर खां लोदी इत्यादि) भी उससे आ मिले।[४९]

उपर्युक्त परिस्थितियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुग़ल साम्राज्य को गुजरात की तरफ से कभी भी ख़तरा उपस्थित हो सकता था। मालवा विजय के पश्चात् मुग़ल सीमा गुजरात के निकट पहुँच गयी थी। बहादुर शाह युवक तथा महत्त्वाकांक्षी था। तीन-चार वर्षों में ही उसने कुशल शासक तथा वीर योद्धा के गुण प्रदर्शित किये थे। गुजरात आर्थिक दृष्टि से भी सुदृढ़ था। उसकी सेना नये अस्त्रों तथा हथियारों से सुसज्जित थी। मालवा की विजय तथा बहादुरशाह की साम्राज्य-विस्तार की नीति ने गुजरात के साम्राज्य को मुग़ल साम्राज्य के बहुत ही निकट ला दिया था। इस परिस्थिति में हुमायूं को गुजरात की ओर से भय स्वाभाविक था।[५०]

२. अफ़ग़ान

पानीपत के प्रथम युद्ध की पराजय ने अफ़ग़ानों की शक्ति को पूर्णतः जर्जर कर दिया। फिर भी, अफ़ग़ानों ने पूर्ण रूप से पराजय स्वीकार नहीं की।

४७ अर्सकिन, २, पृ. ३९।

४८ बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३४३; फ़िरिश्ता, २, पृ. ३२०।

४९ फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. ११२।

५० "Elated by a sense of his power and invincibility, he appeared to have aspired to the Empire of Hindustan, and rashly measured his strength with the rising power of the Mughals under Humayun." (काम्मिस्सारियट, पृ. ३०)।

अधिकतर अफ़ग़ान भागकर बिहार या बंगाल चले गये। १५ वर्षों तक उनके संगठन तथा शक्ति का केन्द्र यही क्षेत्र रहा तथा शेरशाह ने इसी केन्द्र से अफ़ग़ानों को पुनः संगठित कर अफ़ग़ान शक्ति को फिर से स्थापित किया।

इबराहीम लोदी के राज्यकाल में दरया खां नूहानी बिहार का गवर्नर था। इबराहीम के काल में उसने राजसी उपाधि धारण नहीं की, किन्तु वस्तुतः वह एक स्वतन्त्र शासक की भांति अपने प्रान्त में शासन करता था। १५२१ में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बहार खां बिहार का गवर्नर हुआ।[५१] पानीपत में इबराहीम खां की मृत्यु के पश्चात् जो अराजकता हुई तथा अफ़ग़ानों में जो प्रतिक्रिया हुई उसके परिणामस्वरूप उसने मुहम्मद शाह की उपाधि धारण की, अपने नाम से सिक्के चलाये तथा अपने नाम से खुत्बा पढ़वाया। इस तरह वह एक स्वतन्त्र शासक बन गया। पानीपत के युद्ध के पश्चात् इबराहीम लोदी का भाई सुल्तान महमूद लोदी ही उस वंश का एक ऐसा व्यक्ति था जो उनका नेतृत्व कर सकता था। हसन खां मेवाती तथा राणा सांगा ने उसे इबराहीम का उत्तराधिकारी स्वीकार किया तथा एक राष्ट्रीय संघ बनाकर उन्होंने बाबर से खानवा में युद्ध किया। खानवा की पराजय ने राजपूतों की कमर तोड़ दी। राणा सांगा के ही बल पर महमूद लोदी दिल्ली का तख्त प्राप्त करने की आशा करता था। खानवा के पश्चात् उसने मेवाड़ में शरण ली। किन्तु इसी बीच राणा सांगा की मृत्यु हो गयी जिससे राजपूतों की सहायता की आशा भी जाती रही। खानवा के युद्ध के पश्चात् अफ़ग़ान उमरा बीबन तथा बायजीद ने अफ़ग़ानों को संगठित कर मुग़लों को अवध से भगा दिया तथा लखनऊ पर अधिकार कर लिया। बाबर की सेना के आगमन से वे लोग पीछे हट गये तथा बंगाल की तरफ चले गये। इसी समय अफ़ग़ानों में हम फ़रीद नामक एक नौजवान के उत्कर्ष का उल्लेख पाते हैं जो आगे चलकर शेरशाह के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा।

फ़रीद का प्रारम्भिक जीवन—शेर खां का पितामह इबराहीम ख़ां सूर पेशावर के निकट रोह की पहाड़ी[५२] में रहकर घोड़े का व्यापार करता था। बहलोल लोदी के समय में इबराहीम सूर और उसका पुत्र हसन पंजाब आये तथा बजवाड़ा में (होशियारपुर जिले में) बस गये। प्रारम्भ में वे महावत ख़ां सूर, दाऊद ख़ां शाह खैल की सेवा में रहे। कुछ दिनों पश्चात् इबराहीम ने महावत खां को छोड़कर हिसार फ़िरोज़ा के जागीरदार जमाल खां सारंगख़ानी के यहां तथा हसन ने उमर

५१ क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. ३०।

५२ अफ़ग़ानी भाषा में इसे शरग़री तथा मुल्तानी भाषा में रोहरी कहते हैं।

खां सरवानी के यहां नौकरी कर ली। जमाल खां ने इबराहीम को चालीस घोड़ों को रखने के लिए नारनोल परगने के कुछ गांव जागीर के रूप में दिये। वह उन्नति कर ५०० घुड़सवारों का अधिकारी तथा हिसार का जागीरदार बन गया।

इबराहीम खां की मृत्यु के पश्चात् हसन जमाल की सेवा में चला गया। सिकंदर लोदी के राज्य-काल में जमाल खां जौनपुर भेजा गया। उसके साथ हसन खां भी गया। जमाल खां को सहसराम, खवासपुर तथा टांडा की जागीर दी, जहां वह स्थायी रूप से बस गया।

फ़रीद का जन्म १४७२ में हिसार फ़िरोज़ा या नारनोल में हुआ था।[५३] हसन के चार पत्नियां तथा आठ पुत्र थे। उसके पुत्रों में फ़रीद तथा निज़ाम एक अफ़ग़ान पत्नी से तथा सुलेमान और महमूद सबसे छोटी पत्नी से उत्पन्न हुए थे। इसके अन्य चार भाई अली, यूसुफ़, ख़ुर्रम तथा शादी खां थे। हसन अपनी छोटी पत्नी का अधिक मान करता था। इस कारण फ़रीद पर उसका वह प्रेम नहीं था जो बड़े लड़के पर होना चाहिए। फ़रीद दुखी होकर अपने पिता की जागीर छोड़कर जौनपुर चला गया, जो उस समय विद्या तथा ज्ञान के लिए 'पूर्व का शिराज़' कहा जाता था।[५४] यहां फ़रीद ने पूर्ण मन से अध्ययन किया और फ़ारसी का बहुत अच्छा ज्ञान अर्जित करके 'मौलवी' की उपाधि प्राप्त की।[५५] अपने

५३ डा. कानूनगो के अनुसार शेरशाह का जन्म १४८६ में तथा डा. परमात्मा शरण के अनुसार उसका जन्म १४७२ में हुआ था। समकालीन इतिहासकारों ने शेरशाह के जन्म की तिथि नहीं दी है इस कारण उसकी जन्म तिथि निश्चित करने में कठिनाई है। देखिए कानूनगो, शेरशाह, पृ. ३; परमात्मा शरण, डेट एण्ड प्लेस ऑफ शेरशाहज़ बर्थ—बिहार एवं उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी जरनल, मार्च, १९३४। नारनोल आगरे में है।

५४ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ. २५९।

५५ डा. क़ानूनगो ने अब्बास खां के आधार पर लिखा है कि फ़रीद ने सिकन्दरनामा, गुलिस्तां, बोस्तां, इत्यादि फ़ारसी के ग्रन्थों को जबानी रट लिया। श्री होदीवाला ने इस कथन को स्वीकार नहीं किया है। प्रथम तो इन ग्रन्थों की ३०,००० पंक्तियां फ़रीद ने रटी हों यह असम्भव मालूम होता है। दूसरे, फ़िरिश्ता तथा निज़ामुद्दीन अहमद ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है उससे भी यही मालूम होता है कि उसने परीक्षा पास की, न कि इन्हें जबानी याद किया। होदीवाला, स्टडीज़ इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री, १, पृ. ४४६; इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३११। इसके अतिरिक्त हम यह भी कह सकते हैं कि यदि उसकी साहित्यिक रुचि इतनी तीव्र होती तो उसने कुछ ग्रन्थों की रचना अवश्य की होती।

व्यवहार तथा योग्यता से वह थोड़े ही दिनों में जनप्रिय हो गया। उसने समकालीन सन्तों तथा विद्वानों से मित्रता स्थापित की तथा शासन का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।[५६] इस बीच हसन खां जौनपुर आया। यहां इसके मित्रों ने फ़रीद जैसे योग्य पुत्र का परित्याग करने के कारण उसकी भर्त्सना की। उनके कहने से हसन खां ने फ़रीद को सहसराम की जागीर का प्रबन्धक नियुक्त कर दिया।

जागीर के प्रबन्धक के रूप में फ़रीद ने ऐसी योग्यता तथा अनुभव प्राप्त किये जो भविष्य में उसके लिए उपयोगी सिद्ध हुए। यहां उसने कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिन्हें सम्राट होने पर उसने अपने साम्राज्य में भी प्रचलित किया। फ़रीद ने अपने पिता से कहा था कि वह अपनी जागीर की समृद्धि तथा वैभव बढ़ाने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देगा।[५७] उसने जागीर की सम्पूर्ण समस्याओं का अध्ययन किया तथा प्रत्येक समस्या का बुद्धिमानी से समाधान किया।

नये जागीरदार के रूप में फ़रीद ने अपना शासन न्याय पर आधारित किया। उसकी प्रजा उससे किसी भी समय मिल सकती थी। उसका कथन था कि कृषक सम्पत्ति के साधन हैं।[५८] इस कारण उनके सुधार, सुख तथा भलाई में ही जागीर का कल्याण है। फ़रीद ने सैनिकों, मुक़ादमों, पटवारियों तथा किसानों को बुलाया तथा उनके समक्ष घोषणा की कि वह किसी को भी कृषकों के ऊपर अत्याचार नहीं करने देगा और जो ऐसा करेगा उसे कठोर दंड दिया जाएगा।[५९] उसने जमीन की नाप करायी तथा उसके आधार पर लगान निश्चित किया। किसानों को पट्टा लिखकर दिया गया जिससे उन्हें निश्चित रूप से ज्ञात रहे कि उन्हें कितना लगान देना पड़ेगा। इसके साथ ही साथ उनसे कबूलियत भी लिखायी।

खेती का प्रबन्ध कर तथा कृषकों को विश्वास दिलाकर फ़रीद ने विद्रोही जमींदारों की तरफ दृष्टि की। उसने अपने पिता के कर्मचारियों को दो सौ घुड़सवारों का प्रबन्ध करने की आज्ञा दी। एक छोटी सेना खड़ी करके तथा सैनिकों को प्रोत्साहित करके उनकी सहायता से उसने मुक़ादमों तथा जमींदारों को पराजित कर दिया और शान्ति स्थापित की।[६०] फ़रीद ने बेगार तथा

५६ त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फाल ऑफ दि मुग़ल एम्पायर, पृ. ११६।
५७ अब्बास खां, तारीखे शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३१२।
५८ वही, पृ. ३१४।
५९ कानूनगो, शेरशाह, पृ. १७-१८; इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३१२-१३।
६० फ़रीद की जागीर के प्रबन्ध के लिए देखिए क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. १५-२५; इलियट तथा डासन, ४, ३१४; होदीवाला, १, पृ. ४४७।

अनेक करों का अन्त कर दिया। प्रत्येक गांव में जनता के अधिकारों की रक्षा के लिए एक कर्मचारी नियुक्त किया गया। फरीद के अच्छे प्रबन्ध के कारण लगभग एक हज़ार कृषक दूसरे स्थानों से आकर उसकी जागीर में बस गये।[६१]

फ़रीद के जागीर के प्रबन्ध की सभी लेखकों ने सराहना की है। अब्बास खां लिखता है कि कुछ ही समय में फ़रीद की जागीर के निवासी सुखी हो गये तथा उसकी एक कुशल शासक के रूप में गणना होने लगी।[६२] डा. बनर्जी के अनुसार फ़रीद ने आधुनिक ग्रामीण विकास योजनाओं की नींव डाली तथा अपने प्रबन्ध के कारण वह प्लेटो के दार्शनिक सम्राट के निकट आ जाता है।[६३] डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार शेरशाह की असाधारण शासकीय योग्यता की छाप उसके परगनों के शासन पर स्पष्ट रूप से पड़ी।[६४] सम्पूर्ण कार्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि फ़रीद ने जागीर के प्रबन्ध से यह स्पष्ट कर दिया कि उसमें जन्म से ही शासन की योग्यता है। यह अनुभव उसके लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ तथा उत्तरी भारत का राज्य प्राप्त करने के पश्चात् उसने कुछ ही समय में ऐसा शासन स्थापित किया जो साधारणतया संभव नहीं होता है।

फ़रीद के जागीर के प्रबन्ध तथा उसकी यशवृद्धि से उसकी सौतेली मां को यह भय हुआ कि कहीं जागीर उसके पुत्रों—सुलेमान तथा अहमद—के हाथ से निकल न जाए। फ़रीद को जागीर से हटाने के लिए उसने मियां हसन को विवश कर दिया। यह जानते हुए कि फ़रीद ने जागीर का बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध किया है, मियां हसन ने फ़रीद को जागीर से हटा दिया।

फ़रीद अपनी जागीर से आगरा की तरफ रवाना हुआ (१५१६)। मार्ग में कानपुर के शेख इस्माईल सूर तथा इबराहीम नामक अफ़ग़ानों से उसकी मुलाकात हुई,[६५] जो भविष्य में उसके उत्कर्ष के प्रमुख सहायक बने। आगरा में फरीद ने दौलत खां नामक एक प्रमुख उमरा की सहायता से इबराहीम लोदी से अपने पिता की जागीर प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु इबराहीम ने यह कहकर

६१ दौलत-ए-शेरशाही, ईश्वरी प्रसाद (हुमायूं, पृ. १००-१०१) द्वारा उद्धृत।
६२ तारीख़े शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३१७।
६३ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १८३-८५।
६४ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ९८-९९।
६५ कानूनगो (शेरशाह, पृ. २८) के अनुसार दूसरा व्यक्ति हबीब खां कक्कर था। डा. ईश्वरी प्रसाद ने (हुमायूं, पृ. १०३) दूसरे व्यक्ति का नाम इबराहीम लिखा है।

कि ऐसा व्यक्ति जो अपने पिता का विरोध करता है बुरा है, इस समस्या में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। फ़रीद को निराशा हुई किन्तु वह अपने संरक्षक दौलत खां के साथ रुका रहा। इसी बीच मियां हसन की मृत्यु हो गयी। सहसराम की जागीर में उस समय फ़रीद के भाई निज़ाम, जिसे जागीर पर दृष्टि रखने के लिए फ़रीद छोड़ आया था, तथा उसके सौतेले भाइयों (सुलेमान तथा अहमद) में जागीर के उत्तराधिकार के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया। सुलेमान ने जागीर पर अधिकार करके वास्तविक उत्तराधिकारी होने का दावा किया। निज़ाम ने विरोध किया कि वह सबसे बड़ा पुत्र न होने के कारण जागीर का अधिकारी नहीं है। किन्तु सुलेमान पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पूर्ण स्थिति की सूचना पाकर फ़रीद ने सबसे बड़े पुत्र होने के आधार पर, दौलत ख़ां की सहायता से, इबराहीम लोदी से इन दो परगनों की जागीरदारी का फ़रमान प्राप्त किया तथा अपनी जागीर में वापस आ पहुँचा।

फ़रीद के जागीर में फ़रमान के साथ पहुँचने से तथा वहां की जनता के फ़रीद की तरफ आकर्षित होने से सुलेमान ने भागकर चौध[६६] के जागीरदार मुहम्मद ख़ां सूर के यहां शरण ली। मुहम्मद ख़ां तथा मियां हसन का सम्बन्ध अच्छा नहीं था। मुहम्मद ख़ां ने देखा कि पारस्परिक झगड़ों से लाभ उठाकर वह मियां हसन की जागीर पर अधिकार कर सकता है। उसने फ़रीद से अपने वकील द्वारा कहलाया कि वह इस झगड़े का निर्णय करेगा तथा जो उसका निर्णय स्वीकार नहीं करेगा उसके साथ वह कठोरता का बर्ताव करेगा। फ़रीद ने मुहम्मद ख़ां को सूचित किया कि अपने सौतेले भाइयों को अधिक से अधिक जागीर देने के लिए तैयार है, किन्तु वह परगने के शासन को विभाजित नहीं करेगा। मुहम्मद ख़ां ने निश्चित किया कि सैन्य बल द्वारा वह फ़रीद से सुलेमान को अधिकार दिलाएगा। इस सूचना से फ़रीद चिन्तित हुआ तथा उसने किसी शक्तिशाली संरक्षक की सहायता प्राप्त करने का निश्चय किया। इसी समय पानीपत के युद्ध तथा उसमें इबराहीम की मृत्यु की सूचना मिली। फ़रीद ने देखा कि बिहार के शासक सुल्तान मुहम्मद (बहार ख़ां) के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति उसकी सहायता नहीं कर सकता।

[६६] यह बिहार में रोहतास जिले का एक परगना था। सहसराम से यह लगभग ४० मील पश्चिम स्थित था। आईने अकबरी में इसे चाकुंड या जौंद कहा गया है। (आईने अकबरी, २, पृ. १६८)। चावन्द कदाचित् दुर्गा के नाम चामुण्डा से लिया गया है (होदीवाला, १, पृ. ४४७)।

सुल्तान मुहम्मद[६७] इस समय स्वतन्त्र शासक के रूप में बिहार पर शासन करता था। फ़रीद ने सुल्तान मुहम्मद के यहां नौकरी कर ली। अपनी योग्यता से उसने सुल्तान मुहम्मद को प्रसन्न कर लिया तथा उसका दाहिना हाथ बन गया।[६८] इसी समय उसने बड़ी बहादुरी से एक शेर मारा जिससे प्रसन्न होकर सुल्तान मुहम्मद ने उसे 'शेर ख़ां' की उपाधि दी।[६९] सुल्तान मुहम्मद ने उसे अपने राज्य का वकील तथा अपने पुत्र का शिक्षक (अतालीक़) नियुक्त किया।[७०]

शेर ख़ां के इस उत्कर्ष से सुल्तान मुहम्मद के अन्य अमीरों में विद्वेष फैल गया। उन लोगों ने सुल्तान मुहम्मद से शेर ख़ां की शिकायत की। शेर ख़ां इस समय अपनी जागीर पर चला गया था, जिससे उन्हें विरोध का अवसर मिला। किन्तु सुल्तान मुहम्मद शेर ख़ां से इतना प्रभावित तथा प्रसन्न था कि उसने सुलेमान के पक्ष में शेर ख़ां पर आक्रमण नहीं किया।

चौध के जागीरदार मुहम्मद ख़ां ने प्रारम्भ में जागीर को भाइयों में विभाजित करने की सलाह दी। शेर ख़ां इसके लिए तैयार नहीं था तथा उसने कहा कि यहां रोह (अफ़ग़ानिस्तान) का कानून नहीं चलेगा। इसके अतिरिक्त उसने अपने पक्ष में यह तर्क दिया कि जागीर उसे फ़रमान द्वारा प्राप्त हुई है तथा किसी को उसे लेने का अधिकार नहीं है।[७१] मुहम्मद ख़ां ने सफलता की आशा न देख जागीर पर आक्रमण कर दिया तथा शक्ति के बल पर परगनों पर अधिकार कर लिया।

कुछ लोगों ने शेर ख़ां को परामर्श दिया कि वह सुल्तान मुहम्मद से सहायता ले। शेर ख़ां को भय था कि वह मुहम्मद ख़ां सूर से झगड़ा नहीं करेगा तथा सुलह कराने का प्रयत्न करेगा। शेर ख़ां सुलह नहीं करना चाहता था। इस कारण वह एक शक्तिशाली मित्र चाहता था।

६७　सुल्तान मुहम्मद की उपाधि धारण करने के पूर्व उसका सही नाम क्या था यह निश्चित रूप से पता नहीं चलता। अब्बास उसे बहार ख़ां, अर्सकिन बिहार ख़ां कहता है तथा कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग ४ में उसे बहादुर ख़ां लिखा गया है।

६८　कानूनगो, शेरशाह, पृ. ३१; अब्बास ख़ां, तारीख़े शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३२५।

६९　इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३२५।

७०　वही, पृ. ३२५ तथा ३३६।

७१　ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १०६; इलियट तथा डासन ४, पृ. ३२७।

१५२७ के अप्रैल में शेर ख़ां पूर्वी प्रान्तों के मुग़ल गवर्नर जुनायद बरलास की सेवा में उपस्थित हुआ। मुग़ल सेना की सहायता से[७२] शेर ख़ां ने अपनी जागीर पर अधिकार कर लिया तथा मुहम्मद ख़ां की जागीर भी उसके हाथ में आ गयी। मुहम्मद ख़ां तथा सुलेमान ने भागकर रोहतास में शरण ली। शेर ख़ां ने मुहम्मद ख़ां सूर को उसकी जीती हुई जागीर लौटाकर उसे अपना स्थायी मित्र बना लिया। इससे उसकी दूरदर्शिता का पता चलता है। शेर ख़ां द्वारा विदेशी सहायता लेने से अफ़ग़ान उससे नाराज़ हुए। शेर ख़ां ने मुग़ल सैनिकों को तुरन्त पारितोषिक देकर वापस भेज दिया तथा अफ़ग़ानों के पारस्परिक द्वेष को दूर करने का प्रयत्न किया।[७३]

१५२७ में शेर ख़ां जुनायद बरलास के साथ आगरा गया। यहां जुनायद बरलास ने अपने भाई प्रधान मन्त्री मीर ख़लीफ़ा से उसकी तारीफ़ की। शेर ख़ां लगभग १५ महीने मुग़लों के पास रहा तथा चन्देरी के दुर्ग पर आक्रमण के समय वह मुग़लों के साथ था।[७४] यहां उसने मुग़लों के शासन का निकट से अध्ययन किया। इससे वह अधिक प्रसन्न नहीं हुआ तथा उसके मन में यह आत्मविश्वास जागृत हुआ कि मुग़ल अफ़ग़ानों से उच्च नहीं हैं। उसका विचार था कि मुग़लों की विजय का कारण उनकी योग्यता नहीं बल्कि अफ़ग़ानों का पारस्परिक वैमनस्य था। वह कहता था कि "मैंने मुग़लों के बीच में रहकर उनकी युद्ध-विधि देख ली है। वे रणक्षेत्र में दृढ़ एवं सुव्यवस्थित नहीं रह सकते। उनका बादशाह अपने उत्कृष्ट वंश एवं उच्च श्रेणी के कारण स्वयं राज्य व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं देता। वह अपने राज्य का शासन प्रबन्ध अपने अमीरों एवं उच्च पदाधिकारियों को सौंपकर उनके वचन एवं आचरण पर निर्भर रहता है। सैनिकों, प्रजा एवं विद्रोही जमींदारों की समस्याओं का समाधान घूस द्वारा होता है। हितैषी अथवा विरोधी जिस किसी के पास धन है वह धन द्वारा अपनी इच्छानुसार अपने काम करा लेता है। जिसके पास धन नहीं वह चाहे सैकड़ों बार तलवार चलाये अथवा निष्ठा प्रदर्शित करे उसे कोई सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।" शेर ख़ां की बात सुनकर उसके साथी हँसते थे किन्तु वह

७२ डा. क़ानूनगो अब्बास तथा अन्य समकालीन इतिहासकारों के शेर ख़ां द्वारा मुग़ल सहायता प्राप्त करने के मत को स्वीकार नहीं करते तथा इसे असम्भव समझते हैं। क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. ४२-४३।

७३ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १०८।

७४ इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३३०।

बारबार कहता था कि "यदि सौभाग्य एवं प्रताप मेरी सहायता करे तो मैं अल्प समय में मुग़लों को हिन्द से निकाल दूंगा।"[७५]

इसी बीच एक दिन वह आगरा से अचानक चला आया।[७६] अपनी जागीर में पहुँचने के पश्चात् उसने जुनायद बरलास से उसके दरबार से बिना आज्ञा चले आने के लिए क्षमा याचना की तथा उसके पास अच्छा पेशकश भेजकर उसे प्रसन्न कर लिया। उसने लिखा कि मुहम्मद ख़ां सूर तथा सुलेमान के भय से

७५ अब्बास ख़ां, तारीख़े शेरशाही; इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३३०-३१।

७६ शेर ख़ां के आगरा भागने के विषय में अब्बास ख़ां लिखता है कि एक दिन भोजन के समय शेर ख़ां बाबर के साथ उपस्थित था। शेर ख़ां के सामने माहिचा की प्लेट रखी गयी (माहिचा क्या था यह निश्चय पूर्वक बताना कठिन है। इसका अर्थ मोटी सेवई की तरह की मीठी वस्तु या मछली रूपी मांस है)। उसे माहिचा खाने की विधि का ज्ञान नहीं था। उसने माहिचा को चाकू से टुकड़े-टुकड़े काटकर खा लिया। (यह भी कहा जाता है कि वह हाथ से खाने लगा तो हुमायूं ने उसे दावत से निकाल दिया जिससे वह बहुत नाराज़ हुआ। होदीवाला, १, पृ. ४४९)। बाबर को यह देखकर आश्चर्य हुआ। उसने अपने मन्त्री ख़लीफ़ा से कहा—"शेर ख़ां की ओर से असावधान न रहना चाहिए, कारण कि वह बड़ा प्रतिभाशाली है और बादशाही के चिह्न उसके ललाट पर दृष्टिगत हैं। मैंने इससे बड़े भी अफ़ग़ान अमीर देखे हैं। कभी मेरे मन में कोई बात न आयी किन्तु इसको देखने मात्र से मेरे हृदय में आता है कि उसे बन्दी बना लेना चाहिए क्योंकि उसमें प्रतिष्ठा का प्रकाश एवं श्रेष्ठता के चिह्न पाये जाते हैं।" शेर ख़ां ने ख़लीफ़ा को अत्यधिक उपहार दिये थे जिससे उसने बाबर से शेर ख़ां की तारीफ़ की। शेर ख़ां ख़लीफ़ा तथा बाबर की बात से समझ गया और वह लश्कर छोड़कर भाग गया। बाबर को जब पता चला तो उसने ख़लीफ़ा से कहा कि "यदि तू न रोकता तो मैं उसे तत्काल बन्दी बना लेता। उसके द्वारा कोई बात होने वाली है।" (इलियट तथा डासन, तारीख़े शेरशाही, ४, पृ. ३३१)। तवारीख़े दौलते शेरशाही की कहानी इससे कुछ भिन्न है। उसके अनुसार बाबर के दरबार में शेर ख़ां को जुनायद बरलास ले गया। वहाँ एक दावत में शेर ख़ां ने अधिक मदिरापान किया तथा तवारीख़े दौलतेशाही के लेखक से कहा कि यदि ईश्वर की कृपा हुई तो वह तैमूरी वंश को हिन्द से निकालकर अफ़ग़ानों का राज्य पुनः दृढ़ता-पूर्वक स्थापित करेगा। यह बात बाबर के कानों तक पहुँची। वह रुष्ट हुआ तथा शेर ख़ां पर कड़ी नजर रखने की आज्ञा दी। शेर ख़ां उसी रात वहां से निकल भागा।

जागीर में वापस आना आवश्यक था। उसने अपने को मुग़लों का सेवक कहा तथा अपनी स्वामिभक्ति का विश्वास दिलाया।

१५२८ के अन्त में शेर ख़ां ने मुग़ल सेवा त्याग दी तथा पुनः बिहार चला गया और सुल्तान मुहम्मद की सेवा में पुनः नियुक्त हो गया।[७७] सुल्तान मुहम्मद ने उसे पुनः अपने पुत्र जलाल का शिक्षक नियुक्त कर दिया। इसी समय सुल्तान मुहम्मद की मृत्यु हो गयी। उसकी पत्नी दूदू बीबी अपने नाबालिग़ लड़के की संरक्षिका बन गयी। उसने शेर ख़ां को अपना डिप्टी नियुक्त किया।

बिहार के डिप्टी की हैसियत से शेर ख़ां ने पूर्ण रूप से अपनी शक्ति बढ़ा ली। उसने सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों पर योग्य तथा स्वामिभक्त व्यक्तियों को, विशेषतया सूर अफ़ग़ानों को, नियुक्त किया जो सदा उसके लिए मरने-मारने को तैयार रहते थे।

अफ़ग़ानों ने मुग़लों के विरुद्ध आन्दोलन समाप्त नहीं किया था। महमूद लोदी, बीबन तथा बायज़ीद एक सेना के साथ आगे बढ़े। शेर ख़ां न चाहते हुए भी उनके साथ हो लिया, किन्तु इस अभियान का कोई परिणाम नहीं हुआ तथा मुग़ल सेना के आगमन से ही ये भाग खड़े हुए।[७८] अधिकतर अफ़ग़ान

७७ डा. क़ानूनगो निज़ामुद्दीन, फ़िरिश्ता, अब्बास इत्यादि की इस कथा को स्वीकार नहीं करते कि यहां से शेर खां मुहम्मद ख़ां की सेवा में गया। उनका मत है कि वह महमूद लोदी से जा मिला। (क़ानूनगो, शेरशाह पृ. ५८-५९)।

७८ बाबर अपनी आत्मकथा में लिखता है, "निरन्तर ये समाचार प्राप्त होने लगे कि सुल्तान महमूद ने १०,००० अफ़ग़ान एकत्र कर लिये हैं। उसने शेख़ बायज़ीद एवं बीबन को एक बहुत बड़ी सेना सहित सरवार की तरफ भेज दिया है। वह स्वयं फतह ख़ां सरवानी के साथ गंगा के किनारे-किनारे चुनार की ओर बढ़ रहा है। शेर ख़ां सूर जिसे मैंने पिछले वर्ष आश्रय प्रदान करके तथा बहुत से परगने देकर इस क्षेत्र में नियुक्त कर दिया था, इन अफ़ग़ानों से मिल गया है। उन लोगों ने शेर ख़ां तथा कुछ अमीरों को नदी पार करा दी है। सुल्तान जलालुद्दीन के आदमी बनारस की रक्षा न कर सके और भाग खड़े हुए। कहा जाता है कि उसने यह प्रसिद्ध किया कि उसने बनारस के किले में सैनिकों को नियुक्त कर दिया है और स्वयं नदी के किनारे-किनारे सुल्तान महमूद से युद्ध करने जा रहा है।" (बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६५१-५२)। क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. ६०-६१।

अमीरों ने बाबर के समक्ष समर्पण कर दिया। १६ मई १५२९ को जलाल खां भी बाबर से मिला। बाबर ने उसके पिता की जागीर का अधिक भाग इस शर्त पर दे दिया कि वह एक करोड़ टनके राजकर देगा।[७९] सुल्तान महमूद लोदी को भागकर बंगाल के शासक नुसरत शाह के यहां शरण लेनी पड़ी।[८०]

जलाल खां के मुग़लों से अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् दूदू ने शेर खां को पुनः डिप्टी नियुक्त किया। इसके कुछ ही दिन पश्चात् दूदू की भी मृत्यु हो गयी। इस तरह बिहार के शासन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व शेर खां पर आ पड़ा।

शेर खां ने अनुभव किया कि बंगाल के शासक नुसरत शाह से कभी न कभी संघर्ष होगा ही। अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उसने नुसरत शाह के बहनोई हाजीपुर के गवर्नर मख़दूमे आलम से मित्रता कर ली। नुसरत शाह ने आक्रमण कर मख़दूमे आलम को मार डाला। शेर खां ने एक बहुत बड़ा मित्र खो दिया किन्तु मख़दूमे आलम का सम्पूर्ण कोष उसे प्राप्त हो गया।[८१] यह उसके भविष्य के उत्कर्ष के लिए बहुत ही सहायक हुआ। इसके पश्चात् ही बंगाल से युद्ध प्रारम्भ हुआ। इसमें भी शेर खां विजयी हुआ जिससे उसका मान तथा शक्ति दोनों बढ़े।[८२]

शेर खां एक साधारण वंश का था। बिहार में अनेक अफ़ग़ान उमरा उच्च वंश के थे (जैसे लोदी, नूहानी, फ़रमूली इत्यादि)। ये लोग साधारण वंश के

७९ बाबर अपनी आत्मकथा में लिखता है कि "१६ मई सोमवार (रमज़ान) को दरिया खां का पौत्र जलाल खां, जिसे बुलाने के लिए शेख़ जमाली गया था, अपने विश्वस्त अमीरों के साथ मेरी सेवा में उपस्थित हुआ। यहया नोहानी भी उपस्थित हुआ। वह इससे पूर्व अपने छोटे भाई को भेजकर आज्ञाकारिता प्रदर्शित कर चुका था और उसके प्रोत्साहन हेतु उसकी सेवाएं स्वीकार करते हुए एक फ़रमान भेजा जा चुका था। क्योंकि ७-८ हजार नोहानी अफ़ग़ान आशा लेकर आये थे अतः इन्हें निराश न करने की दृष्टि से बिहार में से एक करोड़ को खालसा बनाकर मैंने ५० लाख महमूद खां नोहानी को प्रदान किये। बिहार की शेष मालगुज़ारी उपर्युक्त जलाल खां को प्रदान कर दी गयी। उसने एक करोड़ राजकर के रूप में अदा करना स्वीकार किया। मुल्ला गुलाम यसावल को इस राजकर को वसूल करने के लिए भेजा गया। महमूद ज़मान मिर्ज़ा ने जूनपुर (जौनपुर) की वकालत प्राप्त की।" (बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६७६)।

८० स्टीवर्ट, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ. ७४; क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. ६३।

८१ इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३३३-३४।

८२ बनर्जी, हुमायूं, पृ. १९०; आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, शेरशाह एण्ड हिज़ सक्सेसर्स, पृ. १०-११।

व्यक्ति की अधीनता स्वीकार करने में हीनता का अनुभव करते थे। इस कारण वे शेर ख़ां को उसके पद से हटाना चाहते थे। उन्होंने शेर ख़ां को मार डालने का षड्यंत्र रचा, किन्तु शेर ख़ां की सतर्कता से उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली। शेर ख़ां ने सन्धि करने के लिए शक्ति विभाजन का प्रस्ताव रखा। उसने नूहानियों से कहा कि वे या तो आक्रमण से बंगाल की रक्षा का उत्तर-दायित्व लें अथवा आन्तरिक शासन की देख-भाल करें। नूहानी इसके लिए तैयार नहीं हुए और उन्होंने निश्चय किया कि वे भागकर नुसरत शाह के पास जाकर, उससे सहायता लेकर शेर ख़ां का विरोध करेंगे। यह सोचकर नूहानी तथा अन्य अमीर जलाल ख़ां के साथ नुसरत शाह से जा मिले। इस पलायन ने शेर ख़ां को अपने मन से शक्ति-संचय तथा संगठन का सुअवसर दिया।

शेर ख़ां ने उसी समय चुनार के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। यह दुर्ग बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। सुल्तान इबराहीम लोदी ने ताज ख़ां सारंगख़ानी को चुनार का दुर्गपति नियुक्त किया था। पानीपत के युद्ध के पश्चात् बाबर के पूर्वी भागों के अभियान के समय ताज ख़ां ने मुग़लों की अधीनता स्वीकार कर ली। २३ मार्च १५२९ को बाबर ने चुनार के दुर्ग का निरीक्षण भी किया।[८३] जून १५२९ में वह वहां जुनायद बरलास को अपना दुर्गपति नियुक्त करना चाहता था, किन्तु अन्य समस्याओं के कारण वह ऐसा नहीं कर सका।[८४] ताज ख़ां पर उसकी बुद्धिमती पत्नी लाड मलका[८५] का प्रभाव था। एक दिन लाड के सौतेले लड़के ने उसे घायल कर दिया। ताज ख़ां ने अपने पुत्र को मारने के लिए तलवार उठायी किन्तु लड़के ने पिता पर आक्रमण किया जिससे पिता की मृत्यु हो गयी। शेर ख़ां ने इस परिस्थिति से लाभ उठाकर लाड मलका से विवाह का प्रस्ताव किया तथा इसमें वह सफल हुआ। इस विवाह से उसे पत्नी, चुनार का दुर्ग तथा उसका कोष प्राप्त हुआ।[८६]

८३ बाबरनामा, इलियट तथा डासन, ४, पृ. २८२-८३।

८४ बाबरनामा, बेवरिज, ६८३; रिज़वी, बाबर, पृ. ३३४।

८५ अबुल फ़ज़ल इसका नाम 'लाड मुल्क' लिखता है तथा उसे चरित्र एवं रूप रंग में अद्वितीय बतलाता है। (अकबरनामा, १, पृ. १२३)। अब्बास उसका नाम 'लाड मलका' लिखता है। उससे कोई पुत्र न था। ताज ख़ां की अन्य पत्नियों के कई पुत्र थे।

८६ शेर ख़ां को १५० बहुमूल्य जवाहरात, सात मन मोती, १५० मन सोना तथा और भी मूल्यवान वस्तुएँ तथा आभूषण प्राप्त हुए। (इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३४६)।

१५२६ में स्वर्गीय सुल्तान इबराहीम लोदी का भाई महमूद लोदी खानवा की पराजय तथा राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा था। बिहार में सुल्तान मुहम्मद की मृत्यु तथा वहां की स्थिति से उसे आशा हुई। बिहार के कुछ प्रमुख उमराओं ने उसे आमन्त्रित किया। वह बिहार आया। यहां आज़म हुमायूं ईसा ख़ां, इबराहीम ख़ां, मियां बीबन जीवानी, मियां बायज़ीद फ़रमूली तथा अन्य अमीर उसके साथ हो गये। इस तरह अफ़ग़ानों का नेतृत्व जो शेर ख़ां ने अब तक प्राप्त किया था, राजवंश का होने के कारण महमूद लोदी के हाथ चला गया। शेर ख़ां को विवश होकर अपनी जागीर सहसराम से ही सन्तोष करना पड़ा।[८७] महमूद लोदी ने शेर ख़ां को प्रसन्न करने के लिए उसे आश्वासन दिया कि यह केवल संकटकालीन स्थिति का प्रबन्ध है तथा ज्यों ही जौनपुर और अन्य जिले अफ़ग़ानों के अधिकार में आ जाएंगे शेर ख़ां को बिहार दे दिया जाएगा। इसी समय बाबर की मृत्यु हुई।

हुमायूं के राज्यारोहण के समय अफ़ग़ानों की स्थिति—जिस समय हुमायूं गद्दी पर बैठा अफ़ग़ानों के दो प्रमुख नेता थे—महमूद लोदी और शेर ख़ां। जैसा ऊपर वर्णन किया गया है, शेर ख़ां ने इस बीच पूर्ण अनुभव प्राप्त कर लिया था। अपनी योग्यता से उसने अफ़ग़ानों के हृदय में स्थान बना लिया था। चुनार के दुर्ग पर अधिकार हो जाने से बिहार के भागों पर वह दृष्टि रख सकता था। महमूद लोदी के आ जाने से उसकी शक्ति में रुकावट अवश्य आ गयी थी, किन्तु वह बुद्धिमान तथा कूटनीतिज्ञ था और बड़ी सतर्कता से राजनीतिक परिवर्तनों पर दृष्टि लगाये हुए था। महमूद लोदी के पास शेर ख़ां के मुकाबिले में योग्यता नहीं थी, जैसा उसके पूर्व चरित्र तथा कार्यों से स्पष्ट हो जाता है।

इस तरह जिस समय हुमायूं गद्दी पर बैठा, बिहार में अफ़ग़ान अपना संगठन कर रहे थे। लोदी वंश का व्यक्ति उनका नेतृत्व कर रहा था। शेर ख़ां इससे असन्तुष्ट अवश्य था किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि हुमायूं के गद्दी पर बैठने के समय भी मुग़ल साम्राज्य को नष्ट कर उसके स्थान पर अफ़ग़ान

डा. कानूनगो चुनार के दुर्ग को अधिकृत करने की कहानी, जिसे अब्बास ने लिखा है, स्वीकार नहीं करते। उसकी विवेचना के लिए देखिए डा. काननूगो, शेरशाह, पृ. ६६-७१।

८७ शेर ख़ां ने महमूद का विरोध क्यों नहीं किया? ऐसा प्रतीत होता है कि प्रमुख अफ़ग़ान अमीर महमूद लोदी के साथ हो गये। इबराहीम लोदी का भाई होने के कारण अफ़ग़ान उसका विरोध करने को तैयार नहीं थे।

साम्राज्य स्थापित करने की दूरवर्ती आशा उसके मन की आंखों के सामने नाच रही थी। अफ़ग़ानों का यह संगठन कितना भयंकर होगा, यह हुमायूं के गद्दी पर बैठने के समय बताना कठिन था। किन्तु इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि इस नयी परिस्थिति में—जब पानीपत का विजेता मर चुका था, उसका पुत्र हुमायूं अभी नौजवान, अनुभवहीन व्यक्ति था जिसे गद्दी पर बैठाने में भी मुग़ल अमीरों को थोड़ी हिचकिचाहट थी—अफ़ग़ान पूर्णरूप से लाभ उठाने के लिए तैयार थे। निस्संदेह उनके लिए यह स्वर्ण अवसर था।

३. बंगाल

बंगाल का प्रान्त दिल्ली के सुल्तानों के लिए प्रारम्भ से ही एक समस्या बना रहा। दिल्ली से दूरी, यातायात के साधनों की कठिनाइयां, आर्थिक असुविधाएं इत्यादि के कारण बंगाल के गवर्नर सदा दिल्ली से स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करते रहते थे।

मुहम्मद ग़ोरी द्वारा उत्तरी भारत में तुर्की साम्राज्य स्थापित करने के समय बख़्तियार ख़िलजी ने बंगाल पर आक्रमण कर उसे दिल्ली सल्तनत का अंग बना लिया। उस समय से लेकर मुहम्मद तुग़लक के काल तक यह दिल्ली सल्तनत में रहा। यद्यपि यहां दिल्ली सल्तनत के विरुद्ध बार-बार विद्रोह हुए। फ़ीरोज़ तुग़लक के काल में बंगाल पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो गया।[८८]

बंगाल का स्वर्ण काल हुसेनी वंश से प्रारम्भ होता है। इस वंश का प्रथम शासक सैयिद हुसेन, अलाउद्दीन हुसेन शाह के नाम से बंगाल की गद्दी पर १४९३ में बैठा। इसकी गणना बंगाल के प्रमुख मुस्लिम शासकों में होती है। इसने अनेक सुधार कर बंगाल को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया। जौनपुर का अन्तिम शर्की सम्राट हुसेन शाह भागकर १४९५ में बंगाल आया। अलाउद्दीन हुसेन शाह ने उसको शरण दी। शर्की सुल्तान अपनी मृत्यु (१५००) तक यहीं रहा। २५ वर्ष शासन करने के पश्चात् १५१८ में अलाउद्दीन हुसेन शाह की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका सबसे बड़ा लड़का नसीब खां, नासिरुद्दीन नुसरत शाह के नाम से गद्दी पर बैठा।[८९] नुसरत शाह (१५१९-३२) एक योग्य सुल्तान था तथा गद्दी पर बैठने से पूर्व उसे शासन-संचालन तथा शासन दोनों का अनुभव प्राप्त था। उसने तिरहुत पर आक्रमण कर उस पर

८८ दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, दि देलही सल्तनत, पृ. १९३, २१४।

८९ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ. २७२।

अधिकार कर लिया तथा पुर्तगालियों को भी, जो बंगाल के तट पर पहुँच गये थे, रोके रखने का प्रयत्न किया। १५२६ में जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया, नुसरत शाह यहां का शासक था। बाबर ने अपनी आत्मकथा में भारत के पांच प्रमुख मुसलमान शासकों में उसका उल्लेख किया है।[६०]

पानीपत तथा खानवा के युद्धों के पश्चात् बहुत-से अफ़ग़ान नेता भागकर बिहार चले गये। इनमें से बीबन, बायज़ीद तथा कुछ अन्य अफ़ग़ानों ने बंगाल में शरण ली। नुसरत शाह ने उन्हें जागीर दी। उसने स्वयं इबराहीम लोदी की पुत्री से विवाह किया[६१] जिससे आवश्यकता पड़ने पर वह अपने को इबराहीम लोदी का उत्तराधिकारी घोषित कर सकता था। बाबर को पूर्व से भय था। इस कारण दिसम्बर १५२८ में उसने अस्करी को पूर्वी क्षेत्र की ओर भेजा।

पहली जनवरी १५२९ को नुसरत शाह का एक दूत आत्मसमर्पण का प्रार्थना पत्र लेकर बाबर से मिला।[६२] यह समर्पण नाम मात्र का था क्योंकि कुछ ही सप्ताह पश्चात् बाबर को बिहार में गड़बड़ी की सूचना मिली। बाबर पूर्व की ओर अग्रसर हुआ। बंगाल की सेना को भय हुआ कि बाबर कदाचित् बंगाल पर आक्रमण करना चाहता है। गंडक तथा गंगा के संगम पर दोनों सेनाएँ एकत्र हुईं। युद्ध के पश्चात् ६ मई १५२९ को बंगाल की सेना पीछे हट गयी। मुहम्मद मारूफ, जो बंगाल की सेना से जा मिला था, पुनः बाबर से आ मिला।[६३] बायज़ीद तथा बीबन ने आगे बढ़कर बाबर की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर लखनऊ पर अधिकार कर लिया तथा यहां से चुनार तथा जौनपुर की तरफ बढ़े। इसी समय मुग़ल सेना के आगमन की सूचना पाकर ये भाग गये। बाबर यहां से आगरा चला गया। उसके जीवन काल में इसके पश्चात् बंगाल से कोई संघर्ष नहीं हुआ।

१५३० में बाबर की मृत्यु के समय बंगाल की सीमा पर केवल नाममात्र को शान्ति थी। नुसरत शाह जनप्रिय तथा योग्य शासक था। वह कला तथा बंगला साहित्य का भी पोषक था। उसके समय में अनेक सुन्दर भवनों का

[६०] बाबरनामा, इलियट तथा डासन, ४, पृ. २६०-६१।
[६१] कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ. २७२।
[६२] विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १६८; बाबरनामा, इलियट तथा डासन, ४, पृ. २८४।
[६३] विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १६९।

निर्माण हुआ जिसमें बड़ी सोना मस्जिद बहुत प्रसिद्ध है। इबराहीम की पुत्री से विवाह कर उसने मुग़ल सम्राटों के लिए भय उत्पन्न कर दिया था। अफ़ग़ानों के बंगाल में शरण लेने से भी वहां मुग़ल विद्रोही आन्दोलन प्रारम्भ हो सकता था। बंगाल के निकट बिहार के भाग में अफ़ग़ानों का केन्द्र बन ही रहा था, बंगाल के मित्र न रहने से दोनों प्रान्त मिलकर प्रबल प्रतिरोध उपस्थित कर सकते थे।

४. सिंध तथा मुल्तान

तुग़लक वंश के विघटन के पश्चात् सिन्ध के कुछ जिलों पर सिन्ध के ज़ाम शासन करते थे। १४३९ में ज़ाम निज़ामुद्दीन (ज़ाम नन्द) गद्दी पर बैठा। उसने ६० वर्ष तक शासन किया। उसके राज्य काल में अरग़ून जाति के मुगलों का प्रभाव निचले सिन्ध में बढ़ने लगा। १५२१ में बाबर द्वारा कंधार से भगाये जाने के पश्चात् शाह बेग अरग़ून ने सिन्ध को जीतकर उस पर अधिकार कर लिया तथा ज़ाम फ़ीरोज़ को वहां से भगा दिया।। फ़ीरोज़ ने भागकर गुजरात में शरण ली। वहां उसने अपनी पुत्री का विवाह गुजरात के बहादुर शाह से कर दिया।

१५२४ में शाह बेग अरग़ून की मृत्यु हो गयी तथा उसके पश्चात् उसका पुत्र शाह हुसेन गद्दी पर बैठा। उसने एक साल से अधिक के घेरे के पश्चात् मुल्तान को जीतकर उस पर अधिकार कर लिया। उसने ख्वाजा शमसुद्दीन को वहां का गवर्नर नियुक्त किया। किन्तु कुछ ही दिनों में मुल्तान के सेनापति लंगर ख़ां ने उसे वहां से भगा दिया तथा स्वयं मुल्तान पर स्वतंत्र रूप में शासन करने लगा।[६४] बाद में उसने कामरान के समक्ष समर्पण कर दिया। गुजरात के महत्त्वाकांक्षी सुल्तान के भय से रक्षा हेतु शाह हुसेन ने बाबर के नाम से ख़ुत्बा पढ़कर नाम मात्र की अधीनता स्वीकार कर ली। बाबर के प्रधान मन्त्री ख़लीफ़ा की पुत्री से अपना विवाह कर उसने अपनी स्थिति और दृढ़ कर ली।

इस तरह सिन्ध का राज्य एक स्वतंत्र राज्य था तथा इसका प्रभाव मुल्तान तक था, यद्यपि मुल्तान बाद में स्वतंत्र हो गया तथा बाबर की मृत्यु के पश्चात् मुग़ल राजकुमार कामरान की जागीर का एक भाग बन गया।

६४ सिन्ध के संक्षिप्त इतिहास के लिए देखिए, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ. ५०१-५०५। हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, दि देलही सल्तनत, पृ. २२१-३०।

५. मालवा

मध्य युग में मालवा का महत्त्वपूर्ण स्थान था। गुजरात तथा मेवाड़ के निकट रहने के कारण इसका मेवाड़ से बराबर संघर्ष होता रहता था। १४३६ में महमूद ख़ां ने मालवा में खिजली वंश की नींव डाली।[९५] जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया, मालवा का शासक महमूद शाह द्वितीय था। (१५११-३१)। यह योग्य सुल्तान था। इसकी प्रसार नीति के परिणामस्वरूप इसका संघर्ष निकट के शासकों से हुआ। उसने गागरौन पर एक बड़ी सेना लेकर आक्रमण किया। गागरौन का दुर्गपति हेमकरण था जो मेदनी राव के प्रतिनिधि के रूप में वहां का शासन करता था। इस आक्रमण की सूचना पाकर मेदनी राव ने राणा सांगा से सहायता ली। इन दोनों की सम्मिलित सेनाओं ने मालवा पर आक्रमण कर दिया। महमूद बुरी तरह पराजित हुआ तथा बन्दी बनाया गया। राणा ने उसका राजमुकुट तथा बहुमूल्य रत्न तो ले लिए, किन्तु मालवा को अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया वरन् महमूद को ही मांडू की गद्दी पर बैठा दिया। महमूद द्वितीय का साम्राज्य अब उसकी राजधानी तथा उसके निकटवर्ती भागों तक ही सीमित रह गया। उसके राज्य के उत्तर-पूर्वी जिले पुरबिया राजपूतों के तथा सतवास और उसके दक्षिणी भाग पर सिकन्दर ख़ां का अधिकार था।

१५२६ में बहादुर शाह के गुजरात की गद्दी पर बैठने के पश्चात् महमूद ने बहादुर के भाई चांद ख़ां को शरण दी। बहादुर शाह इससे नाराज हुआ। राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् महमूद द्वितीय ने चित्तौड़ के भूभाग पर भी आक्रमण कर राणा सांगा के उत्तराधिकारी रतन सिंह को नाराज़ कर दिया। रतन सिंह ने मालवा पर आक्रमण किया और सारंगपुर तथा उज्जैन तक आगे बढ़ आया। १५३० में मालवा गुजरात तथा राजपूताना के बीच संघर्ष का विषय बना हुआ था।

६. ख़ानदेश

ख़ानदेश का राज्य ताप्ती नदी की घाटी में स्थित था। इस राज्य का संस्थापक मलिक राज था।[९६] फ़ीरोज़ तुग़लक ने उससे प्रसन्न होकर उसे थालनेर

९५ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ. ३५३-६६।

९६ यह अपने को ख़लीफा उमर फ़ारुक का वंशज बताता था। इस कारण यह वंश फ़ारुक़ी कहलाया।

तथा कुरोण्डे के जिले, जो दक्कन में थे, दिये[९७] और बाद में उसे सिपहसालार की उपाधि से विभूषित किया। फ़ीरोज़ की मृत्यु के पश्चात् वह स्वतन्त्र हो गया। १३९९ में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नसीर ख़ां गद्दी पर बैठा। इसने असीरगढ़ के दुर्ग पर अधिकार किया और ज़ैनाबाद और बुरहानपुर नगर बसाये।

प्रारम्भ ही से ख़ानदेश का संघर्ष गुजरात, मालवा तथा अहमदनगर से होता रहता था। नासिर ख़ां की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मीनार आदिल ख़ां गद्दी पर बैठा। वह इस वंश का प्रसिद्ध शासक हुआ। आदिल ख़ां के कोई पुत्र नहीं था। इस कारण उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा भाई दाऊद गद्दी पर बैठा। १५१० में दाऊद की मृत्यु के पश्चात्[९८] उत्तराधिकार सम्बन्धी संघर्ष हुए। जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय खानदेश की गद्दी पर मीरान मुहम्मद (मुहम्मद प्रथम) शासन करता था।[९९] इसकी माता गुजरात के बहादुर शाह की बहन थी।

दिल्ली से दूर होने के कारण खानदेश का उत्तर की राजनीति से कोई विशेष सम्पर्क नहीं था। किन्तु बहादुरशाह से सम्बन्ध होने के कारण और गुजरात के उत्कर्ष तथा दिल्ली के संघर्ष के समय ख़ानदेश गुजरात को शक्तिशाली बना सकता था।

७. कश्मीर

पंजाब के उत्तर-पश्चिम में कश्मीर का राज्य था। १३९९ में शाह मीर ने कश्मीर की गद्दी पर अधिकार कर वहां मुस्लिम राज्य की नींव डाली। इस वंश में जैनुल आबदीन (१४२०-७०) बहुत ही प्रसिद्ध सुल्तान हुआ। उसने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनायी जिसके कारण वह कश्मीर का अकबर कहा जाता है। उसने अपने पूर्व के सुल्तानों द्वारा नष्ट मन्दिरों का पुनर्निर्माण करने की आज्ञा दी तथा देश से निकाले गये ब्राह्मणों को पुनः वापस बुलाया।[१००]

९७ इस प्रश्न के विवाद के लिए देखिए कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ. २९४; शेरवानी, दि बहमनीज़ ऑफ दी डेकन, पृ. १०९, फुट नोट ५५; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. २८०, ३२७।

९८ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (३, पृ. ३९३) के अनुसार उसकी मृत्यु १५०८ में हुई; हिस्ट्री एण्ड कलचर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, देलही सल्तनत, पृ. १७२, के अनुसार १५१० ई. में।

९९ निज़ामुद्दीन अहमद (डे, तबकाते अकबरी, ३, पृ. ३४४) उसे आदिल ख़ां लिखता है, जो गलत है।

१०० फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. ४६९।

जैनुल आबदीन के पश्चात् उसका पुत्र हैदर शाह तथा पौत्र हसन कश्मीर के शासक हुए। १४८४ में हसन की मृत्यु के पश्चात् उसका सात वर्षीय पुत्र मुहम्मद गद्दी पर बैठा। इसने तीन बार कश्मीर की गद्दी खोयी तथा पुनः प्राप्त की। अन्त में चौथी बार सुल्तान बनने के पश्चात् उसकी मृत्यु हुई। इस समय तक चक तथा माकरी वंशीय सरदारों की शक्ति बढ़ गयी थी।[१०१] प्रारम्भ में तो इन दोनों में एकता थी किन्तु १५२८ के लगभग दोनों का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। चक सरदारों ने मुहम्मद को भगाकर १५२८ में उसके पुत्र इबराहीम को गद्दी पर बैठाया। इबराहीम ने क़ाज़ी चक को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। पराजित अब्दाल माकरी ने बाबर से सहायता प्राप्त की तथा क़ाज़ी चक को पराजित कर उसे कश्मीर से भगा दिया (१५२९)।

अब नज़ूक शाह गद्दी पर बैठा, किन्तु एक वर्ष पश्चात् वह भी गद्दी से हटा दिया गया। मुहम्मद चौथी तथा अन्तिम बार १५३० में कश्मीर की गद्दी पर बैठा। क़ाज़ी चक ने अपना स्थान पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया। किन्तु वह कश्मीर के बाहर भगा दिया गया। कुछ ही दिनों में वह पुनः कश्मीर लौट आया तथा कामरान द्वारा भेजी गयी सेना के विरुद्ध कश्मीर की रक्षा के लिए उसने अब्दाल का साथ दिया। मुग़ल पराजित हुए तथा पंजाब लौट गये।[१०२]

८. राजपूताना

१५२७ में खानवा के युद्ध में राणा सांगा की पराजय ने राजपूतों की एकता को समाप्त कर दिया था। मेवाड़ उस समय काणौता और बसवा तक फैला हुआ था। अजमेर, रणथम्भौर तथा उसके निकट के भागों पर मेवाड़ का अधिकार था। बूंदी राज्य के हाड़ा शासक भी मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करते थे।

राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज (सन्त मीरां का पति) की मृत्यु राणा सांगा के ही जीवन काल में हो गयी थी। राणा सांगा ने अपनी सर्वप्रिय रानी कर्मावती[१०३] के प्रभाव से अपने राज्य को अपने जीवन काल में ही अपने पुत्रों में विभाजित कर दिया। रणथम्भौर तथा पचास-साठ लाख की जागीर उन्होंने विक्रम तथा ऊदा को दे दी तथा शेष राज्य रत्न सिंह को दिया।

[१०१] कल्हण राजतरंगिनि में इन्हें चकरेसा तथा मारगेसा लिखता है।

[१०२] कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ. २८७।

[१०३] यह बूंदी के वंश से सम्बन्धित थी। इसे हादी करमेती भी कहते हैं। बाबर इसे पदमावती कहता है, जो गलत है। बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६१२।

राणा सांगा की इस भूल के परिणामस्वरूप मेवाड़ में आन्तरिक संघर्ष हुआ जिससे सिसौदिया वंश को बहुत भारी धक्का लगा। राणा सांगा के पश्चात् रत्न सिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। इस प्रश्न पर रत्न सिंह तथा हाड़ा रानी कर्मावती में विरोध हुआ। रानी ने विक्रमाजीत को गद्दी पर बैठाने के लिए बाबर से सहायता लेनी चाही।[१०४] किन्तु व्यस्तता के कारण बाबर मेवाड़ के पारिवारिक झगड़ों से लाभ नहीं उठा सका।

मेवाड़ की श्री धीरे-धीरे कम हो रही थी। रानी कर्मावती के चचेरे भाई हाड़ा सूरज मल तथा रत्न सिंह का झगड़ा भी गंभीर होता गया। जनवरी १५३१ में रत्न सिंह ने मालवा पर आक्रमण किया किन्तु वह मेवाड़ का गौरव नहीं लौटा सका। बहादुर शाह की शक्ति तथा यश बढ़ता जा रहा था। इसी बीच कुछ दिन पश्चात् शिकार खेलता हुआ रत्न सिंह बूंदी के निकट पहुँचा। आमंत्रण पर सूरज मल भी वहां पहुँचा। मार्च-अप्रैल १५३१ में दोनों आपस में लड़ मरे। इस तरह हाड़ा तथा सिसौदियों के परम्परागत बैर की नींव पड़ी।[१०५]

रत्न सिंह के पश्चात् उसका छोटा भाई विक्रमाजीत मेवाड़ की गद्दी पर बैठा (१५३१-३६)। रणथम्भौर का विवाद इस तरह समाप्त हो गया, किन्तु विक्रमाजीत की अयोग्यता के कारण सरदार उससे असन्तुष्ट हो गये तथा मेवाड़ का गौरव समाप्तप्राय हो गया।

मेवाड़ से दक्षिण बागड़ का राज्य था। १५३० में बहादुर शाह ने बागड़ पर चढ़ाई की। रावल उदय सिंह ने अपने जीवन काल में बागड़ का पूर्वी भाग अपने छोटे पुत्र जगमल को दे दिया था, जिससे उसका ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज अप्रसन्न रहता था। खानवा की लड़ाई में उदय सिंह की मृत्यु के पश्चात् पृथ्वीराज गद्दी पर बैठा और उसने पूर्वी भाग पर भी अधिकार कर लिया। बहादुर शाह ने पृथ्वीराज को उसके पिता द्वारा किये गये बँटवारे को मनवाने के लिए विवश किया। इस तरह पृथ्वीराज के छोटे भाई जगमल ने बासवाड़ा राज्य की स्थापना की।[१०६] इस तरह दो भागों में विभाजित होने के कारण बागड़ कमजोर हो गया था।[१०७]

१०४ बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ६१२-१३।
१०५ रघुवीर सिंह, पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ. २३-२४।
१०६ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, बासवाड़ा राज्य का इतिहास, पृ. ६४-७०; ओझा, डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. ८४-८६।
१०७ रघुवीर सिंह, पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ. २३।

मेवाड़ के पश्चिम सिरोही राज्य था जहां देवड़ा चौहान शासन करते थे। सिरोही के निकट जालौर तथा सांचौर पर मलिक सिकन्दर ख़ां का अधिकार था। इस प्रदेश के उत्तर मारवाड़ राज्य पर राव गांगा शासन कर रहा था। १५३० के अन्त तक जोधपुर राज्य का अधिकांश भाग राव गांगा के हाथ से निकल गया था और जोधपुर तथा सोजत ही उसके हाथ में रह गये थे। जुलाई १५३१ में राव गांगा के पुत्र मालदेव ने उसे मार डाला तथा स्वयं गद्दी पर बैठ गया।[१०८]

मारवाड़ के उत्तर जैसलमेर राज्य में तथा पूर्व में बीकानेर राज्य था जो राठौरों के अन्तर्गत था। यहां का शासक राव जैत सिंह था।[१०९] बीकानेर तथा जोधपुर के राज्यों के बीच स्थित नागौर परगने पर सरखेल ख़ां तथा उसके पुत्र दौलत ख़ां राज्य करते थे। मारवाड़ के पूर्व आम्बेर राज्य पर कछवाहे शासन करते थे तथा यहां का शासक हरिभक्त पृथ्वीराज था। इन राज्यों के अतिरिक्त राजपूताने में अन्य छोटे-छोटे राज्य थे जो निकट के राज्यों की अधीनता स्वीकार किये हुए थे।

राजपूताने के उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि वहां अब कोई शक्तिशाली व्यक्ति नहीं था जिसका नेतृत्व अधिकतर राजपूत स्वीकार करते। इसी समय गुजरात की गद्दी पर बैठने के पश्चात् बहादुर शाह ने राजपूताने की राजनीति में प्रवेश किया। वह बागड़, मेवाड़ तथा अन्य राज्यों के झगड़ों में हस्तक्षेप कर लाभ उठाना चाहता था। मेवाड़ आन्तरिक झगड़ों में भी फंसा हुआ था। जोधपुर का शासक गांगा हुमायूं के गद्दी पर बैठने के कुछ ही महीने पश्चात् अपने पुत्र मालदेव द्वारा मार डाला गया था। इस तरह राजपूताने से तात्कालिक भय तो नहीं था, किन्तु उस पर सतर्क दृष्टि रखना आवश्यक था।

इन परिस्थितियों में कैसे व्यक्ति की आवश्यकता थी

हुमायूं के गद्दी पर बैठने के समय उपर्युक्त परिस्थितियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं के सामने आन्तरिक और बाह्य दोनों समस्याएं जटिल और कठिन थीं। ऐसी परिस्थिति में एक ऐसे सर्वगुणसम्पन्न, असामान्य प्रतिभाशाली व्यक्ति की आवश्यकता थी जो उच्च कोटि का सैनिक हो तथा अपने बाहुबल से

[१०८] ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, १, पृ. २७०-८३; ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, १, पृ. १३२-३३।

[१०९] मुंशी देवी प्रसाद, राव जैतसीजी का जीवन चरित्र; ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, १, पृ. १२२-१३८।

सभी विघटनकारी शक्तियों को पराजित कर साम्राज्य को एक सूत्र में बांध सके; जो सैनिकों में उत्साह ला सके, जिस पर बाबर के उमरावों, अन्य अनुभवी सरदारों तथा सैनिकों को विश्वास हो तथा जिसके नेतृत्व में वे अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार रहें। राजकोष रिक्त था, इसके लिए एक उच्च कोटि के वित्त-विशेषज्ञ तथा अर्थशास्त्री की आवश्यकता थी। समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों में एक उच्च कोटि के कूटनीतिज्ञ की आवश्यकता थी, जो अफ़ग़ानों को चतुराई से अपनी तरफ मिलाकर राजकार्य का संचालन कर सके। ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो बहादुर शाह के उत्कर्ष को रोक सके, राजपूतों की दुर्बलता से लाभ उठा सके तथा प्रत्येक दृष्टि से सभी को सन्तुष्ट कर सके।

बाबर शासन का संगठन नहीं कर सका था। मुग़ल अभी तक विदेशी समझे जाते थे। बाबर के पुत्र तथा सम्बन्धी घबड़ाये हुए थे। नये मुग़ल सम्राट को मेधावी शासक होना चाहिए था, जो जनता तथा अमीरों को जीत सके।

वह समय एक ऐसा व्यक्ति चाहता था जो मुग़ल अमीरों, सरदारों तथा सम्राट के सम्बन्धियों का विश्वास प्राप्त कर सके, उनमें आशा तथा उत्साह का संचार कर सके और उन्हें सन्तुष्ट कर सके। इस तरह हुमायूं को अपने पिता से बहुत-सी कठिन समस्याएं उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थीं। क्या हुमायूं ऐसा सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति था जो इन परिस्थितियों का सामना कर सकता ?

हुमायूं के चरित्र की आलोचना हम बाद में करेंगे किन्तु इस सन्दर्भ में हमें उसके चरित्र की कुछ कमजोरियां याद रखनी चाहिए। हुमायूं एक सीधा-सादा साधारण-सा व्यक्ति था जिसे सर्वगुणसम्पन्न तथा मेधावी नहीं कहा जा सकता। वह एक बड़े पिता का पुत्र था। जिस समय उसका जन्म हुआ बाबर का कठिन जीवन समाप्तप्राय हो चुका था। हुमायूं लाड़-प्यार में पाला गया था। कठिन परिस्थितियां, जो मनुष्य का वास्तविक निर्माण करती हैं, हुमायूं को प्राप्त नहीं हुई थीं। दुर्भाग्यवश हुमायूं में हम उत्तरदायित्वहीनता भी पाते हैं। गद्दी पर बैठने के पूर्व उसने उसके कुछ उदाहरण स्पष्ट रूप से दिये जैसे—बाबर के पांचवें भारतीय अभियान में हुमायूं को उसके पास पहुँचने में देर लगाना तथा दिल्ली के कोष को लूटना। सैनिक योग्यता की दृष्टि से उसमें कठिन परिस्थिति में आनन्द लेने का गुण न था। वह कठिन परिस्थितियों से भागता था। हम उसे आराम से जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति कह सकते हैं जो कठिन परिस्थितियों को, जब तक वे टल सकें, टालना चाहता हो। उसमें सैनिक, प्रशासनिक तथा वित्तीय गुण और दूरदर्शिता की भी कमी थी। हुमायूं ने

कदाचित् अफ़ीम खाने की भी लत डाल ली थी और उससे पिण्ड छुड़ाना उसके लिए कठिन था । वह एक सुस्त व्यक्ति था जो किसी भी तरह के परिश्रम से बचना चाहता था ।

इन कठिन परिस्थितियों में हुमायूं कहां तक सफल होता यह कहना कठिन है । संयोगवश यदि वह अकबर का पुत्र होता तो कदाचित् उसे उन कठिनाइयों का सामना न करना पड़ा होता जो उसे करना पड़ा और सम्भवतः वह अपने को जहांगीर से अधिक योग्य शासक सिद्ध करता ।

४. प्रारम्भिक घटनाएं

राज्यारोहण

२६ दिसम्बर १५३०[1] को तेईस वर्ष की अवस्था में हुमायूं गद्दी पर बैठा। उसी दिन जामा मस्जिद में उसके नाम से खुत्बा पढ़ा गया तथा उत्सव मनाये गये। आगरा के बाज़ार तथा दूकानें भी इस अवसर पर अत्यन्त ही सुन्दर ढंग से सजायी गयीं। दरबार हुआ, जिसमें छोटे-बड़े सभी अमीरों तथा उपस्थित लोगों ने नये सम्राट को भेंट प्रस्तुत कीं। दरबार के नियम के अनुसार हुमायूं ने उन्हें पुराने पदों, नौकरियों, भूमि इत्यादि पर पुनः नियुक्त किया। उसी दिन हुमायूं ने अपने निकट सम्बन्धियों से भी भेंट की[2] और इन कठिन परिस्थितियों में उनका स्नेह पाने की आकांक्षा की। प्रथम ही दिन दान के रूप में स्वर्ण जनता में वितरित किया गया।[3] और इस तरह हुमायूं ने अपने राज्य का प्रथम

१ हुमायूं के गद्दी पर बैठने की तिथि कई तिथिपत्रों (Chronograms) से निश्चित होती है। अब्जद के आधार पर सभी का जोड़ ९३७ हि. होता है। ये तिथिपत्र 'कश्तीए ज़र' तथा 'ख़ैरुल मुलूक' (बादशाहों में सर्वोत्तम) हैं। अकबरनामा, १, पृ. १२१; तब्क़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ४४।

२ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११०।

३ अकबरनामा, १, पृ. १२१-२२। अबुल फ़ज़ल ने 'कश्ती' शब्द का प्रयोग किया है। कश्ती का अर्थ नाव भी है तथा समकोण चतुर्भुज के आकार का थाल भी। अबुल फ़ज़ल का यह वाक्य "हर्ष और उल्लास की नौकाएँ प्रसन्नता की नदी में चलवाकर सोने से भरी एक कश्ती उसी दिन बांट दी" स्पष्ट करता है कि उसका अर्थ थाल से है नाव से नहीं। डा. बनर्जी के अनुसार एक नाव सोने से भरकर वितरित की गयी (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २८)। डा. ईश्वरी प्रसाद, (हुमायूं पृ. ४१) लिखते हैं कि पूरी एक नाव सोने से भरकर जनता में वितरित कर दी गयी। तबक़ाते अकबरी के अनुवाद में श्री डे ने इसका अनुवाद इस तरह किया है: "स्वर्ण किश्तियों (Coffers) में बांटा गया।" (तबक़ाते अकबरी, डे २, पृ. ४४-४५)।

दिन प्रसन्नता और खुशी से प्रारम्भ किया, जैसे बाबर की मृत्यु और उसके बाद के उत्तराधिकार की घटनाएं भूली जा चुकी हों।

इसी समय हिन्दाल, जिसके देखने की आकांक्षा बाबर को अपनी मृत्यु तक बनी रही, काबुल से आगरा पहुँचा। हुमायूं ने उसका प्रेम से स्वागत किया तथा बाबर द्वारा छोड़े हुए कोष में से उसे दिया।[४]

राज्य का विभाजन

उत्सवों के पश्चात् नये सम्राट ने अपने भाइयों में राज्य का विभाजन किया। कामरान को काबुल और कन्धार, अस्करी को हुमायूं की पुरानी जागीर सम्भल तथा हिन्दाल को अलवर (मेवात)[५] का जिला प्राप्त हुआ। मिर्ज़ा सुलेमान को बदख़्शां के राज्य के अधिकार की स्वीकृति दी गयी। इसके अतिरिक्त जो लोग जिस पद पर थे वह तो उन्हें दिया ही गया, साथ ही उनकी जागीरों में भी वृद्धि की गयी।

कामरान तथा राज्य विभाजन—कामरान अपने प्राप्त भूभाग से सन्तुष्ट नहीं था। बाबर की मृत्यु के पश्चात् वह काबुल को अस्करी की देख-रेख में छोड़कर एक सेना के साथ भारत रवाना हुआ। पेशावर तथा लमगान पर अधिकार कर उसने पंजाब में प्रवेश किया (१५३१)। यहां उसने घोषणा की कि वह अपने भाई को बधाई देने तथा एक स्वामिभक्त सेवक की भांति अपना आदर प्रदर्शित करने जा रहा है, किन्तु वास्तव में उसका विचार पवित्र नहीं था तथा वह परिस्थिति से लाभ उठाकर अन्य भाग भी अपने अधिकार में करना चाहता था।[६]

४ गुलबदन बेगम के अनुसार हिन्दाल को अत्यधिक धन दिया गया। निज़ामुद्दीन के अनुसार दो खजाने उसे दिये गये। देखिए गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११०; तबक़ाते अकबरी, डे, पृ. ४४-४५, टिप्पणी; इलियट तथा डासन, ५, पृ. १८८।

५ अकबरनामा, १, पृ. १२३; तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ४४-४५। अकबरनामा में हिन्दाल की जागीर अलवर लिखी है। तबक़ाते अकबरी में मेवात है। दोनों का एक ही स्थान से तात्पर्य है। तारीख़े एलचीए निज़ामशाह के अनुसार जौनपुर मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा को दिया गया। यही लेखक कामरान के साम्राज्य प्राप्त करने के विषय में लिखता है कि यह भाग उसे पूर्व निश्चय के आधार पर प्राप्त हुआ। रिज़वी, हुमायूं, २, पृ. १०।

६ फ़िरिश्ता लिखता है: "उनका भाई कामरान मिर्ज़ा पंजाब के राज्य

ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूं के मन में पहले ही से सन्देह था। किन्तु इस परिस्थिति में जब उसके सामने अन्य समस्याएं थीं, वह अपने भाई से युद्ध करने के लिए तैयार नहीं था। उसने कामरान के पास एक दूत भेजकर उसे सूचित किया कि कन्धार के अतिरिक्त पेशावर और लमगान के भाग भी उसे दे दिये गये हैं। कामरान से उसने प्रार्थना की कि वह अपने राज्य की सीमा में लौट जाए। कामरान फिर भी इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ और वह पंजाब में आगे बढ़ता गया। मुल्तान पर अधिकार कर उसने लाहौर को घेर लिया। लाहौर इस समय हुमायूं के स्वामिभक्त सेवक मीर यूनुस अली के संरक्षण में था। कामरान के प्रयत्न करने पर भी लाहौर ने समर्पण नहीं किया। अन्य मार्ग न देखकर कामरान ने कूटनीति की शरण ली। अपने एक विश्वसनीय अफ़सर क़राचा बेग को उसने मीर यूनुस अली के पास भेजा। क़राचा बेग ने यह अफवाह फैला दी कि उसमें और कामरान में झगड़ा हो गया है तथा उसके प्राण खतरे में हैं। उसने यूनुस अली से शरण देने की प्रार्थना की। इस तरह क़राचा बेग ने कुछ साथियों के साथ नगर में प्रवेश किया। नगर में पहुँचकर उसने यूनुस अली से धीरे-धीरे मित्रता कर ली। एक दिन अचानक मीर यूनुस अली को उसने गिरफ्तार कर लिया तथा दुर्ग पर अधिकार कर कामरान की सेना को नगर में प्रविष्ट करा दिया। इस तरह धोखे से कामरान ने लाहौर पर अधिकार कर लिया।[७]

कामरान ने यूनुस अली के साथ बुरा व्यवहार नहीं किया। लाहौर पर अधिकार कर उसने उसे बन्दी गृह से बाहर निकाला तथा उसे लाहौर के गवर्नर का पद ग्रहण करने को कहा। किन्तु यूनुस अली कामरान के नाम पर लाहौर

पर अधिकार जमाने के लोभ में कुशल समाचार पूछने एवं बधाई देने के बहाने से हिन्द की ओर रवाना हुआ।" इसके वास्तविक शब्द इस प्रकार हैं :

برادرش کامران مرزا طمع در مملکت پنجاب کرده به بهانه پرسش و مبارکباد روانه هند گردید -

'बिरादरश कामरान मिर्ज़ा तमा दर मुमलिकते पंजाब करदा ब बहानये पुरसिश व मुबारकबाद रवाना हिन्द गरदीद।" (फ़िरिश्ता, पृ. ११३)।

फ़िरिश्ता, ब्रिग्स २, पृ. ७१। इसके समर्थन में अबुल फज़ल लिखता है कि कामरान अस्करी को काबुल देकर इस आशा से चल पड़ा कि सम्भवतः उसे कोई लाभ प्राप्त हो सके। (अकबरनामा, १, पृ. १२४-२५)।

७ अकबरनामा, १, पृ. १२४।

का शासन करने के लिए तैयार नहीं हुआ । कामरान ने उसे हुमायूं के पास जाने दिया । कामरान ने अपने आदमियों को पंजाब की सरकार के परगनों में नियुक्त कर दिया और सतलज तक के भाग अपने अधिकार में कर लिये । तदुपरान्त उसने अपने दूत को हुमायूं के पास भेजकर इन भागों को उसे प्रदान करने की प्रार्थना की । अन्य मार्ग न देखकर हुमायूं ने एक फ़रमान द्वारा कामरान को काबुल, क़न्धार तथा पंजाब का भाग भी दे दिया । कामरान ने हुमायूं को एक कविता में धन्यवाद दिया ।[८] उसकी कविता से प्रसन्न होकर अथवा उसकी इच्छा जानकर, उसे सन्तुष्ट करने के अभिप्राय से हुमायूं ने हिसार फ़िरोज़ा का जिला भी कामरान को दे दिया । बाबर ने हिसार फ़िरोज़ा का जिला अक्तूबर १५२५ में हुमायूं को उसके अफ़ग़ानों के ऊपर प्रथम विजय के पश्चात् दिया था ।

कामरान के व्यवहार की आलोचना—कामरान का यह व्यवहार मुग़लकाल की इस परिस्थिति में कहां तक ठीक था, इस पर विद्वान् एकमत नहीं हैं । डा. बनर्जी ने कामरान के इस व्यवहार का समर्थन किया है ।[९] विद्वान् लेखक के अनुसार हुमायूं के शासन के प्रथम आठ वर्षों में (१५३८ तक) हुमायूं और कामरान का सम्बन्ध अच्छा था । कामरान न तो राजगद्दी के लिए उत्तराधिकार का युद्ध करना चाहता था और न एक स्वतन्त्र राजकुमार की तरह शासन करना चाहता था ।[१०] हुमायूं ने मुल्तान, लाहौर तथा सतलज तक के पूर्वी जिलों के अतिरिक्त हिसार फ़िरोज़ा का जिला भी कामरान को दे दिया जो मुग़ल साम्राज्य के उत्तराधिकारी की जागीर समझी जाती थी । उस समय के सिक्कों में (जिसमें से आठ ब्रिटिश म्यूज़ियम में प्राप्त हैं) एक पर कामरान को बादशाह और हुमायूं को 'अस्सुल्तान अलआज़म' अर्थात् महान कहा गया है । इससे यह पता चलता है कि हुमायूं महान् था और कामरान उससे छोटा था । डा. बनर्जी

८ इस ग़ज़ल का अर्थ इस प्रकार है : "ईश्वर करे तेरा सौन्दर्य दिन प्रति-दिन बढ़ता रहे । तेरा भाग्य महान तथा शुभ हो, जो धूल तेरे मार्ग में उठे वह मुझ दुखी के नेत्रों का प्रकाश बन जाए, जो धूल लैला के मार्ग से उठती है, उसका स्थान मजनूं के नेत्रों में उठता है, जो कोई तेरे चारों तरफ परकार की भांति न फिरे वह इस क्षेत्र से बाहर चला जाए । हे कामरान, जब तक संसार कायम है, संसार की बादशाही हुमायूं के आधीन रहे ।" अकबरनामा, १, पृ. १२५-२६ ।

९ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ५३–५६ ।

१० "Kamran desired neither to contest the throne of Delhi nor to act as an independent prince." (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ५४) ।

लिखते हैं कि शाह सुल्तान इत्यादि उपाधियां इस काल में राजकुमारों तथा अमीरों को भी दी जाती थीं।

डा. बनर्जी के अनुसार अर्सकिन का यह कथन कि कामरान का भूभाग पर्याप्त था, सही नहीं है। बनर्जी लिखते हैं कि कामरान की जागीर कम थी। उसमें और जागीर मिलाने की आवश्यकता थी। मीर यूनुस अली ने कामरान का विरोध उसके उतावलेपन के कारण किया। वह बाबर की इच्छा से तथा हुमायूं की मौन सहमति से अनभिज्ञ था। डा. बनर्जी अबुल फ़ज़ल के इस मत का हवाला देते हैं जिसमें वह विभाजन के विषय में लिखता है कि हुमायूं ने बाबर की वसीयत के आधार पर कामरान की जागीर बढ़ा दी।

डा. बनर्जी का यह मत सही नहीं है। कामरान का व्यवहार अनुचित, उग्र और धूर्तता से भरा हुआ था। वह जानता था कि हुमायूं कठिन परिस्थिति में है। इससे लाभ उठाकर वह अधिक से अधिक जागीर अपने अधिकार में करना चाहता था। डा. बनर्जी ने अबुल फज़ल के मत को पूरा उद्धृत नहीं किया है। अबुल फ़ज़ल के वर्णन तथा 'धूर्ततापूर्वक', 'दिखाने की निष्ठा' इत्यादि शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट हो जाता है कि कामरान के विचार धूर्ततापूर्ण थे तथा वह परिस्थिति से लाभ उठाना चाहता था।[११]

अबुल फ़ज़ल स्पष्ट लिखता है कि "वह हिन्दुस्तान इस आशय से चल पड़ा

[११] अबुल फ़ज़ल के शब्द इस प्रकार हैं: "मिर्ज़ा कामरान ने अपने आदमियों को पंजाब की सरकार के परगने में नियुक्त किया और सतलज नदी तक के जो लुधियाना के नाम से प्रसिद्ध है, स्थान अपने अधिकार में कर लिये। तदुपरान्त उसने धूर्ततापूर्वक बुद्धिमान राजपूतों को (हज़रत जहांबानी की सेवा में) भेजकर निष्ठा एवं स्वामिभक्ति प्रदर्शित की और यह प्रार्थना की कि वह महाल उसे ही प्रदान कर दिया जाए। हज़रत जहांबानी ने कुछ तो इस कारण कि उसकी उदारता का समुद्र लहरें मार रहा था और कुछ इस कारण कि उन्हें हज़रत गेती सितानी फ़िरदौस मक़ानी की शिक्षा का ध्यान था, इस महाल को उसकी दिखावे की निष्ठा के कारण उसे प्रदान कर दिया और काबुल, क़न्धार तथा पंजाब के प्रदान किये जाने के सम्बन्ध में सम्मानित फ़रमान जारी कर दिया। मिर्ज़ा ने इस उदारता के प्रति जिसकी उसे आशा न थी, कृतज्ञता प्रकट की और सम्मानित दरबार में उपहार प्रेषित किये। इसके उपरान्त पत्र-व्यवहार के द्वार खुल गये और उसमें हज़रत जहांबानी की प्रशंसा में पद्यों की रचना की और उन्हें उनकी सेवा में भेजा।" (अकबरनामा, पृ. १२५)।

कि सम्भवत: उसे कोई लाभ प्राप्त हो सके।"[१२] उसकी कल्पनाओं के विषय में वह लिखता है कि "नष्टकारी कल्पनाओं से विनाश के अतिरिक्त प्राप्त ही क्या हो सकता है ?"[१३]

हुमायूं ने कामरान के भूभाग में वृद्धि इस कारण नहीं की कि वह उसे उपयुक्त समझता था, बल्कि इस कारण कि उसके सामने कोई अन्य मार्ग नहीं था। कामरान ने जिस भांति लाहौर पर अधिकार किया तथा पंजाब के भागों पर अपने आदमियों द्वारा शासन कराया, ये उसके इरादे को स्पष्ट बता रहे थे। क्या हुमायूं इतना मूर्ख था कि वह इसे नहीं समझ सकता था ? उसकी कविता के प्रभाव से उसने उसे हिसार फ़िरोज़ा नहीं दिया बल्कि वह कामरान को सन्तुष्ट करना चाहता था।

कामरान का व्यवहार प्रत्येक दृष्टि से निन्दनीय है। उसने नव स्थापित मुग़ल साम्राज्य के लिए ख़तरा उपस्थित कर दिया। यदि हुमायूं ने सतर्कता न दिखायी होती तो भयंकर गृहयुद्ध छिड़ सकता था। कामरान का व्यवहार पूर्णरूप से स्वार्थ-पूर्ण था। उसके भविष्य के कार्यों से स्पष्ट है कि उसमें भ्रातृ प्रेम तथा सद्भावना की कमी थी तथा वह हुमायूं की कठिनाइयों से लाभ उठाना चाहता था।

कामरान का व्यवहार निन्दनीय अवश्य था किन्तु वह न स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता था न हुमायूं से सम्बन्ध विच्छेद ही करना चाहता था। इसी कारण उसने न अपने नाम से खुत्बा पढ़वाया और न कोई ऐसा कार्य किया जिससे उसकी यह इच्छा प्रकट होती हो। वह युद्ध भी नहीं करना चाहता था। केवल प्रदर्शन द्वारा जितना राज्य प्राप्त हो सकता था वह उसे अधिकृत करना चाहता था।

साम्राज्य विभाजन की आलोचना—साम्राज्य को अपने भाइयों में विभाजित करना साम्राज्य के संगठन की दृष्टि से कहां तक उपयुक्त था, यह बताना कठिन है। कुछ विद्वानों ने इस विभाजन को हुमायूं की प्रथम भूल माना है।[१४] इनका मत है कि साम्राज्य का विभाजन कर हुमायूं ने अपनी

[१२] अकबरनामा, १, पृ. १२४-२५। अबुल फ़ज़ल के शब्द इस प्रकार हैं :

که شاید کارے تواند پیش برد -

कि शायद कारे तवानद पेश बुर्द।

[१३] वही। अबुल फ़ज़ल के शब्द ये हैं :

اندیشه تباه را جز تباهی شدن چه گریز -

अन्देशये तबाह रा जुज़ तबाही शुदन चे गुरेज़।

[१४] शर्मा, मुग़ल एम्पायर इन इण्डिया, १, पृ ८१।

शक्ति को कमजोर कर दिया और आगे चलकर जिन कठिनाइयों का उसे सामना करना पड़ा उसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व उसकी इसी भूल पर है।

इस विचार के पक्ष में कहा गया है कि कामरान ने हुमायूं के साम्राज्य और खैबर के उस पार के इस्लामी राज्यों के बीच में एक मध्यवर्ती राज्य स्थापित कर दिया। इससे हुमायूं का अन्य इस्लामी राज्यों से सम्बन्ध टूट गया, क्योंकि यह सम्पर्क पंजाब, क़न्धार, काबुल के ही मार्ग से स्थापित हो सकता था। इसके अतिरिक्त मुग़ल सेना के सैनिक इन्हीं भागों से आते थे। इस तरह इस विभाजन ने हुमायूं की सैनिक शक्ति का स्रोत ही काट दिया तथा भविष्य में उसकी सैनिक पराजयों का प्रारम्भ यहीं से हुआ।[१५]

हिसार फ़िरोज़ा दे देने से दिल्ली और लाहौर के मार्ग की नयी सैनिक सड़क पर कामरान का अधिकार हो गया। हुमायूं को ऐसे भाग प्राप्त हुए जहां मुग़ल विरोधी भावनाएं थीं तथा मुग़ल इन भागों में विदेशी समझे जाते थे। ऐसे भागों पर अधिकार रखने में कठिनाइयां थीं। राज्य का जो भाग कामरान को प्राप्त हुआ था वह इस दृष्टि से अधिक सुरक्षित था। विभाजन से हुमायूं के साम्राज्य का क्षेत्रफल तथा आय भी कम हो गयी थी। हुमायूं के भाइयों में सद्भावना का नितान्त अभाव था। इस विभाजन ने ऐसे व्यक्तियों के हाथ में ऐसी सुविधाएं प्रदान कीं जिनका प्रयोग उन्होंने हुमायूं के ही विरुद्ध किया।

साम्राज्य विभाजन का समर्थन—इन इतिहासकारों के अतिरिक्त अन्य इतिहासकारों ने हुमायूं के निर्णय का समर्थन किया है।[१६] उनका विचार है कि परिस्थितियों को देखते हुए विभाजन के अतिरिक्त हुमायूं के सामने अन्य मार्ग नहीं था। साम्राज्य विभाजन की परम्परा तैमूर के वंशजों में बहुत दिनों से चली आती थी। बाबर के पितामह की मृत्यु के पश्चात् बाबर के चचा और पिता में भी साम्राज्य विभाजन हुआ था। कदाचित् इसी परम्परा को ध्यान में रखकर बाबर ने भी साम्राज्य विभाजन का परामर्श दिया था। यदि हुमायूं ने इस परम्परा का त्याग किया होता तो वह एक नयी प्रणाली और नये नियम का प्रारम्भ करने वाला समझा जाता। इस तरह साम्राज्य का विभाजन कर हुमायूं ने अपने वंश की परम्परा का ही अनुगमन किया।

कामरान पांच वर्ष तक काबुल का शासक रह चुका था। वह वहां के लोगों से परिचित था। इस दृष्टि से हुमायूं इन भागों के लिए एक तरह से परदेशी

[१५] ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ४६।

[१६] त्रिपाठी, राइज एण्ड फाल ऑफ दि मुग़ल एम्पायर, पृ. ६८।

था। अफ़गान हुमायूं को बाबर का (जिसने अफ़ग़ान साम्राज्य को अपहृत किया था) उत्तराधिकारी समझकर उससे शत्रुता रखते थे। इस दृष्टि से कामरान के काबुल से, स्वतन्त्र शासन करने से, अफ़ग़ानों को अधिकार में रखना सरल था। भय केवल इतना था कि अफ़ग़ानों की शत्रुता का प्रयोग वह हुमायूं के विरुद्ध न करने लगे।

वास्तविक रूप से हुमायूं ने कामरान को ऐसे ही भाग दिये थे जो उसके पास पहले से थे अथवा जिन पर उसने शक्ति से अधिकार कर लिया था। यदि उसने इनकी वैधानिक स्वीकृति नहीं दी होती तो उसे कामरान के विरुद्ध शक्ति का प्रयोग करना पड़ता जिसके लिए वह तैयार नहीं था। यदि हुमायूं ने थोड़ी भी प्रतिक्रिया दिखायी होती तो गृहयुद्ध प्रारम्भ हो जाता।

इस तरह हुमायूं ने मुग़ल साम्राज्य को एक ऐसी विषम परिस्थिति से बचा लिया जिसने मुग़ल साम्राज्य को समाप्त कर दिया होता।

इन भागों को कामरान को दे देने से हुमायूं को एक लाभ यह भी हुआ कि वह उत्तर-पश्चिम सीमान्त की समस्या से मुक्त हो गया। अब मध्य एशिया, ईरान, ऊज़बेकों, जाटों, बलौचियों तथा अन्य कबायलियों की भी समस्या का उत्तरदायित्व कामरान पर आ पड़ा। हुमायूं इन समस्याओं से स्वतन्त्र होकर अब अपना साम्राज्य भारत के अन्य भागों में विस्तृत कर सकता था। पूर्व में अफ़ग़ानों का उत्कर्ष तथा दक्षिण-पश्चिम में बहादुर शाह का संगठन प्रत्यक्ष रूप में सिद्ध कर रहे थे कि पहले इन बाहरी शत्रुओं का सामना किया जाए।

बाबर ने अपनी आत्मकथा में कामरान तथा हुमायूं के बीच में साम्राज्य विभाजन तथा उसका अनुपात[१७] तो स्पष्ट कर दिया था किन्तु उसने अस्करी

[१७] हुमायूं ने बाबर द्वारा निर्धारित अनुपात प्रारम्भ में ही क्यों नहीं अपनाया? कदाचित् उसे भय था कि उसका इतना बड़ा साम्राज्य इस विभाजन से छोटा हो जाएगा। इसके अतिरिक्त उसको यह भी खयाल था कि यदि पूरा निश्चित भाग कामरान को दिया जाए तो उसी अनुपात में अस्करी तथा हिन्दाल को भी देना पड़ेगा। इस कारण उसने इस विषय में शान्त रहना ही अधिक उपयुक्त समझा। एक बात और महत्त्व की है। हुमायूं ने गद्दी पर बैठने के समय धन वितरित किया और अमीरों को उसने धन दिया। किन्तु कामरान, अस्करी, हिन्दाल को उसने कुछ नहीं दिया। हिन्दाल तो उसी बीच आ गया इस कारण उसे कुछ प्राप्त हो गया, किन्तु अन्य भाइयों को कुछ भी नहीं मिला। गद्दी पर बैठने के आठ-नौ महीने तक हुमायूं ने इस भूल में सुधार नहीं किया।

और हिन्दाल के विषय में कुछ नहीं लिखा। सम्भव है बाबर को कामरान की उग्रता का ज्ञान हो तथा उसे भय हो कि हुमायूं से उसका सम्बन्ध अच्छा नहीं रहेगा। इसी कारण जहां उसने कामरान का अनुपात निश्चित किया वहां अन्य भाइयों के लिए बाबर ने हुमायूं से केवल यही कहा था कि वह उनके साथ अच्छा व्यवहार करे।

राज्यारोहण के समय हुमायूं के कोई पुत्र न था। इस दृष्टि से उसके भाई ही उत्तराधिकारी थे। कामरान उनमें सबसे बड़ा था और कदाचित् हुमायूं के मन में इस तरह की भावना आयी हो कि वह कामरान को ही अपने पुत्र होने तक अपना उत्तराधिकारी समझे। हिसार फ़िरोज़ा की जागीर देने से यह और भी स्पष्ट हो जाता है।

अस्करी तथा हिन्दाल—अस्करी तथा हिन्दाल को दिल्ली के निकट सम्भल तथा मेवात की जागीरें हुमायूं ने कदाचित् इस कारण दीं कि हुमायूं इन पर दृष्टि रख सके। कामरान द्वारा पंजाब पर अधिकार करने की प्रगति से इन भाइयों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और ये शान्त रहे। कदाचित् इन्हें यह आशा थी कि कामरान की जागीरों के बढ़ने के साथ उन्हें भी कुछ प्राप्त होगा, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसके विपरीत अस्करी का तो नुकसान ही हुआ क्योंकि कामरान ने अस्करी को क़न्धार तथा जमीनदावर से यह कहकर हटा दिया कि वह हज़ारा लोगों को रोक नहीं सका।[१८] किन्तु दोनों भाई सन्तुष्ट न हुए तथा जहां भी अवसर मिला, इन्होंने विद्रोह करने का प्रयत्न किया।

कालिंजर की विजय

कालिंजर[१९] का दुर्ग बुंदेलखण्ड के दक्षिण-पूर्वी भाग में एक पहाड़ी पर स्थित है। बनावट तथा स्थिति की दृष्टि से मध्ययुग में यह एक शक्तिशाली दुर्ग समझा जाता था। १०२२ में ग़ज़नी के महमूद ने कालिंजर पर आक्रमण किया। उस समय दुर्ग में पांच लाख मनुष्य, बीस हजार जानवर तथा पांच सौ हाथी

१८ अकबरनामा, १, पृ. १२६।

१९ कालिंजर, तहसील गिरवान, जिला बांदा, उत्तर प्रदेश में स्थित है। कालिंजर का दुर्ग बांदा से ३५ मील पर नगोड़ के प्राचीन मार्ग पर स्थित है। (डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर, बांदा, १९०९, पृ. २३४) इस दुर्ग का नाम शिव के 'कालिंजर' नाम पर रखा गया। यह नाम महाभारत, शिव पुराण तथा टालेमी (Ptolemy) की पुस्तकों में मिलता है।

थे।[२०] राजपूतों तथा दिल्ली के सुल्तानों में इसके लिए बार-बार संघर्ष होता रहा। कभी यह राजपूतों के अधिकार में रहता कभी तुर्कों के। दिल्ली के सुल्तानों ने भी कई बार कालिंजर पर आक्रमण किया था। इससे इसके महत्त्व का अनुमान लगाया जा सकता है। यह ऐसे स्थान पर स्थित था जहां से मालवा में प्रवेश किया जा सकता था। मालवा पर बहादुर शाह का अधिकार हो जाने से इस दुर्ग का महत्त्व मुग़लों के लिए और भी बढ़ गया था।[२१]

गद्दी पर बैठने के पश्चात् हुमायूं छः-सात महीने आगरा में रुका रहा। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने के पश्चात् १५३१ में[२२] हुमायूं ने कालिंजर के दुर्ग पर आक्रमण किया। कदाचित् राजकुमार की हैसियत से हुमायूं ने कालिंजर पर आक्रमण किया था, किन्तु उस समय सन्धि हो गयी थी। कालिंजर पर चन्देल शासन करते थे। राजा प्रताप रुद्र ने दुर्ग की रक्षा करने का प्रयत्न किया, किन्तु एक महीने से अधिक वह उसकी रक्षा न कर सका।[२३] अन्त में उसने हुमायूं

[२०] नाज़िम, सुल्तान महमूद, पृ. ११३।

[२१] डा. ईश्वरी प्रसाद ने यह मत व्यक्त किया है कि हुमायूं के कालिंजर पर आक्रमण करने का कारण वास्तविक रूप से गुजरात के बहादुर शाह पर आक्रमण करने की पृष्ठभूमि थी, क्योंकि कालिंजर मालवा पर आक्रमण करने के लिए सुविधाजनक था। गुजरात विजय की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं कि हुमायूं ने इस तरह बहादुर के विरुद्ध पहली विजय में सफलता प्राप्त की। (ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ४९)।

डा. रामप्रसाद त्रिपाठी का विचार है कि कालिंजर के शासक ने कालपी पर अधिकार करना चाहा (अगस्त १५३१)। बहादुर शाह की मालवा विजय से कालपी का महत्त्व बढ़ गया। हुमायूं को राजा के व्यवहार से सन्देह हुआ तथा उसने कालिंजर पर आक्रमण किया (त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फाल ऑफ़ दि मुग़ल एम्पायर, पृ. ६८-६९)।

[२२] कालिंजर के आक्रमण की तिथि के विषय में समकालीन इतिहासकारों में मतभेद है। अबुल फ़ज़ल तथा अधिकतर समकालीन इतिहासकार लिखते हैं कि कालिंजर के राजा ने ९३७ हि. (१५३०-३१) में समर्पण किया। इसके विपरीत तारीख़े अलफ़ी का लेखक इसे दो वर्ष बाद का बताता है। तारीख़ अलफ़ी के अनुसार इस दुर्ग का घेरा केवल थोड़े समय के लिए था। इससे यह स्पष्ट है कि दो वर्ष तक इसका घेरा नहीं चला होगा। इस बात पर ध्यान देने से हमें अबुल फ़ज़ल की तिथि सही मालूम होती है (अकबरनामा, पृ. १२३; तारीख़े अलफ़ी; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ३६)।

[२३] अकबरनामा, १, पृ. १२३-२४।

की अधीनता स्वीकार कर ली तथा उसे बारह मन (६७२० तोला) सोना दिया। अफ़ग़ानों के विद्रोह के कारण हुमायूं ने इन शर्तों को स्वीकार कर लिया। कालिंजर का अभियान सम्राट होने के पश्चात् हुमायूं का प्रथम अभियान था। कालिंजर का दुर्ग अपनी शक्ति के लिए तथा चन्देल अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे। इस विजय से हुमायूं का मान तथा प्रतिष्ठा बढ़ी।

अफ़ग़ानों से प्रथम संघर्ष

जिस समय हुमायूं कालिंजर के दुर्ग को घेरे हुए था उसे अफ़ग़ानों की सक्रियता की सूचना मिली। महमूद लोदी, बीबन तथा बायज़ीद के नेतृत्व में उन्होंने बिहार से मुग़ल साम्राज्य के पूर्वी भागों में प्रवेश किया। उन्होंने जौनपुर के मुग़ल गवर्नर जुनायद बरलास को भगाकर उस पर अधिकार कर लिया। यहां से आगे बढ़कर ये लोग बाराबंकी जिले के दादरा[२४] नामक स्थान तक पहुँचे। कालिंजर के दुर्ग को अधीन करके हुमायूं उनकी तरफ अग्रसर हुआ।[२५]

२४ समकालीन इतिहासकारों ने जिस स्थान पर युद्ध हुआ उसके भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। इलहदाद फैजी सरहिन्दी इसे दादरा लिखता है। अब्बास लखनऊ के निकट (इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३४६), जौहर के अनुसार गोमती नदी के तट पर दौरा नामक स्थान पर (स्टीवर्ट का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. ३; अर्सकिन, २, पृ. १०, टिप्पणी) आईने अकबरी के अनुसार (भाग २, अंग्रेजी अनुवाद, पृ. १००) दादरा लखनऊ सरकार का एक महाल था। होदीवाला के अनुसार यह जौनपुर से १५ मील उत्तर स्थित देउनरू (Deunru) नामक गांव है (होदीवाला, १, पृ. ४५०)। डा. ईश्वरी प्रसाद ने (हुमायूं, पृ. ५०, टिप्पणी, १) जौनपुर से ४८ मील उत्तर बताया है।

आजकल यह बाराबंकी जिले के नवाबगंज तहसील का एक गांव है जो बाराबंकी जिले से ६ मील दक्षिण-पूर्व स्थित है। डा. क़ानूनगो इसे दौरा लिखते हैं। हस्तलिखित प्रतियों में دادره (ददरा) तथा دوره (दौरा) दोनों मिलते हैं।

२५ कालिंजर के युद्ध के पश्चात् हुमायूं की गतिविधि के विषय में समकालीन इतिहासकार एकमत नहीं हैं। आधुनिक इतिहासकारों ने इस कारण भिन्न-भिन्न मत प्रगट किये हैं। डा. त्रिपाठी के अनुसार हुमायूं ने सितम्बर १५३१ में कालिंजर दुर्ग को अधीन कर लिया। यहां से वह चुनार आया (फ़रवरी १५३२)। यहां से कामरान के उत्तर-पश्चिम से अभियान की सूचना पाकर वह बिना चुनार पर अधिकार किये हुए आगरा चला गया। यहां कामरान से साम्राज्य विभाजन की

गंगा पार कर गोमती के तट पर दादरा में अफ़ग़ानों से भीषण युद्ध कर उन्हें परास्त किया।[२६] अफ़ग़ान सेना भाग खड़ी हुई तथा उनके दो प्रमुख नेता शेख बायज़ीद तथा इबराहीम यूसुफ़ ख़ैल मारे गये (जुलाई-अगस्त १५३१)।

शेर ख़ां तथा दादरा—शेर ख़ां का दादरा के युद्ध में क्या भाग था ? इस विषय में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। अब्बास ख़ां सेरवानी ने इसका बृहत् वर्णन किया है। उसके अनुसार शेर ख़ां ने इस युद्ध में अफ़ग़ानों के साथ विश्वासघात किया। वह महमूद लोदी के बिहार आ जाने के पश्चात् अपनी जागीर में चला गया था। महमूद लोदी ने उसकी जागीर में जाकर उससे इस युद्ध में भाग लेने की प्रार्थना की तथा उसे साथ लेकर मुग़लों के विरुद्ध बढ़ा। शेर ख़ां युद्ध में सम्मिलित तो जरूर हुआ पर उसने छिपे तौर से हिन्दू बेग को एक पत्र लिखा जिसमें उसने अपनी सेना को युद्ध के समय हटा लेने का वचन दिया। जिस समय युद्ध हुआ उस समय शेर ख़ां ने अपनी सेना हटा ली और इस

समस्या का समाधान कर पुनः अफ़ग़ानों के विरुद्ध बढ़ा तथा दौरा नामक स्थान पर उन्हें पराजित किया (अक्टूबर १५३२)। (त्रिपाठी, राइज एण्ड फाल ऑफ दि मुग़ल एम्पायर, पृ. ६८–७० तथा ११३)।

डा. त्रिपाठी ने अपना मत अकबरनामा पर आधारित किया है (अकबरनामा, पृ. १२४)। डा. ईश्वरी प्रसाद (हुमायूं, पृ. ४६) के अनुसार कालिंजर से हुमायूं अफ़ग़ानों के विरुद्ध बढ़ा तथा दौरा की लड़ाई हुई। डा. बनर्जी (हुमायूं, १, पृ. ३७) लिखते हैं कि कालिंजर से हुमायूं सीधे चुनार गया। किन्तु चुनार में क्या हुआ इसका वे जिक्र नहीं करते। अफ़ग़ानों की स्थिति पर प्रकाश डालने के पश्चात् वे सीधे दादरा की लड़ाई का वर्णन करते हैं। उनके अनुसार कालिंजर के दुर्ग पर अधिकार जुलाई-अगस्त १५३१ में तथा दादरा का युद्ध अगस्त १५३२ में हुआ।

२६ दादरा के युद्ध की तिथि के विषय में समकालीन इतिहासकार एकमत नहीं हैं। तारीख़े अलफ़ी में प्रथम वर्ष की घटनाओं में इसका उल्लेख है। गुलबदन बेगम के अनुसार हुमायूं ने बाबर की मृत्यु के ६ माह उपरान्त बीबन एवं बायज़ीद के विरुद्ध आक्रमण किया (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १११-१२)। जौहर के अनुसार हुमायूं कालिंजर से सीधे अफ़ग़ानों के विरुद्ध बढ़ा तथा यह घटना उसके गद्दी पर बैठने के पहले वर्ष हुई (तज़कीराते अल वाक़ियाते जौहर का स्टीवर्ट द्वारा अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ. ३)। वह उसकी तिथि ९३८ हि. लिखता है। निज़ामुद्दीन अहमद के अनुसार कालिंजर से हुमायूं अफ़ग़ानों के विरुद्ध आगे

तरह अफ़ग़ानों की पराजय का वह एक प्रमुख कारण बना। अब्बास के इस मत का समर्थन निज़ामुद्दीन अहमद, बदायूनी और फ़िरिश्ता ने भी किया है।[२७]

डा. क़ानूनगो अब्बास के इस मत से सहमत नहीं हैं। वे लिखते हैं कि शेर ख़ां के इस प्रशंसक ने ही उसके चरित्र और इज़्ज़त को सबसे अधिक हानि पहुँचायी है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित दलीलें दी हैं।[२८]

(१) गुलबदन बेग़म तथा जौहर अफ़ग़ानों की पराजय के वर्णन के साथ शेर ख़ां के नाम का उल्लेख नहीं करते।

(२) निज़ामुद्दीन अहमद, बदायूनी तथा फिरिश्ता, हुमायूं के राज्यकाल में अफग़ानों के विद्रोह के उल्लेख के समय शेर ख़ां का जिक्र नहीं करते, यद्यपि ये ही लेखक शेर ख़ां के अध्याय में इसका उल्लेख करते हैं।[२९]

(३) सभी समकालीन इतिहासकारों ने शेर ख़ां के विश्वासघात की कहानी अब्बास ख़ां से ली है। इस घटना का समकालीन इतिहासकार केवल अब्बास है। बाद के सभी इतिहासकारों ने उसकी नकल की है।

(४) एलफिन्स्टन ने कदाचित् इसको अस्वीकार कर दिया है।[३०]

बढ़ा। (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ४७-४८ तथा १५८-५९)। फ़िरिश्ता के अनुसार भी हुमायूं ने कालिंजर से अफ़ग़ानों पर आक्रमण किया (फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ७२)। अबुल फ़ज़ल के अनुसार कालिंजर पर हुमायूं ने गद्दी पर बैठने के पांच-छः महीने बाद आक्रमण किया। वहां से उसने चुनार पर आक्रमण किया। शेर ख़ां ने सुलह कर ली। इसके पश्चात् अफ़ग़ानों पर हुमायूं ने ९३९ हि. (१५३२-३३) में आक्रमण कर उन्हें पराजित किया (अकबरनामा, १, पृ. १२३-२४)। डा. बनर्जी के अनुसार दादरा का युद्ध अगस्त १५३२ में, डा. क़ानूनगो तथा डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार जुलाई १५३१ तथा डा. रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार नवम्बर-दिसम्बर, १५३२ में हुआ (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ४२; क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. ७४; त्रिपाठी, राइज एण्ड फाल ऑफ दि मुग़ल एम्पायर, पृ. ११३)।

२७ तारीखे शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३४९; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १५९; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १११-१२; अर्सकिन, (२, पृ. १०) ने उसे विश्वासघाती कहा है।

२८ क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. ७२–७५।

२९ बदायूनी, रेकिंग, पृ. ४५१; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ४७-४८ तथा १५९; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ७२ तथा १११-१२।

३० एलफिन्स्टन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. ४४३।

(५) राष्ट्रीय पराजय के कारणों में विश्वासघात प्राय: जोड़ दिया जाता है।

(६) शेर खां अफ़ग़ान सेना में गौण स्थान लेने के लिए तैयार नहीं था। वह जानता था कि उसकी सैनिक प्रसिद्धि बीबन या बायज़ीद के बराबर नहीं थी। इस कारण गौण स्थान प्राप्त करने के स्थान पर उसने इस अभियान में भाग न लेना ही ठीक समझा।

(७) शेर खां को इस समय तक राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय स्वत्व का ज्ञान नहीं था। वह अपने निजी स्वार्थ की ही दृष्टि से मुग़लों से बैर करना नहीं चाहता था। हृदय में कदाचित् वह लोदी तथा फ़रमूली कबीलों के विनाश की कामना करता था, क्योंकि इन्हीं के कारण वह अपना विकास नहीं कर पा रहा था।

(८) चुनार को मुग़लों से बचाने के लिए वह तटस्थ नीति अपनाना चाहता था।

समकालीन इतिहासकारों तथा परिस्थितियों के अध्ययन के उपरान्त डा. क़ानूनगो के मत को स्वीकार करना कठिन है। दादरा के युद्ध के समय बीबन, बायज़ीद या महमूद लोदी के सामने शेर खां का कोई स्थान नहीं था। डा. कानूनगो इस बात को स्वयं स्वीकार करते हैं। फिर महमूद लोदी के अधीन युद्ध करने में शेर खां कैसे अपनी मानहानि समझता? गुलबदन बेगम तथा जौहर, मुग़ल वंश से सम्बन्धित होने के कारण, यह लिखना हेय समझते थे कि हुमायूं की विजय वीरता से नहीं वरन् शेर खां के सहयोग (अफ़ग़ानों के प्रति विश्वासघात) से हुई। इसी कारण उन्होंने इसका उल्लेख नहीं किया है।

प्रत्येक विश्वासघात की घटना को राष्ट्रीय पराजय के कारण के रूप में अस्वीकार कर देना अथवा किसी घटना का किसी विशेष इतिहासकार द्वारा उल्लेख न किये जाने के कारण यह कहना कि वह हुई ही नहीं अथवा कई इतिहासकारों द्वारा उसी घटना के वर्णन को नकल कहकर अस्वीकार कर देना गलत तर्क है।[३१]

निज़ामुद्दीन, फ़िरिश्ता तथा बदायूनी ने हुमायूं तथा शेरशाह के राज्यकाल का अलग-अलग वर्णन किया है। हुमायूं के राज्यकाल में इस घटना का वर्णन इसलिए नहीं किया गया है क्योंकि वे दो स्थानों पर इसका वर्णन नहीं करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त विश्वासघात का उल्लेख शेर खां के चरित्र वर्णन से अधिक सम्बन्धित था। फिर इन्हीं लेखकों द्वारा एक ही पुस्तक में वर्णित घटना कैसे अस्वीकार की जा सकती है?

[३१] बनर्जी, हुमायूं, १ पृ. ४५।

यह संघर्ष अफ़ग़ानों का एक महत्त्वपूर्ण अभियान था। इसका नेतृत्व लोदी वंश का उत्तराधिकारी कर रहा था। इसमें सभी प्रमुख अफ़ग़ान सरदार सम्मिलित थे। ऐसी परिस्थिति में शेर ख़ां का इससे अलग रहना असम्भव था। वह जानता था कि यदि वह उनका साथ नहीं देगा तो पुनः कभी भी उनका सहयोग नहीं प्राप्त कर सकेगा। मुग़लों से मिलने की बात गुप्त थी। उसे आशा थी कि अफ़ग़ानों को इसका पता नहीं चलेगा।

अब्बास ख़ां शेर ख़ां का प्रशंसक है। उसने शेर ख़ां के कई अनुचित कार्यों का समर्थन किया है।[३२] डा. कानूनगो का यह कथन कि शेरशाह के सबसे बड़े प्रशंसक (अब्बास ख़ां) ने उसकी सबसे बड़ी मानहानि की है, सत्य नहीं है। अपना इतिहास लिखते समय अब्बास जानता था कि शेर ख़ां के विश्वासघात ने वास्तविक रूप में शेर ख़ां तथा अफ़ग़ानों का लाभ ही किया, क्योंकि कुछ ही वर्षों में उसने अपनी शक्ति को दृढ़ कर लिया। इस कारण उसे छिपाने के बजाय उसका उल्लेख कर उसने अपने चरित्रनायक की दूरदर्शिता प्रमाणित की।

डा. क़ानूनगो के विचार के विरुद्ध, डा. बनर्जी, डा. ईश्वरी प्रसाद तथा डा. रामप्रसाद त्रिपाठी ने अब्बास के वर्णन को स्वीकार किया है तथा वे मानते हैं कि शेर ख़ां ने दादरा के युद्ध में अफ़ग़ानों को धोखा दिया।[३३]

वास्तविक रूप में शेर ख़ां की स्थिति द्विविधापूर्ण थी। चुनार पर उसका अधिकार मुग़लों के अधीन व्यक्ति की तरह था। शेर ख़ां ने हिन्दू बेग के साथ पत्र-व्यवहार में चुनार पर मुग़लों के दावे को अस्वीकार नहीं किया।[३४] सहसराम, खवासपुर के जागीरदार के नाते उसने महमूद लोदी की अधीनता स्वीकार की थी। इस समय इनके दोनों स्वामियों में संघर्ष था इस परिस्थिति में शेर ख़ां ने तटस्थ रहने का विचार किया किन्तु जबरदस्ती उसे महमूद लोदी के साथ जाना पड़ा। उसने अनुभव किया कि उसका यह कार्य ठीक नहीं है, क्योंकि अगर मुग़ल विजयी हुए तो उसे चुनार छोड़ना पड़ेगा। अफ़ग़ानों की विजय से उसकी स्थिति में विशेष परिवर्तन की कोई आशा नहीं थी, क्योंकि अफ़ग़ानों में उसका स्थान बीबन, बायज़ीद तथा महमूद लोदी के बाद आता था। इस कारण वह महमूद लोदी के साथ गया जरूर, किन्तु साथ ही उसने हिन्दू बेग

३२ उदाहरणतया रायसीन में राजपूतों तथा पूरनमल की हत्या तथा रोहतास विजय।

३३ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ४४–४७; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ४९-५०; त्रिपाठी, राइज एण्ड फाल ऑफ दि मुग़ल एम्पायर, पृ. ७०।

३४ तारीख़े दाऊदी; तारीख़े सलातीने अफ़ग़ाना।

के द्वारा हुमायूं को सूचित कर दिया कि उसने विवश होकर महमूद लोदी का साथ दिया है किन्तु है वह मुग़लों के साथ।

दादरा के युद्ध में तटस्थ रहते हुए भी वह वहां मुग़लों से न मिलकर सीधा अपनी जागीर में गया। इस तरह उसने तटस्थ रहने का प्रयत्न किया। शेर ख़ां को युद्ध के परिणाम का निश्चय नहीं था। यदि अफ़ग़ान विजयी भी होते तो वह शेर ख़ां को पूर्ण सहयोग न देने के कारण ताड़ना देते, किन्तु उसे विश्वासघाती नहीं कहते।

दादरा के युद्ध का परिणाम—दादरा के युद्ध ने अफ़ग़ानों के जीवन में तथा मुग़लों की पूर्वी समस्या में एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। बायज़ीद, इबराहीम यूसूफ़ ख़ैल, इत्यादि प्रमुख अमीरों की मृत्यु ने अफ़ग़ानों की शक्ति को, जो पानीपत के युद्ध के पश्चात् पुनः जागृत हो रही थी, तोड़ डाला। इससे मुग़लों को पूर्वी भागों पर अधिकार करने में सुविधा हुई। गंगा तथा घाघरा के बीच का भाग मुग़लों के अधिकार में आ गया तथा हुमायूं ने वहां जुनायद बरलास को अपना गवर्नर नियुक्त किया।[३५] उसने हिन्दू बेग को शेर ख़ां से वार्ता करने के लिए छोड़ दिया।[३६] महमूद लोदी इस युद्ध के पश्चात् इतना निराश हुआ कि उसने राजनीति में भाग लेने का विचार ही त्याग दिया। वह पटना में साधारण व्यक्ति की भांति जीवन व्यतीत करने लगा तथा यहीं ९४९ हिजरी (१५४२-४३) में उसकी मृत्यु हो गयी।[३७] बहुत से अफ़ग़ान सरदार यहां से भागकर बहादुर शाह के पास गुजरात गये। अब अफ़ग़ानों के नेतृत्व के लिए केवल शेर ख़ां रह गया और उसको स्वतन्त्र रूप से अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने का अवसर प्राप्त हुआ।

चुनार के दुर्ग पर आक्रमण

दादरा के युद्ध के पश्चात् हुमायूं आगरा चला गया।[३८] दादरा में अफ़ग़ानों की पराजय के पश्चात् उसे अफ़ग़ानों का पीछा करना चाहिए था तथा उनकी शक्ति

[३५] अकबरनामा, १, पृ. १२४।

[३६] तारीख़े शेरशाही, इलियट और डासन, ४, पृ. ३५०।

[३७] तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १५९-६०।

[३८] अब्बास लिखता है कि दादरा के पश्चात् हुमायूं ने हिन्दू बेग को शेर ख़ां से चुनार प्राप्त करने के लिए भेजा। शेर ख़ां ने इनकार कर दिया। इसके पश्चात् हुमायूं ने चुनार पर आक्रमण किया। (तारीख़े शेरशाही, इलियट और डासन, ४, पृ. ३५०)। निज़ामुद्दीन (तबकाते अकबरी, डे, पृ. १६०)

को पूर्ण रूप से चूर कर उनके द्वारा अधिकृत भागों पर अधिकार कर लेना चाहिए था। इस भूल के कारण उसे भविष्य में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। शेर ख़ां से चुनार के दुर्ग पर अधिकार करने के विषय में वार्ता करने के लिए हुमायूं ने हिन्दू बेग को नियुक्त किया।[३९] हिन्दू बेग ने वार्ता प्रारम्भ की। शेर ख़ां चुनार को समर्पित करने के लिए तैयार नहीं था। हिन्दू बेग ने शेर ख़ां के इन विचारों की सूचना हुमायूं को दी। चुनार के दुर्ग की स्थिति और महत्ता तथा शेर ख़ां के व्यवहार से खिन्न होकर हुमायूं चुनार पर अधिकार करने के लिए आगरा से रवाना हुआ।[४०] अपने आगे उसने अग्रगामी दल के रूप में कुछ अमीरों को भेजा। उन्होंने वहां पहुँचकर दुर्ग के घेरे का प्रबन्ध किया।

हुमायूं लगभग एक वर्ष आगरा में रहा था। इस बीच ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अपने दरबार में कुछ नियम चलाये जिसका वर्णन ख़्वन्दमीर ने क़ानूने हुमायूं में किया है।[४१]

चुनार का दुर्ग बनारस और मीरजापुर के बीच गंगा नदी के तट पर स्थित है। यह दुर्ग एक विशाल चट्टान पर है। मध्ययुग के महत्त्वपूर्ण दुर्गों में इसकी गणना थी। परम्पराओं के अनुसार यह दुर्ग बहुत ही पुराना है तथा उज्जैन के विक्रमादित्य के भाई भर्तृहरि ने यहां अपना आश्रम बनाया था। सोलहवीं शताब्दी में इबराहीम लोदी ने यहां राजकोष रखा जिससे इसका महत्त्व और बढ़ गया।

लगभग चार महीने (सितम्बर से दिसम्बर १५३२) हुमायूं चुनार के दुर्ग को घेरे रहा। उसकी सैन्य योजना नाकेबन्दी कर दुर्ग में रहने वालों के लिए ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करदी थी जिससे वे समर्पण कर दें। कभी-कभी रात या दिन में छोटे-छोटे आक्रमण भी होते रहते थे। शेर ख़ां अपने दूसरे लड़के जलाल ख़ां को इसकी रक्षा के लिए छोड़कर स्वयं भरकुन्दा[४२] की तरफ (बिहार में) चला गया था। जलाल ख़ां ने बहादुरी से दुर्ग की रक्षा की। दुर्ग के बाहर रहने से शेर ख़ां को अनेक सुविधाएँ थीं। वह दुर्ग में आवश्यक वस्तुओं

स्पष्ट लिखता है कि अफ़ग़ानों से युद्ध कर हुमायूं आगरा चला गया।

३९ तारीख़े शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३५०।

४० अब्बास, तारीख़े शेरशाही, इलियट और डासन, ४, पृ. ३५०; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १६०; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ७२।

४१ ख़्वन्दमीर, क़ानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. १५–३५।

४२ भरकुन्दा, नहरकुन्दा या वरकुन्दा। इलियट और डासन, ४, पृ. ३५०; होदीवाला, १, पृ. ४५०; आईने अकबरी, २, पृ. १५३।

को पहुँचाता रहा। यह दुर्ग इतना शक्तिशाली था कि आवश्यक वस्तुओं के पहुँचते रहने पर शत्रु का उस पर अधिकार करना सरल नहीं था। इसके अतिरिक्त बाहर से बिहार तथा मुग़लों की गतिविधि पर भी दृष्टि रखने में सुविधा थी। दुर्ग के बाहर रहने से उसके पतन होने पर उस पर कोई आंच नहीं आती तथा उसे बन्दी बनाये जाने का भी भय नहीं था।

इसी समय सूचना मिली कि बहादुर शाह ने मालवा पर अधिकार करने के पश्चात् एक शक्तिशाली सेना के साथ चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया है। बहादुर शाह की दृष्टि मुग़ल साम्राज्य पर भी थी। हुमायूं इससे चिन्तित हुआ क्योंकि उसकी अनुपस्थिति में यदि बहादुर शाह दिल्ली, आगरा अथवा पंजाब के भागों पर आक्रमण कर देता तो कठिन परिस्थिति आ जाती। इस परिस्थिति में न चाहते हुए भी हुमायूं ने संधि करने का निश्चय किया।[४३] शेर ख़ां दुर्ग में नहीं रहते हुए भी वहां की परिस्थितियों से अवगत था। उसे यह समाचार प्राप्त हुआ कि हुमायूं चिन्तित है और दुर्ग का घेरा उठाना चाहता है। शेर ख़ां भी युद्ध को और बढ़ावा नहीं देना चाहता था, क्योंकि बंगाल के शासक द्वारा बिहार पर आक्रमण किये जाने का भय था। दोनों दलों में इन कारणों से सन्धि हो गयी।

सन्धि की शर्तें—शेर ख़ां ने हुमायूं के प्रति समर्पण किया तथा स्वामिभक्ति की प्रतिज्ञा की। उसने अपने तीसरे पुत्र अब्दुर रशीद (जो कुतुब ख़ां के नाम से प्रसिद्ध था) के नेतृत्व में, ५०० सैनिकों की एक अफ़ग़ान सेना मुग़ल सम्राट की सेवा के लिए भेजी। हुमायूं चाहता था कि जलाल ख़ां इसका नेतृत्व करे, किन्तु शेर ख़ां इसके लिए तैयार नहीं था। हुमायूं ने अन्त में कुतुब ख़ां को ही स्वीकार कर लिया।[४४] चुनार का दुर्ग शेर ख़ां के ही अधिकार में रहा और इसके लिए उसे कर देने की आवश्यकता नहीं थी।[४५]

४३ निज़ामुद्दीन स्पष्ट लिखता है कि चुनार को उसने बिना विजय के इस कारण छोड़ दिया, क्योंकि बहादुर शाह का भय बढ़ गया था (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १६०)। अब्बास ख़ां भी यही मत व्यक्त करता है (इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३५१)।

४४ अब्दुर्रशीद हुमायूं की सेवा में रहा और जब हुमायूं ने बहादुर शाह पर आक्रमण किया तथा मालवा पहुँचा तो वहां से अब्दुर्रशीद भाग खड़ा हुआ (अकबरनामा, १, पृ. १२३-२४)। अब्बास इसका नाम कुतुब ख़ां लिखता है (इलियट और डासन, भाग ४, पृ. ३५१)।

४५ अब्बास ख़ां, तारीख़े शेरशाही; इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३५१; डार्न, हिस्ट्री ऑफ दि अफ़ग़ान्स, पृ. १०३।

चुनार की सन्धि वास्तविक रूप में शेर ख़ां की विजय तथा हुमायूं की असफलता की सूचक है। इस घेरे का वास्तविक लाभ केवल पांच सौ अफ़ग़ान सैनिक थे जो मुग़लों को प्राप्त हुए थे। ये सैनिक कहां तक मुग़ल साम्राज्य के लिए शक्तिशाली होते यह सन्देहजनक था। शेर ख़ां ने अधीनता अवश्य स्वीकार की, किन्तु यह उसकी कूटनीतिक चाल थी। चुनार पर उसका अधिकार भी बना रहा तथा इसके लिए उसे कोई कर भी नहीं देना पड़ा।

डा. ईश्वरी प्रसाद ने हुमायूं के सन्धि करने की कटु आलोचना की है। उनका विचार है कि यदि हुमायूं ने शेर ख़ां को परास्त कर दिया होता तो उसके उत्कर्ष का मूल ही नष्ट हो गया होता तथा कदाचित् मुग़लों को निष्कासन का सामना नहीं करना पड़ता।[४६] इसमें सन्देह नहीं कि "इस सौदे से शेर ख़ां को मनचाहा अवकाश और अपनी योजना की पूर्ति के लिए प्रोत्साहन मिला, साथ ही हुमायूं की कुछ बदनामी भी हुई।"[४७] बदनामी का विशेष कारण यह भी था कि मुग़लों ने अन्त में उन्हीं शर्तों को स्वीकार किया जिन्हें उन्होंने प्रारम्भ में अस्वीकार किया था।

हुमायूं की भूल स्वीकार करने के पूर्व हमें याद रखना चाहिए कि परिस्थितियां ऐसी थीं जिनके कारण मजबूर होकर हुमायूं को चुनार के दुर्ग का घेरा हटाना पड़ा। उस समय बहादुर शाह का भय शेर ख़ां ऐसे साधारण व्यक्ति के भय से कहीं अधिक था। उस समय कोई यह विचार भी नहीं कर सकता था कि शेर ख़ां हुमायूं को हराकर किसी समय दिल्ली का सम्राट बन बैठेगा। इस कारण चुनार के विषय में सन्धि कर हुमायूं ने कोई भूल नहीं की। वास्तविक रूप में उसने अफ़ग़ानों के प्रमुख सरदारों का सहयोग प्राप्त कर लिया।

हुमायूं ने एक भूल अवश्य की। जिस समय वह आगरा से रवाना हुआ उस समय भी बहादुर शाह की विस्तार नीति का विकास हो चुका था तथा मुग़लों के प्रति उसकी नीति भी अस्पष्ट नहीं थी। हुमायूं को स्वयं चुनार अभियान का नेतृत्व करने के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को इसका उत्तरदायित्व सौंपना चाहिए था। वह उसके साथ शक्तिशाली सेना भेज सकता था। फिर, सन्धि के पूर्व यदि परिस्थितियां प्रतिकूल थीं तो उसे सन्धि करने के बजाय किसी प्रमुख व्यक्ति को अभियान का उत्तरदायित्व सौंपकर स्वयं वहां से आगरा लौट आना चाहिए था।

४६ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ६१।
४७ त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फाल ऑफ दि मुग़ल एम्पायर, पृ. ७२।

आनन्दोत्सव—जनवरी १५३३ में हुमायूं चुनार से आगरा लौटा।[४८] उसके सकुशल लौटने के उपलक्ष में माहम बेगम की प्रेरणा से आगरा में आनन्दोत्सव मनाया गया। दरबार हुआ, रोशनी हुई, दावतें हुईं, आगरा के बाज़ार तथा जनसाधारण के मकान भी इस अवसर पर सजाये गये। हुमायूं ने अपने अमीरों में पारितोषिक, घोड़े और वस्त्र वितरित किये।[४९]

हुमायूं के इस उत्सव का कारण क्या था? क्या उसने ऐसी विजय प्राप्त की थी जिसके उपलक्ष में इस तरह का उत्सव मनाया जाता? ऐसी परिस्थिति में जब बहादुर शाह मुग़ल साम्राज्य के सम्मुख एक भयंकर समस्या उपस्थित कर रहा था, क्या यह आयोजन उचित था? डा. बनर्जी लिखते हैं कि हुमायूं इन उत्सवों द्वारा बहादुर शाह तथा अन्य सम्राटों पर रोब जमाना चाहता था।[५०] इस मत को स्वीकार करना कठिन है। वास्तविकता तो यह है कि हुमायूं को इस तरह के जशन तथा आनन्दोत्सवों का शौक था। इस अवसर पर राजमाता माहम बेगम ने विशेष उत्साह दिखाया। इसका राजनीतिक महत्त्व नहीं था। इस तरह धन का अपव्यय कहां तक उचित था यह सन्देहजनक है।

ग्वालियर यात्रा

इन उत्सवों के पश्चात् हुमायूं ग्वालियर गया जो आगरा के दक्षिण-पूर्व लगभग ७२ मील की दूरी पर है। यहां वह दो महीने (फरवरी-मार्च १५३३)

४८ गुलबदन, जौहर तथा फ़िरिश्ता के अनुसार हुमायूं चुनार से आगरा लौटा। गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११२; जौहर, स्ट्रीवर्ट पृ. ३; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, पृ. ७२।

४९ गुलबदन बेगम के अनुसार १२ कतार ऊंट, १२ कतार खच्चर, ७० रास तीपूचाक़ घोड़े, १०० रास बोझ लादने वाले घोड़े बांटे गये। ७०० व्यक्तियों को विशेष ख़िलअतें पहनायी गयीं। गुलबदन बेगम के अनुसार 'आईने बन्दी' (बाजारों को सजाने की प्रथा) माहम ने प्रारम्भ की। श्रीमती बेवरिज के अनुसार यह सत्य नहीं है। वास्तव में माहम के आदेश से कदाचित् इस बार जनसाधारण के घर भी सजाये गये। देखिए हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११३-१४, पृ. ११३ का तीसरा नोट। निज़ामुद्दीन अहमद के अनुसार १२००० व्यक्तियों को विशेष वस्त्र दिये गये। उनमें दो हजार व्यक्तियों को जड़ाऊ सोने के काम किये हुये बेल्ट तथा ख़िलअत के ऊपर पहनने के वस्त्र दिये गये। तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ४६।

५० बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ५८।

रहा। ग्वालियर जाने का हुमायूं का अभिप्राय कूटनीतिक था।[५१] बहादुर शाह चित्तौड़ घेरे हुए था और राजमाता कर्णावती ने हुमायूं को राखी भेजकर सहायता के लिए आमन्त्रित किया था। कुछ विद्वानों का मत है कि वह रानी की सहायता के लिए ग्वालियर गया किन्तु यह सोचकर कि बहादुर शाह धर्मयुद्ध में लगा है, उसने उस पर आक्रमण नहीं किया। वास्तव में हुमायूं को भय था कि चित्तौड़ के अतिरिक्त बहादुर शाह मुग़ल साम्राज्य पर भी आक्रमण न कर दे। ग्वालियर से हुमायूं बहादुर शाह की गतिविधि पर दृष्टि रखना चाहता था, क्योंकि मेवाड़ विजय से गुजरात की सीमा मुग़ल सीमा तक पहुँच जाती। इसके अतिरिक्त पूरे राजपूताने के सामूहिक साधन बहादुर शाह को प्राप्त हो जाते।

ग्वालियर निवास के दो महीने हुमायूं ने उत्सवों में व्यतीत किये। शानदार दरबार तथा जलसे हुए। हुमायूं सिक्कों से तौला गया, हाथियों तथा घोड़ों सहित उसका जुलूस निकाला गया। लोगों को मुफ़्त भोजन दिया गया तथा अन्य तरह से आनन्दोत्सव मनाया गया।[५२] हुमायूं का ग्वालियर निवास व्यर्थ नहीं गया क्योंकि परिस्थितियों को देखकर बहादुर शाह ने मार्च १५३३ में मेवाड़ से सन्धि कर ली तथा गुजरात लौट गया।

हुमायूं ने ग्वालियर में अपना समय व्यर्थ में क्यों नष्ट किया? यदि वह राजपूतों की सहायता के लिए गया था तो उसने इसके लिए सक्रिय कदम क्यों नहीं उठाया? ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूं बहादुर शाह से उस समय तक युद्ध करने के लिए तैयार नहीं था। यह भी सम्भव है कि वह उपयुक्त समय

[५१] गुलबदन बेगम लिखती है कि आगरा में हुमायूं ने माहम बेगम से प्रार्थना की कि आजकल मेरा दिल नहीं लगता, यदि आपका आदेश हो तो आपके साथ ग्वालियर के लिए रवाना हो जाऊंगा। इस तरह वह आनन्द मनाने के अभिप्राय से गया था। (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११५)। गुलबदन बेगम का यह अनुमान केवल बाहरी आनन्दोत्सव के आधार पर है। वास्तविक कारण का ज्ञान कदाचित् उन्हें नहीं था।

[५२] "Humayun indulged in another series of festivities and organized durbars as if to announce to Bahadur that though he was ever ready to face the sultan and had actually come out to meet him, he was not averse to peace." (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ५९)।

विद्वान लेखक के इस मत को स्वीकार करना कठिन है। यदि हुमायूं इस आनन्दोत्सव द्वारा बहादुर शाह को भयभीत करना चाहता

की प्रतीक्षा कर रहा था, किन्तु इसी समय अपनी माता माहम बेगम की बीमारी की सूचना पाकर उसे आगरा वापस जाना पड़ा।[५३]

माहम बेगम की मृत्यु

ग्वालियर में दो माह रहने के पश्चात् हुमायूं आगरा लौट आया। उसके शीघ्र लौटने का कारण उसकी मां माहम की बीमारी थी। माहम बेगम पेट के रोग से बीमार थी। हुमायूं ने उसकी चिकित्सा का उचित प्रबन्ध किया, किन्तु वह उसे बचा न सका। ८ मई १५३३ को माहम बेगम की मृत्यु हो गयी।[५४]

माहम बेगम एक योग्य तथा प्रतिभाशाली महिला थी। बाबर की वही ऐसी पत्नी थी जिसे दिल्ली के तख्त पर बाबर के साथ बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।[५५] हुमायूं के गद्दी पर बैठने के पश्चात् माहम का प्रभाव कम नहीं हुआ बल्कि बढ़ा ही। उसने हुमायूं के समय के सामाजिक उत्सवों को संगठित किया। बाबर की मृत्यु के पश्चात् माहम ने आगरा नहीं छोड़ा और बाबर की कब्र की देख-रेख करती रही। उसका भाई मुहम्मद अली असस बाबर की कब्र का मुतवल्ली नियुक्त हुआ। कुरान पढ़ने वाले साठ व्यक्ति कुरान पढ़ने के लिए नियुक्त किये गये। जब तक माहम जीवित रही, बाबर के मजार पर दोनों वक्त का भोजन माहम की जागीर की आय से बांटा जाता था।[५६] माहम के मन में सदा यह इच्छा रहती थी कि हुमायूं को पुत्र पैदा हो और उसके लिए वह हुमायूं के विवाह का भी प्रबन्ध करती रहती थी। किन्तु उसकी यह इच्छा उसके जीवन काल में पूरी न हो सकी।[५७]

था तो यह उसकी भूल थी। बहादुर शाह इस तरह चकमें में आने वाला व्यक्ति नहीं था।

५३ काम्मिस्सारियट, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३३०; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ५९-६०।

५४ गुलबदन बेगम के अनुसार माहम की मृत्यु १३ शव्वाल ९४० हिजरी (२७ अप्रैल १५३४) को हुई। गुलबदन बेगम की तिथि ठीक नहीं है। इसकी विवेचना के लिए देखिए हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११६।

५५ अकबरनामा, १, पृ. ११४।

५६ गुलबदन बेगम के अनुसार (बेवरिज, पृ. १११) प्रत्येक दिन प्रातः एक बैल, दो भेड़ें, तथा पांच बकरियां तथा तीसरे पहर पांच बकरियां वितरण के लिए काटी जाती थीं।

५७ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११२।

दीन पनाह

माहम की मृत्यु के बाद चालीस दिन तक शोक मनाया गया। उसके पश्चात् हुमायूं आगरा से दिल्ली गया। वहां उसने एक नगर का निर्माण किया जो दीन पनाह (धर्म का रक्षक) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[५८] इस नगर के निर्माण का विचार हुमायूं के मस्तिष्क में उसके ग्वालियर निवास के समय आया। उसका विचार था कि वह एक ऐसे नगर का निर्माण करे जिसके चारों तरफ ऊंची-ऊंची दीवारें, कई मंजिल के ऊंचे महल तथा सुन्दर उद्यान एवं बगीचे हों और नगर संसार में अद्वितीय हो।[५९]

इस नगर का निर्माण स्थल दिल्ली में यमुना के तट पर पुराने किले में निश्चित हुआ। ज्योतिषियों द्वारा निश्चित शुभ मुहूर्त में हुमायूं ने इस नगर का शिलान्यास किया (जुलाई-अगस्त १५३३)। उसके प्रथम ईंट रखने के पश्चात् अन्य उपस्थित आलिमों एवं सैयिदों ने भी ईंटें रखीं और उसी दिन बादशाह के विशेष महल के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो गया। लगभग नौ महीने में शहर की चहारदीवारी, उसका ऊपरी भाग तथा द्वार बनकर तैयार हो गया।[६०]

डा. बनर्जी ने हुमायूं के दीन पनाह के निर्माण की सराहना की है। वे लिखते हैं कि दीन पनाह नामक नयी राजधानी के निर्माण का कार्य मूर्खता का कार्य नहीं था। लोदी सुल्तानों की दिल्ली जातीयता, साम्प्रदायिकता तथा संकीर्णता से परिपूर्ण थी। उसका नया नगर विश्व के बुद्धिमानों का स्वर्ग था जो हर तरह के धर्मशील व्यक्तियों को आकर्षित करता। दीन पनाह हुमायूं की उदार

५८ अकबरनामा, १, पृ. १२४। अबुल फ़ज़ल तथा ख़्वन्दमीर के अनुसार अब्जद के आधार पर इसकी तिथि 'शहरे पादशाहे दीन पनाह' से निकलती है, जिसका जोड़ ९४० हिजरी होता है (ख़्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. ५९-६०; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११७)।

५९ ख़्वन्दमीर कानूने हुमायूंनी; बेनी प्रसाद, पृ. ५९—६२।

६० वही, पृ. ५९-६०। शिलान्यास मुहर्रम ९४० हि. (जुलाई-अगस्त, १५३३) में हुआ तथा इमारतें शव्वाल ९४० हि. के अन्त तक (मई १५३४) में तैयार हो गयीं। बेनी प्रसाद लिखते हैं (पृ. ६२, टिप्पणी, १) कि डा. बनर्जी का यह कथन कि दीन पनाह अप्रैल में बनकर तैयार हो गया, ठीक नहीं है। दीन पनाह का नगर अब अस्तित्व में नहीं है केवल दुर्ग की दीवार ही रह गयी है (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ६३-६४)।

नीति का प्रतीक था फिर भी हुमायूं ने मुहम्मद तुग़लक की तरह अपने इस आदर्श का ढिंढोरा नहीं पीटा। उसने कवियों, सूफियों, इतिहासकारों और दार्शनिकों का स्वागत किया तथा उसके दरबार में भिन्न-भिन्न देशों के विद्वान् उपस्थित हुए। उस समय मुस्लिम संस्कृति की राजधानी ईरान, तुर्की या मध्य एशिया का कोई नगर न होकर दिल्ली थी। डा. बनर्जी लिखते हैं कि इसके अतिरिक्त दीन पनाह द्वारा हुमायूं ईरान के सफवी सुल्तान तथा तुर्की सुल्तान की धार्मिक कट्टरता की नीति की आलोचना करना चाहता था और यह दिखाना चाहता था कि इन देशों के शासकों का मार्ग सही नहीं है।[६१]

डा. बनर्जी का मत कल्पनाओं पर आधारित है। कदाचित् हुमायूं के मस्तिष्क में उसका इतना महत्त्व नहीं था। इसके विषय में हम केवल यही कह सकते हैं कि गद्दी पर बैठने के पश्चात् नयी उमंग में हुमायूं दिल्ली के अन्य शासकों की भांति नयी राजधानी तथा नयी इमारतें बनवाना चाहता था। दीन पनाह का निर्माण उसकी इस इच्छा का ही प्रतीक था। दीन पनाह का कोई राजनीतिक महत्त्व भी था, यह एक सन्देहजनक बात है।

जश्न तथा दावतें

दीन पनाह की स्थापना के बाद जुलाई १५३४ में हुमायूं लौटकर आगरा आया और हरम की स्त्रियों के कहने पर उसने दो और जश्नों का प्रबन्ध किया। इनमें से एक 'तिलिस्म का जश्न' था। यह विशेषतया स्त्रियों तक सीमित था। यह जश्न नदी के तट पर तैयार कराये गये एक विशेष प्रकार के भवन में हुआ जिसका नाम तिलिस्म रखा गया।[६२] इसके बीच एक अष्टभुज

६१　बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ६२-६३।

६२　इस जश्न तथा विशेष घर के लिए देखिए ख़्वन्दमीर, क़ानूने हुमायूंनी; बेनी प्रसाद, पृ. ५५–५६; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११८–२६। गुलबदन बेगम ने स्त्रियों का नाम भी दिया है। हुमायूं के आनन्दोत्सव की झलक गुलबदन बेगम के निम्नलिखित वर्णन से मिल सकती है :

"सिंहासन के ऊपर एवं नीचे जरदोज़ी के अदसके लगाये गये और बहुमूल्य मोतियों की लड़ियां जो डेढ़-डेढ़ गज लम्बी थीं, लगायी गयीं....छोटे कमरे में जड़ाऊ छपरखट (पलंग) बिछाया गया था। पानदान, सुराही, जड़ाऊ पेय पात्र तथा ख़ालिस सोने चांदी के बर्तन आलों पर रखे गये। हज़रत पादशाह ने कहा "आक़ा जान का यदि आदेश हो तो हौज़ में जल पहुँचा दिया जाए।" आक़ा जान ने कहा "बहुत ख़ूब"। वे स्वयं जाकर जीने पर बैठ गयीं। लोग असावधान थे

हुमायूँ कालीन भारत
(१५३० — १५५६)
१५३० में मुग़ल साम्राज्य
१५५६ में मुग़ल साम्राज्य
उ०
प०
पू०
द०
क श्मी र
ने पा ल
रा ज पू ता ना
सि न्ध
गु ज रा त
मा ल वा
ब ग़ा ल
बं गा ल की खा ड़ी
अ र ब सा ग र
खा न दे श
बि रा र
का बुल
कंधार
लाहौर
दिल्ली
आगरा
पानीपत
अजमेर
जोधपुर
मारवाड़
अमरकोट
चित्तौड़
मन्दसौर
चंदेरी
ग्वालियर
कालिंजर
बनारस
चौसा
पटना
हाजीपुर
अयोध्या
कन्नौज
सम्भल
मुल्तान
रोहरी
भक्कर
सहवान
खंभात
बड़ौदा
भड़ोच
सूरत
जूनागढ़
डियू
नवसारी
दमन
बेसीन
अहमदाबाद
चम्पानीर
पाटन
डूंगरपुर
उज्जैन
भिलसा
जबलपुर
बुरहानपुर
असीरगढ़
हन्दिया
सहसराम
रोहतास
मुंगेर
गौड़
सिंधु नदी
सतलज नदी
रावी नदी
चिनाब नदी
गंगा नदी
यमुना नदी
घाघरा नदी
गोमती नदी
सोन नदी
नर्मदा नदी
ताप्ती नदी
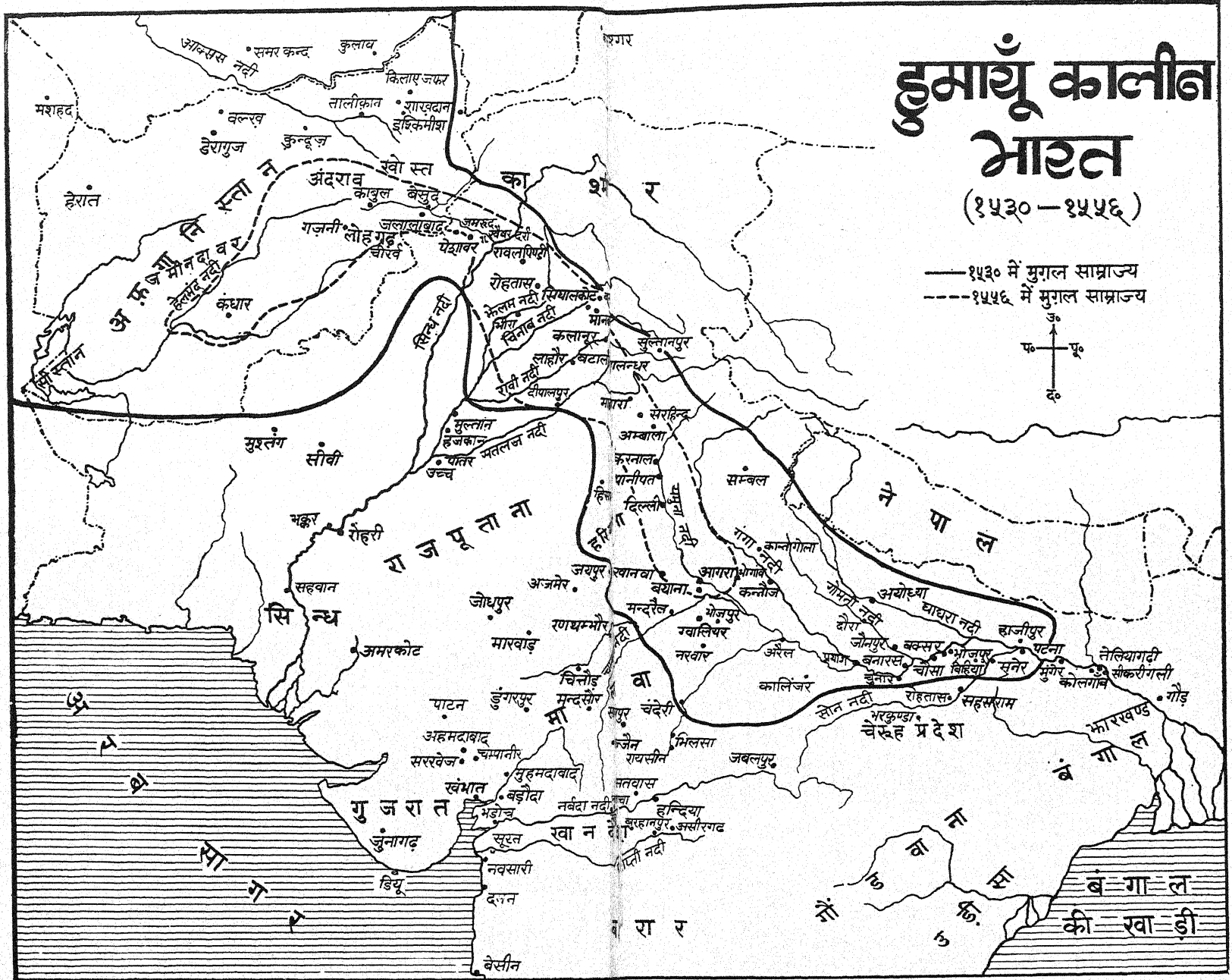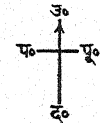
कमरा था जिसके मध्य में एक अष्टभुज हौज़ था। हौज़ के मध्य में एक अष्टभुज चबूतरा था जिस पर बहुमूल्य ईरानी कालीन बिछाये गये। तरुण रूपवतियां, सुन्दरियां एवं सुन्दर गायिकाएं हौज में बैठीं। हुमायूं ख़ानज़ादा बेगम के साथ जड़ाऊ सिंहासन पर भवन के प्रांगण में बैठा। भवन को भांति-भांति से सजाया गया था जिसमें मनोरंजन एवं भोग-विलास की सभी सामग्रियां प्रस्तुत थीं। कई हज़ार अशरफ़ियां इनाम के तौर पर बांटी गयीं। नाव पर ज़नाना बाज़ार लगाया गया, जो एक तरह से मीना बाज़ार का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है।

दूसरा जश्न हिन्दाल के विवाह से सम्बन्धित था। हिन्दाल का विवाह महदी ख़्वाजा की बहन सुल्तानम बेगम से हुआ। यह विवाह माहम बेगम के जीवन काल में ही निश्चित हो गया था किन्तु माहम की बीमारी के कारण उत्सव स्थगित कर दिया गया था। अब उत्सव उसी धूमधाम से मनाया गया।[६३]

गुलबदन बेगम ने इन जश्नों तथा दावतों का विस्तृत वर्णन किया है। इनके वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं तथा उसके परिवार की स्त्रियां स्वप्न लोक में रहती थीं। एक तरफ बहादुर तथा दूसरी तरफ अफ़ग़ानों का उत्कर्ष उनके भविष्य के लिए क्या संजो रहा था, इससे वे बिलकुल अनभिज्ञ थीं। यही नहीं, हुमायूं भी मनोरंजन तथा विलास में इस तरह आनन्द ले रहा था जैसे संसार में यही सब कुछ हो।

गुलबदन बेगम लिखती है कि रविवार के दिन बादशाह नदी के उस पार जाता था। वहां हरम की सभी प्रमुख स्त्रियां ख़ेमे में रहती थीं। वह जिस ख़ेमे में जाता था वहां स्त्रियां उसको चारों ओर से घेरे रहती थीं। इस तरह हुमायूं वह समय आनन्द में बिताता था। इस जलसे में बादशाह की प्रमुख बेगमों का महत्त्व कम हो जाता था। एक बार हुमायूं की सबसे प्रमुख बेगम बेग़ा बेगम ने इसका विरोध किया। प्रारम्भ में हुमायूं इससे बहुत दुखी तथा नाराज़ हुआ, किन्तु बाद में उसने सभी प्रमुख बेगमों को इकट्ठा कर समझाया कि वह इस तरह के जलसे अधिक उम्र की स्त्रियों को प्रसन्न करने के लिए करता था। इसके पश्चात् उसने

कि फ़व्वारे खोल दिये गये। जल निकलने लगा। जवानों में बड़े विचित्र प्रकार का कोलाहल होने लगा। हौज़ के किनारे एक कमरा था जिसमें अभरक की खिड़कियां लगी थीं। तरुण लोग उसमें बैठे थे और बाज़ीगर करतब दिखा रहे थे।"

६३ हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १२६–२६।

अपनी बेगमों से एक लिखित वचन लिया कि वे इससे सन्तुष्ट हैं। सभी बेगमों ने मजबूर होकर उस पर हस्ताक्षर कर दिये।[६४]

मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा का विद्रोह

हुमायूं के निकट सम्बन्धियों ने उसके राज्य के सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित कीं। उनमें मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा तथा मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा का नाम महत्त्वपूर्ण है। हुमायूं से सम्बन्धित होने के कारण तथा स्वयं अच्छे वंश के होने के अभिमान में इन लोगों ने कई बार हुमायूं के विरुद्ध विद्रोह किया और इस तरह उसकी परिस्थितियों को और भी विषम बनाने का प्रयत्न किया।

प्रथम विद्रोह—हुमायूं के गद्दी पर बैठने के पश्चात् उसी वर्ष मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा ने विद्रोह किया। किन्तु यह विद्रोह शीघ्रता से दबा दिया गया। हुमायूं ने उसे क्षमा कर दिया और उसे प्रसन्न करने के लिए उसने उसे पुरानी जागीरें भी दे दीं जिससे उसे कुछ सन्तोष प्राप्त हो जाए। इस तरह मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा को बिहार में जागीर प्राप्त हुई और मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा को कन्नौज में।[६५] मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा के प्रति हुमायूं ने और भी उदारता का व्यवहार किया और उसने उसे बिहार का गवर्नर नियुक्त किया। यही नहीं, उसने अपनी सौतेली बहन मासूमा को, जिसका विवाह मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा से हुआ था, एक मूल्यवान ख़ेमा प्रदान किया। हुमायूं को यह विश्वास था कि इस दयापूर्ण व्यवहार से मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा राजभक्त हो जाएगा। किन्तु ऐसा सम्भव न हो सका, क्योंकि मिर्ज़ा लोग बहुत ही महत्त्वाकांक्षी थे और भारत में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहते थे।

द्वितीय विद्रोह—जुलाई १५३४ में मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा, मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा, उसके पुत्र उलूग मिर्ज़ा तथा एक अन्य राजकुमार वलीख़ूब मिर्ज़ा ने विद्रोह किया।[६६] ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों ने बहादुर शाह से धन

६४ हुमायूंनामा, पृ. ३७-३८; बेवरिज, पृ. १२९-३१; डा. बनर्जी (भाग १, पृ. ६७) लिखते हैं कि हुमायूं अपनी बूढ़ी सम्बन्धियों के लिए अपना आनन्द त्याग रहा था। बेगा बेगम की शिकायत स्त्रियोचित ईर्ष्या के कारण थी। सम्भव है हुमायूं ने शिकायत का अवसर दिया हो। बेगमों से यह लिखवाना कि आपकी इच्छा आप आयें या न आयें हम सन्तुष्ट हैं, कहां तक उसके पद के अनुसार उचित था ?

६५ अर्सकिन, २, पृ. १३; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ६८।

६६ अकबरनामा, १, पृ. १२४; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ४६-४७।

प्राप्त किया था और उसे विश्वास दिला दिया था कि हुमायूं की सेना का अनुशासन ढीला था तथा अमीर असन्तुष्ट थे, इस कारण वह पराजित किया जा सकता था।

हुमायूं ने इनके विरुद्ध आक्रमण किया तथा गंगा के तट पर भोजपुर[६७] में अपना पड़ाव डाला। वहां से उसने यादगार नासिर मिर्ज़ा (बाबर के छोटे भाई नासिर मिर्ज़ा का पुत्र) को बिहार के विद्रोह का दमन करने के लिए भेजा। विद्रोहियों ने राजसी सेना का सामना किया किन्तु पराजित हुए और तीनों मिर्ज़ा कई अन्य विद्रोहियों के साथ बन्दी बना लिये गये। प्रमुख विद्रोही मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा बयाना भेजा गया। हुमायूं ने यह आज्ञा दी कि तीनों प्रमुख मिर्ज़ाओं की आंखों में सलाई डालकर उन्हें अन्धा कर दिया जाए। इन बन्दियों की देख-रेख का भार मिर्ज़ा यादगार बेग तग़ाई को सौंपा गया।[६८]

वलीख़ूब मिर्ज़ा तथा मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा तो अन्धे बना दिये गये, किन्तु मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा ने जेलर को अपनी तरफ मिला लिया जिससे उसकी देखने की शक्ति नष्ट नहीं हुई। विद्रोहियों ने यादगार बेग तग़ाई को अपनी तरफ मिला लिया तथा एक जाली पास के द्वारा भागकर गुजरात चले गये।[६९] मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा तथा उसके दोनों पुत्र उलूग मिर्ज़ा तथा शाह मिर्ज़ा भी बन्दीगृह से भाग गये। मिर्ज़ाओं के विद्रोह तथा उनके बन्दीगृह से भाग जाने से स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं के लिए इनसे सतर्क रहना आवश्यक था। यह सतर्कता और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है जब हम देखते हैं कि मुग़ल अमीर तथा हुमायूं के निकट सम्बन्धी भी इन विद्रोहियों का साथ दे रहे थे। इन मिर्ज़ाओं ने बहादुर से मिलकर हुमायूं के यश तथा गौरव को बड़ी हानि पहुँचायी और यही हुमायूं के गुजरात पर आक्रमण करने के कारण बने।

निज़ामुद्दीन मिर्ज़ाओं के विद्रोह को विचित्र घटना लिखता है। (फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ७३; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११४)।

६७ डा. बनर्जी (हुमायूं, १, पृ. ६६) भोजपुर को बिहार के शाहाबाद जिले में निश्चित करते हैं। यह ठीक नहीं है। भोजपुर उत्तर प्रदेश के फ़रुखाबाद ज़िले में एक ग्राम है। यह २६° १७′ उत्तर तथा ७९° ४१′ पूर्व फ़तेहगढ़ के दक्षिण ६ मील पर स्थित है।

६८ हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११४-१५; अकबरनामा, १, पृ. १२४; मुन्तख़बुत्तवारीख़ बदायूनी, १, पृ. ३४४। यादगार बेग हुमायूं का मामा तथा उसकी स्त्री हाजी बेगम का पिता था।

६९ अकबरनामा, १, पृ. १२४।

५. बहादुर शाह तथा मुग़ल सम्राट

हुमायूं के बाह्य शत्रुओं में गुजरात के शासक बहादुर शाह का प्रमुख स्थान था। उसकी प्रगति, कार्यशीलता, तथा विस्तारवादी नीति ने कुछ ही वर्षों में दक्षिण-पश्चिमी भारत की राजनीति में नयी समस्याएँ उपस्थित कर दीं। अपनी प्रगति के मद में बहादुर शाह ने एक तरफ तो साम्राज्य विस्तार की नीति अपनायी और दूसरी तरफ उसने मुग़ल शरणार्थियों को शरण देना प्रारम्भ किया। वह उनकी सहायता के बहाने मुग़ल साम्राज्य को भी पददलित करने का स्वप्न देखने लगा। बहादुर शाह के राज्यकाल की प्रारम्भिक घटनाओं का वर्णन किया जा चुका है। मालवा विजय ने बहादुर शाह को राजपूताना के और निकट ला दिया। इस समय भीलसा, उज्जैन तथा रायसीन[१] राजपूत सरदार सिलहदी[२] के अधिकार में थे। जब तक ये भाग बहादुर शाह के प्रभाव से अलग रहते तब तक उसकी मालवा विजय अपूर्ण थी। इस तरह उसकी विस्तारवादी नीति तथा इन भागों की सामरिक स्थिति ने उसे आकर्षित किया और उसने रायसीन पर अधिकार करने का निश्चय किया।

बहादुर शाह द्वारा रायसीन विजय

बहादुर शाह सिलहदी से कई कारणों से असन्तुष्ट था। उसके गुजरात की गद्दी पर बैठने के पश्चात् सिलहदी उसकी सेवा में उपस्थित नहीं हुआ था।[3] इस मानहानि के बहाने बहादुर शाह ने उसके ऊपर आक्रमण करने का निश्चय

१ रायसीन २२° २०′ उत्तर तथा ७७° ४७′ पूर्व, भूपाल से २२ मील की दूरी पर, स्थित है। सेंट्रल इण्डिया स्टेट गज़ेटियर सीरीज़ भूपाल स्टेट, भाग ३, पृ. ११३।

२ यह वही सिलहदी है जो राणा सांगा के साथ खानवा के युद्ध में लड़ा था।

३ कहा जाता है कि सिलहदी के हरम का ठाट-बाट बहादुर के हरम से कहीं अधिक था। उसके पास नर्तकियों के चार दल (अखाड़े) थे जो अपनी कला के लिए विख्यात थे। जिस समय नर्तकियां नृत्य करती थीं चालीस युवतियां मशाल दिखाती थीं (बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३६६)।

किया। सिलहदी बहादुर की इच्छा से अवगत था। उसने उसे प्रसन्न करने के लिए एक अमीर नस्सन ख़ां को गुजरात भेजा, किन्तु बहादुर शाह इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। १५३२ के प्रारम्भ में सिलहदी बहादुर से मिलने गया। उसी समय वह बन्दी बना लिया गया। उसका नाम भी लकर सलाहुद्दीन हो गया। गुजरात के शासक को प्रसन्न करने के लिए सिलहदी मुसलमान हो गया। इसका भी कोई परिणाम नहीं हुआ। बहादुर ने उज्जैन तथा भीलसा पर आक्रमण कर इन पर अधिकार कर लिया तथा एक बलवती सेना के साथ रायसीन के दुर्ग को घेर लिया।

सिलहदी की अनुपस्थिति में उसका भाई लक्ष्मणसिंह[४] उस समय रायसीन के दुर्ग की रक्षा कर रहा था। सिलहदी के पुत्र भूपत का विवाह राणा सांगा की पुत्री से हुआ था। इस सम्बन्ध से रायसीन की रक्षार्थ मेवाड़ से सेना के आगमन की सूचना मिली। इस समाचार से बहादुर सशंकित हुआ, किन्तु उसने रायसीन के दुर्ग का घेरा नहीं उठाया। सिलहदी उस समय बहादुर की सेना के साथ था। गढ़ की सेना से समर्पण कराने तथा अपने परिवार को दुर्ग के बाहर लाने के अभिप्राय से बहादुर से आज्ञा लेकर सिलहदी दुर्ग के अन्दर गया। दुर्ग में अपने सम्बन्धियों तथा अन्य लोगों के बीच पाकर तथा अपनी पत्नी दुर्गादेवी की डांट-फटकार से वह पुनः हिन्दू हो गया और दुर्ग में ही रह गया। यह समाचार पाकर बहादुर शाह ने तोपखाने की सहायता से, जिसका नेतृत्व प्रसिद्ध तुर्की तोपची रूमी ख़ां कर रहा था, दुर्ग पर भीषण आक्रमण किया तथा उस पर अधिकार कर लिया। सिलहदी की स्त्री दुर्गादेवी सात सौ स्त्रियों के साथ जिनमें मुस्लिम स्त्रियां भी थीं, जौहर कर जल मरी।[५] सिलहदी तथा उसका भाई लक्ष्मण सिंह अन्य राजपूतों के साथ लड़ते हुए मारे गये। रायसीन पर बहादुर

डा. बनर्जी (हुमायूं, १, पृ. ८२) मिराते सिकन्दरी के आधार पर लिखते हैं कि बहादुर की नाराज़गी का कारण सिलहदी द्वारा अपने हरम में बहुत-सी मुस्लिम स्त्रियों का रखना था। कामिस्सारियट ने भी इस मत का समर्थन किया है (हिस्ट्री ऑफ गुजराज, पृ. ३२७)। यह कथन सत्य नहीं प्रतीत होता। बहादुर के आक्रमण का प्रमुख कारण राजनीतिक था जो उसकी साम्राज्य विस्तार नीति का एक अंग था। फ़िरिश्ता (ब्रिग्स, ४, पृ. ११७) स्पष्ट लिखता है कि यह बहाना मात्र था।

४ डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार इसका नाम लक्ष्मण सेन था। (हुमायूं, पृ. ६२)।

५ बहादुर शाह को दुर्ग विजय के पश्चात् जो सोना, चांदी इत्यादि मृत स्त्रियों की राख से प्राप्त हुआ उसे उसने एक अमीर बुरहानुल मुल्क

शाह का अधिकार हो गया। बहादुर ने चन्देरी, भीलसा तथा रायसीन आलम ख़ां को दे दिये। आलम ख़ां इसके पूर्व मुग़ल अमीर था। वहां से भागकर वह बहादुर से आ मिला था। इस समय मुग़लों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने में वह बहादुर को सहायता दे रहा था। बहादुर को आशा थी कि आलम ख़ां पुरबिया राजपूतों को गुजरात के अधीन रखने में सफल होगा। रायसीन की विजय के पश्चात् बहादुर शाह ने मेवाड़ पर आक्रमण किया।

बहादुर शाह द्वारा चित्तौड़ का प्रथम घेरा

चित्तौड़ का दुर्ग मध्य युग में एक महत्त्वपूर्ण दुर्ग समझा जाता था। राजपूताने पर अधिकार करने के लिए प्रत्येक आक्रमणकारी इसको अधिकृत करना आवश्यक समझता था। राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ की स्थिति का वर्णन हम तीसरे अध्याय में कर आये हैं। मेवाड़ के तत्कालीन राणा विक्रमादित्य (१५३१-३६) में राणा सांगा का कोई भी गुण नहीं था, तथा मेवाड़ की गद्दी के लिए वह पूर्णरूप से अयोग्य था। वह अपना समय खेलकूद, शिकार, शराब तथा स्त्रियों में व्यतीत करता था। इससे उसे राज्यकार्य देखने का समय नहीं मिलता था तथा यह कार्य उसके चापलूस अमीर करते थे। उसके दुर्व्यवहार से राजपूत सरदारों में असंतोष फैल गया। बहुत-से सरदार जो उसके पूर्वजों का समय देख चुके थे क्रोध से अपनी-अपनी जागीरों में चले गये। उसके राज्य की दुर्व्यवस्था के कारण लोग उसके राज्य को पप्पाबाई का राज्य कहते थे।[६]

बहादुर शाह का राणा सांगा और रत्नसिंह से अच्छा सम्बन्ध था। राणा सांगा ने बहादुर शाह के गद्दी पर बैठने के समय उसे बधाई दी थी। रत्नसिंह ने भी शत्रुंजय के मन्दिर की मरम्मत के लिए उससे आज्ञा प्राप्त की थी।[७] इसके विपरीत विक्रमादित्य ने सिलहदी को बहादुर शाह के विरुद्ध सहायता

बुनयानी को दिया। सभी सभ्य लोगों ने उसके स्वीकार करने की निन्दा की उसने भी प्राप्त धन दान कर दिया। (बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३५६-६६; रास, अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. २२४-२५)।

रायसीन की विजय के लिए देखिए बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३५६—६६; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. ११७—२३; काम्मिस्सारियट, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३२७-२८; रास, अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, १, पृ. २२४-२५।

६ वीर विनोद, २, पृ. २७; कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ. ५३०; टाड, एनल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज़ ऑफ राजस्थान, १, पृ. २४८।

७ ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. ३९१।

दी। यद्यपि यह केवल नाममात्र की और दिखाने के ही लिए थी फिर भी विक्रमादित्य के इस व्यवहार से बहादुर शाह बहुत नाराज़ हुआ। उसे यह भी मालूम था कि राणा सांगा के अमीर नये राणा के साथ नहीं हैं। मेवाड़ के जागीरदारों में पारस्परिक वैमनस्य बढ़ता जा रहा था। राणा सांगा के भतीजे नरसिंह देव तथा अन्य विद्रोही जागीरदारों ने बहादुर से चित्तौड़ पर आक्रमण करने की प्रार्थना की।[८] बहादुर को चित्तौड़ पर आक्रमण करने का एक अच्छा बहाना मिला, यद्यपि चित्तौड़ पर आक्रमण करने के अन्य कारण भी थे। बहादुर शाह जानता था कि मुग़लों के विरुद्ध आक्रमण करने के पूर्व राजपूतों, विशेषतया मेवाड़ को वश में करना आवश्यक था। मालवा पर अधिकार करने के पश्चात् वह अब राणा सांगा द्वारा अधिकृत मालवा के भाग पर अधिकार करना चाहता था।

बहादुर शाह ने अपने सेनानायकों मुहम्मद ख़ां आसिरी तथा ख़ुदावन्द ख़ां के नेतृत्व में एक अग्रणी दल चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए भेजा (१५३२) तथा स्वयं भी उनके पीछे रवाना हुआ। उसके सेनानायकों ने रणथम्भौर,[९] कनोर, गागरोन, तिलहटी तथा अन्य स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया। जनवरी १५३३ में तातार ख़ां ने चित्तौड़ के सात द्वारों में से दो पर अधिकार कर लिया। इस घेरे में रूमी ख़ां[१०] नामक तुर्की तोपची ने बड़ी योग्यता से तोपों को एक उपयुक्त स्थान पर स्थिर कर दुर्ग की दीवारों पर गोलाबारी

८ शर्मा, मेवाड़ अण्डर दी मुग़ल्स, पृ. ४९।

९ रणथम्भौर का दुर्ग चित्तौड़ के पतन के पूर्व अधिकृत हुआ या पश्चात्, यह विवादग्रस्त है। अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात के अनुसार रणथम्भौर पर चित्तौड़ के घेरे के पूर्व अधिकार हुआ। डा. बनर्जी ने यह मत स्वीकार किया है (हुमायूं, १, पृ. ८५)।

१० १६वीं सदी में भूमध्य सागर के भागों में अमीर सालमन रैस नामक तुर्की जलसेना नायक का बड़ा नाम था। तुर्की के शासकों ने उसे पुर्तगालियों के विरुद्ध दक्षिणी अरब में भेजा जहां वह स्वयं यमन का शासक बन बैठा। १५२९ में उसकी हत्या हो गयी। उसकी हत्या का बदला उसकी बहन के लड़के मुस्तफा ने लिया और वह स्वयं वहां प्रभावशाली बन बैठा। मुस्तफा के पिता बहराम ने १५३० में कुसतुन-तुनियां से इसे बहादुर शाह की सहायता के लिए गुजरात जाने की आज्ञा दी। १५३१ में मुस्तफ़ा ड्यू पहुँचा। उसी समय पुर्तगालियों ने ड्यू पर आक्रमण कर दिया था। मुस्तफा ने बहादुर शाह की सेना को सहायता दी तथा उसने बहादुरी से युद्ध किया। पुर्तगाली भागकर गोवा

करना प्रारम्भ कर दिया। दुर्ग की रक्षा करना असम्भव जानकर राणा सांगा की विधवा रानी कर्णावती (करमावती) ने हुमायूं से सहायता की प्रार्थना की।[११] हुमायूं ने राजपूत दूत के साथ अच्छा बर्ताव किया तथा उसे पारितोषिक देकर विदा कर दिया। उसकी प्रार्थना पर वह ग्वालियर तक आया और दो माह वहां रुककर (फरवरी तथा मार्च १५३३) आगरा लौट गया।[१२] हुमायूं ने इस तरह रानी कर्णावती की कोई भी सहायता नहीं की। विवश होकर चित्तौड़ को निम्नलिखित शर्तों पर आत्मसमर्पण करना पड़ा :

(१) मालवा का जो भाग राणा सांगा ने महमूद द्वितीय से प्राप्त किया था उन्हें मेवाड़ ने बहादुर शाह को वापस दे दिया।

(२) मेवाड़ से १० हाथी, १०० घोड़े और पांच करोड़ टनका बहादुर शाह को प्राप्त हुआ।

(३) गुजरात के सुल्तान का ताज जिसे मालवा का शासक महमूद ख़िलजी प्रथम १४५२ में छीन ले गया था तथा जिसे राणा सांगा मालवा से छीन ले गया था, राणा को बहादुर शाह को वापस देना पड़ा।[१३] सन्धि के पश्चात् (मार्च १५३३) बहादुर शाह ने अपने दो अमीरों को रणथम्भौर की विजय के लिए तथा तीसरे को अजमेर विजय के लिए भेजा तथा स्वयं मांडू की तरफ रवाना हो गया।

चले गये। उसकी सामयिक सहायता से बहादुर शाह प्रभावित हुआ। उसने उसे रूमी ख़ां की उपाधि दी, तथा तोपखाने का प्रमुख अधिकारी और भड़ौंच का अमीर नियुक्त किया। (ह्वाइटवे, राइज़ ऑफ पुर्तगीज पावर इन इण्डिया, पृ. २२४–२८; डेनवर्स, पुर्तगीज़ इन इण्डिया, १, पृ. ४००–४०२; अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, १, पृ. २२०)। कुछ ही दिनों में उसकी गणना प्रसिद्ध तोपचियों में होने लगी।

[११] राजमाता कर्णावती ने हुमायूं के पास 'राखी' पद्मशाह नामक दूत के हाथ भेजी (शर्मा, मेवाड़ अण्डर दी मुग़ल्स, पृ. ५०; टाड, एनल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान, १, पृ. ३६४-६५; काम्मिस्सारियट, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३३०-३१)। कविराज श्यामलदास (वीर विनोद, २, पृ. २७) लिखते हैं कि विक्रमादित्य स्वयं दिल्ली गया। कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (भाग ४, पृ. २२) में भी प्रार्थना-पत्र भेजने का उल्लेख है।

[१२] गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. ११६। ख्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, डा. बेनी प्रसाद, पृ. ६१।

[१३] फिरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. १२४; बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३६९-७२;

हुमायूं द्वारा चित्तौड़ का प्रथम घेरा

रानी कर्णावती का निमन्त्रण हुमायूं को कहां प्राप्त हुआ यह निश्चयपूर्वक बताना कठिन है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि चुनार से वापस आने पर यह उसे आगरा में प्राप्त हुआ। हुमायूं आगरा से ग्वालियर आया। वह तत्काल युद्ध के लिए तैयार नहीं था और उस समय केवल अपने साम्राज्य की रक्षा चाहता था। हुमायूं के ग्वालियर निवास के कारण ही बहादुर ने शीघ्र मेवाड़ से सन्धि कर ली क्योंकि वह मुग़ल तथा राजपूतों की सम्मिलित शक्ति का सामना नहीं करना चाहता था।[१४]

चित्तौड़ की सफलता ने बहादुर शाह की शक्ति को और भी बढ़ा दिया। यद्यपि उसे चित्तौड़ पर अधिकार करने में सफलता नहीं मिली फिर भी उसे धन तथा यश दोनों प्राप्त हुआ। रणथम्भौर के अधिकार में आ जाने से सैनिक दृष्टि से एक शक्तिशाली दुर्ग उसके अधिकार में आ गया।[१५] रणथम्भौर, अजमेर तथा नागौर की विजय ने राजपूताने को दो भागों में विभाजित कर दिया। बहादुर शाह सुविधा से किसी भी समय अलग-अलग आक्रमण करके उन पर अधिकार कर सकता था।[१६]

बहादुर शाह के दरबार में मुग़ल साम्राज्य के शरणार्थी

साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ बहादुर शाह का दरबार ऐसे लोगों का केन्द्र बनता जा रहा था जो मुग़लों से असन्तुष्ट थे। उसके दरबार में ऐसे कई लोगों ने शरण ली थी जो मुग़लों के शत्रु थे। बहादुर का दरबार इस तरह हुमायूं के विरुद्ध षड्यंत्र का केन्द्र बना हुआ था। इन शरणार्थियों को हम दो

काम्मिस्सारियट, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३२९-३०। मिराते सिकन्दरी के अनुसार बहादुर शाह को एक करोड़ टनके तथा डा. बनर्जी (हुमायूं, भाग १, पृ. ८७) के अनुसार पांच करोड़ टनके प्राप्त हुए।

१४ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ९७-९८।

१५ रणथम्भौर का दुर्ग चम्बल के तट पर स्थित है। चम्बल नदी कालपी में यमुना से मिलती है। इसी तरह आगरा से थट्टा जाने का मार्ग तथा क़न्धार से बुरहानपुर जाने का मार्ग एक-दूसरे से अजमेर में मिलते थे। इस तरह व्यापारिक तथा सैनिक दृष्टि से इसका महत्त्व बहुत ही बढ़ गया था।

१६ रघुवीरसिंह, पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ. २५; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ८७।

भागों में विभाजित कर सकते हैं—अफ़ग़ान शरणार्थी तथा मुग़ल शरणार्थी।

अफ़ग़ान शरणार्थी—अफ़ग़ान शरणार्थियों में प्रथम आलम ख़ां जिघाट था। वह कालपी का गवर्नर रह चुका था तथा १५२६ में उसने बिहार के अफ़ग़ानों के विरुद्ध बाबर की सहायता भी की थी। हुमायूं से असन्तुष्ट होकर वह गुजरात भाग आया। यहां उसने बहादुर के दरबार में शरण ली।[१७] रायसीन की विजय के पश्चात् बहादुर शाह ने भीलसा, चन्देरी, रायसीन तथा उसके आसपास के भाग उसे दे दिये। ये महत्त्वपूर्ण स्थान थे, क्योंकि रणथम्भौर, नागौर और अजमेर की विजयों के पश्चात् बहादुर शाह का साम्राज्य मुग़ल साम्राज्य के निकट आ गया था। इन स्थानों पर आलम ख़ां जिघाट की नियुक्ति यह प्रमाणित करती है कि वह बहादुर शाह का विश्वासपात्र बन गया था। आलम ख़ां भी अपने नये स्वामी के प्रति अन्त तक स्वामिभक्त रहा, जब तक वह मुग़लों द्वारा बन्दी बना कर पंगु नहीं बना दिया गया।

अफ़ग़ानों में दूसरा व्यक्ति सुल्तान आलम ख़ां अलाउद्दीन लोदी था। यह सुल्तान सिकन्दर लोदी का भाई तथा बहलोल लोदी का पुत्र था। दिल्ली के तख्त पर बैठने की आकांक्षा से उसने बारबार पक्ष परिवर्तन किया किन्तु उसे कभी भी सफलता नहीं प्राप्त हुई। सिकन्दर लोदी के राजत्व के समय उसने गुजरात के सुल्तान महमूद शाह के यहां शरण ली। इबराहीम लोदी के समय उसने गुजरात के शासक सुल्तान मुजफ़्फ़र शाह की स्वीकृति से इबराहीम लोदी का विरोध करने का प्रयास किया। बाबर के आक्रमण के पूर्व वह उससे मिल गया। बाबर से उसने सन्धि की, जिसके अनुसार इबराहीम को हटाकर आलम ख़ां को दिल्ली की गद्दी पर बैठने की योजना बनी। बाबर ने अपना चौथा भारतीय आक्रमण आलम ख़ां के पक्ष में किया था[१८] तथा काबुल लौटने के पूर्व उसने दीपालपुर उसे दे दिया। आलम ख़ां इन भागों पर अधिकार नहीं रख सका तथा भागकर पुनः काबुल पहुँचा। बाबर ने उसके साथ एक सन्धि की, जिसके अनुसार उसने आलम ख़ां को दिल्ली के तख्त पर बैठाने का वादा किया, तथा आलम ख़ां ने लाहौर तथा उसके पश्चिम के भागों

[१७] जफ़रुल वालेह का लेखक अब्दुल्लाह लिखता है कि आलम ख़ां १२,००० अश्वारोहियों एवं ३०० हाथियों को लेकर बहादुर से जा मिला। "सुल्तान (बहादुर) एवं हुमायूं में नाममात्र की संधि थी, इस कारण सुल्तान (आलम) के प्रति उसने सौजन्यपूर्ण व्यवहार किया।" (रिज़वी, हुमायूं, २, पृ. ४४६)।

[१८] विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १२०।

को बाबर को देने की स्वीकृति दी। यहां से बाबर के आज्ञापत्र के साथ वह पंजाब आया। यहां वह पुनः पंजाब के विद्रोही अफ़ग़ान अमीरों से मिल गया, तथा उनके साथ उसने भी सुल्तान इबराहीम लोदी पर आक्रमण किया, किन्तु पराजित हुआ।[१९] बाबर के पांचवें तथा अन्तिम आक्रमण के समय वह पुनः बाबर से जा मिला। १५२७ में बाबर के साथ उसने राणा सांगा के विरुद्ध खानवा के युद्ध में भाग लिया।[२०] शीघ्र ही बाबर से उसका मतभेद हो गया तथा बाबर ने इसे गिरफ्तार कर बदख़्शां में क़िलाए ज़फर में बन्दी बनाकर भेज दिया।[२१] वहां से भी आलम ख़ां निकल भागा और गुजरात पहुँचा जहां उसका स्वागत हुआ। दिल्ली राज्य पर अपना अधिकार दिखाने के लिए उसने आलम ख़ां के स्थान पर सुल्तान अलाउद्दीन की उपाधि धारण की।

आलम ख़ां अलाउद्दीन लोदी का पुत्र तातार ख़ां[२२] भी उसके साथ था। यह नौजवान, महत्त्वाकांक्षी, वीर तथा योग्य व्यक्ति था, किन्तु इसमें जवानी का नशा अधिक तथा अनुभव कम था। तातार ख़ां अपने पिता को दिल्ली के तख़्त पर बैठाना चाहता था और इसके लिए वह बहादुर शाह को बारबार प्रोत्साहित करता रहता था। बहादुर शाह तातार ख़ां के सैनिक गुणों से प्रभावित था किन्तु वह उसकी योजनाओं पर अधिक ध्यान नहीं देता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि बहादुर शाह आलम ख़ां के पक्ष में नहीं था, क्योंकि आलम ख़ां को दिल्ली के तख़्त पर बैठने का गौरव प्राप्त नहीं था। केवल लोदी वंश से सम्बन्धित होने के कारण वह अपने को उसका हकदार समझता था। बाबर ने भी उसका मान नहीं किया था तथा उसे किसी भी तरह का प्रोत्साहन नहीं दिया था। यही नहीं, बारबार पक्ष परिवर्तन कर उसने अपनी स्वार्थान्धता तथा विश्वासहीनता प्रदर्शित की थी। गुजरात आने के पूर्व वह बदख़्शां में कई वर्ष तक बन्दी रह चुका था। इन परिस्थितियों में १५३४ में उसे कहां तक स्थानीय समर्थन प्राप्त होता यह सन्देहजनक था। आलम ख़ां अलाउद्दीन लोदी की सहायता के लिए बहादुर शाह को मुग़लों से युद्ध करना

१९ वही, पृ. १२१।

२० बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ५६५।

२१ अकबरनामा, १, पृ. १२६।

२२ अबुल फज़ल आलम ख़ां के पुत्रों में केवल तातार ख़ां का उल्लेख करता है (अकबरनामा, १, पृ. १२६)। मीर अबू तुराब वली के अनुसार उसके दो पुत्र तातार ख़ां तथा फ़तेह ख़ां थे। (अबू तुराब, तारीख़े गुजरात, पृ. ७)।

पड़ता। उनसे युद्ध करने में वह झिझकता था और सफलता की आशा भी अधिक नहीं थी। फिर भी लोदी वंश के प्रमुख व्यक्ति को अपने दरबार में रखकर बहादुर शाह अपने पास एक ऐसा अस्त्र रखना चाहता था जिसका प्रयोग वह आवश्यकता पड़ने पर कर सके।

इन प्रमुख अफ़ग़ान उमराओं के अतिरिक्त बहुत से अफ़ग़ान बिहार, बंगाल तथा अन्य भागों से आकर बहादुर शाह की सेना में भरती हो गये थे। ये सभी मुग़लों से असन्तुष्ट थे तथा उनके विरोध के लिए सदा तत्पर थे। तारीख़े गुजरात का लेखक अबू तुराब वली लिखता है : "सुल्तान बहलोल की सन्तान, जो मुग़लों के प्रभुत्व के कारण दुःखी एवं रुष्ट थी, सुल्तान बहादुर के राज्य के प्रारम्भ में ही उसकी सेवा में पहुँच गयी। वे लोग प्रतिकार तथा अपनी हानि की पूर्ति हेतु समय-समय पर हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने के लिए उसे प्रेरित किया करते थे।"[२३]

मुग़ल शरणार्थी—मुग़ल शरणार्थियों में सबसे प्रमुख मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा था जिसके विषय में हम पिछले अध्याय में वर्णन कर आये हैं। नवम्बर १५३४ में मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा मुग़ल जेल से भागकर गुजरात पहुँचा। बहादुर ने उसका स्वागत किया तथा उसे धन, जागीर और सम्मान दिया[२४] जिससे वह अन्य विद्रोही मुग़लों को अपने पक्ष में ला सके। मुहम्मद ज़मान शीघ्र ही बहादुर शाह के दरबार के मुग़ल शरणार्थियों का नेता बन गया। बहादुर के धन की सहायता से उसने मुग़ल सैनिकों को अपने वश में करने का प्रयत्न किया तथा १०,००० मुग़ल सैनिकों को अपने पक्ष में कर लिया।[२५]

इस तरह बहादुर शाह के दरबार में मुग़ल विरोधी दो दल बन गये। बहादुर इन दोनों दलों का प्रयोग समयानुसार मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध करना चाहता था। ये दोनों दल परस्पर विरोधी थे किन्तु बहादुर शाह मुग़लों की विरोधी भावना के आधार पर अपने नेतृत्व में इन्हें एकत्र करना चाहता था।

२३ अबू तुराब, तारीख़े गुजरात, पृ. ३।

२४ मीर अबू तुराब वली तारीख़े गुजरात (पृ. २) में लिखता है कि हुमायूं तथा बहादुर शाह के "पारस्परिक मतभेद एवं विरोध का कारण मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा था। इस बात का समर्थन मिराते सिकन्दरी का लेखक सिकन्दर भी करता है। इसी घटना के पश्चात् दोनों सम्राटों में पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हो गया जिसका वर्णन हम आगे करेंगे। मिराते सिकन्दरी; बेले, हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ. ३७५।

२५ अक़बरनामा, १, पृ. १२८।

सुल्तान आलम ख़ां अलाउद्दीन लोदी तथा मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा दोनों दिल्ली के तख़्त पर बैठना चाहते थे। बहादुर शाह् वास्तव में किसी के पक्ष में नहीं था, क्योंकि वह स्वयं दिल्ली पर अधिकार करना चाहता था, किन्तु वह दोनों में किसी को असन्तुष्ट नहीं करना चाहता था वरन् अपने लिए उनका उपयोग करना चाहता था।

हुमायूं तथा बहादुर शाह् का कूटनीतिक सम्बन्ध

बहादुर शाह् ने अपनी शक्ति को दृढ़ करने के लिए अन्य राज्यों से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। बंगाल के शासक नुसरत शाह् के साथ उसका अच्छा सम्बन्ध था। उसकी मृत्यु के पश्चात् शेर ख़ां के उत्कर्ष को देखकर बहादुर शाह् ने उसके पास भी आर्थिक सहायता भेजी।[२६] इसका अर्थ था कि आवश्यकता पड़ने पर वे एक दूसरे की सहायता करेंगे, अर्थात्, मुग़लों से बहादुर शाह् का युद्ध छिड़ने पर शेर ख़ां लूट तथा विद्रोह कर पूर्वी सीमा पर मुग़लों की स्थिति कमज़ोर कर देगा।

एक तरफ बहादुर शाह् हुमायूं के शत्रुओं को प्रश्रय दे रहा था तथा दूसरी तरफ वह उसे मीठी बातों से भुलावे में रखना चाहता था। हुमायूं के मन से सन्देह मिटाने के लिए, दीन पनाह् के शिलान्यास के पश्चात् (अगस्त १५३३), उसने क़ाज़ी अब्दुल क़ादिर तथा मुहम्मद मुक़ीम को अपना दूत बनाकर बहुमूल्य भेंट के साथ हुमायूं के पास भेजा।[२७] उन्होंने बहादुर शाह् की तरफ से भेंट दी तथा हुमायूं की माता की मृत्यु पर संवेदना प्रकट की। हुमायूं ने राजभवन के महाप्रतिहार को उन्हें पहुँचाने के लिए भेजा तथा मैत्री-पत्र भेजकर सुल्तान को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया।[२८]

बहादुर शाह् ने पुर्तगालियों के साथ भी सन्धि कर ली। २० जनवरी १५३३ को पुर्तगाली जेनरल नूनो द कुनहा ने मलिक तोगां को, जो बहादुर शाह् के नाम से बेसीन पर शासन करता था, पराजित कर दिया। बहादुर उस समय चित्तौड़ पर आक्रमण के हेतु जा रहा था। चित्तौड़ के प्रथम घेरे के पश्चात् बहादुर डियू गया, किन्तु पुर्तगालियों को दण्ड देने के स्थान पर उसने उनसे सन्धि कर ली (दिसम्बर १५३४)। इस सन्धि के अनुसार बहादुर शाह् ने पुर्तगालियों को बेसीन दे दिया तथा उन्हें अनेक व्यापार सम्बन्धी सुविधाएं

[२६] वही, पृ. १४८।
[२७] अबू तुराब, तारीख़े गुजरात, पृ. ५; अकबरनामा, १, पृ. १२४।
[२८] अकबरनामा, १, पृ. १२४।

भी दीं। इसके स्थान पर पुर्तगालियों ने सुल्तान की पूर्णरूप से सहायता करने की प्रतिज्ञा की।[२९] इस तरह बहादुर ने मुग़लों पर आक्रमण करने के पूर्व पुर्तगालियों को भी अपने पक्ष में कर लिया।

बहादुर शाह की महान योजना

मुग़ल तथा अफ़ग़ान दोनों दलों के पारस्परिक वैमनस्य का बहादुर शाह पूर्ण लाभ उठाना चाहता था। तातार ख़ां तुरन्त आक्रमण करना चाहता था, किन्तु मुहम्मद ज़मान इसके लिए तैयार नहीं था। चित्तौड़ विजय ने बहादुर को उत्साहित कर दिया था। सेना इकट्ठी करने के लिए उसने तातार ख़ां को २० करोड़ पुराने गुजराती टनके दिये।[३०] इसकी सहायता से कुछ ही दिनों में उसने लगभग ४०,००० सैनिक इकट्ठे कर लिये। बहादुर शाह ने मुग़ल साम्राज्य पर तीन तरफ से आक्रमण करने की योजना बनायी। वह स्वयं एक चौथाई सेना के साथ चित्तौड़ पर आक्रमण कर, इन अभियानों की गतिविधि पर दृष्टि रखना चाहता था।[३१]

इस योजना के अन्तर्गत[३२] आलम ख़ां लोदी को एक बड़ी सेना के साथ कालिंजर पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। इस अभियान का लक्ष्य मुग़लों को विभ्रान्त करना था। कालिंजर का दुर्ग अभी तक पूर्ण रूप से हुमायूं के अधिकार में नहीं आया था। जैसा वर्णन किया जा चुका है, कालिंजर के राजा ने समर्पण कर तथा १२ मन सोना हरजाने के रूप में देकर मुग़लों से पिण्ड छुड़ा लिया था। यहां की सफलता के पश्चात् आलम ख़ां को तातार ख़ां से मिलना था। कदाचित् शेर ख़ां से भी यहां सहायता मिल सकती थी।

एक दूसरी सेना बुरहानुल मुल्क बनियानी के नेतृत्व में दिल्ली की तरफ भेजी

२९ डैनवर्स, दि पुर्तगीज़ इन इण्डिया, १, पृ. ४१६-१७; ह्वाइटवे, राइज़ ऑफ पुर्तगीज पावर इन इण्डिया, पृ. २३६; काम्मिस्सारियट, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३४९-५० द्वारा उद्धृत।

३० अकबरनामा, १, पृ. १२८; अबू तुराब, तारीख़े गुजरात, पृ. ७ तथा १२;

३१ बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३८२; बनर्जी, हुमायूं, १ पृ. ९३-९४।

३२ कुछ हस्तलिपियों में मुल्तानी तथा कुछ में बनियानी लिखा है। डा. ईश्वरी प्रसाद (पृ. ६७-६८) ने भूल से इसे तातार ख़ां का पिता लिखा है। तातार ख़ां का पिता सुल्तान अलाउद्दीन था। डा. बनर्जी (भाग १, पृ. ९४) इसे बुरहानुल मुल्क नरपाली लिखते हैं।

गयी। इसका लक्ष्य नागौर, दिल्ली तथा पश्चिमी पंजाब के भागों में उपद्रव करना था। कदाचित् इस तरह क़न्धार, लाहौर, अजमेर के मार्ग पर अधिकार करना था।

तीसरी सेना तातार ख़ां के नेतृत्व में आगरा पर आक्रमण करने के लिए भेजी गयी।[33] वास्तविक रूप में यह प्रमुख दल था तथा इसी के पास सबसे अधिक सैनिक थे। बहादुर शाह ने स्वयं मुग़ल साम्राज्य के किसी भी भाग पर आक्रमण नहीं किया। वह किसी उपयुक्त स्थान से इन तीनों अभियानों पर दृष्टि रखना चाहता था, जिससे आवश्यकता पड़ने पर इनको सहायता दी जा सके। उसका वास्तविक लक्ष्य मुग़ल राजधानी थी। इस तरह यदि उपर्युक्त दल पराजित होते तो यह कहकर कि इन अभियानों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था, वह अपना उत्तरदायित्व अस्वीकार कर देता। यदि अभियान सफल होते तो उनकी सहायता कर वह दिल्ली के तख़्त पर अधिकार कर लेता।

बहादुर शाह के अनुभवी मंत्रियों ने इस योजना की आलोचना की। उनका विचार था कि यह क़ार्य स्पष्ट रूप में मुग़लों की मित्रता को तोड़ने वाला था तथा हुमायूं इस अभियान को स्पष्ट रूप में बहादुर शाह द्वारा प्रोत्साहित समझेगा और उसे धोखा नहीं दिया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त सेना को कई भागों में विभाजित कर देने से वह क़मजोर हो गयी थी तथा उसकी सफलता की आशा नहीं थी। यदि वास्तविक रूप में देखा जाए तो बहादुर शाह के परामर्शदाताओं की सम्मति बहुत कुछ अंशों में सत्य थी, किन्तु बहादुर शाह ने उस पर ध्यान नहीं दिया। कदाचित् मुग़लों से प्रत्यक्ष रूप में युद्ध करने का उसमें साहस नहीं था। बहादुर शाह ने स्वयं चित्तौड़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया और अपनी सेना लेकर चित्तौड़ की ओर चल पड़ा। यहां से वह सभी अफ़ग़ानों पर दृष्टि रखता था तथा आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता कर सकता था।

बहादुर शाह की योजना की असफलता

दुर्भाग्यवश बहादुर की योजना सफल न हो सकी। बहादुर शाह के अभियानों का समाचार पाते ही हुमायूं बिहार से लौटकर आगरा चला आया।[34]

[33] मिराते सिकन्दरी के अनुसार तातार ख़ां का लक्ष्य बयाना के रास्ते दिल्ली पर आक्रमण करना था। हुमायूं या तो तातार ख़ां से युद्ध करता या दिल्ली पर तातार ख़ां का अधिकार हो जाता। बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३८२।

[34] अकबरनामा, १, पृ. १२६।

तातार ख़ां की सेना जोश में मुग़ल साम्राज्य में घुस गयी। उसने बयाना पर अधिकार कर लिया और आगरे पर आक्रमण करने के लिए कुमक भेजी। आगरे में आतंक छा गया। हुमायूं ने स्थिति को देखकर तुरन्त अस्करी तथा हिन्दाल को १८,००० अश्वारोहियों[३५] तथा क़ासिम हुसेन सुल्तान, ज़ाहिद बेग, दोस्त बेग और यादगार नासिर मिर्ज़ा जैसे सेनानायकों के साथ, तातार ख़ां के विरुद्ध भेजा। उन्होंने बयाना पर पुनः अधिकार कर लिया। तातार ख़ां मुग़ल सेना के आगमन से पीछे लौटकर मंदरैल[३६] लौट आया। यहां वह अपने ४०,००० सैनिकों के साथ शत्रु की प्रतीक्षा करने लगा। दुर्भाग्यवश उसकी सेना में भाड़े के सिपाही थे जो लूट में अधिक दिलचस्पी रखते थे। युद्ध की आशंका से ये सैनिक धीरे-धीरे उसकी सेना छोड़कर भागने लगे।[३७] उसके अधिकतर सैनिक उसे धोखा देकर युद्ध के मैदान से खिसक गये। मन्दरैल में जिस समय युद्ध प्रारम्भ हुआ तातार ख़ां के पास केवल ३००० घुड़सवार थे।[३८]

हिन्दाल ५००० अश्वारोहियों के साथ बयाना से आगे बढ़ा। तातार ख़ां ने अपनी सेना को भागते हुए देखकर भी स्वयं भागने से इनकार कर दिया और कहा कि उसने सुल्तान से धन लिया है, अब उसे क्या मुँह दिखाएगा।[३९] एक भीषण युद्ध हुआ। तातार ख़ां बहुत ही बहादुरी से लड़ता हुआ अपने बचे ३०० सैनिकों के साथ मारा गया (नवम्बर १५३४)। बहादुर शाह ने तातार ख़ां को किसी भी तरह मुग़लों से युद्ध करने से मना कर दिया था। मिराते सिकन्दरी के अनुसार उसे यह आज्ञा दी गयी थी कि वह अपनी सेना को ठीक रखे तथा सुल्तान बहादुर की प्रतीक्षा करे।[४०] किन्तु जोश में तातार ख़ां ने उसकी इस

३५ अबुल फ़ज़ल उसकी सेना की संख्या १८,०००, अबू तुराब १५,००० तथा मिराते सिकन्दरी का लेखक ५,००० लिखता है। अकबरनामा, १, पृ. १२९; अबू तुराब, तारीख़े गुजरात, पृ. १२; बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३८२।

३६ आगरा के दक्षिण बयाना के समीप २६° १८′ उत्तरी तथा ७७° १८′ पूर्वी पर स्थित।

३७ बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३८२; अर्सकिन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, २, पृ. ४६; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ९५।

३८ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ९५; अकबरनामा, १, पृ. १२९।

३९ अबू तुराब, तारीख़े गुजरात, पृ. १२-१३।

४० बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३८२। बहादुर शाह की इस आज्ञा का कारण यह था कि उसे भय था कि यदि तातार ख़ां मुग़लों पर विजय

राय को भुला दिया। वह पराजित अवश्य हुआ किन्तु उसकी इस पराजय में उसके भाड़े के सिपाहियों का बहुत बड़ा हाथ था जिन्होंने उसे धोखा दिया। तातार ख़ां युद्ध में लड़ता हुआ शहीद हुआ। उसकी वीरता निस्संदेह असाधारण थी।

तातार ख़ां की मृत्यु के पश्चात् प्रमुख अभियान का अन्त हो गया। इससे बहादुर शाह की योजनाओं को बड़ा भारी धक्का लगा। दिल्ली और कालिंजर के अभियानों में भी सफलता नहीं मिली, यद्यपि इन लोगों ने पंजाब में कुछ गड़बड़ी अवश्य पैदा की। गड़बड़ी का समाचार सुनकर तथा यह अनुभव कर कि गम्भीर परिस्थिति आ गयी है, हुमायूं ने हिन्दाल और अस्करी को तातार ख़ां को हराने के लिए भेजा था। हुमायूं का यह निश्चय समयानुकूल था तथा इससे उसने योग्य शासक के गुण दिखाये।

बहादुर शाह की योजना की विफलता मन्दरैल में तातार ख़ां की पराजय से हुई। तीनों आक्रमणकारी दस्तों की गति तथा शक्ति बराबर नहीं थी। इस कारण इनके आक्रमणों का बराबर प्रभाव होना असम्भव था। उदाहरणार्थ अलाउद्दीन लोदी तथा बुरहानुल मुल्क की सेनाएं तातार ख़ां की सेना से कहीं छोटी थीं जिससे उनकी पराजय में अधिक समय नहीं लगा। सबसे मनोरंजक कार्य तो बहादुर शाह का आंख मिचौनी जैसा राजनीतिक कार्य था। वह छिपकर पीछे से मुग़लों पर आक्रमण करना चाहता था। अपनी सेना का विभाजन करके उसने अपनी पराजय में स्वयं ही योग दिया। हुमायूं के तत्काल सेना भेजने के निश्चय तथा उसके भाइयों के सहयोग ने भी इसमें सहायता दी।

इन अभियानों ने बहादुर शाह के विचार को स्पष्ट कर दिया। उसने मुग़ल साम्राज्य से भागे हुए व्यक्तियों को शरण ही नहीं दी बल्कि उन्हें धन, प्रोत्साहन तथा सहायता भी प्रदान की। इन अभियानों के पश्चात् हुमायूं को बहादुर शाह से भय हो गया। वास्तव में एक कूटनीतिज्ञ की तरह उसे बहादुर की नीयत को पहले ही समझ लेना चाहिए था। इन परिस्थितियों में अब बहादुर शाह से युद्ध करना आवश्यक हो गया।[४१]

हुमायूं और बहादुर शाह में पत्र-व्यवहार

हुमायूं के गुजरात अभियान के पूर्व हुमायूं और बहादुर शाह में पत्र-व्यवहार हुआ। ऐसे आठ पत्र—चार हुमायूं द्वारा तथा चार बहादुर शाह द्वारा लिखे गये।

पाने में सफल होगा तो वह स्वयं ही मुग़ल तख़्त पर अधिकार करने का प्रयत्न करेगा।

४१ डा. बनर्जी के निम्न मत से सहमत होना कठिन है:

इन पत्रों में पहले छः पत्र संक्षिप्त हैं किन्तु अन्तिम दो पत्र बड़े तथा कूटनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इन पत्रों से बहादुर शाह तथा हुमायूं के विचारों के अतिरिक्त समकालीन कूटनीतिक सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है। इन पत्रों से स्पष्ट हो जाता है कि बहादुर शाह बहुत मीठे-मीठे शब्दों से हुमायूं को प्रसन्न करना चाहता था, यद्यपि अन्दर-अन्दर वह सेना तैयार कर मुग़ल साम्राज्य को समाप्त करने का प्रयत्न करता रहा। इन पत्रों को देखकर इस बात से आश्चर्य होता है कि बहादुर शाह की मनोवृत्ति और कार्यों को देखकर भी हुमायूं ने परिस्थिति की गम्भीरता का अनुमान नहीं किया।

इन पत्रों के विषय में यह भी महत्त्वपूर्ण है कि मध्य युग में स्थायी रूप से कोई राजदूत नहीं रहते थे। कभी-कभी आवश्यकतानुसार एक राज्य दूसरे राज्य में दूत भेजते थे। ये दूत सन्देह की दृष्टि से देखे जाते थे और साधारणतः राज्य विदेशी राजदूतों को बहुत अधिक प्रश्रय नहीं देता था क्योंकि राजदूत जासूसी का भी काम करते थे। यह आक्षेप बहुत अंशों में सत्य भी था। जहांगीर के काल में ईरान और भारत के सम्बन्ध में राजदूतों का कार्य इसका प्रमाण है।[४२]

प्रथम पत्र—दीन पनाह के पूर्ण होने के दो माह पश्चात् बहादुर शाह ने हुमायूं को बधाई का पत्र भेजा। हुमायूं ने दूत की आवभगत की तथा उसने इसके उत्तर में एक दूत भेजा जिसे आदेश दिया गया कि वह कुछ मौखिक बातें जो उससे कही गयी थीं बहादुर शाह से कहे। बहादुर शाह ने हुमायूं के दूत का स्वागत किया। सर्वप्रथम उससे दरबार में भेंट की जिसमें सभी प्रमुख अमीर उपस्थित थे। उसके पश्चात् पुनः एक विशेष दरबार में सुल्तान उससे मिला जहां दूत ने समस्त बातें कहीं जिन्हें कहने के लिए वह भेजा गया था। विशेषतया दूत ने तातार खां के विषय में बात की। उसने कहा कि सुल्तान को किसी ऐसे व्यक्ति को शरण नहीं देनी चाहिए जिससे दोनों राज्यों की मित्रता में

"Humayun did not complain of Bahadur's aiding Tatar Khan nor did Sultan Bahadur follow the defeat up by other expeditions. Humayun kept quiet on the subject, guessing probably that it was purely the outcome of the mad-cap Tatar's enthusiasm. Humayun ignored the other two expeditions also. For the present he remained perfectly satisfied with the complete discomfiture of the enemy in all the three quarters." (हुमायूं १, पृ. ६६)।

[४२] बेनी प्रसाद, जहांगीर, पृ. २६२-६७।

गड़बड़ी हो। इसी तरह की आशा सुल्तान को हुमायूं से रखनी चाहिए। दोनों में से किसी को एक दूसरे का विरोध नहीं करना चाहिए।[४३]

हुमायूं के दूत को महल के निकट ठहराया गया तथा उसके लिए हर प्रकार की सुविधाएं एवं आनन्द की वस्तुएं प्रस्तुत की गयीं। यही नहीं, उसके लिए बहुत ही अच्छा भत्ता भी निश्चित किया गया। दूत बहादुर शाह के व्यवहार से इतना प्रसन्न हुआ कि उसकी इच्छा हुई कि वह हुमायूं को छोड़कर बहादुर शाह के साथ रह जाए। अन्त में बहादुर ने उसे भेंट और पत्र के साथ दिल्ली वापस भेजा। उसने अपने पत्र में केवल यह उल्लेख किया कि हुमायूं ने हाजिब (दूत) द्वारा जो बात कहलायी है वह उसे शिरोधार्य है।[४४]

द्वितीय पत्र—सितम्बर १५३४ में हुमायूं कालपी गया। वहां का गवर्नर आलम खां भागकर गुजरात चला गया, जहां उसका स्वागत हुआ। बहादुर शाह ने रायसीन, भीलसा तथा चन्देरी की जागीरें भी उसे दे दीं। मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा का भी उसने उसी तरह स्वागत किया। इससे स्पष्ट था कि बहादुर ने जो आश्वासन प्रथम पत्र में दिया था उस पर वह चलने को तैयार नहीं था।

हुमायूं ने कालपी से दूसरा पत्र लिखा और इसमें उसने मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा के बहादुर शाह द्वारा स्वागत करने की आलोचना की। उसने बहादुर शाह पर अपनी प्रतिज्ञा भंग करने का आरोप लगाया तथा उसे सचेत किया कि इसके दुष्परिणाम का उत्तरदायित्व बहादुर ही पर होगा। पत्र के अन्त में उसने हज़रत मुहम्मद के कथन का उल्लेख किया जिसमें यह कहा गया था कि प्रतिज्ञा पालन धर्मनिष्ठा का प्रमाण है।[४५]

बहादुरशाह का उत्तर हुमायूं को आगरे में नवम्बर १५३४ में प्राप्त हुआ। इसकी भाषा बड़ी संयत थी। बहादुर शाह ने लिखा था कि उसने मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा का स्वागत इस विचार से किया था कि वह हुमायूं के लिए पुत्र के समान था। उसने पुनः प्रतिज्ञा की कि वह हुमायूं की इच्छा का पालन करने का प्रयत्न करेगा।[४६] बहादुर शाह हुमायूं को विश्वास दिलाकर

४३ अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. २२८; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ६६-१०० द्वारा उद्धृत।

४४ वही, पृ. २३०; वही, पृ. १००-१०१।

४५ वही; वही।

४६ वही; वही। बहादुर शाह ने जिस शेर को शीर्षक बनाया था उसका अर्थ है, "तुम्हारी प्रतिज्ञाएँ नष्ट न होंगी, इस विषय में कोई उपेक्षा न की जाएगी।"

ऐसी स्थिति में रखना चाहता था, जिसमें हुमायूं को उसकी तरफ से कोई भय न प्रतीत हो। वास्तव में बहादुर शाह मुग़ल विरोधी कार्य तथा सेना संगठन का आयोजन करता रहा।

तृतीय पत्र—हुमायूं का तीसरा पत्र रूपक की भांति है जिसमें दो दार्शनिक आपस में बातचीत करते हैं। उनमें से एक प्रश्न करता है कि संसार में सबसे असहाय व्यक्ति कौन है? दूसरा उत्तर देता है कि, 'वह व्यक्ति जिसके कोई मित्र नहीं है।' पहला कहता है 'नहीं सबसे असहाय व्यक्ति वह है जिसका मित्र था लेकिन उसने उसे खो दिया।'[४७] इस तरह हुमायूं ने इशारे से यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया कि बहादुर शाह को हुमायूं की मित्रता खोने की मूर्खता नहीं करनी चाहिए।

बहादुर शाह ने अपने तीसरे उत्तर में युद्ध के पांच कारणों का उल्लेख किया।[४८] उसने उससे यह निष्कर्ष निकाला कि इन पांच कारणों में कोई भी ऐसा कारण नहीं प्रतीत होता जिसके आधार पर दोनों राज्यों में युद्ध हो। अन्त में उसने लिखा कि उसका किसी से भी बैर भाव नहीं है। उसके धन व्यय करने तथा सेना एकत्र करने का उद्देश्य केवल जिहाद या इस्लाम धर्म के प्रसार के लिए है। अन्त में उसने लिखा कि यदि और कोई उससे द्वेष करता हो तो भगवान् उसका भला करे।[४९]

चतुर्थ पत्र—हुमायूं का चौथा पत्र[५०] लम्बा है तथा उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं तथा बहादुर शाह का सम्बन्ध धीरे-धीरे खराब होता जा

४७ अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १०२ द्वारा उद्धृत। अन्त में एक शेर है जिसका अर्थ है, "मित्रता का पौधा लगा ताकि मनोकामना की सिद्धि के फल लग सकें; शत्रुता के पौधे उखाड़ डाल, कारण कि इससे असंख्य कष्ट प्राप्त होते हैं।"

४८ अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात के लेखक अब्दुल्ला ने हाफिज दमिश्की के आदाब ग्रन्थ से युद्ध के निम्नलिखित पांच कारण उद्धृत किये हैं:

(१) राज्य स्थापित करने की इच्छा, (२) अपने राज्य की रक्षा के लिए युद्ध करना, (३) न्याय के लिए किसी राज्य पर आक्रमण करना, (४) धन बढ़ाने की लिप्सा, तथा (५) विजय और लूट इत्यादि के लिए पृथ्वी को युद्ध से भर देना।

४९ शेर का अर्थ है: "हमारी लोक तथा परलोक में किसी से शत्रुता या वैमनस्य नहीं; जो कोई हमसे शत्रुता करता हो, उस पर ईश्वर की अनुकम्पा हो।"

५० बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १०३-१०७।

रहा था। हुमायूं को अब बहादुर शाह के आश्वासनों पर विश्वास नहीं था। इस कारण उसके पत्र में कुछ कठोरता प्रतीत होती है। पत्र में स्पष्ट कहा गया है कि बहादुर ने सन्धि की शर्तों को तोड़ा है। यदि वह मित्रता चाहता है तो वह मुग़ल विद्रोहियों को अपने राज्य से निकाल दे, अथवा उन्हें समर्पित कर दे। इस पत्र में भी हुमायूं ने उसको समझाने का प्रयत्न किया है कि मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा का स्वागत किसी भी दृष्टि से न्यायसंगत या ठीक नहीं था और उसने पुनः शान्ति की आशा की।

हुमायूं के अंतिम पत्र का उत्तर[५१] सुल्तान मुहम्मद लारी ने लिखा और इस पत्र में उसने कठोर भाषा का प्रयोग किया। उसने हुमायूं के पत्र को विस्मयोत्पादक शब्दों से भरा हुआ (विचित्र शैली वाला) तथा उसकी विषयवस्तु को अभिमान से पूर्ण एवं निरर्थक बताया। हुमायूं के इस कथन को कि उसके दूतों ने मुग़ल विद्रोहियों को गुजरात से निकालने के लिए कहा था, 'झूठ' कहा।

मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा के विषय में पत्र लिखा गया कि वह एक प्रसिद्ध वंश का था। उसने उदाहरण देकर यह बात समझाने का प्रयत्न किया कि शरण में आये हुए व्यक्ति को शरण देना उसके (बहादुर शाह के) पूर्वजों की परम्परा है। उसने लिखा कि मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा उससे (बहादुर शाह से) मित्रता के बन्धनों से बंधा था तथा वह किसी भी हालत में उसे समर्पित करने को तैयार

५१ इस पत्र के लिए देखिए बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३७५–८०; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ११७–२१। बहादुर लिखना-पढ़ना नहीं जानता था। उसका पत्र-व्यवहार मुल्ला महमूद मुंशी करता था। वह पहले हुमायूं के दरबार में था किन्तु हुमायूं के अप्रसन्न होने पर वहां से गुजरात भाग आया। यहां बहादुर शाह ने उसे अपना मुंशी नियुक्त किया। हुमायूं से अप्रसन्न होने के कारण उसने कठोर पत्र लिखा। जिस समय पत्र पढ़कर सुनाया गया बहादुर शाह शराब के नशे में था। पत्र भेज दिया गया। दूसरे दिन पता चलने पर बहादुर शाह ने मलिक नस्सन को पत्र वाहक को रोकने के लिए दौड़ाया। किन्तु नरवार (२५° ३६' उत्तर तथा ७७° ५८' पूर्व) से पीछा करने वाले लौट आये। दूत पत्र लेकर जा चुका था। मिराते सिकन्दरी का लेखक दुःख से कहता है:

"Every disgrace that fell upon the sultan's-administration and all the calamities which affected his fortunes were due to the scribbling of this insolent man." (बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३८०)।

नहीं था। हुमायूं की ग्वालियर यात्रा की बहादुर शाह ने आलोचना की। उसने लिखा कि वह उस समय पुर्तगालियों से युद्ध में लगा हुआ था तथा ऐसी स्थिति में एक मित्र को इस तरह के अभियान में भाग नहीं लेना चाहिए था। बहादुर ने आगे लिखा कि उसके आक्रमण की सूचना से कई स्थानों में लोग विद्रोही हो रहे हैं तथा उसके नाम से ख़ुत्बा नहीं पढ़ा जा रहा है। पत्र के अन्त में उसने लिखा कि सभी जानते हैं कि ईश्वर की कृपा से कोई भी सम्राट चाहे उसकी सेना कितनी ही बड़ी रही हो अभी तक उसके वंश को समाप्त नहीं कर सका है। उसने स्वयं एक बड़ी अफ़ग़ान सेना इकट्ठी कर ली है तथा हुमायूं को अपने दिमाग से घमंड हटा देना चाहिए। बहुत दिन नहीं हैं जब ईश्वर अपना निर्णय स्पष्ट करेंगे।

कूटनीतिक पत्रों का महत्त्व

हुमायूं तथा बहादुर शाह के इस पत्र व्यवहार में काफी समय लगा। इस बीच बहादुर शाह को अवकाश प्राप्त हुआ जिसकी उसे नितान्त आवश्यकता थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हुमायूं में वह सक्रियता नहीं थी जो उसे तुरन्त शत्रु की कूटनीतिकता को समझकर उस पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित करती। हुमायूं ने इस पत्र-व्यवहार में अपना समय व्यर्थ में नष्ट किया।

हुमायूं की दृष्टि से तथा अन्तरराष्ट्रीय क़ानून की दृष्टि से यदि देखा जाए तो हम यह कह सकते हैं कि हुमायूं युद्ध के स्थान पर शान्तिमय तरीकों से पत्र-व्यवहार द्वारा बहादुर शाह से अपना सम्बन्ध सुधारना चाहता था और इस तरह युद्ध के बजाय वह शान्ति का पोषक था, किन्तु हुमायूं के जीवन की अन्य घटनाओं को दृष्टि में रखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तविक रूप में यह हुमायूं का चारित्रिक दौर्बल्य था और उसमें जो आलस्य था उसी के कारण वह पत्र-व्यवहार में समय लगाकर अपने आप को भुलावे में रखना चाहता था।

पत्रों से यह प्रतीत होता है कि हुमायूं ने गुजरात दरबार के शरणार्थियों का प्रश्न विशेष रूप से उठाया था। मध्य युग के मुस्लिम शासकों में शरणार्थी का स्वागत तथा उसकी सहायता राज्य तथा सुल्तान की मनोवृत्ति पर निर्भर करती थी। यदि राज्य शक्तिहीन होता था तो वह अपने से शक्तिशाली राज्य से आये हुए शरणार्थियों को शरण देने में हिचकता था। शरण देने का परिणाम आवश्यकता पड़ने पर युद्ध होता था। यदि हुमायूं का यह दावा, कि एक मित्र राज्य को अपने मित्र राज्य के शत्रु को शरण नहीं देनी चाहिए, स्वीकार कर लिया जाए तो हमें हुमायूं के ही जीवन में दो एक घटनाएं याद रखनी होंगी।

जहां उसने स्वयं शरणार्थियों के लिए युद्ध किया वहां बंगाल के पराजित शासक को गद्दी पर बैठाने के लिए हुमायूं ने स्वयं शेर खां के विरुद्ध बंगाल पर आक्रमण किया। यही नहीं, उसने उसी कारण शेर ख़ां से लगभग निश्चित हुई संधि को तोड़ दिया, जिसका वर्णन अगले परिच्छेदों में किया गया है। इसी तरह ईरान के शासक शाह तहमास्प ने शरणार्थी हुमायूं को एक सेना देकर उसकी सहायता की। इसी तरह बहादुर शाह ने भी मालवा पर आक्रमण इस कारण किया क्योंकि उसके भाई चांद ख़ां ने वहां शरण ली थी तथा वहां का शासक सुल्तान महमूद उसे समर्पित करने को तैयार नहीं था। इन घटनाओं से स्पष्ट है कि किसी शरण में आये हुए अमीर अथवा शासक की सहायता का प्रश्न बहुत कुछ परिस्थितियों तथा शासक की मनोवृत्ति पर निर्भर करता था, यद्यपि मध्य युग में यह मान्यता थी कि शरण में आये हुए व्यक्ति की सहायता करनी चाहिए।

६. गुजरात अभियान : जय तथा पराजय

नवम्बर १५३४ में हुमायूं आगरा लौट आया । उसने लगभग १८ महीने आगरा, दिल्ली, धौलपुर तथा ग्वालियर में व्यतीत किये । आगरा में कुछ माह कदाचित् सेना एकत्र करने में व्यतीत हुए । उसे बंगाल तथा गुजरात दोनों तरफ से भय था । इस कारण पहले किस तरफ आक्रमण करना पड़ेगा वह यह निश्चय नहीं कर पा रहा था । इस बीच गुजरात की समस्या को शान्ति से सुलझाने के विचार से उसने बहादुर शाह से पत्र-व्यवहार किया, किन्तु बहादुर के अन्तिम पत्र ने तथा उसकी महान् योजना ने रही-सही आशा भी समाप्त कर दी ।[1] बहादुर शाह की महान् योजना में अब केवल उसकी ही सेना चित्तौड़ को घेरे हुए थी । अतः गुजरात पर आक्रमण करना आवश्यक हो गया । हुमायूं आगरे से बहादुर शाह के विरुद्ध (दिसम्बर १५३४ या १५३५ के प्रारम्भ में) रवाना हुआ ।

बहादुर शाह द्वारा चित्तौड़ का दूसरा घेरा

जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है, बहादुर शाह की महान् योजना का एक अंग चित्तौड़ पर आक्रमण था । नवम्बर १५३४ में एक बड़ी सेना के साथ वह चित्तौड़ के अभियान पर चल पड़ा । राणा विक्रमाजीत प्रथम पराजय से सचेत नहीं हुआ था । बहादुर शाह ने उसे लोइचा नामक स्थान पर परास्त किया ।[2] बहादुर शाह ने यहां से आगे बढ़कर चित्तौड़ का घेरा डाला । यह संघर्ष चित्तौड़ के दूसरे साके के नाम से प्रसिद्ध है । शासन प्रबन्ध राजमाता कर्मावती ने अपने हाथ में लिया । विक्रमाजीत तथा उदयसिंह बूंदी भेज दिये गये

[1] बदायूनी लिखता है कि हुमायूं ने मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा को वापस करने के लिए बहादुर शाह को पत्र लिखा। बहादुर शाह ने इसका कठोर उत्तर दिया जिसके कारण हुमायूं ने गुजरात पर आक्रमण करने का संकल्प कर लिया । (मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३४५) । मिराते सिकन्दरी भी इसका समर्थक होता है, (बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३८१) ।

[2] बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ८८ ।

तथा दुर्ग की रक्षा का भार देवलिया प्रतापगढ़ के रावत बाघसिंह को दिया गया।[3] राजमाता के आमंत्रण पर चित्तौड़ के सभी सरदार चित्तौड़ की रक्षा के लिए आ डटे। इस तरह आपद्काल में चित्तौड़ में पुन: एकता की स्थापना हुई।

सारंगपुर तथा उज्जैन में हुमायूं

आगरे से हुमायूं मालवा की तरफ रवाना हुआ। बेतवा के तट पर सबसे प्रथम वह रायसीन के दुर्ग के निकट पहुँचा।[४] यह दुर्ग कुछ ही समय पूर्व बहादुर शाह के अधिकार में आया था। दुर्ग के अधिकारियों ने बिना किसी युद्ध के समर्पण कर दिया और हुमायूं के नाम पर दुर्ग को रखने का आश्वासन दिया। हुमायूं ने इसे स्वीकार कर लिया तथा वहां से आगे बढ़कर सारंगपुर पहुँचा।[५]

हुमायूं के आक्रमण से बहादुर शाह चिन्तित हुआ। अरक्षित गुजरात पर हुमायूं का आक्रमण हानिकर हो सकता था। गुजरात की रक्षा के लिए उसने चित्तौड़ के घेरे को त्याग कर तथा राजधानी मांडू लौटकर हुमायूं के आक्रमण से देश की रक्षा करने का विचार किया। उसी समय उसके मन्त्री सद्र ख़ां ने एक कूटनीतिक परामर्श दिया। उसने कहा कि चित्तौड़ का घेरा अपनी अन्तिम अवस्था में है। उसको विजय करने में अब अधिक समय नहीं लगेगा। इस कारण दुर्ग के घेरे को और भी शक्ति के साथ प्रारम्भ करना चाहिए। समय प्राप्त करने के लिए उसने कूटनीतिक अस्त्र प्रयोग करने की सलाह दी। उसने कहा कि वे एक धर्मयुद्ध में लगे हुए हैं। इस समय किसी मुस्लिम शासक का उन पर आक्रमण करना धर्म विरुद्ध होगा इस कारण हुमायूं कभी भी उन पर आक्रमण नहीं करेगा।[६] बहादुर शाह को यह मत स्वीकार नहीं था, क्योंकि वह यह समझता था कि हुमायूं इस तरह की मूर्खता नहीं करेगा। किन्तु अपने मन्त्रियों

३. बाघसिंह ने राना का स्थान ग्रहण किया, इस कारण उसे दीवानजी कहकर पुकारा जाने लगा। बाघसिंह के वंशज बाद में भी दीवान की उपाधि धारण करते रहे (वीर विनोद, २, पृ. ३३)।

४. अकबरनामा, १, पृ. १३०।

५. सारंगपुर मध्यप्रदेश में बम्बई-आगरा मार्ग पर इन्दौर से ७४ मील, २३° ३४′ उत्तर तथा ७६° २९′ पूर्व में स्थित है।

६. अकबरनामा, १, पृ. १३०; अबू तुराब, तारीखे गुजरात, १३; फिरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ७५-७६; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ४९।

के परामर्श से उसने हुमायूं को एक पत्र लिखकर प्रार्थना की कि जब तक वह धर्मयुद्ध में लगा हुआ है तब तक वह उस पर आक्रमण न करे। हुमायूं ने इसे स्वीकार कर लिया और वह चित्तौड़ के पतन तक सारंगपुर तथा उज्जैन में रुका रहा।[७]

डा. बनर्जी ने हुमायूं के बहादुर शाह पर आक्रमण न करने का समर्थन किया है।[८] उनका विचार है कि वहां रुके रहने से उसने मुस्लिम परम्परा का पालन ही नहीं किया बल्कि उसे निम्नलिखित लाभ भी हुए :

(१) वह बहादुर शाह के राज्य के कुछ भागों पर अधिकार किये हुए था। आलम ख़ां जो बहादुर शाह की सहायता के लिए चित्तौड़ गया हुआ था, अपनी जागीर से हाथ धो बैठा।

(२) सारंगपुर और उज्जैन में रहकर मालवा निवासियों तथा पुरबिया राजपूतों को अपने पक्ष में करने का हुमायूं को सुअवसर मिला।

(३) उसने अपने को मांडूगढ़ तथा गुजरात की सेना के बीच रखकर ऐसी परिस्थिति उपस्थित कर दी थी कि बहादुर उसके कैम्प के मार्ग से ही अपनी राजधानी में पहुँच सकता था।

(४) चित्तौड़ की विजय के पश्चात् यदि बहादुर शाह अपनी भारी तोपों के साथ अहमदाबाद जाने का प्रयत्न करता तो हुमायूं अपनी हलकी तोपों के साथ उससे अधिक शीघ्रता से वहां पहुँच सकता था।

(५) बहादुर शाह और मुग़लों के युद्ध में हुमायूं के लिए राजपूतों से अप्रत्यक्ष सहायता पाना संभव था, क्योंकि बहादुर शाह के उत्तर और पश्चिम दोनों तरफ राजपूत थे। अनुमानतः राजपूतों ने हुमायूं को भोजन की सामग्री इत्यादि पहुँचायी, क्योंकि उसे इसका कष्ट नहीं हुआ।[९]

डा. बनर्जी का यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता। हुमायूं यदि इसी समय

७ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ४, तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ४९; मुन्तख़बुत्त-वारीख़, १, पृ. ३४९; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ७५-७६।

८ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. ११९-२०।

९ हुमायूं के पक्ष में हम यह भी कह सकते हैं कि उज्जैन में रुककर हुमायूं एक केन्द्रीय स्थान पर था। यहां से वह बहादुर शाह के प्रमुख सैनिक, अड्डे मांडू को ख़ानदेश (जहां का शासक बहादुर शाह का मित्र था तथा बहादुर शाह की सेना में चित्तौड़ में मौजूद था) से अलग कर सकता था। यहां से वह गुजरात, चित्तौड़ तथा दक्कन पर दृष्टि रख सकता था।

राजपूतों की सहायता करने के लिए आगे बढ़ जाता तो यह अधिक संभव था कि राजपूत सदा के लिए उसके मित्र बन जाते और भविष्य में उसे जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, कदाचित् उन कठिनाइयों का सामना उसे नहीं करना पड़ता। इस दृष्टि से हुमायूं ने एक भारी भूल की तथा उसने एक बहुत बड़ा अवसर खो दिया। वास्तविक रूप में हुमायूं राजपूतों की सहायता के महत्त्व को नहीं समझ सका। यदि उसने इस सुअवसर से लाभ उठाया होता तो उसका भविष्य ही बदल गया होता।[१०]

चित्तौड़ का पतन

बहादुर शाह को जब यह ज्ञात हो गया कि हुमायूं उसके विरुद्ध और आगे नहीं बढ़ेगा तो उसने नई शक्ति के साथ चित्तौड़ के घेरे का कार्य पुनः प्रारम्भ किया। इस घेरे का उत्तरदायित्व प्रसिद्ध तोपची रूमी ख़ां को दिया गया जो अपनी योग्यता के लिए पूरे भारत में प्रसिद्ध था।

मार्च १५३५ के प्रारम्भ में रूमी ख़ां की तोपों ने दुर्ग के दक्षिण-पश्चिम की रक्षापंक्ति को विध्वंस करना प्रारम्भ कर दिया। इस भाग के रक्षक हाड़ा अर्जुन ने बहादुरी के साथ इसकी रक्षा का प्रबन्ध किया, किन्तु तोपों के सामने उसको सफलता नहीं मिली। रूमी ख़ां ने दुर्ग के अन्य भागों पर भी अपनी तोपों से आक्रमण प्रारम्भ कर दिया, जिससे घबराकर राजपूतों की १३,००० स्त्रियां रानी कर्मावती के साथ जौहर करके जल मरीं तथा पुरुष प्रमुख द्वार खोलकर युद्ध के लिए बाहर निकल पड़े। भैरों पोल पर भीषण युद्ध हुआ, जिसमें बहुत-से राजपूत मारे गये। लगभग ३००० हज़ार बालकों को कुएं में डाल दिया गया, जिससे वे शत्रु के हाथ में न पड़ें। इस तरह लगभग ३२,००० मनुष्य मारे गये।[११]

संघर्ष और नरसंहार के पश्चात् बहादुर शाह ने ८ मार्च १५३५ को चित्तौड़ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उसने रूमी ख़ां को यह दुर्ग देने की आशा दिलायी थी किन्तु अमीर रूमी ख़ां के विरुद्ध थे। इस कारण बहादुर शाह ने यह दुर्ग रणथम्भौर के दुर्गपति नस्सम ख़ां को सौंप दिया। उन्हें भय था कि इससे रूमी ख़ां बहुत शक्तिशाली हो जाएगा।

[१०] "Humayun, however, was guided by intuition and inspiration rather than by cool inference from carefully surveyed facts." (शर्मा, मेवाड़ अण्डर दि मुग़ल्स, पृ. ५४)।

[११] वही, पृ. ५५; वीर विनोद, २, पृ. ३१।

मंदसौर

चित्तौड़ के पतन का समाचार सुनकर हुमायूं बहादुर शाह से युद्ध करने के लिए उज्जैन से आगे बढ़कर मन्दसौर आया। बहादुर शाह चित्तौड़ से गुजरात पहुँच जाना चाहता था किन्तु मुग़लों की सतर्कता से वह ऐसा करने में सफल न हो सका।

मन्दसौर में दोनों सेनाएं एक-दूसरे के आमने-सामने एक झील के निकट खड़ी रहीं।[12] मुग़लों के एक अग्रणी दस्ते ने बहादुर शाह की सेना में गड़बड़ी उत्पन्न कर दी, किन्तु उसका कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। रणनीति के विषय में बहादुर शाह के सेनानायकों में मतभेद था। प्रमुख सेनानायक ताज ख़ां तथा सद्र ख़ां ने हुमायूं की सेना पर तुरन्त आक्रमण करने की राय दी। उनका विचार था कि गुजराती सेना चित्तौड़ की विजय से प्रोत्साहित थी। उस समय आक्रमण करने से सफलता की पूर्ण आशा थी। रूमी ख़ां ने इसका विरोध किया। उसने कहा कि बहादुर शाह की सबसे बड़ी शक्ति उसका तोपखाना था। खुली लड़ाई में तोपखाने का पूर्ण उपयोग कठिन था। उसने मज़ाक के तौर पर कहा कि शक्तिशाली तोपखाने के रहते हुए साधारण तलवारों तथा तीरों से युद्ध करना मूर्खता है। उसने यह मत प्रकट किया कि चारों तरफ गाड़ियों का घेरा तैयार कर लिया जाए तथा चारों तरफ खाई खुदवा दी जाए। मुग़लों की सेनाएं इनके निकट आते ही बन्दूकों तथा तोपों से मार डाली जाएंगी।[13]

बहादुर शाह ने रूमी ख़ां का विचार कई कारणों से स्वीकार किया। सद्र ख़ां की योजना आक्रमण की थी। इसके विपरीत रूमी ख़ां की योजना में आक्रमण तथा रक्षा दोनों का समावेश था। कदाचित् बहादुर शाह मुग़लों से खुला युद्ध करने में भय खाता था। सद्र ख़ां ने अपने विचार की पुष्टि के लिए कोई शक्तिशाली दलीलें भी नहीं दी थीं। चित्तौड़ विजय से जहां गुजराती सेना में उल्लास था वहां मुग़ल सेना भी थकी नहीं थी। रूमी ख़ां तोपखाने का विशेषज्ञ था। चित्तौड़ की विजय का बहुत कुछ श्रेय उसी को था जिससे उसकी योग्यता का

[12] अकबरनामा, १, पृ. १३०।

[13] वही, पृ. १३१, तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५०; अबू तुराब, पृ. १३-१४। "Flushed with their success at Chitor Bahadur's troops might have overwhelmed the imperial army had they been immediately led to the attack." (काम्मिस्सारियट, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३५०)।

सिक्का जम गया था। इस परिस्थिति में बहादुर शाह ने रूमी ख़ां की योजना को स्वीकार किया।

बहादुर की स्वीकृति पाते ही रूमी ख़ां ने अपना प्रबन्ध प्रारम्भ कर दिया। अपनी सेना के चारों तरफ गाड़ियों तथा आरक्षित तोपों से उसने एक रक्षान्त दीवार-सी बना दी। एक तरफ झील थी। बाकी तीन तरफ खाइयों से इसे और भी सुरक्षित कर दिया गया। बहादुर शाह तथा उसकी सेना इस घेरे के अन्दर थी। आक्रामक दल एक घुड़सवार दल था। इनका लक्ष्य मुग़लों को तंग करना तथा ऐसी परिस्थितियां उपस्थित करना था जिससे मुग़ल गुजराती तोपों के सम्मुख आ जाएं और उन्हें मार डाला जाए। यह योजना बाबर की योजना से, जो उसने पानीपत के युद्ध में अपनायी थी, मिलती-जुलती थी।[१४] बहादुर शाह ने पानीपत के युद्ध में मुग़लों की युद्ध कला को देखा था तथा वह उससे प्रभावित था। इस कारण उसे विश्वास था कि रूमी ख़ां की यह योजना सफल होगी।

प्रारम्भ में रूमी ख़ां को सफलता मिली। प्रारम्भिक मुठभेड़ों में मुग़लों को हानि उठानी पड़ी। १४ अप्रैल १५३५ को मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा ने ५०० घुड़-सवारों के साथ आक्रमण किया। बहुत-से मुग़ल सैनिक उसका पीछा करते हुए गुजराती तोपों के सामने आ गये तथा मारे गये।[१५] मुग़ल सैनिक तोपों के निकट जाने में डरते थे।[१६]

हुमायूं बहादुर शाह की सेना को घेरे रहा। उसने दो एक बार गुजराती सेना की रक्षापंक्ति को नष्ट करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे पीछे लौटना पड़ा। हुमायूं ने अब यह निश्चय किया कि गुजराती सेना को इस तरह घेर लिया जाए कि उसे किसी तरह की सामग्री बाहर से प्राप्त न हो सके। उसने उन मार्गों पर जिनसे गुजराती सेना को आवश्यक सामग्री प्राप्त होती थी अपने आदमी बैठा दिये जिससे गुजराती सेना को आवश्यक वस्तुएं न प्राप्त हो सकें। इसके अतिरिक्त उसने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि गुजराती सेना के पास न जाएं।[१७]

इस योजना से उसे सफलता मिली। गुजराती सेना को खाद्य सामग्री, घोड़ों का चारा, ईंधन इत्यादि के मिलने में कठिनाई होने लगी, जिससे बहादुर शाह

१४ देखिए अकबरनामा का अंग्रेजी अनुवाद, भाग १, पृ. ३०२, हेनरी बेवरिज का नोट।

१५ अकबरनामा, १, पृ. १३२।

१६ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५०।

१७ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ४; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५१; अबू तुराब, पृ. १४; बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३८४।

के कैम्प में बहुत परेशानी हुई। अन्न का भाव बढ़ गया। बहादुर शाह ने बंजारों की सहायता से दस हज़ार लदी बैलगाड़ियों पर अनाज प्राप्त किया तथा उसे लाने के लिए उसने पांच हजार सैनिक भेजे।[१८] किन्तु दुर्भाग्यवश इसकी सूचना हुमायूं को प्राप्त हो गयी और अपनी सेना की सहायता से यह अन्न मुग़लों ने अपने अधिकार में कर लिया। इससे गुजराती सेना को बहुत ही निराशा हुई तथा उनका कष्ट बहुत बढ़ गया।[१९]

अप्रैल का महीना आ गया था। कुछ ही दिनों में वर्षा प्रारम्भ हो सकती थी। उस समय झील पानी से भर जाता जिससे हुमायूं को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता। वह इस समय शेर खां से भी दूर था। मालवा में विदेशी सेना तथा युद्ध की ऐसी परिस्थितियों में विद्रोह भी हो सकता था। इस स्थिति में हुमायूं ने बहादुर शाह की कठिनाइयों से लाभ उठाना चाहा तथा उसने बहादुर की सेना पर २५ अप्रैल को खुलकर आक्रमण करने का निश्चय किया। बहादुर शाह भी इन परिस्थितियों से घबड़ा गया था। निराशा की अवस्था में उसने युद्ध से भागने का निश्चय किया। २५ अप्रैल की रात को भागने के पहले उसने अपने जवाहिरात, तोपखाना तथा जानवरों को नष्ट कर दिया जिससे वे शत्रु के हाथ न लगें। जिस समय बहादुर के प्रिय हाथियों 'शिरज़ा' तथा 'पर्तसिंगार' की सूंड़ें काटी जा रही थीं और उसकी प्रसिद्ध तोपें 'लैला' और 'मजनूं' नष्ट की जा रही थीं उस समय उसकी आंखों में आंसू आ गये।[२०]

रात्रि में अपने पांच विश्वासपात्र अमीरों के साथ जिनमें कद्रशाह (जो बाद में मालवा का शासक हुआ) तथा खानदेश के शासक प्रमुख थे, बहादुर शाह पिछले मार्ग से निकलकर एक सुनसान मार्ग से मांडू की तरफ रवाना हो गया।[२१]

[१८] बेले, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३८४-८५, दस हजार बैलगाड़ियां अतिशयोक्ति पूर्ण प्रतीत होती हैं।

[१९] वही, पृ. ३८५। मिराते सिकन्दरी के अनुसार रूमी खां ने इसकी सूचना हुमायूं को दे दी थी।

[२०] अकबरनामा, १, पृ. १३२; बेले, गुजरात, पृ. ३८४—८६; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १२६—२८; अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, १, पृ. २३२, तथा २३९-४०; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ४-५।

[२१] तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५१; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ७६-७७; अबू तुराब, पृ. १५। अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. २४० के अनुसार उसके साथ भागने वालों की संख्या दस से कम थी।

प्रारम्भ में शत्रुओं को धोखा देने के लिए वह आगरा के मार्ग से अग्रसर हुआ, कुछ दूर जाकर वह पुनः मांडू की तरफ लौट पड़ा।

रात्रि में बहादुर के ख़ेमे से शोर सुनकर हुमायूं को उसके पलायन की सूचना मिली। सहसा उसे विश्वास नहीं हुआ। ३०,००० सिपाहियों के साथ युद्ध के लिए तैयार होकर हुमायूं अपने ख़ेमे में प्रतीक्षा करता रहा।[२२] उसने बहादुर शाह की सेना पर उसी समय आक्रमण नहीं किया, जबकि वह उस समय आक्रमण कर उसकी सेना को पूर्णतया नष्ट कर सकता था।

डा. बनर्जी ने हुमायूं के आक्रमण न करने की नीति की सराहना की है। वे लिखते हैं कि हुमायूं इतना बहादुर था कि वह शत्रु की कमजोरी से लाभ नहीं उठाना चाहता था। उसी के साथ वे यह भी लिखते हैं कि बहादुर शाह की सैनिक योग्यताओं का हुमायूं को ज्ञान था और इस कारण वह कोई भी खतरा नहीं मोल लेना चाहता था, विशेषतया इस कारण कि उसकी नाकेबन्दी की नीति सफल हो रही थी। इसके अतिरिक्त हुमायूं अपनी सेना को रात्रि में नियंत्रित रखना चाहता था जिससे सुविधा के साथ शत्रु पर आक्रमण कर सके।[२३]

डा. बनर्जी के मत में परस्पर विरोधी दलीलें हैं। या तो हुमायूं वीर था और बहादुर शाह की कमज़ोरी से लाभ उठाना नहीं चाहता था या उससे भयभीत था। ये दोनों बातें एक साथ नहीं कही जा सकतीं। वास्तव में यदि हम विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस समय बहादुर शाह के ख़ेमे में तोपें, जानवर एवं अन्य सामग्रियां नष्ट की जा रही थीं, तथा रूमी खां द्वारा हुमायूं को बहादुर के पलायन की सूचना भी प्राप्त हुई, उस समय हुमायूं को इन बातों पर पूर्ण विश्वास नहीं हुआ। उसे यह भय था कि यह बात उसे धोखा देने के लिए कही जा रही है जिससे वह गुजराती सेना पर आक्रमण कर दे। यही कारण था कि ३०,००० अश्वारोहियों के साथ तैयार होकर हुमायूं सतर्कता से प्रतीक्षा करता रहा। उसमें खतरा मोल लेने की हिम्मत होती तो उसने निश्चय ही बहादुर शाह की सेना पर आक्रमण कर दिया होता। यह हुमायूं की वीरता नहीं वरन् उसकी अदूरदर्शिता का प्रतीक था।

बहादुर शाह के भागने के कारण

शक्तिशाली तोपखाना एवं नई विजय से उल्लसित सेना के रहते हुए भी

[२२] अकबरनामा, १, पृ. १३२।

[२३] बनर्जी, हुमायूं, १. पृ. १२६।

बहादुर शाह ने युद्ध क्यों नहीं किया ? हुमायूं द्वारा खाद्य वस्तुओं पर रोक लगाने के परिणामस्वरूप उसके खेमे की हालत दिन पर दिन बिगड़ती जा रही थी। बहादुर की सबसे बड़ी शक्ति उसका तोपखाना था जो रूमी खां द्वारा संचालित था। बहादुर शाह को यह संदेह हो गया था कि रूमी खां मुग़लों से मिला हुआ है। दिन पर दिन बिगड़ती हुई अवस्था से वह घबड़ा गया तथा रूमी खां की तरफ उसका संशय और भी दृढ़ हो गया। इस कारण वह किसी तरह यहां से भागकर अपने दृढ़ दुर्ग में पहुँच जाना चाहता था। रूमी खां के विश्वासघात की सूचना पाते ही उसने अपने एक अफसर को आज्ञा दी कि रूमी खां को मार डाले। उस व्यक्ति ने रूमी खां को सूचना दे दी।[२४] रूमी खां का हुमायूं से पत्र-व्यवहार तो चल ही रहा था, बहादुर शाह को छोड़कर भागने का उसे अच्छा अवसर प्राप्त हो गया और वह हुमायूं से जा मिला।[२५] बहादुर शाह रूमी खां के विश्वासघात से इतना भयभीत था कि उसने अपने पलायन की सूचना विश्वस्त अमीरों को भी नहीं दी। ८० वर्ष का बूढ़ा खुदावन्द खां, जो पहले मन्त्री रह चुका था, यह समाचार सुनकर आश्चर्यचकित हुआ।

बहादुर शाह की सेना का पलायन

गुजराती सेना बहादुर के भाग जाने से बहुत ही निराश्रित हो गयी। न भागने का रास्ता था, न वहां रुकना संभव था। जिसको जहाँ अवसर मिला, भाग गया। इस बीच सद्र खां तथा इमादुल मुल्क ने बुद्धि तथा साहस से काम लिया। उन्होंने जो सेना इकट्ठी हो सकती थी इकट्ठी की तथा रात्रि के पश्चात्

[२४] काम्मिस्सारियट, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३५३ में Hist des Decouvertes des Protugais by Lafitau के भाग १, पृ. २१२ के आधार पर उद्धृत।

[२५] रूमी खां हुमायूं से कहां मिला इस पर समकालीन इतिहासकार एकमत नहीं हैं। जौहर के अनुसार रूमी खां मन्दसौर से बहादुर शाह का पीछा करते हुए मार्ग में मिला (जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ५)। अकबरनामा के अनुसार वह नालचा में मिला (अकबरनामा, १, पृ. १३२-३३)। निज़ामुद्दीन अहमद ने स्थान का उल्लेख नहीं किया है। मिराते सिकन्दरी के अनुसार रूमी खां बहादुर शाह के भागने के पूर्व ही भाग गया था (बेले, गुजरात, पृ. ३८५)। इन लेखकों के वर्णन से स्पष्ट है कि रूमी खां मन्दसौर तथा मांडू के बीच हुमायूं से मिला। मुग़ल इतिहासकार उसकी सराहना करते हैं और उसे विश्वासघाती नहीं कहते। इसके विपरीत गुजराती इतिहासकार उसकी निन्दा करते हैं।

प्रात: अपने झण्डे उड़ाते और बाजे बजाते ये दक्षिण की तरफ बढ़े, जैसे वे पराजित न होकर विजयी हुए हों। इस सेना के साथ ख़ुदावन्द ख़ां भी था। अपनी बुढ़ौती तथा क्षीण स्वास्थ्य के कारण वह घोड़े पर नहीं चढ़ सकता था और अपने चार हज़ार सैनिकों के साथ पालकी पर बैठकर मांडू की तरफ जा रहा था।[२६]

हुमायूं ने यादगार नासिर मिर्ज़ा, कासिम हुसेन सुल्तान तथा हिन्दू बेग के नेतृत्व में एक सेना गुजराती सेना का पीछा करने के लिए भेजी। ख़ुदावन्द ख़ां तेजी के साथ भागने में असमर्थ था और मुग़लों द्वारा बन्दी बना लिया गया।[२७] हुमायूं ने ख़ुदावन्द ख़ां के साथ बहुत ही अच्छा व्यवहार किया। मुग़लों ने सद्र ख़ां का पीछा किया किन्तु वह पकड़ा नहीं जा सका। अपनी सेना के साथ वह मांडू के दुर्ग में बहादुर से जा मिला।

हुमायूं ने बहादुर शाह के ख़ेमे का बचा सामान अपने अधिकार में कर लिया। पूरा ख़ेमा उसी तरह से छोड़ दिया गया था। ख़ेमे के ठाट-बाट ने मुग़लों को आश्चर्यचकित कर दिया। अबूतुराब वली के अनुसार पूरा ख़ेमा लगभग एक मील के घेरे में फैला हुआ था। ख़ेमा सोने के काम से युक्त मख़मल का था। तथा उनके खूंटे सोने और चांदी के थे। इन्हें देखकर हुमायूं आश्चर्यचकित हो गया और उसने कहा था कि इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि बहादुर शाह समुद्र और पृथ्वी दोनों का शासक था।[२८] इन चीजों के अतिरिक्त मुग़लों को बहुत-से गुजराती बन्दी प्राप्त हुए जिनमें ख़ुदावन्द ख़ां के अतिरिक्त बहादुर शाह का श्वसुर तथा थट्टा का भूतपूर्व शासक जाम फ़ीरोज़ भी था। हुमायूं ने ख़ुदावन्द ख़ां को सम्मानित किया तथा उसे अपनी सेना में रख लिया। हुमायूं ने रूमी ख़ां का भी ख़िलअत द्वारा स्वागत किया।[२९]

२६ अबू तुराब, पृ. १६।

२७ अकबरनामा, १, पृ. १३३; मासिरे रहीमी, १, पृ. ५२६।

२८ मिराते सिकन्दरी के अनुसार सुल्तान सिकन्दर लोदी कहा करता था कि दिल्ली की आय गेहूँ तथा बाजरे से होती है तथा गुजरात की मूंगा तथा मोती से। (बेले, गुजरात, पृ. ३८६; काम्मिस्सारियट, पृ. ३५२)।

२९ अकबरनामा, १, पृ. १३२-३३। रूमी ख़ां के विषय में मिराते सिकन्दरी का लेखक सिकन्दर अपने पिता की सूचना के आधार पर, जो हुमायूं का किताबदार था तथा इस घटना के समय वहां उपस्थित था, लिखता है कि जिस समय हुमायूं मन्दसौर में बहादुर शाह के परित्यक्त ख़ेमे में पहुँचा तो वहां अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त उसे एक तोता भी मिला।

मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा जो अब तक बहादुर शाह के साथ था, यहां से भाग कर पंजाब तथा थट्टा की तरफ़ चला गया।[30] कामरान की अनुपस्थिति में उसने पंजाब में लूटमार करना प्रारम्भ कर दिया। बहादुर शाह की इन परिस्थितियों से चित्तौड़ ने लाभ उठाया और राजपूतों ने फिर उस पर अधिकार कर लिया।[31]

मांडू

हुमायूं भी बहादुर शाह का पीछा करता हुआ मांडू के निकट पहुँचा तथा उसने नालचा में, जो माडूं के दिल्ली दरवाज़े से केवल तीन मील की दूरी पर था, अपना पड़ाव डाला।

मांडू का दुर्ग मध्य युग के शक्तिशाली दुर्गों में समझा जाता था। यह २३

हुमायूं ने उसे अपने पास रख लिया। जब रूमी ख़ां के स्वागत के लिए उसका नाम लेकर बुलाया गया, तो तोते ने कहा "फट रूमी ख़ां हराम ख़्वार, फट रूमी ख़ां हराम ख़्वार" (अर्थात् रूमी ख़ां हराम ख़्वार पर लानत है)। उसने दस बार यह कहा। रूमी ख़ां का सिर नीचा हो गया। हुमायूं ने उससे कहा, "यदि किसी मनुष्य ने कहा होता तो उसकी ज़बान खींच ली जाती। लेकिन इस परिन्दे को क्या कहा जाए।" उपस्थित लोग समझ गये कि जिस समय रूमी ख़ां बहादुर के ख़ेमे से भाग गया तब बहादुर शाह के दरबारियों ने इन शब्दों का प्रयोग किया होगा जिन्हें तोते ने सुना होगा और रूमी ख़ां का नाम सुनकर उसने उन्हीं शब्दों को दुहरा दिया। (बेले, गुजरात, पृ. ३८६-८७; अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, १, पृ. २३५)।

अर्सकिन, २, पृ. ५५; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १२४; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ७३–७५। मुग़ल इतिहासकार उसकी तारीफ करते हैं। उनका यह दृष्टिकोण तो स्पष्ट ही समझ में आ जाता है। रूमी ख़ां के जीवन की घटनाओं को देखने से उसके विश्वासघात से हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। वह एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था जो अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकता था। जब उसे चित्तौड़ का दुर्ग नहीं प्राप्त हुआ तो उसे निराशा हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे विश्वास हो गया था कि बहादुर शाह से अब अधिक लाभ नहीं होगा। इस तरह मुग़लों से मिलकर वह अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता था।

३० अकबरनामा, १, पृ. १३२।

३१ बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १२९; ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. ४०१; शर्मा, मेवाड़ अण्डर दि मुग़ल्स, पृ. ५८।

मील की परिधि में फैला हुआ था तथा चारों तरफ मोर्चे वाली दीवारों से रक्षित था। [32] मन्दसौर से भागकर बहादुर शाह ने यहीं मुग़लों का सामना करने की तैयारी की।

गुजराती सेना मन्दसौर के पलायन से हताश हो गयी थी। रूमी ख़ां तथा अन्य सेनानायकों के विश्वासघात ने बहादुर शाह को दहला दिया था। हुमायूं जानता था कि मांडू का दुर्ग इतना शक्तिशाली है कि उसे आसानी से अधिकृत नहीं किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त पूर्व में शेर ख़ां की गतिविधि पर उसका ध्यान था। मांडू के घेरे में अधिक समय लगने से पूर्व से ख़तरा उपस्थित होने का भय था। वर्षा ऋतु आ रही थी जिससे अन्य कठिनाइयों की आशंका थी। इस कारण उसने पुनः बहादुर शाह से सन्धि वार्ता आरम्भ की।

हुमायूं ने सैयद अमीर तथा बैराम ख़ां को बहादुर शाह के पास दूत बनाकर यह सन्देश लेकर भेजा कि वर्षा ऋतु में युद्ध करना ठीक नहीं है। हुमायूं ने यह प्रस्ताव रखा कि गुजरात का वह भाग जो बहादुर को उसके पूर्वजों द्वारा प्राप्त हुआ था उस पर उसका अधिकार रहे और मालवा तथा अन्य भागों पर मुग़लों का अधिकार हो जाए। [33] हुमायूं ने यह भी स्वीकार किया कि उसके प्रस्ताव का कारण खुले युद्ध की कठिनाइयां थीं। इस तरह दोनों पक्षों में सन्धि वार्ता प्रारम्भ हुई। बहादुर शाह ने भी सन्धि वार्ता का स्वागत किया।

हुमायूं का प्रतिनिधि मौलाना मुहम्मद फ़रगली (परगली) तथा बहादुर शाह का प्रतिनिधि सद्र ख़ां नालचा और मांडू के बीच नीली सबील पर मिले। गुजरात की तरफ से सद्र ख़ां को सहायता देने के लिए दो शिष्ट मौलवियों को भाग लेने की स्वीकृति भी हुमायूं ने दे दी। [34] सन्धि वार्ता प्रारम्भ में सफल नहीं हुई और

[32] मांडू के दुर्ग के वर्णन के लिए देखिए आरकियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, १९१२-१३, पृ. १४८–५१।

[33] संदेश यह था : "हममें तुममें भाईचारा है। कभी-कभी सगे भाइयों में भी आपस में झगड़ा तथा मतभेद हो जाता है। क्योंकि वर्षा ऋतु आ गयी है अतः हमें खेमें में रहने के कष्ट से मुक्ति दिलायी जाए और भाईचारे के कारण मांडू को हमारे लिए छोड़ दिया जाए ताकि हम वर्षा ऋतु वहां सुगमतापूर्वक व्यतीत कर सकें। तुम अपने पूर्वजों के राज्य गुजरात में शान्ति एवं सुख से रहो।" अबू तुराब, तारीख़े गुजरात, पृ. १६।

[34] ये शिष्ट मौलवी इतिहासकार अबू तुराब का पिता शाह कुतुबुद्दीन शुकरुल्लाह तथा उसका चचा शाह कमालुद्दीन फ़ुतहुल्लाह थे। अबू तुराब, पृ. १६-१७।

हुमायूं ने दुर्ग पर आक्रमण की तैयारी शुरू कर दी। किन्तु मौलवियों की सहायता से सन्धि की शर्तें तय हो गयीं। इसके अनुसार चित्तौड़ गुजरात को तथा मांडू और उसके निकट के भाग मुग़लों को प्राप्त होते।[३५] मुग़ल सम्राट ने इसे स्वीकार किया क्योंकि वह मांडू पर तुरन्त अधिकार करना चाहता था।

एक व्यक्तिगत पत्र में हुमायूं ने सन्धि की स्वीकृति दे दी। इसके अनुसार गुजरात तथा चित्तौड़ बहादुर शाह को प्राप्त होता—यह निश्चय हुआ कि बहादुर शाह मांडू दुर्ग के पश्चिमी द्वार लोआनी से बाहर निकल जाए तथा मुग़ल उत्तरी द्वार अर्थात् दिल्ली द्वार से प्रवेश करें।

बहादुर ने हुमायूं की शर्तों को स्वीकार कर लिया और उसने अपने सिपाहियों को भी इसकी सूचना दे दी। इसके परिणामस्वरूप सैनिकों तथा गुजराती अधिकारियों के मन में यह निश्चय-सा हो गया कि युद्ध समाप्त हो जाएगा। इस तरह उनके मन से युद्ध की सर्तकता समाप्त हो गयी।

उसी रात लगभग दो सौ मुग़ल सैनिक मांडू की दीवार पर सीढ़ियां लगाकर तथा कमन्दों की सहायता से दुर्ग में प्रवेश कर गये। उन्होंने दुर्ग का फाटक खोल दिया तथा अन्य मुग़ल सैनिकों की सहायता से दुर्ग पर अधिकार कर लिया।[३६] इसकी सूचना पाकर हुमायूं घोड़े पर चढ़कर अपने आदमियों के साथ दुर्ग के फाटक की तरफ आया। दिल्ली दरवाज़े से उसने दुर्ग में प्रवेश किया। सद्र ख़ां अपने आदमियों सहित अपने घर के द्वार पर खड़ा युद्ध करता रहा तथा घायल होने पर भी अपने स्थान पर दृढ़ रहा। अन्त में उसके उच्च पदाधिकारी उसके घोड़े की लगाम पकड़कर मांडू दुर्ग के अन्दर सोनगढ़ (सुगढ़) की ओर ले गये।[३७] जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व सुल्तान आलम ख़ां के ऊपर था।

क़ादिर शाह, जिस पर दुर्ग की रक्षा का उत्तरदायित्व था, मुग़लों के प्रवेश

३५ अबू तुराब, पृ. १६; अकबरनामा, १, पृ. १३३; अरेबिक हिस्ट्री, पृ. २४१; डा. बनर्जी ने हुमायूं के चित्तौड़ देने की बात का समर्थन किया है। वे लिखते हैं कि हुमायूं ने इस कारण इसे स्वीकार किया, क्योंकि इसमें उसे कोई हानि नहीं थी और चित्तौड़ प्राप्त करने की उसकी आकांक्षा भी नहीं थी। राजपूतों के उसके साथ सम्पर्क अच्छे थे और वह उनके ऊपर शासन करने का इच्छुक न था। इसके अतिरिक्त हुमायूं जानता था कि बहादुर शाह चित्तौड़ को अपने अधिकार में नहीं रखेगा। (हुमायूं, भाग १, पृ. १३२)।

३६ अकबरनामा, १, पृ. १३३; काम्मिस्सारियट, पृ. ३५३।

३७ अकबरनामा, पृ. १३४; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५२।

की सूचना पाकर दुर्ग के बुर्ज से उतरकर घोड़ा दौड़ाता बहादुर शाह के शयनागार में पहुँचा। बहादुर शाह के सेवक उसे अन्दर जाने देने को राज़ी नहीं हुए। उसकी आवाज़ सुनकर बहादुर शाह जाग गया तथा उसकी आवाज़ पहचानकर उसने उसे अन्दर बुलाया। परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् बहादुर शाह घोड़े पर चढ़कर बाहर निकला। उसके साथ क़ादिर शाह और भूपत राय भी थे। रूमी ख़ां ने भूपत राय को बहादुर शाह का साथ छोड़ने के लिए भड़काया था और उन्हें हुमायूं द्वारा सद्व्यवहार का आश्वासन दिया था। भूपत राय ने फिर भी बहादुर शाह का साथ न छोड़ा।[३८]

प्रारम्भ में बहादुर शाह ने युद्ध करना चाहा किन्तु सोनगढ़ पहुँचकर उसने अनुभव किया कि स्थिति प्रतिकूल है। उसने मांडू छोड़कर भागने का निश्चय किया। रात्रि के अन्धकार में उसके घोड़े रस्सियों से बांधकर दुर्ग की दीवारों से बाहर निकाले गये और बहादुर शाह कुछ साथियों के साथ वहां से निकल गया। भागते समय मुग़ल सेना के ऊज़बेक सैनिक बुरी ने बहादुर शाह को पहचान लिया।[३९] इस सैनिक ने इसकी सूचना अपने सेनानायक क़ासिम हुसेन को दी। किन्तु क़ासिम हुसेन ने यह कहकर टाल दिया कि गुजरात का सुल्तान केवल तीन-चार सिपाहियों के साथ नहीं जाएगा। इस तरह भाग्य ने बहादुर शाह के पलायन में साथ दिया।

मांडू का क़त्ले आम—मांडू के दुर्ग पर अधिकार करने के पश्चात् मंगलवार का दिन होने से हुमायूं ने लाल वस्त्र पहना था। उसने कत्ले आम की घोषण

३८ मिराते सिकन्दरी के अनुसार रूमी ख़ां ने भूपत को एक पत्र में लिखा, "तुम्हें मालूम है कि बहादुर शाह ने तुम्हारे वंश को क्या हानि पहुँचायी है। ऐसे हत्यारे के लिए प्राण देना बुद्धिमानी नहीं है। बदला लेने का समय आ चुका है। जब आक्रमण हो तो अपने अधिकृत फाटकों को खोल दो। हुमायूं तुम्हारे पिता का स्थान तुम्हें देगा तथा अन्य कृपा प्रदर्शित करेगा।" लेखक के अनुसार मांडू राज्य का पतन भूपत राय के विश्वासघात से हुआ (बेले, गुजरात, पृ. ३८७-८८)। इसके विपरीत अबुल फ़ज़ल स्पष्ट लिखता है कि भूपत राय बहादुर शाह के साथ भाग गया। (अकबरनामा, १, पृ. १३३)। अबू तुराब भी भूपत की स्वामिभक्ति का समर्थन करता है (तारीखे गुजरात, पृ. १८)।

३९ बुरी, बरी या नूरी पहले सुल्तान बहादुर का सेवक रह चुका था तथा बाद में क़ासिम हुसेन का सेवक हो गया था। (अकबरनामा १, पृ.१३३)। फ़िरिश्ता लिखता है कि सद्र ख़ां ने अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर बहादुर को बचाया था (ब्रिग्स, २, पृ. ७७)।

की। तीन दिन तक मुग़ल सैनिक मांडू की गलियों में ख़ून की नदी बहाते रहे।[४०] अन्त में चौथे दिन वच्छ्छ (मंभू) नामक बहादुर शाह के एक गायक के गान से प्रभावित होकर हुमायूं ने हरा वस्त्र पहना तथा क़त्ले आम बन्द करने की आज्ञा दी।[४१] क़त्ले आम के कारण मांडू में शान्ति-स्थापित करने में कठिनाई नहीं हुई। सद्र ख़ां घायल अवस्था में हुमायूं के सामने लाया गया। हुमायूं ने उसे क्षमा कर दिया।[४२] अन्य अमीरों के साथ भी दया का बर्ताव किया गया।

सद्र ख़ां जब हुमायूं की सेवा में आया तो प्रारम्भ में उसके ऊपर केवल निगरानी रखी गयी। उसने यह आश्वासन दिया था कि वह मुग़ल सेना छोड़कर

४० अकबरनामा, १, पृ. १३४; अरेबिक हिस्ट्री, पृ. २३३।

४१ एक दिन बहादुर शाह का एक गायक कलावन्त मंभू पकड़कर हुमायूं के सामने लाया गया। हुमायूं बहुत क्रोधित था तथा जिस ओर उसकी नज़र जाती थी अग्नि बरसती थी। ख़ुशहाल बेग ने मंभू का परिचय दिया तथा कहा, "हे बादशाह, यह मंभू कलावन्त गायकों का बादशाह है।" बादशाह ने उसे क्रोध से देखा। ख़ुशहाल बेग ने पुनः कहा कि "हिन्दुस्तान में ऐसा गायक न होगा।" बादशाह ने कहा "कुछ गा।" मंभू फ़ारसी संगीत में अद्वितीय था। उसने गाना प्रारम्भ किया। उसका गाना सुनकर बादशाह की दशा में परिवर्तन हुआ। उसने लाल वस्त्र त्यागकर हरा वस्त्र धारण किया। मंभू से उसने कहा; "जो मांगना चाहे मांग ले, तुझे प्रदान कर दूंगा।" मंभू ने अपने बन्दी सम्बन्धियों की मुक्ति की प्रार्थना की। मंभू घोड़े पर बैठाया गया और उसने जिसे कहा उसे मुक्त कर दिया गया। कुछ लोगों ने हुमायूं से कहा कि मंभू सभी को मुक्त कर रहा है। हुमायूं ने कहा "कोई बात नहीं। आज यदि वह मुझसे मेरा राज्य भी मांगता तो मैं इनकार न करता।" कुछ दिन हुमायूं के पास रहकर मंभू भागकर पुनः बहादुर शाह की सेवा में चला गया। बहादुर शाह ने उसे देखकर कहा, "आज मेरा जो खोया था मुझे मिल गया।" (मिराते सिकन्दरी; बेले, गुजरात, पृ. ३८८-९०) मिराते सिकन्दरी के लेखक का पिता उस समय हुमायूं के दरबार में था जब मंभू लाया गया था।

४२ मांडू के पतन के पश्चात् सद्र ख़ां के भविष्य के विषय में समकालीन इतिहासकार एकमत नहीं हैं। अबुल फ़ज़ल के अनुसार सद्र ख़ां का उसकी बहादुरी के लिए स्वागत किया गया और उसे मुग़ल सेना में रख लिया गया। (अकबरनामा, १, पृ. १३४)। इसके विपरीत मिराते सिकन्दरी का लेखक लिखता है कि सद्र ख़ां बहुत बुरी तरह पराजित हुआ और मार डाला गया (बेले, गुजरात, पृ. ३८८)। अबुल फ़ज़ल का कथन सही है।

कहीं नहीं जाएगा। वह अपने वचन पर इतना अटल रहा कि बाद में कैम्बे में उसे गुजरातियों ने भगाने का प्रयत्न किया किन्तु उसने उनके साथ जाना अस्वीकार कर दिया।

जहां सद्र ख़ां के साथ सद्व्यवहार हुआ वहां आलम ख़ां के साथ कठोरता का व्यवहार किया गया और उसकी एड़ी की नसें काटकर उसे जीवन भर के लिए पंगु कर दिया गया।[४३]

मांडू हत्याकांड की आलोचना—हुमायूं के मांडू निवास तथा दुर्ग पर अधिकार करने की घटनाएं हमारे सम्मुख कई प्रश्न उपस्थित करती हैं तथा हुमायूं के चरित्र के कुछ ऐसे अंग प्रदर्शित करती हैं जिन्हें समझना सरल नहीं है। हुमायूं ने स्वयं ही सन्धिवार्ता प्रारम्भ की। सन्धिवार्ता में उसने सदा उदारता दिखायी। इसी कारण उसने बहादुर शाह के दो मौलवियों को भी उसमें भाग लेने दिया तथा बाद में बहादुर को चित्तौड़ देने की भी स्वीकृति उसने दी। यही नहीं, एक फ़रमान द्वारा उसने सन्धि को पक्का कर दिया। ऐसी परिस्थिति में उसने दुर्ग पर रात को आक्रमण क्यों किया ? मुग़ल तथा गुजराती इतिहासकारों ने भी इस पर प्रकाश नहीं डाला है। या तो हुमायूं ने सन्धिवार्ता बहादुर शाह को धोखा देने के लिए की, जिससे वह दुर्ग की रक्षा का प्रबन्ध ढीला कर दे और मुग़लों को उस पर अधिकार करने में सुविधा हो, अथवा बीच में कुछ ऐसी बातें हुईं जिनके कारण उसने सन्धि तोड़कर आक्रमण किया। जो भी हो, हुमायूं का यह कार्य निन्दनीय है। उसने वचन भंग किया तथा गुजरातियों पर यह स्पष्ट हो गया कि मुग़लों की बात का कोई विश्वास नहीं है।

एक तरफ हुमायूं ने स्वीकृत सन्धि तोड़ी और दूसरी तरफ वह इतना क्रोधित हुआ कि तीन दिन तक उसने मांडू में खून की नदियां बहा दीं। आखिर उसके क्रोध का कारण क्या था ? क्या वह समझता था कि मांडू के दुर्गवासी उसका स्वागत करेंगे ? जो भी हो, इस हत्याकाण्ड से उसने गुजरातियों की सद्भावना खो दी। मुग़ल अब गुजरातियों के समक्ष केवल एक नृशंस हत्यारे, झूठे तथा विदेशी रह गये। हुमायूं की इन्हीं मूर्खताओं के कारण बाद में गुजरात में जन आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसके परिणामस्वरूप मुग़लों को गुजरात से भागना पड़ा।

चम्पानीर

मांडू से भागकर बहादुर शाह अहमदाबाद होता हुआ चम्पानीर पहुँचा। चम्पानीर का दुर्ग बड़ौदा से २५ मील उत्तर स्थित है। १६वीं शताब्दी में यह

४३ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५२, नोट १; अकबरनामा, पृ. १३४।

एक प्रसिद्ध दुर्ग था तथा यहां गुजरात के सुल्तानों ने अपना कोष संचित कर रखा था।

हुमायूं मांडू में केवल तीन दिन रहा। उसने सिन्ध के मिर्ज़ा शाह हुसेन अरग़ून को उत्तर से गुजरात पर आक्रमण करने के लिए एक पत्र भेजा तथा लिखा कि पाटन में पहुँचने के पश्चात् वह हुमायूं को सूचित करे तथा उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करे।[४४]

हुमायूं ३०,००० घुड़सवार[४५] सेना के साथ बहादुर शाह का पीछा करता हुआ अहमदाबाद पहुँचा। वह नगर भी लूटा गया।[४६] यहां से बढ़कर हुमायूं चम्पानीर के दुर्ग के निकट पहुँचा तथा पिपली दरवाज़े के पास स्थित इमादुल मुल्क नामक तालाब के निकट ठहरा। उसने नगर में प्रवेश किया। किन्तु दुर्ग बहादुर शाह के अधिकार में ही रहा।

बहादुर शाह का साहस हिल गया था। यद्यपि उसने दुर्ग में आवश्यक वस्तुएँ जमा कर ली थीं, फिर भी, हुमायूं के पहुँचने के समाचार से उसे घबराहट हुई। उसने कोष, जवाहरात तथा स्त्रियों को मसनद अली अब्दुल अज़ीज़ आसफ़ ख़ां को, डियू पहुँचाने के लिए सुपुर्द किया।[४७] दुर्ग का उत्तरदायित्व उसने राजा नरसिंह देव उर्फ़ कान्ह राज (ख़ां जहां) तथा इख़्तियार ख़ां को दिया और केवल २०० सैनिकों के साथ कैम्बे की तरफ भाग खड़ा हुआ। नगर छोड़ने के पूर्व उसने मुहम्मदाबाद-चम्पानीर में (जो उसी पहाड़ी पर स्थित था जिस पर चम्पानीर का दुर्ग था) आग लगवा दी।

हुमायूं ने नगर (मुहम्मदाबाद-चम्पानीर) में प्रवेश किया और उसने सर्वप्रथम नगर में आग बुझाने का प्रबन्ध किया। हिन्दू बेग तथा अधिकांश सेना (लगभग २०,०००) को उसने दुर्ग के घेरे के लिए छोड़ दिया और स्वयं लगभग १००० घुड़सवारों के साथ बहादुर शाह का पीछा करने के लिए रवाना हुआ। हुमायूं ने पीछा करने में तेज़ी तो दिखायी किन्तु वह बहादुर के कैम्बे नगर छोड़ने के कुछ घण्टे बाद वहां पहुँचा।

कैम्बे में बहादुर ने १०० जहाज़ों का बेड़ा पुर्तगालियों के विरुद्ध युद्ध करने के अभिप्राय से इकट्ठा किया था। नयी परिस्थिति में उसे भय हुआ कि यह

४४ तारीख़े सिन्ध अथवा तारीख़े मासूमी, पृ. १६२-६३।
४५ काम्मिस्सारियट के अनुसार १०,००० (हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. ३५५)।
४६ बदायूनी, मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३४६; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५३।
४७ अरेबिक हिस्ट्री, पृ. २४३।

मुग़लों के हाथ न लग जाए। इस कारण उसने उसे नष्ट कर दिया तथा यहां से भागकर डियू चला गया।[४८]

हुमायूं कैम्बे से आगे कई कारणों से नहीं बढ़ा।[४९] उसने केवल एक छोटा सैन्य दल बहादुर शाह का पीछा करने के लिए भेज दिया। डियू पुर्तगालियों के अधिकार में था। हुमायूं को भय था कि आगे बढ़ने से उनके साथ संघर्ष होगा। बहादुर शाह उनसे वार्ता कर रहा था। इससे संघर्ष की और भी आशंका थी। इसके अतिरिक्त चम्पानीर पर अभी मुग़लों का अधिकार नहीं हुआ था तथा अधिकतर मुग़ल सेना वहीं थी। हुमायूं के पास कैम्बे में सेना कम थी तथा चम्पानीर के कोष[५०] पर तत्काल अधिकार करना आवश्यक था।

मांडू की घटनाओं के पश्चात् बहादुर शाह ने सन्धि की कोई वार्ता प्रारम्भ नहीं की। मुग़लों पर से उसका विश्वास उठ गया था। बहादुर शाह के एक स्थान से दूसरे स्थान के पलायन से स्पष्ट हो जाता है कि उसके मन में मुग़लों से युद्ध करने का साहस नहीं रह गया था। मांडू के बाद हुमायूं ने इतनी तेजी के साथ

४८ अकबरनामा, १, पृ. १३४। तारीख़े फ़िरिश्ता के अंग्रेजी अनुवादक कर्नल ब्रिग्स तुर्की इतिहासकार फ़ेरदी के आधार पर लिखते हैं कि बहादुर शाह ने यहां से अपना परिवार तथा हीरे-जवाहिरात जो तीन सौ लोहे के सन्दूकों में थे, मदीना भेज दिये। इनमें वह सब धन था, जो उसने जूनागढ़, चम्पानीर, अबूगढ़, चित्तौड़ तथा मालवा से प्राप्त किया था। यह धन भारत नहीं लौटा। यह क़ुस्तुनतुनिया के Grand Seignior को प्राप्त हुआ। इस धन के कारण उसे ऐश्वर्यशाली सुलेमान (Sulaiman the magnificent) कहा जाने लगा। बहादुर शाह ने गुजरात के सुल्तानों की पेटी भी, जो बहुमूल्य थी, अपने दूत के द्वारा सुलेमान के पास इस आशा से भेजी कि Grand Seignior से हुमायूं के विरुद्ध उसे सहायता प्राप्त होगी। फ़िरिश्ता, ब्रिग्स ४, पृ. १५१।

४९ अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात का लेखक लिखता है कि डियू से बहादुर शाह ने अपने अमीर महमूद लारी तथा मुहतरम खां को रूमी खां से मिलने के लिए कैम्बे भेजा। इन लोगों ने रूमी खां से उसके विश्वास-घात की निन्दा की तथा प्रायश्चित् के लिए उससे कहा कि वह हुमायूं को डियू पर आक्रमण करने से रोके। रूमी खां ने हुमायूं को यह कहकर समझाया कि समुद्री जलवायु उसके लिए हानिकर है तथा इस समय लौटना ही उपयुक्त है। हुमायूं ने इसे स्वीकार कर लिया, क्योंकि इसी समय अहमदाबाद में अशान्ति की सूचनाएँ आयीं। अरेबिक हिस्ट्री, १, पृ. २५६-५७; काम्मिस्सारियट, पृ. ३५७-३५८।

५० बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १४२।

बहादुर शाह का पीछा किया जिसे देखकर सन्तोष तथा आश्चर्य होता है। आश्चर्य इस कारण कि हुमायूं में गति का अभाव था तथा अधिकतर वह अपने उत्तरदायित्व को भूलकर एक स्थान पर रुक जाता था। यह कदाचित् उसके जीवन की कुछ घटनाओं में से है, जब उसने तेज़ी के साथ बिना समय नष्ट किये शत्रु का पीछा किया। सन्तोष इस कारण अनुभव होता है कि आवश्यकता पड़ने पर हुमायूं एक उच्च कोटि के विजेता का गुण भी प्रदर्शित कर सकता था।

चम्पानीर से एक छोटी सेना के साथ बहादुर शाह का पीछा करना हम हुमायूं का दुस्साहस भी कह सकते हैं। विशेषत: जब यह स्पष्ट था कि बहादुर शाह गुजरात में जनप्रिय था और मुग़ल विरोधी भावनाएं उग्र होती जा रही थीं।

इसके अतिरिक्त चम्पानीर के दुर्ग को बिना अधिकार में किये हुए आगे बढ़ना कहां तक उचित था इसमें संदेह किया जा सकता है। यदि बहादुर ने हुमायूं पर दो तरफ से आक्रमण कर दिया होता तो कठिन परिस्थिति उपस्थित हो सकती थी। हुमायूं के सौभाग्य से इस तरह की घटना नहीं हुई और इस कारण हुमायूं के पक्ष में हम यह कह सकते हैं कि उसने स्थिति का पूर्ण अध्ययन कर लिया था। वह जानता था कि गुजरातियों या बहादुर शाह में मुग़लों का सामना करने की शक्ति नहीं है।

गवार तथा कोली जातियों का आक्रमण

हुमायूं कैम्बे में वहां के गवर्नर सैयिद शरीफ़ जिलानी के आतिथ्य का आनन्द ले रहा था। उसी समय बहादुर शाह के दो अफ़सर मलिक अहमद लाड तथा रुक्न दाऊद ने हुमायूं से बहादुर शाह का बदला लेने का विचार किया। उन्होंने 'कोली' तथा 'गवार' जाति[५१] के सरदारों से सहायता ली और रात्रि में मुग़ल ख़ेमे पर आक्रमण कर उसे नष्ट करने की योजना बनायी। कैम्बे की जनता मुग़लों के विरुद्ध थी तथा पूरे गुजरात में मुग़ल विरोधी भावना विद्यमान थी। संयोग से हुमायूं के कैम्प में एक नौजवान था जिसे कैम्बे के निकट बन्दी बनाया गया था। उसकी मां को इस योजना की ख़बर लगी तो उसे अपने पुत्र के प्राणों का भय हुआ (जो हुमायूं के ख़ेमे में था)। उसने इस सूचना द्वारा अपने पुत्र की स्वतन्त्रता प्राप्त करने का विचार किया। प्रारम्भ में हुमायूं के सैनिकों

५१ इन जातियों के विषय में जानने के लिए देखिए बाम्बे गज़ेटियर, ६, भाग १, पृ. २३७–३९; होदीवाला (स्टडीज इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री, १, पृ. ४८८) के अनुसार वास्तविक शब्द गंवार है। डा. ईश्वरी प्रसाद (हुमायूं, १, पृ. ७७) का विचारहै किकोली तथा गवार जंगली जाति के थे।

ने बूढ़ी स्त्री की बात का मज़ाक उड़ाया किन्तु अन्त में वे उसे हुमायूं के पास ले गये। बुढ़िया ने रात्रि में मुग़ल सेना पर छापे की योजना बतायी तथा अन्त में उसने कहा कि "यदि मेरी बात झूठ निकले तो मेरी तथा मेरे पुत्र की हत्या कर दी जाए।" हुमायूं ने बुढ़िया तथा उसके पुत्र पर पहरेदार नियुक्त किये तथा आक्रमण से रक्षा की पूर्ण तैयारी कर ली। दूसरे दिन पांच-छः हजार कोली तथा गवार लोगों ने हुमायूं के ख़ेमे पर आक्रमण कर दिया। हुमायूं की सेना तैयार थी और उसने इनका सामना किया। आक्रमणकारियों ने बड़ी बहादुरी के साथ युद्ध किया। हुमायूं की सेना के कई प्रसिद्ध व्यक्ति इस संघर्ष में काम आए। किन्तु आक्रमणकारी पराजित हुए। हुमायूं ने बुढ़िया तथा उसके पुत्र को स्वतन्त्र कर दिया।[५२]

इस लूट में अबुल फ़ज़ल के अनुसार बहुत-सी अमूल्य पुस्तकें भी नष्ट हुईं, इनमें मुल्ला सुल्तान अली के हाथ का लिखा हुआ तथा उस्ताद बिहज़ाद द्वारा चित्रित तीमूरनामा[५३] भी था। बाद में यह पुस्तक पुनः प्राप्त करली गयी और अकबर के पुस्तकालय में विद्यमान थी। इस आक्रमण से हुमायूं की रक्षा दैव संयोग से ही हुई अन्यथा बहुत संभव था कि इस अचानक आक्रमण से मुग़ल सेना का पूर्णतया नाश हो जाता। आक्रमणकारियों ने भी एक भूल की। उन्होंने मुग़ल सेना को पराजित करने के स्थान पर लूटपाट प्रारम्भ कर दी। मुग़लों को समय मिला तथा वे तीरों से आक्रमणकारियों पर आक्रमण करते रहे जिससे उनकी बड़ी हानि हुई।

तारीख़े गुजरात के लेखक अबू तुराब के अनुसार जिस रात गवारों ने आक्रमण किया, सद्र ख़ां के रक्षक उसे बाहर ले जाने लगे। किन्तु उसने जाना स्वीकार नहीं किया तथा कहा कि उसने बादशाह से प्रतिज्ञा की है कि वह उसकी सेवा से पृथक नहीं होगा। इस कोलाहल में सद्र खां तथा जाम फ़ीरोज़ की हत्या कर दी गयी। हुमायूं को जब इसकी सूचना मिली तो उसे बड़ा दुख हुआ।[५४]

कैम्बे की लूट

इस आक्रमण से क्रोधित होकर हुमायूं ने कैम्बे को जलाने तथा लूटने की आज्ञा दी जिससे कैम्बे नष्टप्राय हो गया।[५५]

५२ अकबरनामा, पृ. १३६; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १३२; अबू तुराब, पृ. २०-२१।

५३ अकबरनामा, १, पृ. १३६।

५४ अबू तुराब, तारीखे गुजरात, पृ. २१।

५५ अकबरनामा, १, पृ. १३६।

चम्पानीर के दुर्ग की विजय

कुछ दिन कैम्बे में रुककर हुमायूं चम्पानीर आया। चम्पानीर दुर्ग का घेरा प्रारम्भ हुआ। यह चार महीनों तक चलता रहा। बहादुर शाह ने चम्पानीर छोड़ते समय इस दुर्ग की रक्षा हेतु राजा नरसिंह देव तथा इख़्तियार ख़ां को नियुक्त किया था। रूमी ख़ां ने तोपों का प्रयोग किया। दोनों तरफ से गोला-बारी हुई। मुग़ल सेना को पीछे हटकर सुरक्षित स्थान में शरण लेनी पड़ी। दुर्भाग्यवश राजा नरसिंह देव घायल हुआ तथा उसकी मृत्यु हो गयी।[५६] इसके पश्चात् इख़्तियार ख़ां दुर्गपति हुआ। उसने बहुत ही बहादुरी तथा हिम्मत के साथ दुर्ग की रक्षा की। मुग़लों को सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि प्रयत्न करने पर भी ये पूर्ण रूप से दुर्ग में सामान पहुँचने से नहीं रोक सकते थे। दुर्ग के चारों तरफ जंगल था। जिसके अन्दर प्रवेश पाना सरल नहीं था। इस कारण मुग़ल तोपें सफलता नहीं प्राप्त कर सकती थीं।

चार महीने के पश्चात् एक दिन जंगल में हुमायूं को किसानों का एक दल मिला जो दुर्ग में सामान पहुँचाता था। इन्हें बन्दी बनाकर बुरी तरह पीटा गया। इन्होंने दुर्ग की दीवार के निकट के चोर मार्ग का पता बताया। हुमायूं ने देखा कि दुर्ग की दीवारें ६० से ८० फुट ऊँची और इतनी सपाट थीं कि उन पर चढ़ना कठिन था। दूसरे दिन चांदनी रात्रि में मुग़लों ने दुर्ग पर चढ़ने का प्रयत्न किया। हुमायूं ने दुर्ग पर बाहर से आक्रमण करने का ऐसा दिखावा प्रकट किया, जिससे दुर्ग के अन्दर के लोगों को भय न हो। साथ ही उसने सत्तर-अस्सी मोटी कीलें तैयार करायीं। ये कीलें दुर्ग की दीवार में एक दूसरे के ऊपर ठोकी गयीं और इस तरह मुग़ल इस लोहे की सीढ़ी की सहायता से ऊपर पहुँचे। ३९ आदमियों के ऊपर पहुँचने के बाद बैराम ख़ां तथा उसके पश्चात् हुमायूं ऊपर पहुँचा।[५७] इस तरह लगभग ३०० आदमी प्रातः होते-होते दुर्ग की दीवार पर चढ़ गये और

५६ मिराते सिकन्दरी के अनुसार जिस समय बहादुर शाह को नरसिंह देव की मृत्यु की सूचना मिली, उसने कहा "खेद है चम्पानीर का क़िला हाथ से निकल गया।" अफज़ल खां वज़ीर ने पूछा कि "क्या कोई समाचार मिला है?" बहादुरशाह ने कहा, "नहीं राजा नरसिंह देव की मृत्यु हो गयी। इस मुल्ला (अर्थात् इख़्तियार खां) में इतनी शक्ति कहां कि वह क़िले की रक्षा कर सके!" (बेले, गुजरात, पृ. ३९०-९२)। अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात का लेखक भी इसका समर्थन करता है (अरेबिक हिस्ट्री, पृ. २३५)।

५७ अकबरनामा, १, पृ. १३७।

उन्होंने दुर्ग के द्वार पर अधिकार कर लिया, जिससे सुविधा से मुग़ल दुर्ग में प्रवेश कर सकें। इख़्तियार ख़ां[५८] ने संघर्ष असम्भव देखकर दूसरे दिन दुर्ग का समर्पण कर दिया।[५९] हुमायूं ने उसके साथ अच्छा व्यवहार किया किन्तु शत्रु के अन्य सैनिकों के साथ कठोर व्यवहार किया गया।

चम्पानीर के दुर्ग में बहादुर शाह तथा उसके वंश का राजकोष संचित था। जल्दी से भागने के कारण बहादुर इसे न ले जा सका था। हुमायूं को यह सब कोष प्राप्त हुआ।[६०] सम्राट ने प्रसन्नता में सोना चांदी तथा जवाहरात ढालों में भरकर मुग़ल अमीर तथा सैनिकों में बांट दिये।

कुछ मुग़ल सैनिकों की दक्षिण-विजय की योजना

धन प्राप्त कर हुमायूं तथा उसके अमीरों को संतोष हुआ तथा वे देवराय तालाब के तट पर अपनी विजयों के पश्चात् आराम कर रहे थे। इसी समय एक दिन सम्राट के कुछ निम्न कर्मचारी जैसे किताबदार (पुस्तकालय का प्रबन्ध करने वाले), सिलहदार (अस्त्र-शस्त्र का प्रबन्ध करने वाले), दावातदार (लेखन सामग्री की व्यवस्था करने वाले), इत्यादि शराब के नशे में शेख़ शरफ़ुद्दीन यज़्दी

५८ अबुल फ़ज़ल इख़्तियार ख़ां की योग्यता की प्रशंसा करता है। वह लिखता है कि वह शासन की योग्यता के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान, विशेष रूप से गणित एवं ज्योतिष में, निपुण था तथा कविता भी करता था। अकबरनामा, १, पृ. १३८।

५९ चम्पानीर दुर्ग को अधिकृत करने की तिथि में समकालीन इतिहासकारों में मतभेद है। अबुल फ़ज़ल के अनुसार चम्पानीर का पतन सफ़र महीने के पहले सप्ताह में, बदायूनी के अनुसार ९ सफ़र को तथा अबू तुराब के अनुसार ६ सफ़र को हुआ। (अबू तुराब, पृ. २४; अकबरनामा, १, पृ. १३८)। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि उसकी तिथि "अव्वल हफ़्तये माहे सफ़र" के अक्षरों से निकलती है। इसके अनुसार वह तिथि ९४३ हिजरी सफ़र माह के पहले हफ़्ते (२० से २७ जुलाई १५३६) के बीच पड़ती है।

६० जौहर लिखता है कि सुल्तान बहादुर के कोष का पता नहीं चल रहा था; आलम ख़ां नामक बहादुर शाह के एक विश्वसनीय अमीर को, जो पुनः मुग़ल अमीर बन गया था, इसका पता था। बात निकलवाने के लिए उसे शराब पिलायी गयी। शराब के नशे में उसने वह हौज़ तथा कुएं बताये जहां से बहादुर के पूर्वजों द्वारा जमा किया गया कोष प्राप्त हुआ। गुजरात के सुल्तान सोना तथा चांदी पिघलाकर कुएँ में डालते जाते थे। (जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६-७)।

कृत ज़फ़रनामा पढ़ रहे थे। इसमें हज़रत साहब किरानी की प्रारम्भिक विजयों का वर्णन था। वे चालीस निष्ठावानों के साथ रहते थे। उन्होंने इन्हें एकता का महत्त्व समझाया,[६१] तथा कहा कि यदि चालीसों व्यक्ति संगठित रहें तो विजय सदा उनकी होगी। इन मुग़ल कर्मचारियों ने अपनी संख्या गिनी तथा यह जानकर कि ये ४०० हैं, अर्थात् उनकी शक्ति चालीस की शक्ति से दस गुनी है, उन्होंने दक्षिण विजय की योजना बनायी तथा तत्काल अभियान के लिए रवाना हो गये।[६२]

हुमायूं उनके इस मूर्खतापूर्ण अभियान से बहुत नाराज़ हुआ। उन्होंने आक्रमण की आज्ञा नहीं ली थी। इन चार सौ व्यक्तियों की दक्षिण पर अधिकार करने की महत्त्वाकांक्षा असंभव थी। इस तरह के कार्यों को प्रश्रय देने से अनुशासनहीनता को प्रोत्साहन मिलता तथा मुग़ल सेना के यश को बड़ा धक्का लगता।

दूसरे दिन प्रातः हुमायूं को इन आदमियों के भागने की सूचना मिली। उनका पीछा करने के लिए तत्काल एक सेना भेजी गयी और उन्हें बन्दी बनाकर हुमायूं के समाने पेश किया गया। उस दिन मंगलवार था और हुमायूं लाल रंग का वस्त्र पहने हुए फौजदारी का न्याय कर रहा था। उनके व्यवहार से क्रोधित होकर सम्राट ने उन्हें कठोर दंड दिया। कुछ कत्ल कर दिये गये, कुछ हाथी के पावों के नीचे दबा दिये गये और बहुत-से व्यक्तियों के नाक, कान तथा हाथ, पांव काट दिये गये।[६३]

उसी दिन संध्या को नमाज़ के समय इमाम ने फ़ील (अलम तरा कैफ़ या सूरये फ़ील) नामक क़ुरान का सूरा पढ़ा। इसमें मुहम्मद साहब के जन्म के वर्ष (५७१ ई.) यमन के बादशाह, अबरहा के हाथियों की एक सेना द्वारा मक्का पर आक्रमण करने तथा ईश्वर के आदेश से पक्षियों द्वारा कंकड़ियों से उन्हें मार भगाने के वर्णन के पश्चात् लिखा है, हे रसूल, क्या तुमने नहीं देखा कि तुम्हारे

६१ एक दिन हज़रत साहब किरानी ने अपने ४०० साथियों से प्रत्येक से दो-दो बाण लिये और उन्हें एक में बांधकर उन्हें तोड़ने के लिए कहा, पर प्रयत्न करने पर भी वे उन्हें नहीं तोड़ सके। फिर उसने बंडल को खोल दिया और प्रत्येक को दो-दो बाण दिये। इसे उन लोगों ने तोड़ दिया। किरानी ने उन्हें समझाया कि यदि उनमें एकता होगी तो वे जहाँ भी जाएँगे उनका कोई सामना नहीं कर सकता और उन्हें सफलता प्राप्त होगी। (अकबरनामा, १, पृ. १३९)।

६२ अकबरनामा, १, पृ. १३९।

६३ वही।

ईश्वर ने हाथी वालों के साथ क्या किया ? क्या उसने उनकी समस्त योजनाओं का खण्डन नहीं कर दिया ?

हुमायूं को ऐसा प्रतीत हुआ कि इमाम ने उसके दण्ड को ध्यान में रखकर इस विशेष सूरा को पढ़ा है। क्रोधित होकर उसने इमाम को हाथी के नीचे दबा देने की आज्ञा दी। मौलाना मुहम्मद फ़रगली ने इमाम को बचाने का प्रयत्न किया, किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ तथा बेचारे इमाम की हत्या कर दी गयी। क्रोध शान्त होने पर हुमायूं को इमाम को इतना कठोर दण्ड देने से दुःख हुआ। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि हुमायूं रात भर रोता तथा विलाप करता रहा।[६४]

इन मूर्खों को दण्ड देना तो आवश्यक था, किन्तु हुमायूं ने जिस कठोरता से उनके साथ व्यवहार किया वह न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। उसे यह अनुभव करना चाहिए था कि वह एक नये विजय किये हुए स्थान में था जहां अपने सैनिकों की मूर्खता तथा अपनी क्रूरता का प्रदर्शन करना ठीक नहीं था। इमाम के प्रति उसका व्यवहार पूर्ण रूप से बर्बर था। हुमायूं ने दूरदर्शिता से काम नहीं लिया।[६५]

चम्पानीर विजय की प्रतिक्रिया

चम्पानीर विजय से हुमायूं को असंख्य धन प्राप्त हुआ। दानी पिता का पुत्र होने के नाते उसने अमीरों तथा सैनिकों को उनकी प्रतिष्ठानुसार जितना भी सोना, चांदी या जवाहरात उनकी ढाल पर आ सकते थे उन्हें दिये। अपनी विजय के उपलक्ष्य में उसने चम्पानीर से अपने नाम के चांदी तथा तांबे के सिक्के प्रसारित किये।[६६] अबुल फ़ज़ल लिखता है कि चम्पानीर की विजय तथा अपार धन सम्पत्ति की प्राप्ति के कारण हुमायूं शाहाना जश्न में व्यस्त रहता

६४ वही, पृ. १४०।

६५ "Humayun who was never a statesman inflicted sanguinary punishments on that pseudo-adventurers." (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १४८)। अर्सकिन ने भी इसकी निन्दा की है (भाग २, पृ. ६६)।

६६ काम्मिस्सारियट पृ. ३६०-६१। लाहौर म्यूज़ियम में एक सिक्का है जिसके एक तरफ 'चम्पानीर की विजय ९४२ हि.' तथा दूसरी तरफ 'शहर मुकर्रम में निर्मित' अंकित है। उसी वर्ष के दूसरे सिक्के पर चम्पानीर का नाम 'शहर अल ज़मा' अंकित है। टेलर, दि क्वायन्स ऑफ़ गुजरात सल्तनत, J.B.B.R.A.S. 1903, XXI, पृ. ३१७-१८ अंकित है।

था तथा भोगविलास की महफ़िलें आयोजित किया करता था।[६७] चम्पानीर के कोष तथा गुजरात की विजय से जो लाभ प्राप्त हो सकता था उसका उपयोग वह न कर सका। इस तरह उसने समय नष्ट किया।

डा. बनर्जी ने उसके चम्पानीर में रुके रहने का समर्थन किया है। उनका मत है कि दस माह के अन्दर उसने मध्य गुजरात तथा मालवा पर अधिकार कर लिया था। बहादुर शाह गुजरात से बाहर भागकर डियू चला गया था। इस परिस्थिति में हुमायूं कुछ दिन रुककर जीते हुए प्रदेशों में एक सुदृढ़ शासन प्रबन्ध स्थापित करना चाहता था, जिससे उसे जनता का विश्वास प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त चम्पानीर में प्राप्त कोष हुमायूं अपने सहायकों में वितरित करना चाहता था। इसी के साथ-साथ विद्वान् लेखक लिखते हैं कि प्राप्त धन ने उसे अभियानों के प्रति उदासीन बना दिया।[६८]

डा. बनर्जी एक तरफ तो यह कहते हैं कि हुमायूं के रुकने का कारण शासन प्रबन्ध करना था दूसरी तरफ वे लिखते हैं कि चम्पानीर में प्राप्त धन के परिणाम स्वरूप उसके मन में अभियानों से विरक्ति आ गयी थी। ये दोनों परस्पर विरोधी तर्क हैं। अबुल फ़ज़ल के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि हुमायूं भोग-विलास में व्यस्त था तथा उसने उचित शासन प्रबन्ध करने में रुचि प्रदर्शित नहीं की। यह लिखने के बाद कि हुमायूं चम्पानीर में धन प्राप्त करने के पश्चात् शाहाना जश्न में व्यस्त रहता था, अबुल फ़ज़ल का शासन सम्बन्धी यह विचार रखना कि "शासक को, यदि वह व्यस्त रहे तो, कुछ व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिए जो राजकीय कर्मचारियों तथा उमराओं पर दृष्टि रख सकें,"[६९] स्पष्ट करता है कि अबुल फ़ज़ल का इशारा हुमायूं की तरफ है। अर्सकिन का यह मत सही है कि चम्पानीर की विजय के पश्चात् हुमायूं आनन्दोत्सव में लगा रहा तथा उसने शासन के कार्यों में दिलचस्पी नहीं ली।[७०]

हुमायूं अपने आनन्दोत्सव में इतना व्यस्त था कि उसने लगान वसूल करने का कोई प्रबन्ध नहीं किया।[७१] गुजरात की जनता इससे प्रसन्न नहीं हुई और

[६७] अकबरनामा, १, पृ. १३८।

[६८] बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १४०।

[६९] अकबरनामा, १, पृ. १३८-३९।

[७०] अर्सकिन, २, पृ. ६७; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ८०, तथा कम्मिस्सारियट, पृ. ३६४ का भी यही मत है।

[७१] काम्मिस्सारियट, पृ. ३६६।

ज़मीदारों तथा प्रजा का एक प्रतिनिधि मंडल बहादुर शाह से डियू में मिला तथा इसने सुल्तान से उस वर्ष का लगान वसूल करने के लिए किसी को नियुक्त करने की प्रार्थना की। बहादुर शाह ने अपने अमीरों से प्रस्ताव किया कि कोई व्यक्ति जाकर राजस्व वसूल करे। प्रारम्भ में कोई भी अमीर इस कठिन कार्य के लिए तैयार नहीं था। अन्त में इमादुल मुल्क ने निवेदन किया कि "मैं इस सेवा को स्वीकार करूंगा किन्तु शर्त यह है कि मुझे आवश्यकतानुसार धन व्यय करने का अधिकार प्रदान किया जाए। लोगों को एकत्र करने में जो धन व्यय हो उसका हिसाब मुझसे न मांगा जाए। जो कुछ धन इस व्यय के उपरान्त बचेगा वह सुल्तान के खजाने में निस्संदेह भेज दिया जाएगा।" सुल्तान ने इसे स्वीकार कर लिया तथा आज्ञापत्र दे दिया।[७२] इसके अतिरिक्त इमादुल मुल्क के कहने पर बहादुर शाह ने अपनी मुहर लगाकर कुछ सादे काग़ज़ भी दे दिये जिस पर वह (इमादुल मुल्क) जिसे चाहे जागीर दे सकता था। इस तरह बहादुर शाह का पूर्ण प्रतिनिधि बनकर इमादुल मुल्क बहुत थोड़े सैनिकों के साथ रवाना हुआ।[७३] गुजराती जनता ने जिस निष्ठा से लगान वसूल करने के लिए बहादुर शाह को आमन्त्रित किया ऐसे उदाहरण इतिहास में बहुत कम मिलेंगे। इससे जनता की सच्चाई, बहादुर शाह के प्रति उनकी भक्ति तथा जनता में मुग़लों की अप्रियता स्पष्ट हो जाती है। बहादुर शाह को जो अमीर आमन्त्रित करने गये थे उनमें अधिकतर हिन्दू थे, जिससे यह प्रकट होता है कि बहादुर शाह हिन्दू तथा मुसलमान सभी को प्रिय था।

इमादुल मुल्क की प्रगति इतनी उत्साहवर्धक थी कि अहमदाबाद पहुँचते-पहुँचते उसकी सेना की संख्या १०,००० हो गयी। मार्ग में राजस्व वसूल करने के लिए कर्मचारियों को नियुक्त करता हुआ वह आगे बढ़ता गया। अहमदाबाद में जूनागढ़ का हाकिम मुज़ाहिद खां १०,००० अश्वारोहियों के साथ उससे आ मिला।[७४] जिस समय वह बतवा पहुँचा उसके पास ५०,००० अश्वारोहियों की

[७२] अबू तुराब, पृ. २६-२७।

[७३] अबू तुराब (पृ. २६-२७) के अनुसार ७०; अबुल फ़ज़ल, अकबरनामा, १, (पृ. १३७-३८) के अनुसार २०० अश्वारोही।

[७४] अबुल फ़ज़ल (अकबरनामा, १, पृ. १३८) के अनुसार जिस किसी के पास भी दो घोड़े थे वह उसे एक लाख गुजराती टनके देता था। अबुल फ़ज़ल के इस कथन में अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। इससे हम केवल यही अनुमान लगा सकते हैं कि इमादुल मुल्क ने पानी की तरह धन बहाया।

सेना एकत्र हो चुकी थी।[७५] बहादुर शाह ने भी पुर्तगालियों से ५०० योरोपीय सैनिक लेकर इमादुल मुल्क की सहायता के लिए भेजें।[७६]

इमादुल मुल्क की पराजय

इमादुल मुल्क के सैन्य संगठन तथा गतिविधि से मुग़लों का स्वप्न टूटा। चम्पानीर के दुर्ग में तरदी बेग को नियुक्त कर हुमायूं अहमदाबाद की ओर बढ़ा, जो गुजराती राष्ट्रवादियों का केन्द्र बन रहा था। निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि चम्पानीर छोड़ने के पूर्व उसने गुजरात की लूट में प्राप्त धन पुनः सैनिकों में वितरित किया।[७७] महेन्द्री नदी के तट पर पहुँचकर हुमायूं वहां ठहरा रहा। इमादुल मुल्क तो तैयार ही था। वह युद्ध के लिए आगे बढ़ा। प्रथम संघर्ष अस्करी की सेना से, जो मुग़ल सेना का अग्रगामी दल था, नरियाद क़स्बे तथा महमूदाबाद के बीच में हुआ।[७८] मुग़ल सेना का अग्रणी दल पराजित हुआ तथा निकट के थूंहड़ के वृक्षों के पीछे छिप गया।[७९] गुजराती सेना लूटपाट में लग गयी। इस बीच मिर्ज़ा यादगार नासिर, मीर हिन्दू बेग, कासिम हुसेन खां अपनी सेनाओं

७५ अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, १, पृ. २५७-५८ के अनुसार उसकी सेना ३०,००० अबू तुराब के अनुसार (पृ. २७) तथा ५०,००० हो गयी। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि उसकी सेना में ३०,००० अश्वारोही अल्प समय में इकट्ठे हो गये। पुनः वह लिखता है कि मुज़ाहिद खां १०,००० अश्वारोहियों के साथ आ मिला (अकबरनामा, १, पृ. १३८)। इससे ५०,००० की संख्या अधिक सम्भव प्रतीत होती है। निज़ामुद्दीन के अनुसार ५०,००० सेना एकत्र हुई (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५६)। फ़िरिश्ता (ब्रिग्स, २, पृ. ८०) इसका समर्थन करता है।

७६ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ८१।

७७ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५७।

७८ यह युद्ध महमूदाबाद तथा नरियाद के बीच हुआ। डा. बनर्जी ने इस युद्ध का नाम महमूदाबाद युद्ध दिया है (हुमायूं, १, पृ. १५२ तथा फुटनोट २)। वे लिखते हैं कि फ़िरिश्ता ने यह नाम दिया है। फ़िरिश्ता इस युद्ध को महमूदाबाद के निकट लिखता है। (फ़िरिश्ता, पृ. २१५; ब्रिग्स, २. पृ. ८०) न कि महमूदाबाद में। अबुल फ़ज़ल (अकबरनामा, १, पृ. १४०) इसे नरियाद क़स्बे तथा महमूदाबाद के बीच बतलाता है। निज़ामुद्दीन भी इसे महमूदाबाद के निकट लिखता है। (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५७)।

७९ इस युद्ध की घटनाओं के विषय में समकालीन इतिहासकारों में मतभेद हैं। अबुल फ़ज़ल (अकबरनामा, १, पृ. १४०) के अनुसार अस्करी की

के साथ आ पहुँचे। भीषण युद्ध हुआ। हुमायूं भी अपनी सेना के साथ पहुँच गया। गुजराती सेना पराजित हुई तथा उसके २,००० सैनिक मारे गये।[८०] इस विजय से अहमदाबाद तथा नेहरवाला (पाटन) पर मुग़लों का अधिकार हो गया। उन्हें यह भी अनुभव हुआ कि गुजराती जनता उनके विरुद्ध है तथा गुजरात पर अधिकार रखना सरल नहीं है। इस पराजय ने गुजरातियों की कमर ही तोड़ दी। उनको इतनी शीघ्र पराजय की आशंका नहीं थी।

हुमायूं अपनी सेना के साथ कांकरिया ताल पर रुका जो अहमदाबाद से लगभग एक मील दक्षिण-पूर्व स्थित था। साबरमती नदी पार कर वह शेरखीज़ बनवार (अहमदाबाद से पांच मील दक्षिण) में प्रमुख स्थानों को देखता रहा। भय था कि यदि विजयी सेना अहमदाबाद में प्रवेश करेगी तो लूट-पाट करेगी। इस कारण हुमायूं ने मिर्ज़ा अस्करी तथा उसके आदमियों के अतिरिक्त किसी को भी अहमदाबाद के भीतर प्रविष्ट न होने दिया।[८१] हुमायूं ने यह बुद्धिमानी का काम किया।

की पराजय होने वाली थी कि यादगार नासिर मिर्ज़ा इत्यादि पहुँच गये। फ़िरिश्ता (ब्रिग्स, २, पृ. ८०) के अनुसार इमादुल मुल्क अस्करी द्वारा पराजित हुआ। निज़ामुद्दीन अहमद का पिता उस समय अस्करी का वज़ीर था। उसने इस युद्ध का वर्णन अपने पिता की सूचना पर किया है। वह लिखता है कि मुग़ल सेना का अग्रगामी दल अस्करी के नेतृत्व में आगे बढ़ा। इमादुल मुल्क की सेना पराजित हुई। हवा बड़ी गरम थी। उसी समय गुजराती सेना बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ी। अस्करी अपनी सेना सुव्यवस्थित नहीं कर सका तथा कुछ दूर झाड़ी की आड़ में छिप गया। गुजरात वाले लूट-मार में व्यस्त हो गये। अस्करी झाड़ी से बाहर निकला। गुजराती पराजित हुए। (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५७-५८)। अबू तुराब (तारीख़े गुजरात, पृ. २७-२८) के अनुसार अस्करी युद्ध न कर सका तथा नवधारा के थूहड़ के वृक्षों के पीछे चला गया। इमादुल मुल्क की सेना लूटपाट में लग गयी। इसी समय हुमायूं की अन्य सेना क़ासिम हुसेन खां और हिन्दू बेग के नेतृत्व में पहुँच गयी। अस्करी मिर्ज़ा भी अपनी सेना इकट्ठी कर आ गया। भीषण युद्ध हुआ जिसमें गुजराती पराजित हुए।

८० अकबरनामा, १, पृ. १४०; तबक़ाते अकबरी, डे, १, पृ. ५७-५८। अकबरनामा के अनुसार मृत गुजराती सैनिकों की संख्या तीन या चार हज़ार के बीच थी। निज़ामुद्दीन के अनुसार २,००० देखिए, रास, अरेबिक हिस्ट्री, १, पृ. २४६; अर्सकिन, २, पृ. ७३-७६।

८१ अकबरनामा, १, पृ. १४१।

गुजरात का शासन प्रबन्ध

गुजरात विजय के पश्चात् वहां के शासन प्रबन्ध की समस्या आयी। अमीर हिन्दू बेग तथा अन्य अनुभवी परामर्शदाताओं ने हुमायूं को यह राय दी कि बहादुर शाह को मुग़ल साम्राज्य के अन्तर्गत पुनः गुजरात का शासक नियुक्त कर दिया जाए। बहादुर शाह इस समय पूर्ण रूप से पराजित हो चुका था। ऐसी परिस्थिति में इस तरह का उदार व्यवहार उसे चिरकाल के लिए मित्र बना लेता तथा शेरशाह के संघर्ष में वह हुमायूं का एक बहुत ही शक्तिशाली सहयोगी बन जाता। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि हिन्दू बेग ने परिस्थितियों का हुमायूं से अधिक अध्ययन किया था।

हुमायूं ने इस परामर्श को स्वीकार नहीं किया। उसने गुजरात को मुग़ल साम्राज्य का अंग बनाने का निश्चय किया।[८२] अस्करी को गुजरात का वाइसराय नियुक्त किया गया तथा उसे अहमदाबाद को अपने शासन का केन्द्र बनाने का आदेश हुआ। उसकी सहायता के लिए हिन्दू बेग को ५,००० घुड़सवारों के साथ सेनापति नियुक्त किया गया। उसे आज्ञा हुई कि जिस स्थान पर भी कुमुक की आवश्यकता हो मुग़ल वाइसराय के परामर्श से वह वहां पहुँच जाए।[८३]

गुजरात का राज्य पांच भागों में विभाजित कर दिया गया तथा प्रत्येक भाग के शासन का उत्तरदायित्व एक-एक अमीर को दिया गया। इस तरह यादगार नासिर को पाटन; क़ासिम हुसेन सुल्तान को भड़ौंच, नवसारी तथा सूरत; दोस्त इशाक़ बेग आक़ा को कैम्बे एवं बड़ौदा; मीर बूचका बहादुर को महमूदाबाद; तथा तरदी बेग को चम्पानीर में नियुक्त किया गया।[८४] ये सभी वासइराय के प्रति उत्तरदायी थे।

८२ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ७-८। जौहर लिखता है कि हिन्दू बेग तथा अन्य अमीरों की राय पर हुमायूं बहुत नाराज़ हुआ तथा उसने कहा "जिस राज्य को तलवार की शक्ति से विजय किया है, उसे नष्ट नहीं करना चाहिए। इस राज्य को सुव्यवस्थित करना और इसकी शासन व्यवस्था को दिल्ली के अधीन करनी चाहिए।"

८३ अकबरनामा, १, पृ. १४१।

८४ वही, वही। समकालीन इतिहासकारों में शासन प्रबन्ध सम्बन्धी नियुक्तियों में मत-भिन्नता है। अरेबिक हिस्ट्री (भाग १, पृ. २५८) के अनुसार अहमदाबाद में मिर्ज़ा हिन्दाल, अस्करी तथा हिन्दू बेग; नेहरवाला पाटन में यादगार नासिर मिर्ज़ा; भड़ौंच, सूरत एवं नवसारी में क़ासिम हुसेन खां को तथा चम्पानीर में तरदी बेग को

हुमायूं ने गुजरात के शासन प्रबन्ध में योग्यता नहीं दिखायी। कुछ प्रमुख अमीरों को नियुक्त करने के अतिरिक्त उसने और कोई ठोस कार्य नहीं किया। गुजरात में कोई ख़ालसा भूमि नहीं निकाली गयी जिससे उसे स्थायी आय होती रहती। अस्करी तथा उसके अधीन भिन्न-भिन्न भागों के शासकों में पारस्परिक सम्बन्ध भी बहुत स्पष्ट नहीं था। इस तरह जीते हुए भागों को अधीन रखने के लिए कुछ व्यक्तियों को नियुक्त करने के अतिरिक्त उसका प्रबन्ध शून्य-सा प्रतीत होता है।

गुजरात का प्रबन्ध करने के पश्चात् बहादुर शाह को अन्तिम रूप में परास्त करने के विचार से हुमायूं डियू की तरफ बढ़ा। वह अहमदाबाद से ३० मील की दूरी पर स्थित धन्दुका नामक स्थान तक पहुँच गया, किन्तु इसी समय उसे मुग़ल साम्राज्य से कुछ ऐसी घटनाओं का समाचार प्राप्त हुआ जिससे उसे यह विचार त्यागना पड़ा।

हुमायूं की अनुपस्थिति में उसके उत्तरी साम्राज्य की स्थिति

हुमायूं की मालवा तथा गुजरात में लम्बी अनुपस्थिति के परिणाम स्वरूप उसके साम्राज्य के शासन में ढीलापन आ गया। कई स्थानों पर विद्रोह प्रारम्भ हो गया तथा उसके कर्मचारियों के लिए वहां शान्ति तथा सुव्यवस्था बनाये रखना कठिन हो गया। मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा अपने दो पुत्रों के साथ मुग़ल साम्राज्य के पूर्वी भागों में अराजकता फैलाने का प्रयत्न कर रहा था तथा उसने कन्नौज से जौनपुर तक के भागों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[८५] आगरे के निकट तथा दोआब में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई तथा यहां से भी विद्रोह की सूचनाएं मिलीं। शेर खां की गतिविधि सशंकित करने वाली थी। मालवा के दो अफ़ग़ान अमीर सिकन्दर खां तथा मल्लू खां ने नर्मदा नदी के निकट

नियुक्त किया गया। मिराते सिकन्दरी के अनुसार हुमायूं ने अस्करी को अहमदाबाद, क़ासिम बेग को भड़ौंच, यादगार नासिर मिर्ज़ा को पाटन तथा बाबा बेग जलेर को चम्पानीर में नियुक्त किया (बेले, गुजरात, पृ. ३९२-९३)। निज़ामुद्दीन अहमद के अनुसार अहमदाबाद में मिर्ज़ा अस्करी को, नेहरवाला पाटन में मिर्ज़ा यादगार नासिर को, भड़ौंच हिन्दू बेग को, चम्पानीर तरदी बेग को तथा बड़ौदा क़ासलम हुसेन सुल्तान को दिया गया। (तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ५८)। अबुल फ़ज़ल का वर्णन अधिक प्रमाणित है तथा उसे ही स्वीकार किया गया है। देखिए, काम्मिस्सारियट, पृ. ३६८।

८५ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ८२।

हिन्दिया के भूभाग में विद्रोह कर दिया और वहां के जागीरदार मेहतर जम्बूर को भागकर उज्जैन में शरण लेनी पड़ी। इस प्रदेश में नियुक्त मुग़ल सैनिकों ने भी भागकर यहां शरण ली। दारवेश अली किताबदार ने बहादुरी से दुर्ग की रक्षा करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह दुर्ग की रक्षा करते समय मारा गया, जिससे अन्य रक्षकों को बड़ी निराशा हुई तथा उन्होंने दुर्ग को समर्पित कर दिया।[८६]

गुजरात से मांडू

उपर्युक्त परिस्थितियों ने हुमायूं को चिन्तित कर दिया। बहादुर शाह का पीछा करना छोड़कर उसने किसी केन्द्रीय स्थान से अपने साम्राज्य पर दृष्टि रखने का निश्चय किया। कैम्बे, बड़ौदा, सूरत, नन्दवार, असीर गढ़ होता हुआ हुमायूं बुरहानपुर पहुँचा। यहां वह एक सप्ताह रहा।[८७] उसकी उपस्थिति ने दक्षिण के राज्यों को सावधान कर दिया। गुजरात की विजय से उन्हें भय हुआ कि हुमायूं अपनी साम्राज्यवादी नीति का प्रसार दक्कन में भी करना चाहता है। इस परिस्थिति में बुरहान निज़ाम शाह, इमाद शाह तथा दक्कन के अन्य शासकों ने आत्मसमर्पण के पत्र लिखकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।[८८] हुमायूं को उनके समर्पण से कदाचित् आश्चर्य हुआ किन्तु उसे सन्तोष तथा प्रसन्नता हुई, क्योंकि उसके साम्राज्य के पूर्वी भाग के समाचार अच्छे नहीं थे। यहां से हुमायूं मांडू चला गया। यह स्थान उसे इतना प्रिय लगा कि वह यहां कई महीने रुका रहा तथा उसने इसे साम्राज्य का अस्थायी केन्द्र बना दिया।[८९]

यहां से वह मिर्ज़ाओं तथा आगरा पर दृष्टि रख सकता था। बहादुर शाह डियू में था। मालवा के विद्रोही भाग गये थे। रणथम्भौर, चित्तौड़ तथा अजमेर बहादुर के कर्मचारियों के अधीन थे। सूरत रूमी खां सफर के अधीन था। काठियावाड़ के लोग अब भी बहादुर शाह को ही अपना स्वामी समझते थे। बहादुर शाह शेर खां को मुग़लों के विरुद्ध प्रोत्साहित कर रहा था। इन सब कठिनाइयों पर दृष्टि रखने के लिए मांडू हुमायूं को अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ।

उसी समय इतिहासकार ख्वन्दमीर का देहान्त हो गया। उसकी लाश दिल्ली

८६ अकबरनामा, १, पृ. १४१-४२।

८७ वही, पृ. १४२; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५८।

८८ फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ८०-८१।

८९ अकबरनामा, १, पृ. १४२।

ले जाकर शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया एवं अमीर ख़ुसरो के रोज़े के समीप दफ़नायी गयी ।[६०]

गुजरात में मुक्ति आन्दोलन

हुमायूं के गुजरात छोड़ने के तीन महीने तक गुजरात में शान्ति रही । साथ ही मालवा तक मुग़ल साम्राज्य की स्थिति में सुधार हुआ । सिकन्दर ख़ां सतवास तथा मल्लू ख़ां ने उज्जैन तथा हिन्दिया त्याग दिया, बुरहानुल मुल्क बामियानी रणथम्भौर से भगा दिया गया तथा दरिया ख़ां और मुहाफिज़ ख़ां रायसीन से हटा दिये गये । मिर्ज़ा हिन्दाल ने मिर्ज़ाओं को हराकर उन्हें जौनपुर की तरफ भगा दिया । शेर ख़ां की प्रगति नगण्य थी ।

इन तीन महीनों में मुग़ल गुजरात में अपनी योग्यता प्रदर्शित कर सकते थे । दुर्भाग्यवश उन्होंने कोई भी रचनात्मक कार्य नहीं किया जिससे गुजरात के भिन्न-भिन्न भागों से विद्रोह के समाचार आने लगे । यदि अस्करी ने अच्छे शासक की योग्यता दिखायी होती और मुग़ल अमीरों को अपने में मिलाकर उसने गुजरात में एक शक्तिशाली शासन की नींव डाली होती तो मुग़ल साम्राज्य की रक्षा हो सकती थी । दुर्भाग्यवश अस्करी ने अपना समय दावतों में बरबाद किया और उसी के साथ अमीरों ने भी उसका अनुकरण किया । साथ ही गुजरात के मुग़ल अमीरों को अस्करी पर न तो विश्वास था और न उनमें एकता थी । इसके परिणाम-स्वरूप वे गुजरात के विद्रोह का सामना न कर सके ।

गुजरात में मुग़लों ने अपने व्यवहार से यह स्पष्ट कर दिया था कि वे विदेशी हैं और गुजरातियों के प्रति उनके हृदय में कोई भी दया तथा ममता नहीं है । मांडू तथा चम्पानीर के दुर्गों में जो हत्याकांड मुग़लों ने किये थे उन्हें गुजरात की जनता अभी भूली नहीं थी । इसके अतिरिक्त बहादुर शाह गुजरात का जन-प्रिय शासक था । पराजय के पश्चात् मुग़लों के दुर्व्यवहार से जनसाधारण के हृदय में उसके प्रति और भी ममता जाग उठी थी । ऐसी परिस्थिति में गुजरात की जनता बहादुर शाह के साथ थी । स्वयं बहादुर शाह गुजरात के निकट डियू के द्वीप में था । सूरत का गढ़ उसके अधिकार में था तथा उसके पास एक जहाज़ी बेड़ा था जो उसके निकट के समुद्र में चक्कर लगाया करता था । इस तरह बहादुर शाह कभी भी गुजरात पर आक्रमण कर सकता था तथा मुग़लों से असन्तुष्ट जनता का नेतृत्व कर सकता था ।

६० फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ८१ ।

मुग़ल विरोधी प्रथम विद्रोह नवसारी में हुआ। सुल्तान बहादुर का एक अमीर नूरुद्दीन ख़ानेजहां शिराज़ी उसे छोड़कर हुमायूं से जा मिला था। हुमायूं ने उसे सूरत का सेनापति नियुक्त किया था। इसका पद हिन्दू बेग के अधीन था। उसने अपने नये स्वामी को छोड़कर पुनः बहादुर शाह का पक्ष ग्रहण किया। उसने अबदुल्ला ख़ां ऊज़बेक पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया[६१] तथा नवसारी पर अधिकार कर लिया। अबदुल्ला ख़ां यहां से भागकर भड़ौंच चला गया। विद्रोहियों ने रूमी ख़ां सफ़र[६२] के सहयोग से सूरत पर भी अधिकार कर लिया। ख़ानेजहां ने स्थल मार्ग से तथा रूमी ख़ां ने समुद्र के मार्ग से भड़ौंच पर आक्रमण किया। क़ासिम हुसेन ख़ां[६३] के हाथ-पांव फूल गये। वह भागकर चम्पानीर चला गया। वहां से पुनः भागकर वह अहमदाबाद गया। एक गुजराती अमीर सैयिद इसहाक़ ने, जिसे सुल्तान बहादुर ने शिताब ख़ां की उपाधि दी थी, कैम्बे पर अधिकार कर लिया। मलिक सैयिद अहमद लाद ने दोस्त इशाक बेग आक़ा को बड़ौदा से भगाकर उस पर अधिकार कर लिया।[६४]

उत्तरी गुजरात में मुग़ल विरोधी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। अस्करी ने यादगार नासिर मिर्ज़ा को परामर्श के लिए पाटन बुलाया। अबू तुराब 'तारीख़े गुजरात' में लिखता है कि अस्करी ने उसके पास यह सन्देश भेजा था कि गुजराती लोग पाटन के समीप पहुँच गये हैं, अतः यह उचित होगा कि वह अहमदाबाद की ओर रवाना हो ताकि सब लोग मिलकर युद्ध करें। मिर्ज़ा नासिर पाटन नहीं छोड़ना चाहता था, किन्तु अस्करी ने उसको लिखा कि यदि वह उसकी बात नहीं मानेगा तो वह बादशाह का विद्रोही समझा जाएगा। विवश होकर यादगार नासिर को अहमदाबाद जाना पड़ा।[६५] मूर्खतावश वह अपनी सेना भी

६१ अबू तुराब, पृ. २६; अकबरनामा, १, पृ. १४२-४३; तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ५८।

६२ यह रूमी ख़ां सफ़र सूरत के दुर्ग का निर्माता था तथा तोपची रूमी ख़ां से भिन्न था।

६३ क़ासिम हुसेन सुल्तान, सुल्तान हुसेन बाइक़रा के वंश का था तथा हुमायूं का सम्बन्धी था। खानवा के युद्ध में उसने प्रमुख अंग का नेतृत्व किया था। बाद में बाबर ने उसे बदायूं का गवर्नर नियुक्त किया। (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १५६)।

६४ अबू तुराब, पृ. २१; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५८-५६; अकबरनामा, पृ. १४३।

६५ अबू तुराब, पृ. २६।

साथ लेता गया। सुल्तान बहादुर के दो अमीर, दरिया ख़ां तथा मुहाफ़िज़ ख़ां, सुल्तान से मिलने डियू जा रहे थे। मार्ग में पाटन को अरक्षित पाकर उन्होंने उस पर अधिकार कर लिया।[६६] गुजरातियों के विद्रोह तथा मुग़लों के पलायन की परिस्थिति इस सीमा तक पहुँची कि मुग़लों के पास गुजरात और मालवा में केवल तीन प्रमुख स्थान (अहमदाबाद, चम्पानीर तथा मांडू) ही रह गये।

मुगलों की स्थिति

अस्करी अपने स्वभाव, व्यवहार तथा योग्यता से न मुग़ल अमीरों को प्रसन्न कर सका न गुजरात की जनता को। वह अपने वाइसराय के पद को अधिक महत्त्व देना चाहता था तथा गुजरात के सभी मुग़ल अमीरों को अपने अधीन समझता था। इसके विपरीत मुग़ल अमीर उसे अपनी ही तरह एक अमीर समझते थे तथा उनमें से कुछ जो हुमायूं के अधिक विश्वासपात्र थे अस्करी से सावधान थे तथा वे प्रमुख आज्ञाएं हुमायूं से प्राप्त करना चाहते थे। इस तरह मुग़ल अमीरों में न पारस्परिक सद्भावना थी और न अस्करी यह भावना उत्पन्न करने में सफल हुआ।

गुजराती मुक्ति आन्दोलन के प्रसार ने सभी मुग़ल सैनिकों को सतर्क कर दिया। अस्करी तथा हिन्दू बेग बारबार हुमायूं के पास मांडू संदेश भेज रहे थे तथा उससे सहायता और निश्चित आदेश चाहते थे। दुर्भाग्यवश हुमायूं ने उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया। इससे उन्हें निराशा हुई। इस परिस्थिति में हिन्दू बेग ने अस्करी को यह सुझाव दिया कि वह अपने नाम से ख़ुत्बा पढ़े, सिक्के चलाये तथा गुजरात का स्वतन्त्र शासक बन जाए।[६७] अस्करी ने प्रारम्भ

६६ अकबरनामा, १, पृ. १४३।

६७ डा. बनर्जी ने (हुमायूं, १, पृ. १६२-६३) हिन्दू बेग के इस सुझाव को बुद्धिहीन कहा है। उनका मत है कि इसी के कारण ग़ज़नफ़र को बाद में बन्दी बनाया गया तथा तरदी बेग के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ। डा. ईश्वरी प्रसाद का (हुमायूं, पृ. ८५) कथन है कि "Hindu Beg, a blunt soldier that he was, decided that a do nothing emperor was no master for him." डा. त्रिपाठी का (राइज़ एण्ड फॉल, पृ. ८२-८३) विचार है कि हिन्दू बेग समझता था कि इस सुझाव से सभी अमीरों तथा गुजराती जनता में यह विश्वास पैदा हो जाएगा कि उनके राज्य की एकता तथा भलाई अस्करी को अपना शासक स्वीकार करने से सुरक्षित रहेगी। फ़िरिश्ता (ब्रिग्स, ४, पृ. ८२) स्पष्ट लिखता है कि हिन्दू बेग ने यह सलाह सेना का विश्वास प्राप्त करने के लिए

में यह विचार अस्वीकार कर दिया, किन्तु उसके मन से यह बात निकली नहीं जैसा कि अस्करी की एक दावत से स्पष्ट हो जाता है।

अस्करी की दावत

एक दिन संध्या के समय जब अस्करी अपने मित्रों के साथ बैठकर शराब पी रहा था उसने शराब के नशे में कहा कि वह ईश्वर का प्रतिरूप है। ग़ज़नफ़र ने जो उसका दूध-भाई था, मज़ाक में कहा कि "आप हैं, किन्तु इस समय शराब के नशे में हैं।" जितने लोग निकट थे वे सभी हँस पड़े। अस्करी कुछ दूरी पर था इससे यह मज़ाक नहीं सुन सका। जब उसे यह मज़ाक बताया गया तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने ग़ज़नफ़र को बन्दीगृह में बन्द कर दिया। ग़ज़नफ़र वहां से अपने ३०० साथियों के साथ भागकर बहादुर शाह से जा मिला।[६८] उसने उसे मुग़लों की दयनीय स्थिति का ज्ञान कराया तथा उसे आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया।[६९] ग़ज़नफ़र के भागने के परिणामस्वरूप अन्य मुग़ल अमीर भी अस्करी को छोड़कर बहादुर शाह से जा मिले।

बहादुर शाह से संघर्ष

हुमायूं के डियू से वापस चले जाने के पश्चात् बहादुर शाह वहीं पड़ा रहा। वहां से गुजरात पर दृष्टि रखकर वह उस पर पुनः अधिकार करने के सुयोग की प्रतीक्षा करता रहा। गुजरात की घटनाओं की सूचना उसको मिलती रहती थी। गुजरात के मुक्ति आन्दोलन तथा कई प्रमुख स्थानों पर उसके नाम से अधिकार हो जाने के पश्चात् तथा ग़ज़नफ़र द्वारा मुग़लों की दयनीय अवस्था का ज्ञान प्राप्त हो जाने से उसे मुग़लों के विरुद्ध आगे बढ़ने में सुविधा हुई। बहादुर शाह ने डियू से निकलकर सरखेज़ के निकट अपना पड़ाव डाला।

अहमदाबाद में मुग़ल कुछ दिन रहे। किन्तु स्थिति बिगड़ती जा रही थी। मुग़ल सेना की संख्या गुजराती सेना से बहुत कम (२:५ के अनुपात में) थी।

दी। फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. ८२ बदायूनी लिखता है कि अस्करी हिन्दू बेग से मिलकर ख़ुत्बा पढ़वाना चाहता था किन्तु यह सम्भव नहीं हो सका। मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ५३४)।

६८ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५९-६०; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ८१-८२। अबुल फ़ज़ल इसका पूरा वर्णन नहीं करता; वह केवल इतना ही लिखता है कि पारस्परिक असहयोग तथा अल्पदर्शिता के कारण ग़ज़नफ़र ३०० अश्वारोहियों से जा मिला। (अकबरनामा, १, पृ. १४३)।

६९ अकबरनामा, १, पृ. १४३; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ५९-६०।

इसके अतिरिक्त गुजरात की जनता का असहयोग तथा मुग़ल अमीरों का पारस्परिक मतभेद स्थिति को और भी बिगाड़ रहा था। प्रारम्भ में अस्करी का विचार ग़यासपुर में युद्ध करने का था किन्तु इमादुल मुल्क की सेना की शक्ति बढ़ती जा रही थी। अहमदाबाद सुरक्षित नहीं था। यहां से युद्ध करना भी उपयुक्त न था। इस कारण अस्करी, हिन्दू बेग इत्यादि ने अपनी पूर्ण शक्ति को चम्पानीर में केन्द्रित करने का निश्चय किया। इससे संगठित रूप में गुजराती सेना का सामना किया जा सकता था तथा यदि पराजय भी होती तो मुग़ल सेना का पूर्ण नाश नहीं होता। विजय होने पर अहमदाबाद पर अधिकार हो सकता था।[१००] अस्करी अहमदाबाद से अपनी सेना के साथ चम्पानीर की तरफ रवाना हुआ। मार्ग में असावल नामक स्थान पर बहादुर तथा अस्करी की सेनायें तीन दिन तक युद्ध के लिए एक दूसरी के सामने खड़ी रहीं। अन्त में अस्करी की सेना बिना युद्ध के ही चम्पानीर की तरफ बढ़ गयी।[१०१] बहादुर शाह को उनके इस तरह भाग जाने से आश्चर्य हुआ। उसने मुग़ल सेना का पीछा किया तथा उसके पिछले भाग से, जिसका नेतृत्व यादगार नासिर मिर्ज़ा कर रहा था, युद्ध भी हुआ जिसमें मुग़लों की हानि हुई। अस्करी यहां से अपनी सेना के साथ चम्पानीर पहुँचा।

चम्पानीर में तरदी बेग ने उन्हें घोड़े तथा रहने का स्थान दिया। अस्करी ने तरदी बेग को परिस्थितियों की भयंकरता बतायी और उससे धन की सहायता मांगी जिससे वह बहादुर शाह से युद्ध कर पराजय का बदला ले। तरदी बेग ने अस्करी को हुमायूं की स्वीकृति के बिना धन देना अस्वीकार कर दिया।[१०२]

१०० फ़िरिश्ता (ब्रिग्स, ४, पृ. १३०) लिखता है कि गुजरात के विद्रोह तथा मुग़ल प्रबन्ध की असफलता को देखकर अस्करी ने मुगल अमीरों की सभा बुलायी तथा उसने कहा कि "सम्राट इस समय मांडू में हैं। गुजरात पर अधिकार रखने के प्रबन्ध की असफलता के पश्चात् हमारा यहां रहना व्यर्थ है। शेर खां पूर्वी बंगाल में अपनी सेना दिल्ली पर अधिकार करने के लिए इकट्ठी कर रहा है। इसलिए मैं समझता हूं कि हम लोगों को चम्पानीर पहुँचकर वहां के कोष पर अधिकार कर आगरा जाना ही श्रेयस्कर है।"

१०१ अकबरनामा, १, पृ. १४३; बेले, पृ. ३९३; अबू तुराब, पृ. ३०। "इस कारण कि वे न तो हज़रत जहांबानी के प्रति निष्ठावान थे और न उनके विचार ही शुद्ध थे, अतः अन्धकारमय विचारों एवं अशुद्ध कल्पनाओं के कारण युद्ध किये बिना चम्पानीर की ओर चल दिये और नाना प्रकार की तबाही प्रकट हुई।" (अकबरनामा, १, पृ. १४३)

१०२ अकबरनामा, १, पृ. १४४।

हुमायूं उस समय मांडू में था जो चम्पानीर से अधिक दूर नहीं था। तरदी बेग ने हुमायूं को अस्करी के कार्यों की सूचना दी। साथ ही उसने यह मत प्रकट किया कि अस्करी के विचार पवित्र नहीं हैं और उसकी दृष्टि आगरा पर भी है। अस्करी ने तरदी बेग को हर तरह से समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु उसने हुमायूं की स्वीकृति के बिना सहायता देने से इनकार कर दिया। तरदी बेग से किसी प्रकार की सहायता की आशा न पाकर अस्करी ने षड्यंत्र रचा। परिस्थिति पर विचार करने के लिए प्रमुख अमीरों की एक गोष्ठी आमन्त्रित हुई जिसमें तरदी बेग भी बुलाया गया। वास्तविक रूप में अस्करी तरदी बेग को अपने अधिकार में करना चाहता था। तरदी बेग को संदेह हो गया और वह तुरन्त दुर्ग में चला गया तथा उसने अस्करी को अपने सैनिकों को दुर्ग से दूर हटाने की आज्ञा दी। उनके हिचकने पर उसने उनके ऊपर गोलियों की वर्षा की।[१०३] अपनी योजना की असफलता के परिणामस्वरूप अस्करी आगरे की ओर रवाना हुआ।

हुमायूं का आगरा वापस लौटना

जिस समय गुजरात में विद्रोह हो रहे थे हुमायू मांडू में पड़ा था। मालवा में हुमायूं को अस्करी की आगरा यात्रा की सूचना मिली। इस सूचना से उसकी निद्रा भंग हुई और अपनी सेना इकट्ठी कर वह भी आगरे की तरफ रवाना हुआ जिससे अस्करी के पहुँचने के पहले वह वहां पहुँच सके।

मुग़लों के पलायन की सूचना पाते ही बहादुर शाह ने महेन्द्री नदी पार की तथा चम्पानीर की तरफ बढ़ा। दुर्ग की रक्षा असम्भव देखकर तरदी बेग ने जितना भी कोष ले जाना संभव था ले लिया तथा हुमायूं की तरफ रवाना हो गया। तरदी बेग के भागने की सूचना पाते ही बहादुर शाह ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस तरह गुजरात पर उसका पुनः अधिकार हो गया।[१०४] जो

[१०३] अबू तुराब (तारीख़े गुजरात, पृ. ३१) लिखता है कि तरदी बेग अस्करी से मिलने जा रहा था कि एक विश्वासपात्र, जो मिर्ज़ाओं के पास से आ रहा था, मार्ग में मिल गया। उसने उसके कान में कहा कि "मिर्ज़ाओं ने तुम्हें बन्दी बनाने की योजना बनायी है।" तरदी बेग अबू तुराब के घर पर उतर गया तथा उसे पता लगाने को भेजा। जब उसे विश्वास हो गया कि अस्करी का संकल्प ठीक नहीं है तो उसने उन्हें वहां से चले जाने को कहा।

[१०४] अरेबिक हिट्री ऑफ गुजरात (भाग, १, पृ. २६०) के अनुसार गुजरात

मुग़ल चम्पानीर के दुर्ग में थे उनके साथ बहादुर ने अच्छा व्यवहार किया तथा उन्हें वस्त्र, घोड़े एवं खर्चे देकर वहां से चले जाने की अनुमति दी।

मांडू में तरदी बेग हुमायूं से मिला तथा वहां से उसकी सेना के साथ वह आगरा की तरफ रवाना हुआ। आगरे के मार्ग में चित्तौड़ के निकट अस्करी और हुमायूं की मुलाकात हुई और दोनों भाइयों में पुनः मित्रता स्थापित हुई, जिसमें हरम की स्त्रियों ने भी सहायता दी। इस तरह दोनों भाई बची सेनाएं तथा मुग़ल स्त्रियों के साथ आगरे की तरफ रवाना हुए।

हुमायूं ने अस्करी को तो क्षमा कर ही दिया उसके अन्य अमीरों को भी उसने दंड नहीं दिया।[१०५] आगरा लौटकर हुमायूं ने हिन्दू बेग को जौनपुर का गवर्नर नियुक्त किया तथा कुछ महीने बाद उसे अमीरुल उमरा की उपाधि दी। मिर्ज़ा नासिर को कालपी का गवर्नर नियुक्त किया गया। इससे स्पष्ट है कि दोनों का मतभेद समाप्त हो गया था।

अस्करी हुमायूं के पास जाने के बजाय आगरा की तरफ क्यों रवाना हुआ? अबुल फ़ज़ल तथा कुछ अन्य समकालीन इतिहासकारों का मत है कि अस्करी स्वतन्त्र होना तथा आगरा पर अधिकार करना चाहता था।[१०६] उसके मन में जो भी इरादा हो, प्रकट रूप में उसने न खुत्बा पढ़ा न अपने नाम से सिक्के चलाये, जैसा बाद में हिन्दाल ने किया। हो सकता है उसका इरादा आगरे में राजत्व धारण करने का था किन्तु उसे समय नहीं मिला।

तरदी बेग के व्यवहार की समीक्षा

तरदी बेग ने अस्करी की सहायता क्यों नहीं की? तबक़ाते अकबरी का लेखक निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि जब अस्करी तथा उसके साथी चम्पानीर पहुँचे तो तरदी बेग ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया तथा किला बन्द करके बैठ रहा तथा उसने हुमायूं के पास सूचना भेजी कि मिर्ज़ा अस्करी ने विद्रोह करने का निश्चय कर लिया है।[१०७] इस तरह वह सम्पूर्ण दुर्भाग्य का उत्तर-

पर मुग़लों का अधिकार हिजरी के महीनों के अनुसार १३ महीने १३ दिन रहा (२५ अप्रैल १५३५ से २४ मई १५३६) रास-अरेबिक हिस्ट्री, १, पृ. २६०।

[१०५] अकबरनामा, १, पृ. १४४।

[१०६] वही, वही। अबू तुराब, (पृ. ३१) के अनुसार अस्करी का इरादा आगरा पर अधिकार करने का था।

[१०७] तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ६१।

दायित्व तरदी बेग पर डालता है। फ़िरिश्ता लिखता है कि अस्करी चम्पानीर तथा गुजरात के अन्य भागों पर अधिकार कर अपने नाम से ख़ुत्बा पढ़ना चाहता था तथा सिक्का चलाना चाहता था।[१०८] बदायूनी लिखता है कि अस्करी हिन्दू बेग की सहायता से अपने नाम से ख़ुत्बा पढ़ना चाहता था।[१०९] तारीख़े गुजरात के लेखक अबू तुराब के अनुसार जिस समय अस्करी चम्पानीर पहुँचा, तरदी बेग ने प्रारम्भ में उसके साथ सद्व्यवहार किया और प्रत्येक व्यक्ति को एक-एक घोड़ा दिया तथा उनका आदर सत्कार किया किन्तु राजसी कोष से सम्राट की आज्ञा के बिना एक पैसा भी देने से इन्कार कर दिया। उसके बाद जब उसे विश्वास हो गया कि अस्करी उसे बन्दी बनाना चाहता है तो वह उसके विरुद्ध हो गया।[११०] अबू तुराब आगे लिखता है कि मिर्ज़ाओं की दशा शोचनीय थी अतः उन्होंने निश्चय किया कि अस्करी बादशाह बने और हिन्दू बेग उसका वकील। अन्य मिर्ज़ाओं के नाम पर भी बड़ी-बड़ी जागीरें रखी गयीं किन्तु तरदी बेग उन्हें मांडू जाने के लिए जोर देता रहा तथा अन्त में उसने उनकी सेना पर तोप चलायी। अब्दुल्ला ने अपनी अरबी भाषा में लिखे गुजरात के इतिहास (ज़फ़रूल वालेह व मुज़फ़्फ़र व आलेह) में अबू तुराब के मत का समर्थन किया है।[१११] अबुल फ़ज़ल के अनुसार मिर्ज़ाओं का विचार चम्पानीर पर अधिकार करना तथा अस्करी को सुल्तान बनाना था।[११२]

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अस्करी गुजराती सेना से पराजित होकर चम्पानीर के दुर्गपति से सहायता मांगने आया था। वह तरदी बेग से धन, सैनिक तथा सुरक्षित स्थान चाहता था जिससे सेना संगठित कर बहादुर शाह से पुनः युद्ध कर सके। पराजय ने अस्करी को सचेत तथा सजग कर दिया था तथा अब वह अपना खोया यश पुनः प्राप्त करना चाहता था। गुजरात

१०८ फ़िरिश्ता, फा. पृ. २१६ ब्रिग्स का अनुवाद (भाग २, पृ. ८२-८३) भिन्न है।

१०९ "मिर्ज़ा अस्करी जो अहमदाबाद में था, पादशाह के पूर्व की ओर प्रस्थान कर जाने के उपरान्त अमीर हिन्दू बेग कूचीन से मिलकर अपने नाम का ख़ुत्बा पढ़वा देना चाहता था किन्तु यह सम्भव न हुआ। वह साधारण-सा युद्ध करके चम्पानीर पहुँचा। वहाँ के हाकिम तरदी बेग ने क़िले की प्रतिरक्षा प्रारम्भ कर दी। अस्करी मिर्ज़ा के विद्रोह सम्बन्धी पत्र दरबार में भेजे।" (बदायूनी, पृ. ३४७)

११० अबू तुराब, पृ. ३०-३१।

१११ रिजवी, हुमायूं, २, पृ. ४६७।

११२ अकबरनामा, १, पृ. १४४।

इतना शीघ्र तथा इतने कम संघर्ष से मुग़लों को प्राप्त हुआ कि अस्करी को आशा थी कि वह सरलता से उस पर शासन कर सकेगा। मुग़लों को धन का भी अभाव नहीं था। कुछ स्वभाव से तथा कुछ परिस्थितिवश अस्करी आनन्द-विनोद में लगा रहा। विद्रोहों ने उसकी आंखें खोल दीं तथा उसने पुनः खोया हुआ भूभाग तथा मान प्राप्त करना चाहा।

अस्करी गुजरात का गवर्नर भी था। तरदी बेग उसके अधीन था। इस तरह परिस्थिति तथा वैधानिकता की दृष्टि से उसे पूर्ण आशा थी कि तरदी बेग उसकी सहायता करेगा। सहायता न पाने पर अस्करी की नाराज़गी स्वाभाविक थी। अस्करी तरदी बेग को बन्दी बनाकर चम्पानीर में संचित कोष तथा सेना पर अधिकार करना चाहता था। इसमें भी उसे सफलता नहीं मिली। गुजरात में केवल चम्पानीर का दुर्ग ही मुग़लों के अधिकार में रह गया था। हुमायूं की विरक्ति और तरदी बेग के दुर्व्यवहार के कारण तथा गुजरात में रहना असम्भव जानकर अस्करी आगरे की तरफ रवाना हुआ।

तरदी बेग ने अस्करी के साथ यह दुर्व्यवहार क्यों किया? वह उत्तरदायी तथा योग्य व्यक्ति था। प्रान्त के गवर्नर तथा सम्राट के भाई के साथ दुर्व्यवहार उसने बिना कारण नहीं किया होगा। यह निश्चित है कि तरदी बेग हुमायूं के प्रति स्वामिभक्त था। उसे अस्करी की गतिविधि तथा विचारों का पूर्ण ज्ञान था। उसे यह भी ज्ञात था कि उसके मन में स्वतन्त्र शासक बनने का भी विचार आ चुका है। इस कारण वह अस्करी के प्रत्येक व्यवहार के प्रति पूर्णतया सतर्क तथा जागरूक था। प्रारम्भ में उसने सहायता दी। किन्तु यह जानकर कि उसे बन्दी बनाने का षड्यंत्र किया जा रहा है तथा अस्करी हुमायूं के विरुद्ध विद्रोह करना चाहता है, उसने उसे दुर्ग के अन्दर नहीं घुसने दिया।[113]

वैधानिक दृष्टि से तरदी बेग का व्यवहार गलत था। किन्तु हुमायूं के प्रति प्रेरित स्वामिभक्ति की दृष्टि से तथा परिस्थितियों को देखते हुये उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

एक और प्रश्न विचारणीय है। यदि अस्करी हुमायूं से क्षमा प्राप्त करना चाहता था तो उसे मांडू जाना चाहिए था। वहां जाने के स्थान पर वह आगरे क्यों गया? इसके दो कारण हो सकते हैं: या तो वह शर्म से भागकर आगरा जाना चाहता था जहां अपने सम्बन्धियों से मिलकर क्षमायाचना करे, अथवा वह विद्रोह करना चाहता था। अस्करी के मन में स्वतन्त्र होने का कितना साहस

[113] बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १६५।

था यह सन्देहजनक है, क्योंकि कुछ ही दिन पूर्व, हिन्दू बेग के सुझाव पर, उसे स्वयं को गुजरात का स्वतन्त्र शासक घोषित करने का साहस नहीं हुआ था। आगरे की तरफ बढ़ते समय उसकी गति ऐसी थी कि हुमायूं ने उसे चित्तौड़ में जा पकड़ा। यदि वास्तव में आगरे पर अधिकार करने का उसका इरादा होता, तो उसने निश्चय ही हुमायूं के पहुँचने के पहले वहां पहुँचने का प्रयत्न किया होता।[११४] तरदी बेग के असहयोग से कोई लाभ नहीं हुआ। अस्करी तो गुजरात से गया ही तरदी बेग को भी चम्पानीर छोड़कर निकल जाना पड़ा और इस तरह गुजरात से मुग़ल साम्राज्य का अन्त हो गया।

मुग़लों के गुजरात से पलायन के कारण

जिस तरह मुग़लों ने गुजरात पर आसानी से अधिकार किया था ठीक उसी तरह वह उनके हाथ से निकल गया। इस दुष्परिणाम के निम्नलिखित कारण थे :

१. हुमायूं ने गुजरात में मांडू तथा चम्पानीर के हत्याकांड द्वारा गुजरातियों को भयभीत कर दिया। यही नहीं, मांडू में सन्धि निश्चित करने के पश्चात् उसने उसे तोड़ दिया। इस तरह गुजरातियों के मन में मुग़लों पर से विश्वास तो हट ही गया, साथ ही मुग़ल-विरोधी भावनाओं का जन्म हुआ।

२. गुजरात से मांडू जाने के पूर्व हुमायूं ने गुजरात का उचित प्रबन्ध नहीं किया। बहुत-सी समस्याएं उसने वैसी ही छोड़ दी थीं। बहादुर शाह जीवित तथा स्वतन्त्र था। मालवा के विद्रोही आज़ाद थे, सूरत में अब भी बहादुर शाह के अमीर रूमी ख़ां सफर का अधिकार था। बहादुर शाह का जहाज़ी बेड़ा समुद्रतट पर चक्कर लगा रहा था, उसको पराजित करने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। काठियावाड़ पर अब भी बहादुर शाह का अधिकार था तथा बहादुर शाह के अधिकतर अमीर स्वतन्त्र थे। इस परिस्थिति में हुमायूं ने गुजरात में केवल बहादुर शाह को उसके राज्य से खदेड़ देने तथा उसके राज्य पर सेना के बल पर अधिकार करने के अतिरिक्त संगठन की दृष्टि से कुछ भी नहीं किया।

३. किसी भी विदेशी भूभाग पर राज्य करने के लिए यह आवश्यक है कि वहां की जनता यह अनुभव करे कि विदेशी शासन इसके पूर्व के शासन से अधिक अच्छा है। मुग़लों के लिए यह आवश्यक था कि वे गुजरातियों का हृदय जीतने का प्रयत्न करते और एक ऐसे शासन की स्थापना करते जिससे गुजरात के निवासी सन्तुष्ट तथा प्रसन्न हो जाते। मुग़लों ने गुजरात में संगठित और

[११४] त्रिपाठी, राइज एण्ड फाल, पृ. ८५।

सुव्यवस्थित शासन की स्थापना करने का भी कोई प्रयत्न नहीं किया, जिसके परिणामस्वरूप गुजरात के निवासियों को बहादुर शाह तथा उसके शासन की बराबर याद आती रहती थी।

४. अस्करी ने अपनी दावतों तथा व्यवहार से नई परिस्थिति में अपने को अयोग्य साबित कर दिया। शासक की दृष्टि से अस्करी तथा बहादुर शाह दोनों में बहादुर को उच्च स्थान प्राप्त था। गुजरात के निवासी एक अयोग्य, विदेशी तथा व्यसनी शासक के अधीन कैसे रह सकते थे ?

५. मुग़ल सरदारों में पारस्परिक वैमनस्य था तथा सद्भावना का नितान्त अभाव था। एक साथ मिलकर मुग़ल शक्ति के हित में कार्य करने में वे असमर्थ थे। हुमायूं ने गुजरात में नियुक्तियां करते समय अस्करी तथा उसके अन्य अमीरों का सम्बन्ध निश्चित नहीं किया था। इसी कारण वे सब एक मत से अस्करी को समर्थन देने को तैयार नहीं थे। कुछ तो उसके समर्थक बने, किन्तु कुछ बराबर हुमायूं को ही अपना स्वामी समझते रहे। इस तरह गुजरात के गवर्नर की गतिविधि पर उसके अधीन कर्मचारी दृष्टि रखते थे। इसी कारण तरदी बेग ने उसका विरोध किया और मुग़ल गुजरात के विद्रोह का सामना न कर सके।

६. बहादुर शाह बहुत ही जनप्रिय शासक था और गुजरात की जनता उसके लिए कुछ भी करने को तैयार थी। बहादुर शाह के समर्थन का आन्दोलन गुजरात का जन आन्दोलन था जिसका सामना करना सरल नहीं था।

७. अहमदाबाद के मुग़ल केन्द्र से भिन्न-भिन्न जिलों में स्थित मुग़ल अफ़सरों तथा स्थानों पर पूर्ण नियंत्रण नहीं स्थापित हो सका जिसके परिणामस्वरूप ये भाग एक के बाद एक उसके हाथ से निकल गये।

८. हुमायूं ने मालवा में मुग़ल शासन के स्थायित्व के लिए कुछ प्रबन्ध नहीं किया। इस तरह यह प्रान्त जिस तरह प्राप्त हुआ था उसी तरह हाथ से निकल गया। हुमायूं ने मालवा में कई माह व्यतीत किये फिर भी उसने वहां के शासन में दिलचस्पी नहीं ली।

९. हुमायूं ने इतनी लापरवाही दिखायी कि उसने चम्पानीर के दुर्ग में प्राप्त सम्पूर्ण कोष भी नहीं हटाया। तरदी बेग जितना कोष ले जा सकता था ले गया। बाकी पुनः बहादुर शाह को प्राप्त हो गया।[११५] बुद्धिमानी तो यह थी कि सम्पूर्ण कोष आगरा या दिल्ली भेज दिया गया होता।

[११५] काम्मिस्सारियट, पृ. ३७०-७१।

१०. ऐसा प्रतीत होता है कि मुग़लों का गुप्तचर विभाग सजग तथा योग्य नहीं था। इस कारण हुमायूं को अस्करी तथा गुजरात के भिन्न-भिन्न भागों का पूर्ण ज्ञान न प्राप्त हो सका। अन्त में उसे परिस्थितियों के भीषण होने के पश्चात् उसकी सूचना मिली।

११. आगरा वापस लौटने के पूर्व या पश्चात् भी उसने बहादुर शाह के विषय में अपना मत नहीं बदला। यदि उसने सन्धि कर उसे मिला लिया होता तो उससे मुग़लों को सहायता प्राप्त होती। गुजरात से मुग़ल ऐसे भाग आये जैसे वहां से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था।

१२. हुमायूं, जो गुजरात के बहुत ही निकट था, शान्ति से क्यों बैठा रहा? उसने गुजरात की परिस्थिति पर ध्यान क्यों नहीं दिया? गुजरात में विद्रोह तथा मुग़लों की पराजय की सूचनाएं प्राप्त करने पर भी उसने गुजरात पर मुग़ल शासन स्थापित करने का प्रयत्न क्यों नहीं किया? इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है। क्या हुमायूं अस्करी को गुजरात का गवर्नर बनाकर अथवा एक नये राज्य का निर्माण कर उसे वहीं स्थापित करना चाहता था? अथवा वह अपनी सुस्ती तथा अफीम के नशे में इतना व्यस्त था कि उसने इसकी ओर तनिक भी दृष्टिपात नहीं किया? यदि यह मान भी लिया जाए कि उसके पास गुजरात भेजने के लिए अधिक सेना नहीं थी इस कारण उसने सहायता नहीं भेजी अथवा उससे सैनिक सहायता मांगी ही नहीं गयी तो भी यह बताना कठिन है कि इन विद्रोहों के समय उसने वहां शान्ति स्थापित करने के लिए परामर्श क्यों नहीं दिया। उसने इस तरह विरक्ति क्यों अपना ली? स्पष्ट है कि हुमायूं की लापरवाही मुगलों के गुजरात से पलायन का एक प्रमुख कारण बनी।[११६]

बहादुर शाह की मृत्यु

गुजरात पर पुनः अधिकार करने के पश्चात् बहादुर शाह ने अपने अमीरों से मन्दसौर में रूमी खां की राय मानने के लिए क्षमा मांगी।[११७] उसका विश्वास था कि उसकी पराजय का प्रमुख कारण उसकी यही भूल थी। गुजरात की विजय ने उसे पुनः अपने अपूर्ण कार्यों को पूरा करने का समय दिया। किन्तु

[११६] "The reasons for the Mughal collapse may be found in the passive resistance of the people of the country, in Humayun's failure to send up reinforcements." (काम्मिस्सारियट, पृ. ३६९)।

[११७] अरेबिक हिस्ट्री, पृ. २५९-६०; काम्मिस्सारियट, पृ. ३७१।

दुर्भाग्यवश परिस्थिति ठीक तरह से सम्हलने के पहले ही उसकी दुखद मृत्यु हो गयी।

२५ अक्तूबर १५३५ को जिस समय बहादुर शाह डियू में था उसने पुर्तगालियों के साथ एक सन्धि की। इस सन्धि के द्वारा पुर्तगाली गवर्नर नूनो द कुन्हा ने जल तथा थल दोनों स्थलों पर उसके शत्रुओं के विरुद्ध उसकी सहायता करने की प्रतिज्ञा की। बहादुर शाह ने इसके बदले में डियू में पुर्तगालियों को एक दुर्ग बनाने की आज्ञा दी, किन्तु डियू में प्राप्त आयात कर पर पुर्तगाल के राजा को कोई अधिकार नहीं दिया गया तथा यह बहादुर को ही प्राप्त होता रहा। बहादुर ने बेसीन के सम्बन्ध में प्रारम्भिक सन्धि की भी स्वीकृति दे दी। दोनों दलों ने धर्मपरिवर्तन न करने का भी वचन दिया।[११८] यह सन्धि बहादुर शाह की परवशता की चरम सीमा थी, क्योंकि गत २५ वर्ष से पुर्तगाली डियू को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली थी।[११९]

मुग़लों के पलायन तथा गुजरात पर बहादुर शाह के इतने शीघ्र अधिकार कर लेने से पुर्तगालियों को आश्चर्य हुआ। वे भूले नहीं थे कि बहादुर शाह की कठिनाई ही उनके प्रसार के लिए सहायक हैं। इधर पुर्तगालियों तथा बहादुर शाह का सम्बन्ध भी अच्छा नहीं चल रहा था। बहादुर शाह पुर्तगालियों की चाल समझता था, तथा उनकी बढ़ती हुई शक्ति के प्रति वह जागरूक था। परिस्थिति सुधरने पर उसे दुख हुआ कि कठिन परिस्थितियों में उसने पुर्तगालियों को डियू में दुर्ग बनाने की आज्ञा दी।

डियू में दुर्ग बनने के पश्चात् दुर्ग के पुर्तगालियों तथा डियू नगर के नागरिकों में संघर्ष होता रहता था। बहादुर शाह दुर्ग तथा नगर के बीच एक दीवार बनाकर दोनों को अलग कर देना चाहता था। पुर्तगाली इसके लिए तैयार नहीं थे। यही नहीं, पुर्तगाली डियू के बन्दरगाह से बहादुर शाह के जहाज भी नहीं जाने देते थे। इन सब कठिनाइयों को ठीक करने के लिए चम्पानीर के दुर्ग से बहादुर शाह १५३६ के अन्त में डियू आया। १३ नवम्बर १५३६ को ८ बजे रात में वह बिना पूर्व सूचना के डियू के दुर्ग में गया। पुर्तगाली सतर्क थे।

११८ बेले, पृ. ३९४-९५; काम्मिस्सारियट, पृ. ३६३-६६।

११९ यह सन्धि कितनी महत्त्वपूर्ण थी इसका अनुमान इससे लगा सकते हैं कि बाटेलहो नामक एक पुर्तगाली एक छोटी सोलह फुट लम्बी, नौ फुट चौड़ी तथा $४\frac{१}{२}$ फुट गहरी नाव में पुर्तगाल के शासक को यह सूचना देने के लिए तेजी से भागकर पुर्तगाल गया। (काम्मिस्सारियट, पृ. ३७३)।

बहादुर शाह के साथ कुछ ही व्यक्ति थे। आसानी से उसकी हत्या हो सकती थी। किन्तु पुर्तगाली दुर्गपति का साहस नहीं हुआ। इस भूल के लिए पुर्तगाली गवर्नर ने बाद में दुर्गपति की भर्त्सना की। बहादुर शाह उस रात लौट आया।[१२०] फरवरी १५३७ में बहादुर शाह ने पुर्तगाली गवर्नर को समुद्रतट पर एक दावत के लिए बुलाया। नूनो को यह सूचना मिली थी कि बहादुर उसे बन्दी बनाकर तुर्की के सुल्तान के पास भेजना चाहता है। उसने इस भय से बीमारी का बहाना कर दावत में सम्मिलित होना अस्वीकार कर दिया तथा अपने सम्बन्धी मैनुअल डि सूसा को सुल्तान से क्षमा मांगने के लिए भेजा। समाचार पाकर बहादुर ने स्वयं जाकर नूनो को देखने का निश्चय किया (१३ फरवरी १५३७)।

सुरक्षा के प्रबन्ध के बिना कुछ व्यक्तियों[१२१] के साथ बहादुर शाह नाव से रवाना हो गया। मिराते सिकन्दरी के अनुसार बहादुर के अमीरों ने उसे समझाया कि बिना हथियार के जाना ठीक नहीं है, किन्तु बहादुर शाह ने इसे स्वीकार नहीं किया। नूनो को बहादुर शाह के इस तरह पहुँचने की आशा नहीं थी। उसने जल्दी से उससे मिलने की तैयारी की। बहादुर शाह को कई बातों से सन्देह हुआ कि पुर्तगालियों के विचार पवित्र नहीं हैं। नूनो स्वस्थ था तथा उसका दावत में न आना एक बहाना मात्र था। बहादुर जल्दी से अपनी नाव पर आ गया तथा उसने नाव चलाने की आज्ञा दी। उसी बीच पुर्तगालियों की नौकाओं ने उसे घेर लिया। बहादुर शाह ने अपने कुछ बहादुर साथियों के साथ बहादुरी से युद्ध किया किन्तु इतने कम व्यक्तियों के साथ पुर्तगालियों का सामना करना असम्भव था। कोई और मार्ग न देखकर वह समुद्र में कूद पड़ा, किन्तु वह पहचान लिया गया तथा किसी पुर्तगाली नाविक ने भाले से उसे मार डाला और उसकी लाश को समुद्र में फेंक दिया, जो तलाश करने पर भी प्राप्त न हो सकी।

बहादुर की मृत्यु की घटनाओं के विषय में पुर्तगाली तथा भारतीय इतिहासकारों में मतभेद है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों तरफ से सन्देह था तथा साधारण बातों को भी इसी दृष्टि से देखा जाने लगा था। बहादुर

[१२०] काम्मिस्सारियट, पृ. ३७४-७५।

[१२१] पुर्तगाली इतिहासकारों के अनुसार १३, तथा मिराते सिकन्दरी के अनुसार ५। बेले गुजरात, पृ. ३९५-९७; काम्मिस्सारियट, पृ. ३७६ तथा ३८०।

पुर्तगालियों को अपने समुद्रतट से बाहर निकालना चाहता था। दूसरी तरफ पुर्तगाली अधिक से अधिक सुविधाएं प्राप्त करना चाहते थे। परिस्थितियों को ध्यान में रखने से स्पष्ट है कि बहादुर शाह के प्रति पुर्तगालियों की जो आशंकाएं थीं वे निराधार थीं। यदि बहादुर शाह उन्हें बन्दी बनाना चाहता था तो वह बिना हथियार तथा बिना तैयारी के क्यों पुर्तगाली गवर्नर से मिलने गया ? पुर्तगाली गवर्नर को बन्दी बनाने से उसका लाभ ही क्या था ? बहादुर शाह पुर्तगाली कैम्प में केवल छः व्यक्तियों के साथ गया था और वहां उसकी नृशंस हत्या हुई, इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता।[१२२]

बहादुर शाह गुजरात में इतना जनप्रिय था कि लोगों को उसकी मृत्यु पर विश्वास नहीं हुआ तथा कुछ वर्ष तक कई बार गुजरात तथा दक्कन से उसके प्रकट होने की सूचनाएं मिलती रहीं।[१२३]

बहादुर शाह का चरित्र तथा उसकी पराजय के कारण

भारतीय इतिहास के प्रान्तीय शासकों में बहादुर शाह का एक प्रमुख स्थान है। जिस समय वह गद्दी पर बैठा गुजरात कठिन स्थिति में था। अपनी योग्यता तथा कार्यों से कुछ ही दिनों में उसने वहां शान्ति तथा सुशासन स्थापित किया। उसने अपनी सेना को नये हथियारों से सुसज्जित कर दिया जिससे भारत की सेनाओं में उसकी सेना की गणना प्रथम श्रेणी में होने लगी। उसने सात-आठ वर्षों में ही अपने निकट के राज्यों पर अपना प्रभाव पूर्ण रूप से स्थापित कर दिया। उसने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली कि वह दिल्ली के बादशाह से भी होड़ लेने के लिए तैयार हो गया। यही नहीं, उसका दरबार मुग़ल सम्राट से

[१२२] बहादुरशाह की मृत्यु के लिए देखिए फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ४, पृ. १३२-४१; बाम्बे गज़ेटियर, जिल्द १, भाग १, पृ. ३४७-५१; बेले पृ. २९४-९७; अर्सकिन, २, पृ. ९१-९५, व्हाइटवे, राइज़ ऑफ पुर्तगीज़ पावर इन इण्डिया, पृ. २४४-५०; अरेबिक हिस्ट्री, १, पृ. २६१-६२; काम्मिस्सारियट, पृ. ३७२-८३; बर्ड, हिस्ट्री ऑफ गुजरात, पृ. २५१, नोट।

[१२३] अबुल फ़ज़ल लिखता है कि लोगों को उसकी मृत्यु का विश्वास नहीं हुआ तथा कुछ लोगों का विचार है कि वह बचकर भाग गया था। दक्कन में एक व्यक्ति प्रकट हुआ जिसे निज़ामुल मुल्क ने स्वीकार किया कि वह बहादुर था तथा उसने चौगान खेला। इसी तरह तारीख़े गुजरात के लेखक अबू तुराब के आधार पर अबुल फ़ज़ल लिखता है कि बहादुर के गुरु क़ुतुबुद्दीन शिराज़ी की बहादुर से मुलाकात हुई और उसने कुछ ऐसे विषय पर बात की जो बहादुर के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। (अकबरनामा, १, पृ. १४६)।

असन्तुष्ट व्यक्तियों का केन्द्र बन गया था। समकालीन लेखकों ने उसकी बहादुरी, बुद्धिमानी, जनप्रियता तथा गतिशीलता की प्रशंसा की है। वह अपनी दानशीलता के लिए भी प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि संगीतकार उसके दरबार में इतना धन प्राप्त करते थे कि उसके मन्त्री को नकली सिक्कों का प्रयोग करना पड़ता था। गायक मंझू के हुमायूं दरबार से वापस आने पर बहादुरशाह इतना प्रसन्न हुआ कि उसने कहा कि उसका जो कुछ खोया था उसे प्राप्त हो गया तथा ईश्वर से उसके मांगने के लिए कुछ भी नहीं रह गया था।

बहादुर के शासन से उसकी हिन्दू प्रजा भी प्रसन्न थी। गुजरात में उसके पक्ष में जन आन्दोलन में हिन्दुओं ने भी पूर्ण सहयोग दिया। राजस्व वसूल करने के लिए जो लोग उससे प्रार्थना करने गये उनमें हिन्दू भी थे। राजा नरसिंह देव पर तो उसका विश्वास अटल था। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर ही उसका विश्वास हो गया कि अब चम्पानीर उसके हाथ से निकल गया, यद्यपि इख्तियार खां जैसा योग्य व्यक्ति दुर्ग की रक्षा करने के लिए संलग्न था।

बहादुर शाह के चरित्र में कुछ दोष भी थे। अपने शत्रुओं के प्रति वह क्रूर था तथा अपने भाइयों की हत्याएं कर उसने एक गलत परम्परा स्थापित की। वह शराब भी अधिक पीने लगा था तथा कहा जाता है कि जब वह पुर्तगालियों के पास गया तो उस समय भी वह शराब के नशे में था। कभी-कभी वह बिना सोचे-समझे उतावलेपन में काम करता था। रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किये बिना पुर्तगालियों के पास जाना बुद्धिमानी नहीं थी।

इन दोषों के होते हुए भी बहादुर शाह की महानता में कमी नहीं आती। जिस समय वह गद्दी पर बैठा उसकी अवस्था केवल २० वर्ष की थी तथा ११ वर्ष के राज्यकाल के पश्चात् अपनी मृत्यु के समय वह ३१ वर्ष का था। इतनी अल्पायु में उसने जो सफलता प्राप्त की वह साधारणतया सम्भव नहीं होती। बहादुर शाह जैसा योग्य तथा महत्त्वाकांक्षी सुल्तान, जिसकी सेना संगठित तथा शक्तिशाली थी, मुग़लों से इतने शीघ्र कैसे पराजित हो गया? सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि उसने मुग़लों से खुलकर कभी भी युद्ध नहीं किया। मन्दसौर, चम्पानीर, मांडू सभी स्थानों से वह भागता ही गया। उसका साहस तब लौटा जब हुमायूं गुजरात से बाहर चला गया था तथा गुजरात में जन आन्दोलन का प्रभाव फैल चुका था। आखिर उसके पलायन का कारण क्या था? उसके जीवन तथा शासन की घटनाओं के अध्ययन से स्पष्ट मालूम होता है कि बहादुर शाह जहां राजपूतों, मालवा के शासकों, पुर्तगालियों इत्यादि के विरुद्ध युद्ध करने में कभी भी हतोत्साह नहीं होता था वहां मुग़लों से युद्ध

करने का उसका साहस नहीं हुआ। ऐसा मालूम होता है कि पानीपत के प्रथम युद्ध ने जिसमें वह दर्शक के रूप में उपस्थित था, उसके मन में भय उत्पन्न कर दिया था। इसी कारण उसे मुग़लों के विरुद्ध युद्ध करने का साहस नहीं हुआ।[१२३] उसने स्वयं अफ़ग़ानों और मुग़लों के युद्ध की शीशे तथा पत्थर के युद्ध से तुलना की थी। कदाचित् इसी कारण वह मुग़लों से भागता रहा। उसकी पराजय का यह प्रमुख कारण था।

बहादुर शाह की मृत्यु के पश्चात गुजरात

बहादुर शाह की मृत्यु के पश्चात् पुर्तगाली गवर्नर ने डियू में स्थित बहादुर शाह के कोष, तोपख़ाने इत्यादि पर अधिकार कर लिया। डियू की जनता में आतंक-सा छा गया जिसे बड़ी कठिनाई से शान्त किया जा सका। गुजरात की जनता तथा अमीरों की निराशा तथा दुख की कोई सीमा नहीं रही।

मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा के हुमायूं विरोधी कार्यों का वर्णन किया जा चुका है। बहादुर शाह के मन्दसौर से पलायन के पश्चात् मुहम्मद ज़मान सिन्ध गया, किन्तु वहां उसे सफलता नहीं प्राप्त हुई। वहां से वह लाहौर गया। कामरान उस समय ईरान के शाह से क़न्धार की रक्षा में लगा हुआ था जिसका वर्णन अगले पृष्ठों में किया गया है। मुहम्मद ज़मान को अवसर मिला। उसने पहले लाहौर पर अधिकार करना चाहा, किन्तु वहां का अधिकारी कामरान के प्रति स्वामिभक्त बना रहा।[१२४] मुहम्मद ज़मान ने लाहौर का घेरा डाला, किन्तु सफलता की आशा नहीं दिखाई दे रही थी। इसी समय कामरान लाहौर लौट आया। विवश होकर मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा यहां से भागकर दिल्ली के आसपास चक्कर लगाता रहा (१५३६ की वर्षा ऋतु में)। मुग़ल साम्राज्य में सफलता की कोई आशा न देखकर कुछ दिन बाद वह पुनः गुजरात की तरफ चला गया।

बहादुर शाह के कोई सन्तान नहीं थी जिससे उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकार की समस्या सामने आयी। मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा ने गुजरात की इस कठिनाई से लाभ उठाया। बहादुर शाह की मृत्यु से दुःखी होने का उसने अभिनय किया तथा हरम की स्त्रियों के सामने कपड़े फाड़कर पागल की तरह रोता रहा तथा उनके समझाने पर भी शान्त नहीं हुआ। उसने राजमाता से प्रार्थना की कि सुल्तान बहादुर शाह उसे अपना छोटा भाई समझता था इस कारण उसे वह गोद ले लें। उसे समझाया गया कि गुजरात में स्त्रियां राजनीति में भाग नहीं लेतीं तथा उसे मन्त्रियों से वार्ता करनी चाहिए। फिर भी मुहम्मद

[१२४] अकबरनामा, १, पृ. १२६-२७।

ज़मान ने राजमाता तथा हरम की स्त्रियों से लगभग २० लाख रुपया प्राप्त कर लिया और उसकी सहायता से उसने एक बड़ी सेना एकत्रित की।[१२५] बाहर से तो वह पुर्तगालियों से बहादुर शाह की हत्या का बदला लेने की बात करता था और छिपकर उसने पुर्तगालियों से सहायता की प्रार्थना की। अपने पक्ष में करने के लिए उसने उन्हें धन तो दिया ही, इसके अतिरिक्त २७ मार्च १५३७ को उसने एक सन्धि की जिसके अनुसार उसने मंगलौर, दमन तथा समुद्र के किनारे की लगभग ढाई कोस भूमि उन्हें दे दी जैसे वह गुजरात का सुल्तान हो। इसके बदले में पुर्तगालियों की सहायता से डियू की शफ़ा मस्जिद में उसके नाम से ख़ुत्बा पढ़ा गया।[१२६]

इस बीच बहादुर शाह के अमीर मुहम्मद ज़मान के विरोधी हो गये। बहादुर शाह ने अपना उत्तराधिकारी अपनी बहन के पुत्र ख़ानदेश के मीरान मुहम्मद शाह तथा उसके पश्चात् अपने स्वर्गीय भाई लतीफ ख़ां के पुत्र महमूद को नियुक्त किया था। अमीर उसकी इस इच्छा के प्रति सहानुभूति रखते थे। इसके अतिरिक्त मुहम्मद ज़मान के प्रति उनके मन में कोई प्रेम नहीं था। वह मुग़ल सम्राट का सम्बन्धी था और उसके पिछले कार्य ऐसे थे कि उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। गुजरात के मुग़ल विरोधी जन आन्दोलन के पश्चात् मुग़ल सम्राट के सम्बन्धी के गद्दी पर बैठने की आशा नहीं थी। इसके अतिरिक्त मुहम्मद ज़मान अपने व्यसनों से गुजरातियों की घृणा का पात्र बन गया था। गुजरात की गद्दी पर अधिकार करने के दावपेंच ने उन्हें उसका और विरोधी बना दिया। इमादुल मुल्क मलिक के नेतृत्व में डियू के निकट ऊना में मुहम्मद ज़मान पराजित हुआ तथा उसकी सेना तितर-बितर हो गयी।[१२७] गुजरात से भागकर वह सिन्ध तथा वहां से उत्तरी भारत चला गया।

बहादुर शाह की बहन का बेटा मीरान मुहम्मद शाह बहादुर के राजत्व काल में उसका बराबर सहयोगी रहा तथा सुल्तान के सभी प्रमुख अभियानों में उसने भाग लिया था। बहादुर की मृत्यु के पश्चात् अमीरों ने उसे गद्दी पर बैठाया, किन्तु उसका शासन अधिक दिन तक न रहा। कुछ ही सप्ताह पश्चात्

[१२५] काम्मिस्सारियट, पृ. ३८७-८८।

[१२६] अकबरनामा, १, पृ. १४६, काम्मिस्सारियट, पृ. ३८८।

[१२७] बेले, पृ. ४००-४०१, काम्मिस्सारियट, पृ. ३८८। इस युद्ध में बाबर के प्रधान मन्त्री मीर ख़लीफ़ा के पुत्र हिसामुद्दीन मीराक ने बड़ी वीरता दिखलायी। उसने युद्ध कर गुजराती सेना को रोक लिया जिससे मुहम्मद ज़मान को भागने में सुविधा हुई। (बनर्जी, हुमायूं १, पृ. १७३)।

बहादुर शाह के भाई लतीफ़ ख़ां का पुत्र महमूद, महमूद तृतीय के नाम से, गुजरात का शासक बना (१५३८-१५५४)।

हुमायूं के गुजरात अभियान के समय उसका साम्राज्य

गुजरात अभियान में हुमायूं को लगभग दो वर्ष लगे। इस बीच की मुग़ल साम्राज्य की घटनाओं में तीन प्रमुख हैं : (१) क़न्धार पर ईरानी आक्रमण, (२) मिर्ज़ाओं का विद्रोह तथा (३) शेर ख़ां का उत्कर्ष।

क़न्धार पर ईरानी आक्रमण—हुमायूं के गुजरात अभियान के समय ईरान में कुछ राजनीतिक घटनाएं हुईं, जिनका प्रभाव मुग़ल साम्राज्य पर भी पड़ा। ईरान के शासक शाह तहमास्प के मन्त्री शामलू ने शाह को मारकर उसके भाई साम मिर्ज़ा को, जो हेरात का गवर्नर था, गद्दी पर बैठाने का षड्यंत्र रचा किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। शाह के भय से ईरान से भागकर उन लोगों ने क़न्धार पर आक्रमण किया। क़न्धार के दुर्गपति ख़्वाजा कलां बेग ने बड़ी बहादुरी से आक्रमणकारियों का सामना किया। सूचना पाकर कामरान भी बीस हज़ार अश्वारोहियों के साथ वहां पहुँच गया। ईरानी पराजित हुए (फरवरी १५३५)।[१२८] अप्रैल, १५३७ में शाह तहमास्प ने क़न्धार पर पुनः आक्रमण किया। ख़्वाजा कलां इस बार दुर्ग की रक्षा न कर सका। उसने शहर खाली कर दिया तथा दीवानख़ाने को उत्तम फ़र्श तथा वस्तुओं से सजाकर[१२९] वह स्वयं थट्टा एवं उच्च के मार्ग से लाहौर पहुँचा। कामरान उसकी कायरता से क्रुद्ध हुआ तथा एक महीने तक उसने उसे अभिवादन की

१२८ अकबरनामा, १, पृ. १३५ के अनुसार ख़्वाजा कलां ने आठ मास तक दुर्ग की रक्षा की।

१२९ अबुल फ़ज़्ल के अनुसार ख़्वाजा कलां ने बादशाहों की व्यक्तिगत आवश्यकता सम्बन्धी वस्तुओं, भोजन सामग्री इत्यादि को सजाया तथा क़िले की कुंजी शाह के पास भेज दी और कहलाया कि उसके पास क़िले की रक्षा करने के न साधन हैं न शक्ति है इस कारण वह जा रहा है तथा एक घर सजाकर अतिथि को सौंपे जा रहा है। वह स्वयं शाह के सामने उपस्थित नहीं हुआ क्योंकि यह स्वामिभक्ति के विरुद्ध था (अकबरनामा, १, पृ. १३५)। बदायूनी के अनुसार उसने दीवानख़ाने को ख़ूब सजाकर बन्द कर दिया और बाहर निकल गया। वह आगे लिखता है कि शाह तहमास्प ने उसकी प्रशंसा की तथा कहा कि "कामरान मिर्ज़ा का सेवक बड़ा ही उत्तम है।" (मुन्तख़बुत्तवारीख, १, पृ. ३४७-४८)। निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि वह एक 'चीनीख़ाना' जो बहुत ही सजाकर तैयार

अनुमति नहीं दी। तैयारी कर कुछ दिन पश्चात् उसने मिर्ज़ा हैदर को लाहौर के शासन हेतु नियुक्त किया तथा क़न्धार पर पुनः आक्रमण किया।

क़न्धार विजय के पश्चात् शाह तहमास्प ने क़न्धार का शासन बुदाग़ ख़ां क़ाचार को सौंप दिया तथा ईरान लौट गया। कामरान ने वहां पहुँच कर क़िले का अवरोध किया। बुदाग़ ख़ां क़िला समर्पित कर वापस चला गया।[130] इस तरह ईरान के शाह से क़न्धार की रक्षा करने का श्रेय कामरान को प्राप्त हुआ।

मिर्ज़ाओं का विद्रोह—मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा के अतिरिक्त मुहम्मद सुल्तान ने भी हुमायूं को चैन नहीं लेने दिया। हुमायूं के राज्य के प्रारम्भिक वर्षों में उसने मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा के साथ मिलकर दो बार विद्रोह किया था। दूसरी बार वह अन्धा बना दिया गया तथा मुहम्मद ज़मान के ही साथ बन्दीगृह में रखा गया। मुहम्मद ज़मान के वहां से निकल भागने के पश्चात् यह भी भाग गया तथा कहीं छिपा रहा। गुजरात अभियान में हुमायूं की व्यस्तता से लाभ उठाकर मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा ने विरोध करने का विचार किया। वह स्वयं तो अन्धा बना दिया गया था किन्तु उसके कई पुत्र थे[131] जो इधर-उधर धूमधाम किया करते थे। जुलाई-अगस्त १५३६ में मुहम्मद सुल्तान कन्नौज की तरफ बढ़ा। उसने कन्नौज तथा बिलग्राम पर अधिकार कर लिया। अपने पुत्रों को उसने अन्य स्थानों पर अधिकार करने के लिए भेजा। इस तरह उलूग़ मिर्ज़ा को जौनपुर की तरफ तथा शाह मिर्ज़ा को कड़ा मानिकपुर की तरफ भेजा। मिर्ज़ा हिन्दाल एक सेना लेकर अन्य अमीरों के साथ इनके विरुद्ध बढ़ा। कन्नौज के निकट हिन्दाल ने गंगा नदी को पार किया। युद्ध हुआ जिसमें भीषण अन्धड़ के कारण शत्रु तथा मित्र का अन्तर पाना कठिन हो गया। सुल्तान मिर्ज़ा जौनपुर की तरफ भागा। हिन्दाल ने बिलग्राम पर अधिकार कर लिया। इसी समय हुमायूं के राजधानी में लौटने की सूचना मिली जिससे विद्रोही और भी हताश हो गये। हिन्दाल मिर्ज़ा ने सुल्तान मिर्ज़ा तथा उसके पुत्रों को दूसरी बार भी पराजित कर दिया तथा जौनपुर पर अधिकार कर लिया। विद्रोही

किया था, उत्तम फर्श इत्यादि से सजाकर चला गया। श्री डे ने चीनीखाना को चीनी मिट्टी का बना कहा है। (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ६१) अबुल फ़ज़ल ने चीनीखाने का उल्लेख नहीं किया है।

[130] अकबरनामा, १, पृ. १३५-३६;, तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ६१।

[131] उसके ६ पुत्रों का उल्लेख मिलता है। उलूग़ मिर्ज़ा, शाह मिर्ज़ा, मुहम्मद मिर्ज़ा, इबराहीम मिर्ज़ा, मसूद हुसेन मिर्ज़ा तथा आक़िल मिर्ज़ा।

बंगाल की तरफ भाग गये।[132] इस तरह हिन्दाल ने मुग़ल साम्राज्य की एक कठिन समय में सहायता की।

शेर ख़ां का उत्कर्ष—हुमायूं तथा शेर ख़ां के बीच चुनार की सन्धि का वर्णन चौथे अध्याय में किया जा चुका है। चुनार से आगरा लौटने के पश्चात् हुमायूं ने गुजरात पर आक्रमण किया। इस तरह शेर ख़ां को अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए लगभग चार वर्ष (१५३२-३६) का समय मिल गया। इस बीच उसने अपने को बिहार का शासक ही नहीं बल्कि अफ़ग़ानों का एकमात्र नेता भी बना लिया।

दौरा के युद्ध के पश्चात् महमूद लोदी का प्रभुत्व समाप्त हो गया तथा शेर ख़ां अफ़ग़ानों का एकमात्र नेता बन गया। उसने अफ़ग़ानों को सेना में भरती किया तथा उन्हें अफ़ग़ानों के लिए प्राण देने को प्रोत्साहित किया। अब्बास ख़ां लिखता है कि बहुत-से अफ़ग़ान जो अपनी दुरवस्था के कारण साधु हो गये थे, पुनः शेर ख़ां की सेना में भर्ती हो गये। शेर ख़ां ने अफ़ग़ानों को सैनिक होने के लिए विवश किया तथा जो अफ़ग़ान सैनिक बनने को तैयार नहीं हुए उन्हें उसने मरवा डाला।[133]

चुनार की सन्धि के परिणामस्वरूप शेर ख़ां का लड़का कुतुब ख़ां ५०० अफ़ग़ान सैनिकों के साथ हुमायूं के साथ मालवा गया था। शेर ख़ां इससे चिन्तित था तथा उसे किसी न किसी तरह वापस बुलाना चाहता था। उसकी आज्ञा से कुतुब ख़ां अपने सैनिकों के साथ मन्दसौर से हुमायूं को छोड़कर भाग आया। इससे शेर ख़ां को शान्ति मिली। वह जानता था कि उसका पुत्र वास्तव में हुमायूं के पास एक बन्धक के रूप में था तथा उसके मुग़ल विरोधी कार्यों का बदला उसके पुत्र से लिया जाएगा। सम्भव है कि शेर ख़ां ने अपने लड़के को बहादुर शाह के कहने से ही बुला लिया हो।[134] इसी बीच शेर ख़ां ने काला पहाड़ की विधवा लड़की बीबी फ़तेह मलिका से विवाह कर उसका धन प्राप्त कर लिया, किन्तु विवाह के पश्चात् उसने उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया।[135]

आन्तरिक संगठन पूर्ण कर शेर ख़ां ने अपनी पूर्वी सीमा पर दृष्टि डाली।

[132] जौहर (स्टीवर्ट, पृ. ९-१०) लिखता है कि ये लोग भागकर पूर्निया की तरफ चले गये।

[133] तारीखे शेरशाही, इलियट और डासन, ४, पृ. ३५२।

[134] क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. ११२।

[135] अब्बास ख़ां के अनुसार बीबी फ़तेह मलिका ने शेर ख़ां को तीन सौ मन

नुसरत शाह की मृत्यु (९३९ हि.; दिसम्बर, १५३२) के पश्चात् बंगाल कठिन परिस्थिति से गुज़र रहा था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का अलाउद्दीन फ़ीरोज़ शाह गद्दी पर बैठा। किन्तु उसका शासन अधिक दिन नहीं रहा तथा चार महीने के शासन के पश्चात् महमूद शाह ने उसे मार डाला और स्वयं बंगाल का शासक बन बैठा (मई, १५३३)। वह पूर्णतया अयोग्य था तथा परिस्थिति को सुधारने में असमर्थ था। इस बीच पुर्तगाली बंगाल में आ चुके थे तथा वे बंगाल की कठिनाई से लाभ उठाकर अधिक से अधिक सुविधाएं चाहते थे। महमूद शाह के राजत्व को हाजीपुर का गवर्नर मख़दूमे आलम स्वीकार करने को तैयार नहीं था क्योंकि वह उसे नुसरत शाह के पुत्र का हत्यारा समझता था। महमूद ने मुंगेर के हाकिम कुतुब ख़ां के नेतृत्व में एक सेना बिहार पर आक्रमण करने के लिए भेजी। शेर ख़ां अफ़ग़ानों के पारस्परिक झगड़ों को सुलझाने में लगा था। उसने सेना इकट्ठी की तथा प्रारम्भ में ऐसा दिखाया कि वह कुतुब ख़ां से युद्ध करने के लिए तैयार नहीं है। एक दिन उसने अचानक कुतुब ख़ां की सेना पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में कुतुब ख़ां मारा गया तथा उसकी सेना हाथी, तोपखाना तथा कोष छोड़कर भाग गयी। शेर ख़ां ने अपने पुराने मित्रों, शेख़ इस्माइल सूर तथा हामिद ख़ां ककर को, उनकी इस युद्ध में प्रदर्शित वीरता के उपलक्ष में क्रमशः शुजात ख़ां तथा सरमस्त ख़ां की उपाधि दी।[१३६]

महमूद शाह ने एक दूसरी सेना मख़दूमे आलम के विरुद्ध भेजी। शेर ख़ां परिस्थितिवश अपने मित्र की सहायता न कर सका तथा युद्ध में मख़दूमे आलम मारा गया।[१३७] उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका संचित कोष शेर ख़ां को प्राप्त हो गया जो उसकी शक्ति के प्रसार के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ।

शेर ख़ां के उत्कर्ष से नुहानी तथा जलाल ख़ां सतर्क हो गये। किसी भी

सोना दिया। शेर ख़ां ने उसे दो परगने मददेमाश के तौर पर उसके खर्च के लिए दिये। (इलियट और डासन, ४, पृ. ३५५; तथा इस विवाह के वर्णन के लिए पृ. ३५२-५५)। डा. क़ानूनगो शेर ख़ां के इस कार्य की निन्दा करते हैं। वे लिखते हैं, "This is an indefensible act of spoilation of a helpless woman and deserves unqualified condemnation." (शेरशाह, पृ. १११)।

१३६ क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. ८३-८५; स्टीवर्ट, हिस्ट्री ऑफ बंगाल, पृ. ७६।

१३७ इलियट और डासन, ४, पृ. ३३४।

तरह शेर ख़ां को अपने अधीन रखने की आशा न देखकर जलाल ख़ां नुहानी अमीरों तथा सेना के साथ भागकर बंगाल चला गया (सितम्बर, १५३३)। महमूद ने कुतुब ख़ां के पुत्र इबराहीम ख़ां के नेतृत्व में एक सेना शेर ख़ां के विरुद्ध भेजी। उसका लक्ष्य जलाल को पूर्ण रूप से बिहार में स्थापित करने का था। सूरजगढ़ नामक स्थान पर भीषण युद्ध हुआ (१५३४)[१३८] जिसमें शेर ख़ां विजयी हुआ। इस विजय ने शेर ख़ां को बिहार का वास्तविक शासक बना दिया।[१३९]

अनुकूल समय देखकर शेर ख़ां ने बंगाल पर आक्रमण करने के लिए योग्य सेनापतियों के अधीन अपनी सेना भेजी (१५३५ के मध्य में)। वह स्वयं परि-स्थिति का अवलोकन करता रहा, क्योंकि बहादुर शाह पराजित हो चुका था तथा शेर ख़ां को भय था कि कहीं हुमायूं शीघ्र आगरा न लौट आए। उसे यह भी सन्देह था कि कहीं सुल्तान महमूद शाह हुमायूं से सहायता की प्रार्थना न करे। यह निश्चय हो जाने पर कि हुमायूं इधर नहीं लौटेगा शेर ख़ां स्वयं भी (जनवरी, १५३६ के मध्य में) बंगाल के अभियान पर चल पड़ा। उसकी सेना में १५०० नावें तथा १५०० हाथी भी थे।

तेलियागढ़ी के निकट पुर्तगालियों ने, जो महमूद शाह की सहायता कर रहे थे, उसे रोकने का प्रयत्न किया। शेर ख़ां ने उन्हें धोखा दिया तथा अन्य मार्ग से बंगाल में प्रवेश कर गया। बंगाल की सेना राजधानी की रक्षा के लिए वापस आयी। शेर ख़ां ने गौड़ को घेर लिया। महमूद शाह को विवश होकर शेर ख़ां को तेरह लाख स्वर्ण दीनार देकर उससे सन्धि करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त शेर ख़ां को ९० मील लम्बी तथा लगभग ३० मील चौड़ी भूमि भी प्राप्त हुई।[१४०]

शेर ख़ां ने प्रारम्भ से ही बहादुर शाह को अपना मित्र बनाने का प्रयत्न किया। दोनों हुमायूं के शत्रु थे तथा दोनों की दृष्टि आगरा के तख़्त पर थी। इस कारण दोनों एक दूसरे को इस लक्ष्य से सहायता दे रहे थे कि एक दक्षिण-पश्चिम से तथा दूसरा पूर्व से मुग़ल साम्राज्य पर आक्रमण करे। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि सुल्तान बहादुर ने शेर ख़ां के पास अनुभवी दूत तथा उपहार

[१३८] वही, पृ. ४४१-४२; कानूनगो, शेरशाह, पृ. ९८-१०५।

[१३९] "The victory of Surajgarh gave an air of legitimacy to Sher Khan's virtual assumption of the sovereignty of Bihar." (क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. १०५)।

[१४०] क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. १२६-२७।

भेजकर मित्रता स्थापित की। यही नहीं, बाद में उसने व्यापारियों द्वारा शेर ख़ां की धन से सहायता की।[१४१] यह धन कदाचित् इस कारण दिया गया था कि शेर खां इसका प्रयोग पूर्व में विद्रोह करने के लिये करे जिससे हुमायूं का ध्यान गुजरात अभियान से हट जाय। बहादुर शाह की पराजय के पश्चात् उसकी सेना के बहुत-से सिपाही शेर खां की सेना में भरती हो गये।[१४२] इस तरह एक तरफ तो अरब सागर में बहादुर शाह का अन्त हुआ और दूसरी तरफ बंगाल की खाड़ी में शेर ख़ां का उदय हुआ।

१५३६ के अन्त तक शेर ख़ां ने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। बिहार में वह पूर्ण शक्तिमान था। बंगाल का शासक पराजित हो चुका था तथा शेर ख़ां बंगाल पर भी अधिकार करने की योजना बना रहा था। बहादुर शाह की मृत्यु के पश्चात् तो वह मुग़ल विरोधी आन्दोलन का एकमात्र नेता रह गया था। लाद मलिका तथा फतेह मलिका से विवाह कर, मख़दूमुल मुल्क के धन का उत्तराधिकारी बनकर तथा बंगाल के शासक से धन वसूल कर उसने अपनी आर्थिक स्थिति ठीक कर ली थी। धन की सहायता से उसने सेना संगठित कर ली। इस सेना में अधिकतर अफ़ग़ान थे, जिनमें कुछ मुग़लों से युद्ध भी कर चुके थे तथा जिनमें मुग़लों को पराजित करने की लालसा ही नहीं थी बल्कि लक्ष्य भी था। ये सैनिक जोश से परिपूर्ण थे। शेर ख़ां के सहयोगियों में आज़म हुमायूं सरवानी, मियां बीबन, कुतुब खां, मारूफ फ़रमूली इत्यादि प्रतिभाशाली अमीर भी थे। शेर ख़ां ने अपने कार्यों तथा व्यवहार से उन सभी के मन में विश्वास पैदा कर लिया था और वे अपने नेता के लिए हर तरह का बलिदान करने को तैयार थे। इस तरह हुमायूं का गुजरात अभियान शेर ख़ां के उत्कर्ष के लिए एक वरदान बन गया।

[१४१] अकबरनामा, १, पृ. १४८।
[१४२] इलियट और डासन, ४, पृ. ३५२।

७. शेर ख़ां से संघर्ष

गुजरात अभियान से हुमायूं निराश तथा दुःखी होकर आगरा लौटा। गुजरात तथा मालवा जिस तरह उसके हाथ से निकल गये वह किसी भी सम्राट के लिए लज्जास्पद था। आखिर गुजरात आक्रमण का परिणाम क्या हुआ? जहां तक राज्य का प्रश्न था गुजरात पर बहादुर शाह का अधिकार हो गया, मालवा पर क़द्रशाह ने अधिकार कर लिया तथा बहादुर शाह की पराजय के पश्चात् राणा विक्रमादित्य ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया।[1] इस तरह गुजरात अभियान के पूर्व की परिस्थिति पुनः लौट आयी। इसके अतिरिक्त, राजनीतिक दृष्टि से मुग़ल सम्राट के यश तथा मान को गहरा धक्का लगा। उसकी असफलता के बाद उसकी कमज़ोरी तथा भूलें और अधिक बढ़कर पूरे भारत में फैल गयीं। इन कारणों से हुमायूं के मन में एक ऐसा विषाद घर कर गया जिसे हटाना सरल नहीं था।

आगरे लौटकर भी हुमायूं के मन से गुजरात का मोह नहीं गया तथा राजधानी और साम्राज्य का उचित प्रबन्ध कर वह पुनः गुजरात पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन करना चाहता था।[2] इसी समय एक अन्य समस्या ने उसे आकर्षित किया। अहमदनगर के शासक बुरहान निजाम शाह ने हुमायूं को पत्र भेजकर सूचित किया कि गुजरात, ख़ानदेश, बीजापुर तथा बरार के शासक मिलकर उसके राज्य पर आक्रमण करना चाहते हैं। उसने हुमायूं से प्रार्थना की कि जिस समय इनकी सेनाएं आक्रमण करें उसी समय हुमायूं इन राज्यों पर आक्रमण कर दे।[3] यह निमन्त्रण बहुत ही आकर्षक था, क्योंकि इस अभियान की सफलता से

[1] किंवदन्तियों के अनुसार हुमायूं ने स्वयं गुजरात से लौटते समय राणा को चित्तौड़ की गद्दी पर बैठाया। ऐतिहासिक दृष्टि से यह सत्य नहीं है। मांडू से हुमायूं चित्तौड़ के मार्ग से लौटा जरूर था, किन्तु राणा ने इसके पूर्व ही चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया था। शर्मा, मेवाड़ अण्डर दी मुग़ल्स, पृ. ५७-५८; बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. १६७-६८।

[2] अकबरनामा, १, पृ. १४७।

[3] फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, ३, पृ. २२८-२९।

गुजरात अभियान की लज्जा तथा दुःख दूर हो सकता था, किन्तु कई कारणों से हुमायूं ने इसे स्वीकार नहीं किया। अहमदनगर की सहायता को जाने के लिए एक बलवती सेना की आवश्यकता थी। हुमायूं के पास उस समय सेना तैयार नहीं थी। उसके साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर शेर ख़ां तथा अफ़ग़ानों का संगठन इतना भीषण होता जा रहा था कि उसका उचित प्रबन्ध किये बिना दक्षिण और पश्चिम के राज्यों पर आक्रमण करना बुद्धिमानी नहीं थी। इसके अतिरिक्त हुमायूं का अवसादी मन गुजरात तथा मालवा की घटनाओं से इतना दुःखी तथा निराश था कि उस दिशा में पुनः आक्रमण करने का उसे साहस नहीं हुआ।

हुमायूं के आगरा में रुकने के कारण

हुमायूं आगरा में लगभग एक वर्ष रुका रहा।[४] इस समय शेर ख़ां शक्ति का संचय कर रहा था। हुमायूं के गुजरात अभियान से लौटने का एक प्रमुख कारण शेर ख़ां की गतिविधि भी थी। फिर तत्काल शेर ख़ां पर आक्रमण करने के स्थान पर उसने अपना समय क्यों बरबाद किया? बहादुर शाह ने गुजरात पर पुनः अधिकार कर लिया था। हुमायूं आगरा से उसकी गतिविधि पर दृष्टि रखना चाहता था। विद्रोही मिर्ज़ा भी साम्राज्य के इधर-उधर चक्कर काट रहे थे तथा वे कभी भी राजधानी में प्रकट हो सकते थे। हुमायूं ने अस्करी को सम्भल की तरफ मिर्ज़ाओं के विरुद्ध भेजा किन्तु उनका पता नहीं चला।[५]

फरवरी १५३७ में बहादुर शाह की मृत्यु हो गयी और मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा ने गुजरात की गद्दी पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा जैसे व्यक्ति का गुजरात पर शासन करना खतरे से ख़ाली नहीं था। इसी बीच अहमदनगर का निमन्त्रण भी पहुँचा। हुमायूं पूर्व या पश्चिम के कार्यक्रम को निश्चित नहीं कर पा रहा था।

इसी समय जुनायद बरलास की मृत्यु हो गयी। यह योग्य व्यक्ति था तथा जौनपुर के शासक की हैसियत से उसने मुग़ल साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर नियन्त्रण तथा शान्ति बनाये रखी थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् हुमायूं ने इस स्थान पर हिन्दू बेग को नियुक्त किया। यह एक बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण पद था, क्योंकि हिन्दू बेग को साधारण गवर्नर के कार्य के अतिरिक्त शेर ख़ां पर भी दृष्टि रखनी थी। हुमायूं ने हिन्दू बेग को आज्ञा दी कि वह शेर ख़ां का पूरा समाचार भेजे।

४ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १३३। मुन्तख़बुत्तवारीख़ १, पृ. ३४८, तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ६१।

५ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ११।

अब्बास ख़ां लिखता है कि हिन्दू बेग के आगमन का समाचार पाकर शेर ख़ां ने पेशकश भेजकर नये गवर्नर से निवेदन किया कि उसने सम्राट को जो आश्वासन दिया था उससे न तो वह विचलित हुआ था और न उसने मुग़ल राज्य में हस्तक्षेप ही किया था। उसने हिन्दू बेग से प्रार्थना की कि वह सम्राट को सूचित कर दे कि वह उधर न आये। उसने अपने को एक मुग़ल सेवक एवं राजभक्त घोषित किया। शेर ख़ां के पेशकश को देखकर हिन्दू बेग बड़ा प्रसन्न हुआ तथा उसने शेर ख़ां के वकील के सामने ही कहा कि शेर ख़ां से कह दो कि जब तक 'मैं जीवित हूँ वह निश्चिन्त रहे। उसे कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकेगा।' उसी समय शेर ख़ां के वकील के सामने ही उसने हुमायूं के पास पत्र लिखवाया कि "शेर ख़ां आपके निष्ठावानों में है। वह हज़रत बादशाह के नाम का ख़ुत्बा पढ़वा तथा सिक्का चलवा रहा है। वह अपने राज्य की सीमा के आगे नहीं बढ़ा है। सम्राट के वापस होने के बाद उसने कोई अनुचित कार्य नहीं किया है जिससे उसकी शिकायत हो।"[६] इस सूचना को पाकर हुमायूं पूर्व की ओर से निश्चिन्त होकर आगरा में रुका रहा।

हुमायूं ने गुजरात अभियान से आकर सेना एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया। सैनिकों को शिक्षित करने का भी उसने प्रबन्ध किया तथा उनकी शिक्षा के लिए उसने बदख़्शां के आदमियों को नियुक्त किया।[७] इससे मालूम होता है कि परिस्थिति की ओर से वह सचेत था। हिन्दू बेग की रिपोर्ट के सम्बन्ध में हमारे सम्मुख दो प्रश्न आते हैं। प्रथम, क्या हिन्दू बेग की रिपोर्ट सही थी? तथा दूसरा, क्या हुमायूं को उसे स्वीकार करना चाहिए था?

अब्बास ख़ां स्पष्ट लिखता है कि हिन्दू बेग ने रिश्वत स्वीकार कर शेर ख़ां की इच्छा के अनुसार रिपोर्ट भिजवा दी अर्थात् हिन्दू बेग की रिपोर्ट सही नहीं थी। रिपोर्ट को पढ़ने से पता चलता है कि हिन्दू बेग ने उसे इस तरह लिखवाया था कि वह दोषी न ठहराया जा सके। शेर ख़ां ने अपने नाम से न ख़ुत्बा पढ़वाया था और न अपने नाम का सिक्का ही चलाया था। उसने मुग़ल राज्य पर आक्रमण भी नहीं किया था। फिर उसे विद्रोही कहना सही नहीं था। हुमायूं ने हिन्दू बेग की रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। हिन्दू बेग पर हुमायूं का सदा विश्वास बना रहा। इस कारण उसने हिन्दू बेग को जौनपुर की गवर्नरी के पद

६ तारीख़े शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३५६।
७ अहमद यादगार, सलातीने अफ़ग़ेना।

पर स्थायी कर दिया, अमीरुल उमरा की उपाधि दी तथा अलंकृत कुर्सी पर बैठने का सम्मान प्रदान किया।[८]

हिन्दू बेग की रिपोर्ट को स्वीकार करना हुमायूं के लिए ठीक नहीं था। यह सही है कि शेर ख़ां ने अपने नाम से न ख़ुत्बा पढ़वाया और न सिक्का चलाया था किन्तु उसने कई ऐसे कार्य किये थे जो उसकी नीति को स्पष्ट प्रकट कर रहे थे। गुजरात अभियान में शेर ख़ां के पुत्र कुतुब ख़ां का अपनी सेना के साथ मुग़ल सेना से भाग आना क्या अपराध नहीं था? फिर शेर ख़ां ने जो कर देने की प्रतिज्ञा की थी उसे भी उसने नहीं दिया था। इसके अतिरिक्त, एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो अपने को मुग़लों का अमीर कहे, एक स्वतन्त्र राज्य (बंगाल) पर आक्रमण करना, क्या यह स्पष्ट नहीं कर रहा था कि शेर ख़ां मुग़लों को चकमा दे रहा था? हिन्दू बेग ने गुजरात में अस्करी को स्वतन्त्र होने का परामर्श दिया था। ऐसे व्यक्ति पर इतना विश्वास करना उचित नहीं था। हिन्दू बेग पर हुमायूं का इतना विश्वास क्यों था यह बताना कठिन है।

वास्तव में हुमायूं परिस्थिति की भयंकरता का अनुमान न लगा सका। वह आनन्दमय जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति था। किसी कार्य की महत्ता समझकर उस पर तत्काल कार्य करना उसके लिए कठिन था। किसी कार्य के प्रारम्भ करने में वह अधिकतर देर करता था। इसी कारण गुजरात अभियान में वह कई स्थानों में रुका रहा। बाद में बंगाल में भी इसी तरह उसने कई महीने व्यर्थ बिता दिये। इस तरह दो कठिन अभियानों के बीच आराम करना उसकी प्रकृति बन गयी थी। इसके अतिरिक्त हुमायूं किसी भी अभियान या विशेष कार्य करने का निश्चय तत्काल नहीं कर पाता था। फ़िरिश्ता का यह कथन कि हुमायूं ने अफ़ीम की मात्रा बढ़ा दी थी जिससे राजसी कार्यों में उसकी दिलचस्पी कम हो गयी,[९] केवल यह संकेत करता है कि गुजरात अभियान से प्राप्त अवसाद के कारण उसने अधिक मात्रा में अफ़ीम खाना प्रारम्भ कर दिया था। निज़ामुद्दीन तो स्पष्ट लिखता है कि गुजरात से लौटकर हुमायूं ने एक वर्ष आमोद-प्रमोद में व्यतीत किया।[१०] उपर्युक्त विवेचन से यह सारांश निकलता है कि हुमायूं, जो प्रकृति से आलसी और आरामतलब था, हिन्दू बेग की

८ मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३४८।
९ फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ८३।
१० तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ६१।

रिपोर्ट के पश्चात् आराम से बैठ गया तथा उसने तब तक आँखें नहीं खोलीं जब तक शेर ख़ां ने बंगाल पर आक्रमण नहीं किया।

शेर ख़ां की गति विधि

हिन्दू बेग के आश्वासन से शेर ख़ां को विश्वास हो गया कि हुमायूं अब कुछ दिन उस पर आक्रमण नहीं करेगा। इस बीच उसने बंगाल पर आक्रमण कर उस पर अधिकार करने का निश्चय किया। पिछले बंगाल अभियान के समय पुर्तगालियों ने बंगाल के शासक महमूद की सहायता की थी जिससे शेर ख़ां को बड़ी असुविधा हुई थी। ये लोग गुजरात के बहादुर शाह से युद्ध में लगे थे तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् उन्हें तुर्की के सुल्तान सुलेमान तथा बहादुर के उत्तराधिकारी के संयुक्त आक्रमण का भय था। इस कारण पुर्तगाली सुल्तान महमूद की सहायता करने की स्थिति में नहीं थे। यह समय बंगाल पर आक्रमण करने के लिए उपयुक्त था। शेर ख़ां ने कर न देने का दोष लगाकर बंगाल पर आक्रमण कर दिया।[११] महमूद के लिए शेर ख़ां का सामना करना सरल नहीं था। वह भागकर गौड़ में जा छिपा। शेर ख़ां की सेना ने नगर की ओर प्रस्थान किया तथा उसके आसपास के स्थानों पर अधिकार कर लिया।

बंगाल अभियान

हुमायूं को शेर ख़ां के अभियान की सूचना मिली। उसने निश्चय कर लिया कि अब बंगाल पर आक्रमण करना ही चाहिए।[१२] आक्रमण के पूर्व उसने राजधानी का प्रबन्ध करना उचित समझा तथा उसने साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में योग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया। इस तरह दिल्ली तथा उसके निकट के स्थानों की रक्षा तथा शासन का उत्तरदायित्व मीर फ़ख़ अली को दिया गया। आगरे में मीर मुहम्मद बख़्शी को, कालपी में यादगार नासिर मिर्ज़ा को और कन्नौज तथा उसके निकट के भागों में बाबर के दामाद नूरुद्दीन मिर्ज़ा को नियुक्त किया गया।[१३]

[२२] कम्पोस के अनुसार महमूद ने कर देना अस्वीकार किया जिसके उपरान्त शेर ख़ां ने आक्रमण कर दिया। (हिस्ट्री ऑफ पुर्तगीज इन बंगाल, पृ. ४०)। डा. क़ानूनगो के अनुसार उसने महमूद शाह के विरुद्ध अक्तूबर, १५३७ के मध्य में अतिक्रमण किया जब हुमायूं आगरा में था (शेरशाह,. पृ. १३६)।

[१२] अकबरनामा, १, पृ. १४७; मुन्तखबुत्तवारीख़, १, पृ. ३४८; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ८३-८५।

[१३] अकबरनामा, १, पृ. १४९।

इस तरह राजधानी तथा उसके निकट के भागों का शासन प्रबन्ध करने के पश्चात् हुमायूं अस्करी तथा हिन्दाल के साथ २७ जुलाई १५३७ को आगरे से रवाना हुआ।[१४] उसके साथ उसकी बेग़में तथा साम्राज्य के प्रमुख अमीर रूमी ख़ां, तरदी बेग, बैराम ख़ां, कासिम हुसेन ख़ां ऊज़बेक, ज़ाहिद बेग, जहांगीर कुली बेग इत्यादि थे। अधिकतर अमीर नदी के मार्ग से रवाना हुए किन्तु सेना का मुख्य भाग स्थल मार्ग से चला। हुमायूं कभी जलमार्ग से नाव पर चलता था तथा कभी घोड़े पर स्थल मार्ग से।

हुमायूं के आक्रमण की सूचना पाते ही शेर ख़ां ने इसका प्रतिवाद किया। उसने कहा कि उसने मुग़लों के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं किया है। वह न तो अपनी पश्चिमी सीमा के आगे बढ़ा है और न मुग़ल साम्राज्य के किसी अन्य क्षेत्र में हस्तक्षेप ही किया है। इसलिए सम्राट को उसका विरोध नहीं करना चाहिए। हुमायूं ने इस प्रतिरोध का कोई भी उत्तर नहीं दिया और आगे बढ़ गया।

हुमायूं के अभियान से शेर ख़ां चिन्तित हुआ। उसने गौड़ के घेरे का प्रबन्ध किया तथा वहां ख़्वास ख़ां को नियुक्त किया। चुनार के दुर्ग की रक्षा का उत्तरदायित्व उसने अपने पुत्र कुतुब ख़ां तथा अन्य अफ़ग़ानों को सौंपा। शेर ख़ां स्वयं भरकुण्डा[१५] में अफ़ग़ान परिवारों के साथ चला गया। बाहर से वह दोनों दुर्गों पर तथा हुमायूं की गतिविधि पर दृष्टि रख सकता था।

आगरे से चलकर हुमायूं नवम्बर, १५३७ में चुनार पहुँचा।

१४ हुमायूं किस तिथि को रवाना हुआ इसमें मतभेद है। अबुल फ़ज़ल ने तिथि नहीं दी है। निज़ामुद्दीन अहमद के अनुसार १४ सफ़र ९४२ हिज़री १२ अगस्त, १५३५ (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ६२); फ़िरिश्ता के अनुसार १८ सफ़र ९४३ हिजरी (२७ जुलाई १५३७) (फ़िरिश्ता फा., पृ. २१६); ब्रिग्स के अनुवाद में (भाग २, पृ. ८३) आठ सफ़र है, जो गलत है।

१५ यह दुर्ग आधुनिक वीरभूमि जिले में स्थित था। आईने अकबरी (भाग २, पृ. १५३) के अनुसार भरकुण्डा शरीफाबाद सरकार का एक परगना था। देखिए ब्लाख़मैन का लेख, जर्नल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल १८७३, पृ. २२३, तथा बीम्स का लेख, जर्नल रायल, एशियाटिक सोसाइटी, १८९६-९। यह स्थान चुनार से ५० मील दक्षिण २४° ३४′ उत्तर, ८३° ३४′ पूर्व स्थित है। होदीवाला १, पृ. ४५०; इलियट और डासन, ४, पृ. ३५० में इसे नहरकुण्डा कहा गया है, जो गलत है।

मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा का समर्पण

आगरे में हुमायूं ने अपनी बहन मासूमा सुल्तान बेगम (मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा की स्त्री) की प्रार्थना पर मुहम्मद ज़मान को क्षमा कर दिया था। चुनार के समीप मुहम्मद ज़मान हुमायूं के ख़ेमे में आया। मिर्ज़ा अस्करी तथा हिन्दाल ने उसका स्वागत किया तथा दूसरे दिन एक ही दरबार में उसे दो बार ख़िलअत, पेटी एवं घोड़े प्राप्त हुए।[१६] हुमायूं का मुहम्मद ज़मान के प्रति यह आदर उसके बहनोई होने के कारण था। शासन की दृष्टि से इस तरह का व्यवहार कमज़ोरी का प्रतीक था।

चुनार का घेरा

जिस समय हुमायूं चुनार दुर्ग को घेरे हुए था उसी समय शेर ख़ां की सेना गौड़ को घेरे हुए थी। गौड़ में बंगाल के शासक का राजकोष था। हुमायूं के बंगाल पहुँचने के पूर्व यदि शेर ख़ां गौड़ पर अधिकार कर लेता तो उसे यह कोष, भू-भाग तथा यश भी प्राप्त होता, जिससे उसकी शक्ति बढ़ जाती। यही सब विचार कर हुमायूं के ज्येष्ठ अमीर दिलावर ख़ां इत्यादि ने परामर्श दिया कि चुनार-विजय की चिन्ता न की जाए तथा मुग़ल सेना आगे बढ़े जिससे शेर ख़ां के गौड़ के कोष को हस्तगत करने के पूर्व वहां पहुँच जाए। इसके विपरीत कुछ अन्य अमीरों की राय थी कि पहले चुनार को जीत लिया जाए उसके बाद आगे बढ़ा जाए। जब हुमायूं ने ख़ानख़ाना यूसुफ़ ख़ैल से पूछा तो उसने कहा: "नौज़वानों की राय है कि प्रथम चुनार पर अधिकार किया जाए, ज्येष्ठों की राय है कि गौड़ में अत्यधिक कोष है तथा गौड़ पर प्रथम अधिकार करना उपयुक्त तथा लाभकर है। इसके पश्चात् चुनार पर अधिकार करना सरल होगा।" हुमायूं ने इसका उत्तर दिया कि मैं नौज़वान हूँ तथा नौज़वानों का परामर्श स्वीकार करता हूँ। मैं चुनार के दुर्ग को अपने पीछे नहीं छोड़ूँगा।[१७]

हुमायूं को चुनार पर अधिकार करने में लगभग ६ महीने लगे। इस बीच शेर ख़ां ने गौड़ पर अधिकार कर उसके कोष को सुरक्षित स्थान पर हटा दिया तथा कुछ ही दिनों में वह हुमायूं को पराजित करने में सफल हुआ। इस

[१६] अकबरनामा, १, पृ. १४९-५०; तथा जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १३।

[१७] तारीख़े शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३५७; डार्न, हिस्ट्री ऑफ दि अफ़ग़ान्स, पृ. १०६। अकबरनामा, तथा तबक़ाते अकबरी में इस परामर्श गोष्ठी का उल्लेख नहीं है। जौहर तथा फ़िरिश्ता ने भी इसका जिक्र नहीं किया है।

पृष्ठभूमि में कुछ आधुनिक विद्वानों ने हुमायूं के इस निश्चय की आलोचना की है तथा कुछ ने इसका समर्थन किया है।

डा. बनर्जी ने हुमायूं के निश्चय का समर्थन किया है।[१८] उनके अनुसार (१) हुमायूं को गुजरात का बहुत ही कटु अनुभव था। चम्पानीर के दुर्ग पर अधिकार किये बिना ही वह आगे कैम्बे तक बढ़ गया था। उस अभियान में हुमायूं को प्रारम्भ में तो विजय लाभ हुआ, किन्तु कुछ ही दिनों के बाद पूरा प्रान्त उसके हाथ से निकल गया। हुमायूं इस भूल को दुहराना नहीं चाहता था। (२) शेर खां की दृष्टि में चुनार का बहुत महत्त्व था। पांच वर्ष पूर्व उसने मुग़लों को चुनार समर्पण करने में आनाकानी की थी। चुनार विजय से अफ़ग़ानों के दक्षिण बिहार के राज्य को धक्का लगता। चुनार का कोष यदि हटाया नहीं गया था तो वह भी हुमायूं के हाथ लगने की आशा थी। (३) हुमायूं को यह आशा नहीं थी कि बंगाल का शासक महमूद इतनी शीघ्र शेर ख़ां द्वारा पराजित हो जाएगा। (४) नवम्बर १५३७ में हुमायूं स्वयं अफ़ग़ानों के विरुद्ध युद्ध कर रहा था और महमूद कहां तक शेर ख़ां का सामना कर सकता और कहां तक नहीं, इसमें उसको कोई दिलचस्पी नहीं थी। हुमायूं की महमूद में दिलचस्पी गौड़ के पतन के बाद तथा उसके हुमायूं से मिलने के पश्चात् प्रारम्भ होती है। (५) हुमायूं शेर खां की योग्यता का ठीक मूल्यांकन नहीं कर सका। (६) मख़ज़ाने अफ़ग़ाना के लेखक का यह विचार सही प्रतीत होता है कि गौड़ पर आक्रमण करने का परामर्श हुमायूं के अमीरों ने वहा के धन के लोभ से दिया न कि किसी और परिस्थिति के कारण। यदि हुमायूं चुनार पर अधिकार किये बिना आगे बढ़ जाता तो महमूद की सहायता के लिए उसे बंगाल को पार करना पड़ता। क्या युद्ध को उत्तरी भारत के अंतिम छोर तक ले जाना ठीक था? विद्वान लेखक के अनुसार घटना के पश्चात् बुद्धिमान होना सरल है। हुमायूं की वास्तविक भूल शेर ख़ां का सही मूल्यांकन न करना था। इसके अतिरिक्त बंगाल के शासक द्वारा तत्काल सहायता का कोई अनुरोध नहीं किया गया था। इस कारण हुमायूं ने आराम से किन्तु अच्छी तरह चुनार के दुर्ग का घेरा प्रारम्भ किया।[१९]

उपर्युक्त तर्कों के अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि यदि चुनार शेर ख़ां के अधिकार में रह जाता और हुमायूं आगे बढ़ जाता तो उसकी सेना पर

[१८] बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २००-२०२।

[१९] वही पृ. २०२।

चुनार की तरफ से तथा बंगाल की तरफ से एक साथ आक्रमण हो सकता था, जो अत्यन्त ही भयंकर होता। चुनार का दुर्ग अफ़ग़ानों की शक्ति का प्रतीक था। यह आगरा तथा पटना के बीच पड़ता था। सैनिक दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व था। ऐसे दुर्ग को शेर ख़ां के हाथ में छोड़ना न्यायसंगत नहीं था। इस पर अधिकार किये बिना बनारस-बक्सर मार्ग शेर ख़ां के अधिकार में रहता जिससे उसकी शक्ति में वृद्धि होती।

हुमायूं के निश्चय के विपक्ष में कहा जा सकता है कि गौड़ के पतन से शेर ख़ां को धन तथा यश दोनों प्राप्त होता जिससे उसकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती। यही नहीं, विजय के उल्लास में उसकी सेना में उत्साह भी भर जाता। यदि हुमायूं ने आगे बढ़कर बंगाल के शासक की सहायता की होती तो वह उसका परम मित्र बन जाता। बंगाल तथा मुग़ल सम्राट दोनों मिलकर, दो तरफ से शेर ख़ां के राज्य तथा शक्ति को चूरचूर कर सकते थे, क्योंकि शेर ख़ा की शक्ति का केन्द्र बंगाल तथा मुग़ल साम्राज्य के बीच था। यह कहना सही नहीं है कि युद्ध को भारत के अन्तिम छोर तक ले जाना ठीक नहीं था। शेर ख़ां पर आक्रमण करते समय बंगाल तक जाने की अधिक सम्भावना थी। हुमायूं इस बात को जानता था। इसी कारण उसने अपनी राजधानी का ऐसा प्रबन्ध किया जिससे अधिक समय लगने पर भी कोई गड़बड़ी न हो। यह तर्क कि हुमायूं को महमूद में दिलचस्पी उससे मिलने के पश्चात् प्रारम्भ हुई, हुमायूं की अदूरदर्शिता प्रदर्शित करता है।

दोनों तरफ़ के तर्कों के अध्ययन से तथा बाद की घटनाओं से हम हुमायूं की वास्तविक भूल का अनुमान लगा सकते हैं। हुमायूं को शेर ख़ां की योग्यता का ठीक अनुमान नहीं था। वह उसे एक विद्रोही मात्र समझता था। उसे यह आशा थी कि चुनार का दुर्ग बहुत जल्द उसके अधिकार में आ जाएगा किन्तु इस दुर्ग पर अधिकार करने में छः महीने लग गये। इस तरह चुनार की शक्ति का ठीक ज्ञान उसे नहीं हो सका।[२०] सुल्तान महमूद इतना शीघ्र पराजित हो जाएगा उसे इसकी आशा नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूं का जासूस विभाग उत्तम नहीं था, जिससे शेर ख़ां की गतिविधि इत्यादि की

२० तारीख़े एलचीए निज़ाम शाह के अनुसार हुमायूं चुनार दुर्ग को विजय किये बिना ही बंगाल की तरफ जाना चाहता था कि, अलीक़ुली तोपची ने, जो हुमायूं का विश्वासपात्र था, उससे कहा कि वह क़िले को अल्पकाल में ही जीत लेगा। हुमायूं उसकी बात में आ गया। रिज़वी, हुमायूं, २, पृ. ३२।

ठीक सूचना उसे नहीं प्राप्त हो सकी। हुमायूं ने निश्चय करते समय एक भयंकर भूल की। ज्येष्ठ अमीरों से उसे यह नहीं कहना चाहिए था कि वह नौज़वान है तथा नौज़वानों के मत को ही स्वीकार करेगा। उसकी इस बात से वृद्ध तथा अनुभवी अमीरों को चोट लगी तथा उनके मन में यह विचार आना स्वाभाविक था कि सम्राट ने उनकी मानहानि की है। यदि हुमायूं ने चुनार के घेरे का उत्तरदायित्व किसी अन्य व्यक्ति को दे दिया होता तथा स्वयं बंगाल की तरफ रवाना हो गया होता तो अधिक अच्छा होता। इसमें सेना के विभाजन का भय अवश्य था किन्तु उचित धन व्यय कर सेना एकत्रित कर कुछ महीने निश्चय ही बचाये जा सकते थे।

चुनार पर अधिकार

चुनार के दुर्ग पर अधिकार करने का उत्तरदायित्व रूमी खां को सौंपा गया। बहादुर शाह को त्यागने के पश्चात् रूमी ख़ां हुमायूं की सेवा में आ गया था। हुमायूं ने उसे मीर आतश का पद दिया। रूमी ख़ां ने दुर्ग का निरीक्षण किया। उसने देखा कि ख़ुश्की के भाग इतने दृढ़ थे कि सफलता मिलना कठिन था। दुर्ग के कमजोर स्थान का पता लगाने के लिए उसने एक अबीसीनियन दास कुलाफ़ात को बुरी तरह बेंत से मारा। बुरी अवस्था में कुलाफ़ात चुनार के दुर्ग के पास गया और वहां उसने रूमी ख़ां के व्यवहार की निन्दा की और अपनी सेवाएं चुनार के दुर्गपति को अर्पित कीं। अफ़ग़ानों ने उसके प्रति सद्भावना दिखलायी, उसके घावों की मरहम-पट्टी की और दुर्ग की बहुत-सी बातों की जानकारी उसे होने दी। कुलाफ़ात के द्वारा रूमी ख़ां को चुनार दुर्ग की आंतरिक कमज़ोरियों का ज्ञान हो गया और उसी के अनुसार उसने दुर्ग पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। कुलाफ़ात की सूचना पर रूमी ख़ां ने कार्य प्रारम्भ किया। उसकी योजना दुर्ग पर तोपों की सहायता से अधिकार करने की थी। रूमी खां ने नौकाओं पर एक मुकाबिल कोब या सरकोब तैयार कराया। यह एक तैरता हुआ तोपख़ाना था जो काफी ऊँचा था। ऐसा प्रबन्ध था कि इस तोपख़ाने को ले जाकर क़िले के नज़दीक की दीवार उड़ायी जा सकती थी। ऐसा भी प्रबन्ध था कि उसी समय स्थल मार्ग से भी आक्रमण हो सके। सम्पूर्ण प्रबन्ध के पश्चात् किले पर आक्रमण हुआ। भीषण युद्ध हुआ जिसमें अफ़ग़ानों ने बड़ी वीरता दिखायी। सात सौ मुग़ल मारे गये तथा रूमी ख़ां के नवनिर्मित सरकोब का एक भाग टूट गया। दूसरे दिन उसकी मरम्मत हुई तथा मुग़लों ने आक्रमण करने का पुनः प्रबन्ध किया। दुर्ग के

अफ़ग़ानों ने दुर्ग को बचाना असम्भव जानकर दुर्ग को समर्पित कर दिया।[२१]

दुर्ग के समर्पण के पश्चात् बहुत-से अफ़ग़ान तथा सैनिक बन्दी बनाये गये। जौहर के अनुसार ३०० तोपचियों के हाथ काट लिये गये जिससे वे भविष्य में अपने अनुभव का प्रयोग न कर सकें। अबुल फ़ज़ल तथा जौहर दोनों लिखते हैं कि हुमायूं ने उन्हें क्षमा कर दिया था। जौहर इसका उत्तरदायित्व रूमी ख़ां पर डालता है। अबुल फ़ज़ल के अनुसार मुईद बेग दूल्दाई ने जो हुमायूं का विश्वासपात्र था, इस तरह उनके हाथ काटने की आज्ञा दी जैसे सम्राट की आज्ञा हो। दोनों लिखते हैं कि हुमायूं इससे बहुत रुष्ट हुआ तथा उसने उसे इसके लिए फटकारा।[२२] शरण में आये तथा क्षमा किये गये इन व्यक्तियों के साथ यह व्यवहार अनुचित था। यह कहना कि हुमायूं की आज्ञा के विरुद्ध इनके हाथ काटे गये, यह प्रश्न उपस्थित करता है कि हुमायूं ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को क्या दण्ड दिया? यदि दण्ड नहीं दिया गया तो क्या यह उसकी मौन सहमति नहीं प्रकट करता है? क्या इससे मुग़ल सम्राट के अमीरों की अनुशासनहीनता नहीं प्रकट होती? किसी भी दृष्टि से हुमायूं इस अत्याचार के लिए आंशिक उत्तरदायी निश्चय ही था।

चुनार विजय के उपलक्ष में हुमायूं ने एक दरबार किया जिसमें उन अमीरों को जिन्होंने इसमें प्रमुख भाग लिया था, इनाम तथा ख़िलअत प्रदान किये गये। रूमी ख़ां को उसकी बहादुरी के उपलक्ष में चुनार का गवर्नर नियुक्त किया गया। दुर्भाग्यवश रूमी ख़ां इसका उपभोग नहीं कर सका। कुछ ही दिनों में उसके मुग़ल साथियों ने ईर्ष्यावश उसे विष देकर मार डाला। उसकी मृत्यु के पश्चात् चुनार मीर बेग को प्रदान किया गया।[२३]

[२१] चुनार दुर्ग की विजय किस तरह हुई इसका बृहद् तथा स्पष्ट वर्णन समकालीन इतिहासकारों में नहीं मिलता। अबुल फ़ज़ल ने अकबरनामा (भाग १, पृ. १५१) में इसका संक्षिप्त वर्णन किया है। निज़ामुद्दीन अहमद ने अपने वर्णन में मुकाबिला कोब के निर्माण का विशेष वर्णन किया है (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ६३-६४)। जौहर का वर्णन सबसे अधिक है। उसने कुलाफ़ात के भेजने तथा आक्रमण का वर्णन किया है। तज़किरतुल वाकयात, स्टीवर्ट, पृ. १२-१४; तारीख़े अलफ़ी।

[२२] अकबरनामा, १, पृ. १५१। जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १४। अबुल फ़ज़ल के अनुसार हुमायूं ने दो हज़ार आदमियों को क्षमा कर दिया दुल्दाई ने इन्हीं लोगों के हाथ काटने की आज्ञा दी थी। जौहर के अनुसार ३०० तोपचियों के हाथ काटे गये।

[२३] अकबरनामा, १, पृ. १५१। जौहर का वर्णन अकबरनामा से भिन्न है।

रोहतास दुर्ग पर शेर ख़ां का अधिकार

जिस समय हुमायूं चुनार के दुर्ग का घेरा डाले हुए था उसी बीच शेर ख़ां ने गौड़ दुर्ग के घेरे को और भी कठोर कर दिया। बिहार तथा बंगाल के अधिकतर भागों पर भी उसने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। जलाल ख़ां तथा ख़्वास ख़ां को गौड़ के घेरे का उत्तरदायित्व सौंपकर शेर ख़ां पुनः भरकुण्डा के निकट पहुँच गया।

शेर ख़ां ने इस बीच अनुभव किया कि भरकुण्डा का दुर्ग उसके तथा अन्य अफ़ग़ानों के परिवारों को सुरक्षित रखने के लिए काफी नहीं था। गौड़ में प्राप्त धन इत्यादि रखने की समस्या भी थी। इस दृष्टि से उसे रोहतास[२४] दुर्ग बहुत ही उपयुक्त प्रतीत हुआ। रोहतास दुर्ग के राजा से उसकी मित्रता थी, विशेषतया उसका ब्राह्मण मन्त्री चूरामणि[२५] उसका परम मित्र था। जिस समय जागीर

जौहर लिखता है कि चुनार की विजय के पश्चात् हुमायूं ने एक शाहाना जश्न आयोजित किया, उसके पश्चात् उसने रूमी ख़ां से पूछा कि चुनार का क़िला कैसा है? रूमी ख़ां ने उत्तर दिया कि यदि उसे ऐसा क़िला प्राप्त हो जाए तो वह किसी को उसके निकट फटकने न दे। हुमायूं ने पूछा कि क़िला किसको दिया जाए। रूमी ख़ां ने उत्तर दिया कि उपस्थित अमीरों में से बेग मीरक के अतिरिक्त कोई योग्य नहीं है। हुमायूं ने दुर्ग मीरक बेग को दे दिया। इससे सभी अमीर रूमी ख़ां के शत्रु हो गये तथा उसे विष देकर मार डाला (तज़किरतुल वाकयात, स्टीवर्ट, पृ. १४)।

२४ रोहतास दुर्ग के विषय में फ़िरिश्ता (ब्रिग्स २, पृ. ११६-१७) लिखता है कि उसने भारत के अनेक पहाड़ी दुर्गों को देखा था किन्तु रोहतास दुर्ग की तुलना में कोई भी नहीं था। यह एक पहाड़ी पर पाँच कोस के वर्ग में स्थित था। पानी की सुविधा तथा दुर्ग तक पहुँचने का एक ही मार्ग होने से यह अजेय बन गया था।

२५ अब्बास ने राजा का नाम नहीं दिया है किन्तु लिखता है कि उसका मन्त्री चूरामणि नामक एक ब्राह्मण था। अबुल फ़ज़ल के अनुसार राजा का नाम चिन्तामन था तथा वह ब्राह्मण था (अकबरनामा, १, पृ. १५३)। फ़िरिश्ता के अनुसार राजा का नाम हरिकृष्ण राय था (ब्रिग्स, २, पृ. ११५)। अर्सकिन ने राजा का नाम हरीकृष्ण बरकीस लिखा है। (हिस्ट्री ऑफ इण्डिया अण्डर बाबर एण्ड हुमायूं, २, पृ. १४७)। होदीवाला के अनुसार (स्टडीज़, १, पृ. ४५२) बरकीस गलत है। कुछ हस्तलिखित प्रतियों में हरकिसन की जगह बरकिस भी मारजिन में लिखे होने के कारण, हरिकृष्ण के साथ बरकीस भी जोड़ दिया गया है। अर्सकिन, २, पृ. १४७।

सम्बन्धी संघर्ष चल रहा था उस समय शेर ख़ां के भाई निज़ाम ने अपने परिवार के साथ यहीं शरण ली थी। शेर ख़ां ने चूरामणि को पत्र लिखा कि वह बड़ी कठिनाई में था तथा रोहतास का दुर्ग कुछ ही दिनों के लिए उसे दे दिया जाए। चूरामणि के कहने से राजा ने इसकी स्वीकृति दे दी। किन्तु जब शेर ख़ां ने भरकुण्डा से अपना परिवार भेजा तो राजा ने उन्हें दुर्ग में प्रवेश करने की स्वीकृति नहीं दी। उसने कहा कि उसने जब निज़ाम को दुर्ग में शरण दी थी, उस समय उसके पास कम सेना थी। अब शेर ख़ां की सेना राजा की सेना से अधिक थी। शेर ख़ां ने राजा को लिखा कि उसने राजा के कहने से परिवार भरकुण्डा से भेजा था। यदि हुमायूं को पता चलेगा तो वह आक्रमण कर अफ़ग़ानों के परिवार का नाश कर देगा और इसका उत्तरदायित्व राजा पर होगा। शेर ख़ां ने चूरामणि को ६ मन सोना रिश्वत में दिया तथा प्रार्थना की कि कुछ दिन के लिए दुर्ग उसे दे दिया जाए। उसने भय भी दिखाया कि यदि दुर्ग उसे प्राप्त नहीं होगा तो वह हुमायूं से मिल जाएगा और राजा से बदला लेगा। चूरामणि ने राजा को समझाया और धमकी दी कि उसने शेर ख़ां को वचन दे दिया है, यदि उसका वचन भंग होगा तो वह आत्महत्या कर लेगा। राजा ने विवश होकर अफ़ग़ानों को प्रवेश करने दिया। अफ़ग़ानों को शेर ख़ां ने डोलियों में छिपा कर दुर्ग में भेजा तथा शक्ति के बल पर दुर्ग पर अधिकार कर लिया।[२६]

२६ शेर ख़ां ने डोली में अफ़ग़ानों को भेजकर रोहतास दुर्ग पर अधिकार किया था या नहीं, यह विवादग्रस्त है। तारीखे ख़ांजहां लोदी के अनुसार शेर ख़ां ने १२०० डोलियों में दो-दो अफ़ग़ान सैनिकों को अन्दर भेजा, केवल प्रारम्भ की कुछ डोलियों में बूढ़ी स्त्रियां थीं। अहमद यादगार के अनुसार केवल तीन सौ डोलियां थीं, प्रत्येक में दो-दो सैनिक तथा चार-चार रोहीला पालकी ढोने वाले थे। इन सभी ने अन्दर जाकर मारकाट शुरू कर दी, राजा को मार डाला तथा दुर्ग पर अधिकार कर लिया। फ़िरिश्ता ने भी डोली की कहानी को स्वीकार किया है। वह लिखता है कि शेर ख़ां ने पालकी ढोनेवाले सैनिक भी रखे थे। इसके अतिरिक्त रुपया रखने के पांच सौ बोरों में उसने गोलियां रखवाईं तथा वेश बदले हुए लाठीधारी सैनिकों द्वारा उन्हें भी अन्दर भेजा। इन लोगों ने अन्दर प्रवेश कर मौका पाते ही राजा के आदमियों पर तथा दुर्ग पर अधिकार कर लिया। फ़िरिश्ता के अनुसार राजा दुर्ग से भाग गया (ब्रिग्स, २ पृ. ११५-६)। निज़ामुद्दीन अहमद भी डोली भेजने का वर्णन करता है। उसके अनुसार १,००० डोलियां थीं तथा प्रत्येक में एक-एक सैनिक था। प्रारम्भ की कुछ डोलियों में स्त्रियां थीं। राजा के आदमियों ने

शेर ख़ां का दुर्ग पर धोखे से अधिकार करना उसके चरित्र का कलंक है। राजा ने बड़े बुरे समय निज़ाम को शरण दी थी। शेर ख़ां ने यह सब भुला दिया। राजा के अस्वीकार करने से मालूम होता है कि उसे शेर ख़ां की नीयत पर सन्देह हो गया था। शेर ख़ां द्वारा चूरामणि को रिश्वत देने ही से प्रतीत होता है कि वह दुर्ग को हस्तगत करना चाहता था। डोली की कहानी अस्वीकार भी कर दी जाए तो भी शेर ख़ां विश्वासघात के दोष से नहीं बच सकता।

बनारस विजय तथा शेर ख़ां से सन्धि वार्ता

चुनार की विजय के पश्चात् हुमायूं ने आगे बढ़कर बनारस पर अधिकार किया। कुछ दिन बनारस में रुककर मुग़ल सेना आगे बढ़कर सोन नदी के तट पर मनेर[२७] पहुँची। जौहर के अनुसार उसका इरादा भरकुण्डा के दुर्ग की तरफ़ जाने का था,[२८] जहां से शेर ख़ां बंगाल तथा बिहार की अपनी सेनाओं को नियन्त्रित कर रहा था। मनेर में हुमायूं ने सन्धि करने का विचार किया। यह विचार उसके मन में क्यों आया यह बताना कठिन है, क्योंकि चुनार विजय के पश्चात् उसे सन्धिवार्ता प्रारम्भ करने के स्थान पर अफ़ग़ानों को पराजित करने का संकल्प करना चाहिए था। हुमायूं ने क़ुबूल हुसेन तुर्कमान को अपना दूत बनाकर भेजा तथा उसने सन्धि की निम्नलिखित शर्तें रखीं :[२९]

१. शेर ख़ां मुग़लों की सेवा में उपस्थित होगा।

प्रारम्भ की डोलियों का निरीक्षण किया। इस पर शेर ख़ां ने यह कहकर इसका बिरोध किया कि पर्दे की स्त्रियों की तलाशी लेने का वह अधिकार नहीं देगा। राजा ने इसे स्वीकार कर लिया (तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १६२-६३)। अब्बास सरवानी ने तारीखे शेरशाही में डोली की कहानी को अस्वीकार किया है। (इलियट और डासन, ४, पृ. ३६१-६२)। शेर खां के चरित्र, उसकी आवश्यकताएँ तथा समकालीन इतिहासकारों के वर्णन से यह कहानी सत्य प्रतीत होती है।

२७ मनेर पटना से बीस मील पश्चिम है। उस समय सोन गंगा नदी से यहां मिलती थी। आईने अकबरी, २, पृ. १६३। यह २५° ३८′ उत्तरी तथा ८४° ५३′ पूर्व पर स्थित था।

२८ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १५।

२९ वही, पृ. १५-१६। दूत का नाम क़ुबूल हुसेन तुर्कमान या कब्ल हुसेन तुर्कमान था। स्टीवर्ट ने अपने अनुवाद में इसका नाम केवल हुसेन तुर्कमान दिया है।

२. शेर ख़ां बंगाल के शासक से प्राप्त राजसी छतरी तथा अन्य राजसी चिह्नों को मुग़ल सम्राट को समर्पित कर देगा।
३. शेर ख़ां रोहतास तथा बंगाल पर अपना अधिकार त्याग देगा।
४. चुनार, जौनपुर का प्रान्त अथवा अन्य जागीर जो शेर ख़ां पसन्द करे उसे प्राप्त होगी।

शेर ख़ां के लिए इन शर्तों को मानने का अर्थ था पूर्ण रूप से मुग़लों के आगे समर्पण कर देना। कदाचित्, चुनार विजय से मुग़ल इतने प्रसन्न थे कि उन्हें ऐसा अनुमान हुआ कि वे शेर ख़ां से कोई भी शर्त मनवा लेंगे। शेर ख़ां के लिए इन शर्तों को स्वीकार करना असम्भव था। इन शर्तों को स्वीकार करने का अर्थ था कि उस समय तक शेर ख़ां ने अफ़ग़ानों के संगठन के लिए जो कुछ भी किया था वह सब समाप्त कर दे। शेर ख़ां ने देखा कि कूटनीति का उत्तर भी उसी तरह देना चाहिए। यदि मुग़लों द्वारा प्रस्तुत शर्तें उसने अस्वीकार कर दी होतीं तो युद्ध की सम्भावना थी। शेर ख़ां तत्काल युद्ध के लिए तैयार नहीं था। गौड़ में प्राप्त धन को वह हटाना चाहता था। उसने हुमायूं के प्रस्ताव के विरोध में दूसरा प्रस्ताव रखा और कहा कि उसने बंगाल को पांच-छः वर्ष के परिश्रम से तलवार के बल पर विजय किया है और उसके बहुत से आदमी इसमें मारे गये हैं।[30] उसने हुमायूं के सामने निम्नलिखित दूसरी शर्तें उपस्थित कीं :[31]

१. शेर ख़ां मुग़लों को बिहार समर्पित कर देगा।
२. बंगाल शेर ख़ां को प्राप्त होगा तथा उसकी सीमाएं वही होंगी जो सुल्तान सिकन्दर के समय थीं।
३. शेर ख़ां बंगाल से प्राप्त राजत्व के सभी चिह्न मुग़ल सम्राट के पास भेज देगा।
४. शेर ख़ां प्रत्येक वर्ष दस लाख रुपया बंगाल से भेजेगा।
५. मुग़ल सम्राट अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ आगरे लौट जाएगा।
६. शेर ख़ां ने जीवन भर हुमायूं का सेवक तथा स्वामिभक्त रहने का वचन दिया।

ये शर्तें स्वीकृत हो गयीं[32] तथा हुमायूं ने शेर ख़ां के लिए घोड़ा तथा

[30] जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १६।
[31] अब्बास, तारीख़े शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३६२।
[32] ये शर्तें हुमायूं द्वारा स्वीकृत हुईं अथवा नहीं, इस विषय में समकालीन इतिहासकार स्पष्ट नहीं हैं। अफ़ग़ान इतिहासकारों के अनुसार मुग़ल

ख़िलअत भेजी। दुर्भाग्यवश इसी समय बंगाल से गौड़ के पतन की सूचना मिली तथा बंगाल के पराजित शासक ने अपना एक दूत हुमायूं के पास भेजा। कुछ ही दिन बाद वह स्वयं भी पराजित एवं घायल होकर हुमायूं के पास आ पहुँचा। महमूद तथा हुमायूं के मिलन की पूर्ण घटनाओं का ज्ञान हमें नहीं है, किन्तु इतना स्पष्ट है कि उसने हुमायूं से अपने लिए युद्ध करने की प्रार्थना की। उसने ऐसा विश्वास दिलाया कि गौड़ के अतिरिक्त बंगाल का अधिकतर भाग उसके प्रति राजभक्त था तथा बंगाल में भोजन तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं बहुतायत से उपलब्ध थीं। उसने हुमायूं से प्रार्थना की कि वह बंगाल पर आक्रमण कर शेर ख़ां को पराजित करे। उसने अपने पूर्ण सहयोग का वचन दिया। इन विश्वासों के परिणामस्वरूप तथा पराजित शासक की सहायता की इच्छा से, हुमायूं ने शेर ख़ां से निश्चित सन्धि को तोड़ दिया। सम्भव है इस निश्चय में शेर ख़ां के कुछ व्यवहारों ने सहायता की हो, क्योंकि अब तक शेर ख़ां ने कोई भी भू-भाग मुग़लों को नहीं दिया था और जब हुमायूं के कर्मचारी रोहतास गढ़ पर अधिकार करने के लिए पहुँचे तो उन्हें निराश लौटना पड़ा। इन परिस्थितियों में सन्धि टूट गयी।

सन्धिवार्ता के प्रारम्भ तथा विफलता के सम्बन्ध में कुछ बातें विचारणीय हैं। हुमायूं को सन्धिवार्ता प्रारम्भ नहीं करनी चाहिए थी। इससे उसकी कमजोरी प्रकट होती है। यदि उसने यह भूल कर भी दी थी तो सन्धि की शर्तों के निश्चित हो जाने के पश्चात् सन्धि तोड़ना ठीक नहीं था। इससे अफ़ग़ानों के मन में यह बात जम गयी कि हुमायूं झूठा है और उसकी बात का कोई विश्वास नहीं। शेर ख़ां ने इसका लाभ भी उठाया और बाद में उसने अपने सैनिकों से कहा कि वह हर तरह से संधि के लिए तैयार था, उसने मुग़लों को सब कुछ समर्पित कर दिया, फिर भी मुग़ल संधि के लिए तैयार नहीं हुए, यद्यपि अफ़ग़ान केवल

सम्राट ने ये शर्तें स्वीकार कर लीं किन्तु बाद में सुल्तान महमूद के पहुँचने पर इन्हें अस्वीकार कर दिया। तारीख़े शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३६२-६३। जौहर के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि सन्धि की शर्तें अभी निश्चित नहीं हुई थीं तथा बातचीत चल रही थी (जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १६)। गुलबदन बेगम के अनुसार हुमायूं इन शर्तों पर विचार कर रहा था कि इसी समय बंगाल का शासक पहुँचा (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १३३)। सम्भव है कि शेर ख़ां से शर्तों को मनवा कर हुमायूं ने यह सोचा कि बंगाल के सुल्तान के स्वागत से अपनी पुरानी शर्तें मनवा लेगा। इसी बीच शेर ख़ां यह समझकर कि सन्धि नहीं होगी, बंगाल की तरफ रवाना हो गया।

रहने का एक स्थान चाहते थे, उसे भी देने के लिए मुग़ल तैयार नहीं थे। उसने हुमायूं को सन्धि करने के पश्चात् उसे तोड़ने का भी दोष लगाया। अन्त में उसने कहा कि इस परिस्थिति में अफ़ग़ानों के सामने सिवा युद्ध के अन्य कोई मार्ग नहीं था।[33]

हुमायूं ने सुल्तान महमूद की बात का विश्वास कर लिया। उसने वास्तविक स्थिति जानने का प्रयत्न नहीं किया। यदि वह चाहता तो जान सकता था कि सुल्तान महमूद का अधिकार बंगाल में नाममात्र को रह गया था और उस परिस्थिति में वहां जाना ठीक नहीं था। महमूद हुमायूं की शरण में आया था और उसकी सहायता करना हुमायूं का नैतिक कर्तव्य था, किन्तु प्रत्येक परिस्थिति में सहायता करना ठीक नहीं कहा जा सकता। विशेषतः जब सन्धि हो चुकी थी उस समय, किसी को सहायता देने के लिए संधि तोड़ कर झूठा बनना, किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं था।

वास्तव में शेर खां समय चाहता था, जिससे धीरे-धीरे मुग़लों का साहस तथा शक्ति कम हो जाए और उसे गौड़ से कोष हटाने तथा शक्ति संचय करने का समय प्राप्त हो जाए। दुर्भाग्य से हुमायूं शेर खां की इस चाल को नहीं समझ सका। यह महत्त्वपूर्ण है कि बिहार और बंगाल में से एक को समर्पण करने के प्रश्न पर शेरशाह ने बंगाल को अपने पास रखना उचित समझा, यद्यपि वह बिहार में अपने जीवन का एक बहुत बड़ा भाग बिता चुका था तथा बिहार उसकी जन्मभूमि थी। वस्तुस्थिति को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि सन्धि वार्ता तोड़ने का उत्तरदायित्व हुमायूं पर था। गुजरात अभियान में भी उसने इसी तरह बहादुर शाह से सन्धि तोड़ी थी।

हुमायूं का बंगाल में प्रवेश

सन्धि वार्ता की विफलता के पश्चात् हुमायूं मनेर से बंगाल की तरफ रवाना हुआ। उसने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित किया। मुईद बेग, तरदी बेग, जहांगीर कुली इत्यादि के नेतृत्व में ३०,००० अश्वारोहियों का अग्रणी दल आगे-आगे चला। दूसरा दल स्वयं हुमायूं के नेतृत्व में अग्रणी दल के सात कोस पीछे चला।[34] कुछ सेना जल मार्ग से तथा कुछ स्थल मार्ग से चली। पटना तक हुमायूं उसी मार्ग से गया जिस मार्ग से बाबर ने अफ़ग़ानों

[33] तारीखे शेरशाही, इलियट और डासन, ४, पृ. ३६३-६४।

[34] वही, पृ. ३६५ प्रमुख अमीरों के नामों की आलोचना के लिए देखिए होदीवाला, १, पृ. ४५३।

के विरुद्ध अभियान किया था। इस मार्ग की यात्रा करने से मुग़लों की सेना गंगा के निकट थी और साथ ही बंगाल पर आक्रमण करने का यह सबसे सरल मार्ग था। पटना में, सम्राट के कुछ सहायकों ने वर्षा ऋतु के समाप्त होने तक अभियान स्थगित करने का परामर्श दिया।[३५] सुल्तान महमूद ने इसका विरोध किया। उसने हुमायूं को समझाया कि ऐसा करने से अफ़ग़ान बंगाल में अधिक शक्तिशाली हो जाएंगे। हुमायूं को यह राय ठीक मालूम हुई तथा उसने क़ासिम हुसेन सुल्तान को पटना का गवर्नर नियुक्त किया[३६] और मुंगेर की तरफ मुग़ल सेना को बढ़ने की आज्ञा दी। जिस समय हुमायूं पटना के निकट था शेर ख़ां निकट के एक गांव में रुका हुआ था। मुईद बेग के जासूसों ने इसकी सूचना अपने सेनानायक को दी। मुईद बेग को यह पता नहीं था कि शेर ख़ां की सेना बहुत ही कम है। उसे ऐसा भय हुआ कि शेर ख़ां मुग़ल सेना पर आक्रमण करने वाला है। उसने हुमायूं से परामर्श करना उचित तथा आवश्यक समझा। उसने तत्काल सम्राट को इसकी सूचना दी। हुमायूं ने आज्ञा दी कि सत्य का पता लगाया जाए। उस दिन पूरा समाचार न प्राप्त हो सका। दूसरे दिन पता चला कि शेर ख़ां उस गांव को छोड़कर कहीं और चला गया। शेर ख़ां को मार्ग में सईफ़ ख़ां मिला जो अपना परिवार रोहतास पहुँचाने जा रहा था। मुग़ल समीप होने के कारण शेर ख़ां ने उसे भागने को कहा। किन्तु यह जानकर कि अफ़ग़ान नेता के प्राण खतरे में हैं सईफ़ ख़ां ने अपना परिवार रोहतास पहुंचाने का उत्तरदायित्व शेर ख़ां को सौंपा और स्वयं गूगारघर में मुग़लों को रोकने के लिए तैयार हो गया।

दूसरे दिन मुग़लों ने शेर खां का पीछा किया। कुछ मील आगे बढ़ने पर उन्होंने देखा कि सईफ़ ख़ां अपने भाइयों के साथ गूगारघर के मार्ग पर खड़ा था। युद्ध हुआ जो दोपहर तक चलता रहा और मुग़ल विजयी हुए। सईफ़ ख़ां के तीन भाई मारे गये और वह स्वयं बुरी तरह घायल होकर बेहोश हो गया। वह सम्राट के सामने लाया गया। हुमायूं ने उसकी बहादुरी तथा उसकी शेर ख़ां के प्रति स्वामिभक्ति की प्रशंसा की तथा उसे स्वतन्त्र कर दिया और उसकी इच्छानुसार उसको शेर ख़ां के पास लौट जाने दिया।[३७] इस बीच शेर ख़ां को वहां से निकल जाने की पूर्ण सुविधा मिली। पटना से मुंगेर होता हुआ

३५ अकबरनामा, १, पृ. १५१।

३६ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज पृ. १३५।

३७ तारीख़े शेरशाही, इलियट और डासन, ४, पृ. ३६५-६७।

हुमायूं भागलपुर पहुँचा।[३८] यहां से कोलगांव (कहलगांव) के निकट उसने जहांगीर कुली बेग तथा बैराम ख़ां इत्यादि को पांच-छः हज़ार अश्वारोहियों के साथ अग्रगामी दल की तरह गढ़ी भेजा।[३९] मार्ग में कहलगांव के निकट यह सूचना मिली कि अफ़ग़ानों ने सुल्तान महमूद के दोनों पुत्रों को मार डाला है। सुल्तान महमूद इस दुखद समाचार को न सह सका और उसकी मृत्यु हो गयी। सुल्तान की लाश सादुल्लापुर ले जायी गयी जहां वह दफ़ना दी गयी।[४०] हुमायूं कहलगांव से चलकर तेलियागढ़ी के निकट पहुँचा।

हुमायूं के पूर्वी अभियान में बंगाल के सुल्तान की मृत्यु एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। सुल्तान की उपस्थिति से हुमायूं को बंगाल पर अधिकार करने में बड़ी सुविधा होती। उसकी मृत्यु के साथ उसके पुत्रों की भी मृत्यु हो गयी थी। इस तरह बंगाल के सुल्तान के पक्ष में बंगाल पर अधिकार करने का बहाना समाप्त हो गया।

शेर ख़ां ने अपने पुत्र जलाल ख़ां को १३,००० चुने हुए सैनिकों के साथ तेलियागढ़ी नामक दर्रे पर नियुक्त कर दिया था। उसे यह आज्ञा दी गयी थी कि वह हुमायूं को वहां तब तक रोके रहे जब तक गौड़ से कोष रोहतास न हटा लिया जाए। जलाल ख़ां की सहायता के लिए उसने सेनापति ख़्वास ख़ां को भी वहीं नियुक्त कर दिया। जलाल ख़ां ने दर्रे की चोटी पर तोपें लगा दी थीं जिससे आती हुई मुग़ल सेना पर आक्रमण किया जा सकता था। इस तरह मुग़लों को दर्रे में प्रवेश करते समय बहुत सतर्कता की आवश्यकता थी।

तेलियागढ़ी से कुछ दूर हुमायूं अपना पड़ाव डाले पड़ा था। मुग़ल अपने स्थान से अफ़ग़ानों को उत्तेजित करते रहे जिससे अफ़ग़ान दर्रे से बाहर आएं। शेर ख़ां ने स्पष्ट आज्ञा दे रखी थी कि अफ़ग़ान आक्रमण प्रारंभ न करें। जलाल ख़ां नौजवान था तथा मुग़लों के अपशब्दों तथा इधर-उधर के छिटपुट आक्रमणों से वह परेशान हो गया था। उसने आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। एक दिन दोपहर को जब कुछ मुग़ल सैनिक अफ़ग़ानों को परेशान करने के पश्चात् अपने ख़ेमें में लौटकर आराम कर रहे थे जलाल ख़ां ने तोपखाना तथा

३८ कहलगांव या कालगोंग भागलपुर में २५° १६′ उत्तर तथा ८७° १४′ पूर्व, गंगा के दक्षिणी तट पर।

३९ अकबरनामा, १, पृ. १५२। गढ़ी सन्थाल परगने में एक दरी है। उत्तर में गंगा नदी तथा दक्षिण में राजमहल की पहाड़ियां हैं। अबुल फ़ज़ल इसे बंगाल का द्वार कहता है।

४० मालदा गज़ेटियर, पृ. २०१।

६,००० घुड़सवार सेना के साथ मुग़लों पर आक्रमण कर दिया (जुलाई-अगस्त १५३८)। इस युद्ध में बैराम ख़ां ने अपनी वीरता से शत्रु के छक्के छुड़ा दिये। बहुत-से मुग़ल सैनिक तथा कुछ प्रमुख मुग़ल अमीर मारे गये। मुग़ल पराजित हुए[४१] तथा बचे हुए मुग़लों ने भागकर कोलगांव (कहलगांव) में हुमायूं को सूचित किया। उसी समय अन्धड़ और पानी ने स्थिति को और भी गम्भीर बना दिया। जलाल ख़ां ने गढ़ के मार्ग को रोक लिया। एक महीने अफ़ग़ानों के प्रतिरोध तथा प्राकृतिक कठिनाइयों के कारण मुग़लों को सफलता नहीं मिली। इस बीच शेर ख़ां ने झारखंड[४२] के मार्ग से गौड़ का कोष रोहतास के दुर्ग में हटा दिया तथा अफ़ग़ान सेना को तेलियागढ़ी से हटाने की उसने जलाल ख़ां को आज्ञा दी। अफ़ग़ान सेना के हटने के पश्चात् हुमायूं बिना किसी कठिनाई के गौड़ पहुँच गया। यह हुमायूं के लिए बहुत बड़ा सौभाग्य था क्योंकि तेलियागढ़ी से उद्धवनाला तक (लगभग ३५ मील) पहाड़ियां गंगा नदी के इतने निकट थीं कि यदि अफ़ग़ान चाहते तो मुग़लों को पग-पग पर रोक सकते थे।

हुमायूं का बंगाल निवास

गौड़[४३] को अपने अधीन करने के पश्चात् हुमायूं के सम्मुख गौड़ के प्रबन्ध की समस्या आयी। अफगानों ने गौड़ छोड़ते समय उसे नष्ट कर दिया था[४४]

४१ तारीखे शेरशाही, इलियट और डासन, ४, पृ. ३६७; अकबरनामा, १, पृ. १५२।

२ झारखण्ड छोटा नागपुर तथा वीरभूमि के जंगली भाग को कहा जाता है। मुण्डारी भाषा में 'वीर' शब्द का अर्थ जंगल होता है। (ब्लाख़मैन, नोट्स फ्राम मुहम्मडन हिस्टोरियन्स आन छुटिया नागपुर, पचेट एड पालामऊ ज. ए. सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता, १८७१, पृ. १११)। अकबरनामा के अनुसार वीरभूमि तथा पचेत से रतनपुर तथा रोहतासगढ़, दक्षिणी बिहार से उड़ीसा तक की सरहद का भूभाग झारखण्ड कहलाता था। (होदीवाला, १, पृ. ४५३-५४)।

४३ गौड़ लखनौती तथा लक्ष्मणावती के नाम से प्रसिद्ध था। यह २५° ५२' उत्तर तथा ८०° १०'५ पूर्व स्थित था। आज गौड़ में केवल टीले हैं यद्यपि उस समय यह पन्द्रह-बीस मील के क्षेत्रफल में फैला हुआ था। यहां बंगाल के शासकों द्वारा निर्मित अनेक इमारतें हैं जिनमें आदीना मस्जिद, सोना मस्जिद दाखिल दरवाजा, इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इसके उत्तर-पश्चिम सदुल्लापुर के उपनगर में महमूद की कब्र है।

४४ "Sher Khan burnt and pillaged the city of Gaur and

तथा बहुत-से आदमी मारे गये थे। बहुत-सी लाशें पड़ी थीं जिनका अन्तिम संस्कार करने वाला कोई नहीं था। हुमायूं ने लाशें हटवाकर उनका अन्तिम संस्कार कराया तथा नगर की सफाई करायी। सुल्तान महमूद की लाश भी मंगाकर गौड़ के उपनगर सादुल्लापुर में दफना दी गयी। शासन के लिए बंगाल कई भागों में विभाजित कर हुमायूं ने अपने अमीरों को वहां पर नियुक्त कर दिया।[४५] इसके पश्चात् हुमायूं ने गौड़ का नाम बदलकर जन्नताबाद[४६] कर दिया। बंगाल की जलवायु उसे बहुत पसन्द आयी।[४७] इन कार्यों के अतिरिक्त हुमायूं ने संगठन सम्बन्धी कोई अन्य कार्यवाही नहीं की यद्यपि वह यहां कई महीने रुका रहा।[४८]

took possession of sixty millions in gold." (कैम्पोस, हिस्ट्री ऑफ दि पुर्तग़ीज, पृ. ४०)। यहां शेर ख़ां का तात्पर्य अफ़ग़ानों से है।

४५ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १८।

४६ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १३४; कानूनगो, शेरशाह, पृ. १७८। फ़िरिश्ता के अनुसार उसने गौड़ का नाम इसलिए बदल दिया क्योंकि गोर का अर्थ फारसी में कब्र से होता (ब्रिग्स, २ पृ. ८४) कदाचित् फ़िरिश्ता ने यह अर्थ अपने अनुमान से लगाया है। स्टीन-गस्स की पर्सियन इंगलिश डिक्शनरी में गौर का अर्थ विधर्मी, अग्निपूजक, कब्रगाह, मरुस्थल, शराब तथा आनन्दोत्सव दिया गया है (पृ. ११०१)। बंगाल के शासक गियासुद्दीन आजमशाह (१३८९-१३९६) के सिक्कों पर जन्नताबाद अंकित है (स्मिथ तथा राइट, केटेलाग ऑफ क्वायन्स इन दि इण्डियन म्यूजियम, २, पृ. १५६) हुमायूं को यह मालूम था, यह बताना कठिन है।

४७ अकबरनामा, १, पृ. १५३।

४८ हुमायूं गौड़ में कितने दिन रहा, इस विषय में समकालीन इतिहासकार एकमत नहीं हैं। गुलबदन बेगम (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १३४) के अनुसार वह वहां नौ महीने रहा; तारीखे अलफी (रिज़वी, हुमायूं २, पृ. ५३) के अनुसार एक वर्ष; बदायूनी (मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३४९) के अनुसार दो-तीन महीने; निज़ामुद्दीन अहमद, (डे, २, पृ. १६३) तथा फ़िरिश्ता, (ब्रिग्स, २, पृ. ८४-८५) के अनुसार तीन महीने। डा. कानूनगो (शेरशाह पृ. १७८) के अनुसार वह नौ महीने बंगाल में रहा। डा. बनर्जी (हुमायूं, १, पृ. २२७) के अनुसार आठ महीने (अगस्त १५३८ से मार्च १५३९ तक); डा. त्रिपाठी के अनुसार अक्टूबर १५३८ में उसने गौड़ में प्रवेश किया तथा जनवरी १५३९ में उसने गौड़ छोड़ा (त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फॉल, पृ. ११३)। अबुल फ़ज़ल (अकबरनामा, १.

बिहार तथा बंगाल विशेष कठिनाई के बिना हुमायूं के अधिकार में आ गये। तेलियागढ़ी के अतिरिक्त कहीं भी युद्ध नहीं हुआ। सिन्ध के शासक मिर्ज़ा शाह हुसेन अरग़ून ने मीर अलीका अरग़ून को हुमायूं को इस विजय के लिए बधाई देने को भेजा।[४६] इससे प्रतीत होता है कि गुजरात के पलायन से जो मानहानि मुग़लों की हुई थी उसे इस विजय ने कम कर दिया तथा मुग़लों के यश में वृद्धि हुई।

गढ़ी से जलाल खां के हटने के पश्चात् हुमायूं ने हिन्दाल को, जिसे तिरहुत तथा पुरनियां दे दिया गया था, उसकी इच्छा से इन भागों से मुग़ल सेना के लिए आवश्यक वस्तुएं लाने की आज्ञा दी।[५०] हिन्दाल वहां से बिना आज्ञा के आगरे की तरफ रवाना हो गया। वहां पहुँचकर वह स्वयं बादशाह बनने का स्वप्न देखने लगा।

हिन्दाल के विद्रोह की सूचना पाकर मीर फ़ख़ अली दिल्ली से आगरा आया। उसने हिन्दाल मिर्ज़ा को समझाने का प्रयत्न किया तथा कठिनाई से उसे जौनपुर जाने के लिए राजी कर लिया। इसी बीच ख़ुसरो बेग कुकुल्ताश, ज़ाहिद बेग, मिर्ज़ा नज़र एवं कुछ अन्य अमीर हुमायूं से असन्तुष्ट होकर बंगाल से भागकर मिर्ज़ा नूरुद्दीन मुहम्मद के पास कन्नौज पहुँचे। उसके प्रोत्साहित करने पर ये लोग भी हिन्दाल से जा मिले।[५१] इन सब घटनाओं की सूचना

पृ. १५७) लिखता है कि जिस समय हुमायूं गौड़ से रवाना हुआ, बाढ़ आ रही थी तथा नदियां पानी से भरी थीं। बेवरिज के अनुसार (अकबरनामा का अंग्रेज़ी अनुवाद पृ. ३४१, नोट नं. १) हुमायूं सितम्बर १५३८ में रवाना हुआ), डा. क़ानूनगो (शेरशाह पृ. १८०) के अनुसार मार्च १५३९ में हुमायूं गौड़ से रवाना हुआ।

४९ तारीख़े सिन्ध, पृष्ठ १६५।

तारीख़े शेरशाही के अनुसार जलाल के गढ़ी छोड़ने के पश्चात् हिन्दाल को हुमायूं ने आगरा भेजा तथा स्वयं गौड़ की तरफ रवाना हो गया। (इलियट तथा डासन, ४, ३६८) अबुल फ़ज़ल के अनुसार हुमायूं ने हिन्दाल को, जिसे तिरहुत एवं पुरनियां प्रदान किया गया था, उसकी प्रार्थना पर इस आशय से बिदा कर दिया कि वह अपनी नई जागीर में जाकर आवश्यक वस्तुओं सहित बंगाल पहुँच जाए (अकबरनामा, १, पृ. १५२-५३)। अबुल फ़ज़ल का वर्णन सही मालूम होता है क्योंकि, हिन्दाल को उस परिस्थिति में, जब गौड़ पर अभी विजय नहीं हुई थी, भेजना न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता है।

५१ अकबरनामा, १, पृ. १५४।

पाकर हुमायूं ने शेख़ बहलूल को[५२] हिन्दाल को समझाने के लिए भेजा। हिन्दाल ने शेख़ का स्वागत किया तथा उसे अपने महल में ठहराया। बहलूल ने उसे समझाकर अपने पक्ष में कर लिया। चार-पांच दिन बाद मिर्ज़ा नूरुद्दीन मुहम्मद कन्नौज से आगरा पहुँचा और उसने हिन्दाल को पुनः विद्रोह करने तथा अपने नाम से ख़ुत्बा पढ़ने के लिये तैयार कर लिया। किन्तु जब तक शेख़ बहलूल जीवित था षड्यंत्र की सफलता की आशा नहीं थी। जिस समय बहलूल हिन्दाल के पूर्वी अभियान की तैयारी कर रहा था षड्यंत्रकारियों ने उस पर यह अभियोग लगाकर कि वह शेर खां को अस्त्र-शस्त्र भेजने की योजना बना रहा था तथा उससे पत्र-व्यवहार कर रहा था उसकी निर्मम हत्या कर डाली। हिन्दाल के नाम से ख़ुत्बा पढ़ा गया[५३] और उसने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की।

हिन्दाल के इस व्यवहार से उसकी माता दिलदार बेगम बड़ी दुःखी हुई तथा जब हिन्दाल उसके पास पहुँचा तो उसने मातम के कपड़े (नीले वस्त्र) धारण किये तथा उससे बहुत नाराज हुई। किन्तु हिन्दाल पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह आगरा से दिल्ली की तरफ रवाना हुआ। यह समाचार सुनकर यादगार नासिर मिर्ज़ा एवं मीर फ़ख़ अली ने दिल्ली पहुँचकर उसकी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया। हिन्दाल के आगमन का समाचार पाकर निकट के अधिकांश जागीरदारों ने उसका अभिवादन किया। हिन्दाल ने दिल्ली को घेर लिया। मीर फ़ख़ अली ने कामरान को भी सूचित कर दिया तथा उससे आने की प्रार्थना की। कामरान एक सेना के साथ दिल्ली की तरफ रवाना हुआ। उसके आगमन की सूचना पाकर हिन्दाल दिल्ली का अवरोध त्यागकर आगरा की तरफ रवाना हो गया। फ़ख़ अली जिस तरह हिन्दाल से सशंकित था उसी तरह कामरान से भी सतर्क था। उसने कामरान को दिल्ली पर अधिकार करने का अवसर नहीं दिया तथा उसे हिन्दाल का पीछा करने के लिए आगरे भेजा। हिन्दाल आगरा से अलवर की तरफ चला गया। दिलदार बेगम तथा अन्य स्त्रियों की मध्यस्थता से हिन्दाल ने क्षमा मांगना स्वीकार किया। उसके गले में कपड़ा बांधकर उसे कामरान के सम्मुख उपस्थित किया गया। इस तरह

५२ शेख़ बहलूल ग्वालियर के प्रसिद्ध सन्त शेख़ मुहम्मद गौस सत्तारी का बड़ा भाई था। बील, ओरियन्टल बाइओग्राफिकल डिक्शनरी, पृ. २५६।

५३ अकबरनामा, १, पृ. १५५; मुन्तख़बुत्तवारीख़, पृ. ३५०; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ८५, तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास, पृ. ४७०।

हिन्दाल का विद्रोह शान्त हुआ ।[५४] हिन्दाल के विद्रोह का दुष्परिणाम हुमायूं के बंगाल अभियान तथा उसके साम्राज्य पर भी पड़ा । हिन्दाल की जागीर तिरहुत तथा पुरनियां बंगाल के प्रवेश द्वार पर थीं । उसके भागने से प्रवेश द्वार का सन्तरी ही भाग गया । हुमायूं के लिए आवश्यक वस्तुओं का पाना कठिन हो गया, जिससे उसकी सेना को अनेक कष्ट उठाने पड़े । आगरा में उसके विद्रोह के कारण केन्द्रीय शासन में कठिनाइयां हुईं । शेर ख़ां ने मुग़लों के इन संकटों से लाभ उठाया तथा उसने जौनपुर और बिहार के अन्य स्थानों पर अधिकार कर लिया । दिल्ली और आगरा के मुग़ल अमीर हिन्दाल के विद्रोह से इतने सतर्क थे कि वे उधर सेना न भेज सके और इस तरह शेर ख़ां के शक्ति-संचय में सहायक बने ।

हुमायूं के बंगाल निवास के समय शेर ख़ां की परिस्थिति कठिन थी । उसके राज्य के तीन तरफ—पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर मुग़ल साम्राज्य था । शेर ख़ां ने अपने राज्य के निकट के भागों को अपने आधीन करने का निश्चय किया । इस तरह उसने बनारस पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया तथा वहां के मुग़ल हाकिम मीर फ़ज़ल अली तथा ७०० मुग़लों को मार डाला ।[५५] यहां से बढ़कर उसने जौनपुर का घेरा डाला । हिन्दू बेग की मृत्यु के पश्चात् बाबा बेग ज़लायर वहां का गवर्नर था । उसने जौनपुर का पूर्ण प्रबन्ध किया तथा आगरा और गौड़ से सेना मंगाने के लिए पत्र लिखा । अफ़ग़ान जौनपुर पर अधिकार न कर सके ।[५६] शेर ख़ां ने जौनपुर को छोड़कर कन्नौज तक के भागों को रौंद डाला । हैबत ख़ां नीयाज़ी, जलाल ख़ां जालू, सरमस्त ख़ां सरवानी तथा अन्य अफ़ग़ान अमीरों ने मिलकर बहराइच पर अधिकार कर लिया तथा वहां

५४ अकबरनामा, १, पृ. १५६ ।

५५ वही, पृ. १५३, तारीख़े शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३६८; जौहर के अनुसार ७०० मुग़लों को शेर ख़ां ने मार डाला । वह स्थान का उल्लेख नहीं करता । कदाचित् वे बनारस में मारे गये थे । डा. क़ानूनगो (शेरशाह, पृ. १७५) का मत है कि चुनार का पतन तथा वहां के तोपचियों के हाथ काटने से शेर ख़ां इतना क्रोधित था कि उसका बदला निकालने के लिए उसने क्रूरता का बर्ताव किया ।

५६ तारीख़े शेरशाही के अनुसार मुग़ल गवर्नर मारा गया । (इलियट तथा डासन, ४ पृ. ३६८) । यह सही नहीं प्रतीत होता क्योंकि गुलबदन बेगम तथा अबुल फ़ज़ल उसके चौसा के युद्ध के समय वहां होने का उल्लेख करते हैं । (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १३५; अकबरनामा, १, पृ. १५८)

से आगे बढ़कर सम्भल से भी मुग़लों को निकाल दिया[५७]। ख़्वास ख़ां को शेर ख़ां ने ख़ानख़ाना यूसूफ ख़ैल के विरुद्ध मुंगेर भेजा। ख़्वास ख़ां ने उसे बन्दी बना लिया। जिसने भी अफ़ग़ानों का विरोध किया, मारा गया। इस तरह दोआब के दक्षिण-पूर्वी भागों पर मुग़ल अधिकार समाप्तप्राय हो गया।

शेर ख़ां ने इन भागों को केवल अधिकृत ही नहीं किया वरन् इनके शासन का भी प्रबन्ध वह करता जाता था। इस तरह उसने लगान वसूल करने के लिए आमिल तथा शान्ति सुव्यवस्था के लिए अन्य कर्मचारी नियुक्त किये।

शेर ख़ां के इन भागों पर अधिकार करने के परिणामस्वरूप बंगाल तथा आगरे का यातायात सम्बन्ध प्राय: टूट-सा गया।[५८] सम्भव है कि शेर ख़ां आगरा से बंगाल अथवा बंगाल से आगरा जाने वाली सूचनाओं को रोककर गलत सूचनाएं भेज देता रहा हो। इस तरह हुमायूं कई महीने बंगाल में रुका रहा।

हुमायूं के बंगाल निवास के कारण

गौड़ पर अधिकार करने के पश्चात् हुमायूं इतने दिन वहां क्यों रुका ? यह एक ऐतिहासिक पहेली है जिसे सुलझाना सरल नहीं है। साधारणतया बंगाल पर अधिकार के पश्चात् वहां उचित शासन प्रबन्ध कर हूमायूं को आगरा वापस आना चाहिये था। हाँ, यदि बंगाल में लगातार युद्ध होता रहता तो उसके ठहरने की आवश्यकता हो सकती थी किन्तु इस तरह का कोई भी संकट नहीं था। इसके विपरीत उसके साम्राज्य तथा राजधानी में महान संकट था। अफ़ग़ानों का उत्कर्ष भयंकर हो रहा था तथा उसके भाइयों की दृष्टि उसके साम्राज्य पर थी। फिर हुमायूं ने अपना समय क्यों नष्ट किया ? समकालीन इतिहासकारों ने इस विषय पर भिन्न-भिन्न मत दिये हैं,[५९] जो इतने संक्षिप्त हैं कि उनसे पूरी बात समझ में

५७ तारीख़े शेरशाही इलियट और डासन, ४, पृ. ३६८।

५८ अकबरनामा, १, पृ. १५७।

५९ जौहर के अनुसार हुमायूं भोगविलास में व्यस्त हो गया और गौड़ पर उसका अधिकार करने के एक मास पश्चात् किसी को दर्शन नहीं हो सका। वह सदा एकान्त महल में रहता था (जौहर, स्टावर्ट, पृ. १८)। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि हुमायूं को बंगाल की जल वायु बहुत अच्छी लगी तथा वह भोगविलास में लीन हो गया (अकबरनामा, १, पृ. १५३)। यातायात के रुकावट के कारण सही समाचार शिविर तक नहीं पहुँच पाते थे। जो समाचार बंगाल पहुँचते भी थे उन्हें हुमायूं तक पहुँचाने का किसी को साहस नहीं होता था क्योंकि कोई भी ऐसी बात जिससे दु:ख तथा परेशानी हो, उससे कहने की मनाही थी (अकबरनामा,

नहीं आती। आधुनिक इतिहासकारों में कुछ ने कल्पना के आधार पर हुमायूं के निवास का समर्थन करने का प्रयत्न किया है।[६०] डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार मुग़लों ने शासन-प्रबन्ध में लापरवाही दिखायी तथा शेर खां से उन्होंने इतनी सरलता से कुछ भागों पर अधिकार कर लिया था कि वे गर्व के नशे में चूर थे। अफ़ीम के नशे के कारण हुमायूं को राज्य कार्य से प्रायः विरक्ति हो गयी थी। शेर ख़ां की सैनिक हलचलों से आगरा तथा बंगाल का यातायात-सम्बन्ध टूट गया

१, पृ. १५७)। निज़ामुद्दीन के अनुसार, हुमायूं अपना समय आमोद-प्रमोद में व्यतीत करता था (तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १६३)। बदायूनी के अनुसार, हुमायूं को बंगाल की जलवायु बहुत पसन्द आयी। उसने उसका नाम जन्नताबाद रखा तथा वहीं रह गया। (मुन्तख़बुत्त-वारीख़, १, पृ. ३४९)। फ़िरिश्ता के अनुसार वहां की जलवायु खराब थी जिससे बहुत से ऊंट और घोड़े मर गये तथा मनुष्य रुग्ण हो गये (फ़िरिश्ता, २, पृ. २१७; ब्रिग्स, पृ. ८४-८५) ब्रिग्स के अनुवाद में घोड़ों तथा ऊंटों के मरने का उल्लेख नहीं है। तारीखे अलफ़ी का लेखक भी बंगाल की जलवायु की खराबी के कारण घोड़ों के नष्ट होने का उल्लेख करता है (रिज़वी, हुमायूं, २, पृ. ५३)। गुलबदन बेगम लिखती है कि वह गौड़ में आराम से सुरक्षित था (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १३४) ख़ुलासत्तवारीख़ के अनुसार हुमायूं ने महल में बहुत-से जश्न किये किन्तु राज्य कार्य के बारे में उदासीन था। तारीखे दाऊदी के अनुसार शेर ख़ां ने एक बहुत ही सुन्दर स्त्री भेंट कर दी थी जिसके कारण हुमायूं ने राज्य कार्य में कोई दिलचस्पी नहीं ली। मख़ज़ाने अफ़ग़ोनी के अनुसार शेर ख़ां ने महल को इतने सुन्दर ढंग से सजा दिया था जिससे हुमायूं उसमें आनन्द में लीन हो गया (बनर्जी हुमायूं, १, पृ. २१३)।

६० डा. बनर्जी ने कल्पना के आधार पर, जैसा वे स्वयं लिखते हैं, हुमायूं के बंगाल के निवास के निम्नलिखित कारण दिये हैं (हुमायूं १, पृ. २१३-१४)।

(१) हुमायूं अपने भाईयों के प्रति उत्तरदायी था। अस्करी उसके साथ था। सम्राट् अस्करी के स्वास्थ्य को ख़तरे में नहीं डालना चाहता था और न अपने अन्य आदमियों को मौत के मुख में डालना चाहता था। (२) दिल्ली तथा गौड़ का यातायात टूट गया था, जिससे उसे पूरा समाचार नहीं प्राप्त हो रहा था। (३) वह शेर ख़ां की शक्ति का मूल्यांकन नहीं कर सका, विशेषतया उसे उसकी युद्धक्षेत्र की शक्ति का अनुमान नहीं था। (४) गौड़ निवास का प्रारम्भिक भाग, हम कल्पना कर सकते हैं, उसकी बीमारी का समय था। विद्वान लेखक का पहला

था जिससे समाचार नहीं मिल पा रहे थे। यही नहीं, आवश्यक वस्तुएँ भी उसे नहीं प्राप्त हो रही थीं।[६१] डा. त्रिपाठी का विचार है कि बंगाल के शासन प्रबन्ध की समस्या आवश्यक वस्तुओं की कमी, हिन्दाल का विद्रोह, यातायात की असुविधा के कारण सही[६२] समाचार प्राप्त करने की कठिनाई तथा तैयारी पूर्ण करने के लिए हुमायूं को रुकना पड़ा।

घटनाओं के अध्ययन से प्रतीत होता है कि हुमायूं को राज्य कार्य से पूर्णतः विरक्ति नहीं हुई थी। सिन्ध के शासक के राजदूत मीर अलीक़ से वह मिला था। जब उसे हिन्दाल के विद्रोह की सूचना मिली तो उसने शेख़ बहलूल को उसे समझाने के लिए भेजा था। इससे स्पष्ट है कि अत्यन्त ही आवश्यक राज्य कार्य उसे करना पड़ता था। अबुल फ़ज़ल, जौहर तथा गुलबदन बेगम सभी लिखते हैं कि वहां की जलवायु अच्छी थी, इस कारण फ़िरिश्ता तथा तारीख़े अलफ़ी के इस कथन को कि वहां की जलवायु खराब थी, स्वीकार किया नहीं जा सकता। किन्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि हुमायूं ने राज्य कार्य में पूर्ण रुचि नहीं ली। इसी समय हिन्दाल, जिसे आवश्यक वस्तुएँ लाने के लिए भेजा गया था, आगरे भाग गया। पशुओं का चारा तथा सेना का भोजन दुष्प्राप्य हो गया, जिससे बहुत से पशुओं की मृत्यु हो गयी।[६३] सेना में कठिनाइयां उपस्थित हो गयीं, लोग मौका पाते ही बंगाल छोड़कर आगरे भाग जाते थे।[६४] इस बीच हुमायूं आनन्द-विनोद तथा जश्न में लगा हुआ था। यह उसके चरित्र का अंग था। उसने बहादुर शाह के विरुद्ध आक्रमण करने के पूर्व भी तरह तरह के जश्न किये थे। प्रकृति से हुमायूं आनन्दप्रिय था जिसके कारण वह शासन के कार्य को भूल सा गया था। अबुल फ़ज़ल लिखता है, वह आनन्द मनाने में इतना व्यस्त रहता था कि उसके पास बुरे समाचार भेजने का किसी को साहस नहीं होता था।

तथा चौथा तर्क कोरी कल्पना पर आधारित है। यदि हुमायूं बीमार रहता तो मुग़ल इतिहासकारों ने इसका अवश्य उल्लेख किया होता। क्या वह गुजरात अभियान के पश्चात् मांडू निवास के समय बीमार था ? यदि उसे अस्करी की बीमारी अथवा सेना के स्वास्थ्य की चिन्ता थी तो उसने उसके लिए क्या किया ?

६१ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १२२-२३।

६२ त्रिपाठी-राइज़ एण्ड फाल, पृ. ९३।

६३ फ़िरिश्ता, २ फा० पृ. २१७।

६४ जैसे ज़ाहित बेग, ख़ुसरो बेग, कुकुल्ताश इत्यादि। अकबरनामा, १, पृ. १५४; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १८-१९।

सम्भव है उसने मस्ती का पूरा आनन्द लेने के लिए अफ़ीम की मात्रा भी बढ़ा दी हो। सम्राट के साथ उसका हरम भी था तथा बंगाल अभियान के प्रारम्भ से पूर्व उसने वहां के शासन का उचित प्रबन्ध कर दिया था इस कारण उस ओर से वह निश्चिंत था। हुमायूं शेर ख़ां की शक्ति का मूल्यांकन नहीं कर सका। जिस व्यक्ति ने एक बार भी खुलकर युद्ध करने का साहस न किया हो तथा प्रत्येक बार भागता रहा हो, क्या वह मुग़ल साम्राज्य को अधीन करने का स्वप्न में भी साहस करेगा ? हुमायूं में एक अच्छे शासक की योग्यता नहीं थी जिसके कारण बंगाल को उसके निवास का कोई लाभ नहीं हुआ।

बंगाल अभियान का परिणाम

हुमायूं के बंगाल अभियान के दो कारण थे। प्रथम शेर ख़ां की शक्ति को चूर करना तथा दूसरा सुल्तान महमूद को बंगाल की गद्दी पर बैठाना। महमूद की मृत्यु तथा उसके पुत्रों की हत्या से दूसरा लक्ष्य सम्भव न हो सका। शेर ख़ां की शक्ति भी कम न हो सकी। इसके विपरीत उसने अपनी शक्ति और बढ़ा ली। इस तरह हुमायूं का अभियान असफल ही कहा जाएगा। राजधानी से अनुपस्थित रहने के कारण वहां बहुत-सी गड़बड़ियां पैदा हो गयीं। शेर ख़ां से सन्धि तोड़ने के कारण हुमायूं का मान बहुत कम हो गया और बहुतों की दृष्टि में वह अविश्वसनीय समझा जाने लगा था। बंगाल निवास से मुग़लों की अकर्मण्यता तथा अयोग्यता पूर्ण रूप से स्थापित हो गयी। उसकी सेना की अवस्था भी बिगड़ती जा रही थी। अनुशासनहीनता, हथियारों की कमी तथा पशुओं की मृत्यु ने उसकी सेना को शक्तिहीन-सा बना दिया था।

हुमायूं के बंगाल निवास का स्वप्न तब टूटा जब उसे अपनी राजधानी की हलचल तथा अफ़ग़ानों द्वारा मुग़ल साम्राज्य पर आक्रमण के समाचार प्राप्त हुए। संकटकालीन परिस्थिति का अनुमान हम इससे लगा सकते हैं कि वर्षा के कारण नदियां भर गयी थीं तथा मार्ग अवरुद्ध हो गया था और यह समय युद्ध के लिए उपयुक्त नहीं था।[६५] फिर भी हुमायूं ने आगरा वापस चलने की आज्ञा दी।

बंगाल से वापसी

बंगाल से लौटते समय किसी को बंगाल का गवर्नर नियुक्त करना आवश्यक था। मुग़लों का आत्मबल इतना कम हो गया था कि बंगाल की गवर्नरी स्वीकार

६५ अकबरनामा १, पृ. १५७।

करने के लिए प्रारम्भ में कोई तैयार नहीं हो रहा था। ज़ाहिद बेग को बंगाल के गवर्नर का पद स्वीकार करने को कहा गया। वह उसके लिए तैयार नहीं हुआ। उसने कहा : "मेरी हत्या के लिए कोई अन्य मार्ग न था जो बंगाल दिया जा रहा है।" हुमायूं इससे बहुत रुष्ट हुआ तथा ज़ाहिद बेग यहां से भाग कर आगरा में हिन्दाल से जा मिला।[६६] अन्त में ५,००० घुड़सवार सेना के साथ जहांगीर कुली बेग को बंगाल में छोड़कर हुमायूं गंगा नदी के उत्तरी तट के मार्ग से आगरे रवाना हुआ।

उत्तरी तट के मार्ग से लौटने के दो कारण थे—(१) ख़वास खां ने मुंगेर जीत लिया था तथा वहां मुग़ल गवर्नर ख़ानख़ाना यूसुफ़ खैल को गिरफ्तार कर लिया था। इस तरह दक्षिणी तट का मार्ग अरक्षित हो गया था। (२) शेर ख़ां की एक सेना गढ़ी के दर्रों को रोके हुए थी जो गंगा के दक्षिणी तट पर था।

उसने दिलावर ख़ां लोदी को मुंगेर को सुरक्षित रखने के लिए भेजा था किन्तु ख़वास खां के विरुद्ध दिलावर ख़ां सफल नहीं हो सका। मुंगेर पर अफ़ग़ानों ने अधिकार कर लिया तथा दिलावर खां को बन्दी बना लिया।

अफ़ग़ानों ने तेलियागढ़ी के पास हुमायूं की सेना को रोकना चाहा। वर्षा प्रारम्भ हो गयी थी जिससे कठिनाइयां और बढ़ गयीं। अधिक वर्षा के कारण मार्ग कीचड़ तथा दलदल से भर गया था; अधिकतर घोड़े थकान से मर गये। सेना का संगठन भी ढीला तथा अस्त व्यस्त था।[६७]

हुमायूं कष्ट तथा कठिनाइयों से इतना घबड़ा गया था कि उसे अपने पर ही विश्वास नहीं रह गया था। कदाचित् उसे यह भी भय था कि उसके अन्य अमीर, विशेषतया अस्करी, उसका साथ छोड़ देंगे। इस स्थिति में उसने अस्करी से अग्रणी दल का नेतृत्व करने की प्रार्थना की तथा उससे कोई चार वस्तुओं को मांगने के लिए कहा। अस्करी ने उससे धन, बंगाल से प्राप्त कुछ बहुमूल्य वस्तुएं, कुछ हाथी तथा हिजड़े मांगे।[६८] उसकी इस मांग को सुनकर उसके अमीर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने कहा कि उस समय जब कि शेर ख़ां से संघर्ष निश्चित था, वीर सैनिकों, धन तथा अभियान का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के स्थान पर अन्य वस्तुओं का मांगना उपयुक्त नहीं था। अस्करी को

६६ जौहर-स्टीवर्ट, पृ. १८-१९, अकबरनामा, १, पृ. १५७।

६७ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १६३।

६८ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. २०। इससे अस्करी के चरित्र का अनुमान लगाया जा सकता है।

उनकी राय पसन्द आयी और उसने हुमायूं से अन्य तीन वस्तुएं मांगीं : (१) सेना की संख्या बढ़ायी जाए, (२) सैनिकों का भत्ता बढ़ाया जाए, (३) आवश्यकता के लिए पर्याप्त धन तैयार रहे। उसने अभियान का उत्तरदायित्व भी ग्रहण करने का वचन दिया। हुमायूं ने उसकी सभी शर्तें स्वीकार कर लीं।

अस्करी ने गढ़ी पार की तथा वहां से कहलगांव होते हुए मुंगेर के निकट पहुँचा। सेना अब तक गंगा नदी के उत्तरी तट के मार्ग से यात्रा कर रही थी। मुंगेर के निकट हुमायूं ने एक युद्ध परिषद् की बैठक की। उसने अपने अमीरों से पूछा कि उसे उत्तरी मार्ग से चलना चाहिए अथवा दक्षिणी मार्ग से ? बहलूल बेग, मुल्ला मुहम्मद परग़ारी तथा अधिकतर अमीरों की राय थी कि सेना को उत्तरी तट के मार्ग से ही आगे बढ़ना चाहिए। इसके विपरीत मुईद बेग ने कहा कि हुमायूं महान सम्राट था और उसे उसी मार्ग से वापस जाना चाहिए जिस मार्ग से वह बंगाल गया था अर्थात् उसे नदी पार कर दक्षिणी मार्ग से यात्रा करनी चाहिए। यदि वह ऐसा न करेगा तो शेर ख़ां उसकी हँसी उड़ाएगा कि सम्राट ने उसके भय से उत्तरी मार्ग ग्रहण किया।[६९] इस मत को हुमायूं ने स्वीकार कर लिया और नदी को पार कर वह नदी के दूसरे (दक्षिणी) तट से यात्रा करने लगा।

हुमायूं के मार्ग बदलने की इतिहासकारों ने कटु आलोचना की है।[७०] इसमें कोई सन्देह नहीं कि हुमायूं ने भावना से प्रभावित होकर नदी पार करने का निश्चय किया। उसकी सेना की अवस्था ठीक नहीं थी। नदी की दूसरी तरफ के भागों पर अफ़ग़ानों का अधिकार था। ऐसी परिस्थिति में दक्षिणी मार्ग में उसे पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जौहर लिखता है कि अफ़ग़ानों की सेना उनके पीछे-पीछे आ रही थी तथा कभी-कभी छोटी-मोटी लड़ाइयां भी होती रहती थीं। मुग़लों की सेना की दीन अवस्था का ज्ञान होने से शेर ख़ां को मुग़लों से युद्ध करने का प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

हुमायूं के निर्णय के पक्ष में कहा जा सकता है कि मुग़ल दक्षिणी मार्ग से परिचित थे तथा उत्तरी मार्ग जंगलों इत्यादि के कारण आगे बहुत सुरक्षित नहीं था। अस्करी ने उत्तरी मार्ग से लौटते समय इस कठिनाई की ओर सम्राट का

६९ वही, पृ. २१-२२, गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १३५।

७० अर्सकिन, २, पृ. १५५; डा. कानूनगो (शेरशाह पृ. १८३) लिखते हैं। "Muyyid Beg proved the evil genius of Humayun who was, as it were, delivered into the hands of the enemy."

ध्यान आकर्षित किया था। दक्षिणी मार्ग से मुग़ल चुनार पहुँचते, जिसका उस समय तक पतन नहीं हुआ था। चुनार का दुर्ग बड़ा था तथा वहां पहुँचकर मुग़लों को अपनी स्थिति ठीक करने में सुविधा थी। इस मार्ग परिवर्तन ने शेर ख़ां की आक्रामक नीति को स्थगित कर दिया तथा उसे रक्षात्मक नीति अपनानी पड़ी। इसके अतिरिक्त इस मार्ग की सुविधा के कारण मुग़ल सेना और भी तेजी से आगे बढ़ने लगी।[७१]

दक्षिणी मार्ग से यात्रा करने में हुमायूं को कोई विशेष सुविधा नहीं हुई। मनेर के निकट उसे अफ़ग़ानों के साथ एक अनिर्णायक युद्ध करना पड़ा। दूसरे दिन अफ़ग़ानों ने हुमायूं की प्रसिद्ध तोप कोहशिकन पर, जिसे रूमी ख़ां ने सफलता के साथ चुनार के दुर्ग में प्रयोग किया था, अधिकार कर लिया। हुमायूं ने लोगों को अस्त्र-शस्त्र धारण करने की आज्ञा दी।[७२] चार दिन बाद हुमायूं चौसा[७३] पहुँचा। उसने कर्मनासा नदी पार कर उसके पश्चिमी तट पर अपना खेमा स्थापित किया।

हुमायूं के बंगाल से वापस होने के समय शेर ख़ां रोहतास के निकट के भागों से उसकी गतिविधि को देख रहा था। हुमायूं के आगे बढ़ने पर उसने अपने अमीरों से परामर्श किया। सभी प्रमुख अमीरों ने मुग़लों से युद्ध करने का परामर्श दिया।[७४] यह देखकर कि अफ़ग़ानों में पूर्ण एकता है तथा वे मुग़लों से युद्ध करने के लिए तैयार हैं, शेर ख़ां रोहतास की पहाड़ियों से बाहर निकला तथा मुग़लों की ओर अग्रसर हुआ। जिस समय हुमायूं चौसा के निकट पहुँचा, लगभग उसी समय शेर ख़ां की सेना भी उसके निकट पहुँचकर बिहिया[७५] नामक गांव में खेमा डालकर मिट्टी के घेरे-से उसकी रक्षा का प्रबन्ध कर रही

७१ त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फाल, पृ. ९४।

७२ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. २२; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १२८, फुटनोट; कानूनगो, शेरशाह, पृ. १८४-१८५।

७३ चौसा बिहार प्रान्त में बक्सर तहसील का एक गांव है। बक्सर से चार मील पश्चिम २५° ३१′ उत्तर तथा ८३° ५४′ पूर्व, कर्मनासा नदी के पूर्वी तट पर स्थित है।

७४ शेर ख़ां के भाषण तथा इस गोष्ठी के निर्णय के लिए देखिए तारीख़े शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३६९-७०।

७५ बाहिया शाहाबाद जिले में, शाहाबाद तहसील में है। अकबरनामा, १, पृ. १५८ के अनुसार बीहिया भोजपुर के निकट एक ग्राम था। मख़ज़ाने अफ़ग़ाना में इसे गलती से शतया या शुया कहा गया है। डार्न, हिस्ट्री

थी। दोनों सेनाओं के बीच में कर्मनासा नदी थी। क़ासिम हुसेन सुल्तान ने निवेदन किया कि उसी समय आक्रमण किया जाए क्योंकि शेर ख़ां की सेना थकी हुई थी जबकि मुग़ल सेना आराम कर ताज़ी हो गयी थी। हुमायूं को यह मत उचित प्रतीत हुआ। किन्तु उसी समय मुईद बेग ने राय दी कि युद्ध प्रतीक्षा करके करना चाहिए, घबड़ाना नहीं चाहिए।[७६] हुमायूं ने इसे स्वीकार कर लिया तथा युद्ध स्थगित हो गया।

कामरान तथा हिन्दाल आगरे में थे। वहां का वातावरण बदल गया था। वहां कामरान तथा मुग़ल अमीरों ने शेर ख़ां के विरुद्ध हुमायूं की सहायता के लिए चौसा की तरफ जाने का भी इरादा किया। इसी समय कुछ लोगों ने कामरान को समझाया कि चौसा जाने से हुमायूं अपने शत्रु का तो नाश कर देगा किन्तु वे (कामरान तथा उसके समर्थक) फंस जाएंगे।[७७] इस राय से कामरान इत्यादि पुनः लौट आये। यह हुमायूं का बहुत बड़ा दुर्भाग्य था। यदि यह मुग़ल सेना वहां पहुँच जाती तो चौसा के युद्ध तथा हुमायूं के भविष्य का नक्शा ही बदल जाता।

चौसा का युद्ध

मुग़ल तथा अफ़ग़ान सेनाएं गंगा नदी के दक्षिण तट पर डटी हुई थीं। दोनों सेनाओं के बीच पतली कर्मनासा नदी थी। कर्मनासा यद्यपि छोटी नदी थी फिर भी उसमें जल इतना था कि उसे आसानी से पार नहीं किया जा सकता था। कर्मनासा और गंगा के संगम के पतले पश्चिमी भाग में अफ़ग़ान इकट्ठे थे और उसके चौड़े भाग में मुग़ल। यदि दोनों की परिस्थितियों को देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अफग़ानों की स्थिति मुग़लों की अपेक्षा खराब थी। वे दोनों नदियों के बीच, त्रिकोण के ऊपरी भाग में पड़ गये थे। यदि मुग़लों

ऑफ अफगान्स पृ. ११८; बाबरनामा, बेवरिज, पृ. ३६२–६७। बिहिया भोजपुर से २५ मील पूर्व तथा बक्सर से पांच मील की दूरी पर है।

७६ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. २२-२३। "Had the emperor followed the sound advice tendered by the latter, the history of India might have been different." (ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १२६) "Humayun committed another blunder in putting off the battle. He could have hoped to succeed by making in immediate attack only." बनर्जी, १, पृ. २२४।

७७ तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास द्वारा अनुवादित, पृ. ४७१; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ८७।

ने कर्मनासा तथा गंगा के बीच के भाग को घेरने का प्रयत्न किया होता तो अफ़ग़ान दो तरफ से नदी और एक तरफ से मुग़ल सेना से घिर जाते और इस त्रिकोण से भाग निकलना कठिन हो जाता, किन्तु दुर्भाग्यवश दोनों सेनाएं एक दूसरे के सामने लगभग तीन महीने (१५३९ के अप्रैल से जून तक) खड़ी रहीं। इस तरह तीन महीने व्यर्थ बीत गये।[७८]

शेर खां के युद्ध स्थगित करने के कई कारण थे। उसने ख्वास खां को अपनी सेना के साथ तत्काल आने के लिए दूत भेजा था। वह उसकी प्रतीक्षा में था। इस बीच वह शक्ति संचय भी करता जा रहा था। शेर खां की दृष्टि आकाश पर भी थी तथा वह चाहता था कि वर्षा प्रारम्भ हो जाए। इसके अतिरिक्त वह उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में था, ऐसा अवसर जब वह अफ़ग़ानों को मुगलों के विरुद्ध मानसिक तथा शारीरिक शक्ति से तैयार कर ले। उसने अभी तक मुग़लों से खुलकर युद्ध नहीं किया था। इस कारण वह बिना पूर्ण तैयारी तथा विजय की आशा के उन पर आक्रमण करने के लिए तैयार नहीं था।

चौसा पहुँचने पर मुग़ल सेना की अवस्था अच्छी नहीं थी। कामरान के आगरा निवास के कारण सेना में घबराहट थी।[७९] अन्न तथा पशुओं के लिए चारे की कमी थी। इस बीच चुनार से बेग मीराक़ तथा जौनपुर से बाबा बेग जलायर अफ़ग़ानों के भय से भागकर चौसा पहुँचे। इनके पहुँचने से सहायता जरूर पहुँची किन्तु साथ ही भोजन तथा चारे की कठिनाई भी बढ़ गयी।[८०] अफ़ग़ानों से पराजित होकर चुनार तथा जौनपुर से वापस आये हुए मुग़ल सैनिकों का, चौसा के मैदान में खड़े मुग़ल सैनिकों तथा सेनानायकों की मनःस्थिति तथा साहस पर क्या प्रभाव पड़ा होगा, इसका हम अनुमान लगा सकते हैं। सेना की शोचनीय अवस्था देखकर हुमायूं ने सहायता लेने के लिए एक द्रुतगामी दूत आगरा भेजा किन्तु आगरा की जो दशा थी उसमें वहां से कोई सहायता न मिल सकी।

इस बीच हुमायूं ने पुनः सन्धि वार्ता प्रारम्भ की। सन्धि वार्ता के लिए हुमायूं ने शेख़ ख़लील[८१] को शेर खां के पास दूत बनाकर भेजा। जिस समय

७८ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. २३ के अनुसार दोनों सेनाएं दो महीने एक दूसरे के सामने डटी रहीं। हैदर मिर्ज़ा (तारीखे रशीदी, एलियस तथा रास पृ. ४७०), बदायूनी (मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३५०) तथा फ़िरिश्ता (ब्रिग्स, २. पृ. ८५) के अनुसार तीन महीने।

७९ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ६८।

८० गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १३५।

८१ बदायूनी (मुन्तखबुत्तवारीख़, १ पृ. ३५०-५१) के अनुसार हुमायूं

हुमायूं का दूत पहुँचा शेर ख़ां आस्तीन चढ़ाये, बेलचा हाथ में लिए जून के महीने की सख़्त गरमी में अपनी सेना के लिए ख़ाइयां खोदने में व्यस्त था। दूत को देखते ही उसने हाथ धोये तथा छाया का प्रबन्ध कर जमीन पर बैठ गया और सन्धि की वार्ता प्रारम्भ कर दी। ऐसा प्रतीत होता है कि सन्धि की शर्तें भी निश्चित हो गयीं। इसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि शेर ख़ां को सम्पूर्ण बंगाल तथा बिहार की उसकी पुरानी जागीर प्राप्त होगी; शेर ख़ां हुमायूं की अधीनता स्वीकार करेगा और उसके नाम से ख़ुत्बा पढ़वाएगा तथा सिक्के चलवाएगा; चुनार का दुर्ग भी शेर ख़ां को प्राप्त होगा।

यह सोचकर कि किसी को यह पता न चले कि मुग़लों ने कठिनाई में पड़कर सन्धि की है, हुमायूं ने शेर ख़ां से कहा कि वह नदी का भाग छोड़ दे जिससे मुग़ल सेना को कर्मनासा पार करने में कठिनाई न हो। इसके अतिरिक्त उसने यह भी स्वीकार कराया कि नदी के पूर्वी तट पर पहुँचने पर शेर ख़ां तथा

ने शेख़ अज़ीज को भेजा। बाद में शेर ख़ां ने शेख़ ख़लील को भेजा। अब्बास के अनुसार (इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३७१) हुमायूं ने शेख़ ख़लील को भेजा। ये प्रसिद्ध सन्त शेख़ फ़रीद शकरगंज के वंश के थे। इन्होंने सबके सामने शेर ख़ां को सन्धि के लिए समझाया। इसी बीच उनके मुंह से निकला, "यदि तुम शान्ति नहीं चाहते हो तो युद्ध करो।" शेर ख़ां ने इसका उत्तर दिया, "आप जो कुछ कह रहे हैं वह मेरे लिए शुभ है।" इसके उपरान्त पारितोषिक देकर उसने शेख़ को विदा कर दिया। पुनः उसने उन्हें एकान्त में बुलाया। उसने उन्हें याद दिलाया कि अफ़ग़ान उनके पूर्वज शेख़ फ़रीद का कितना सम्मान करते थे। उन्हें प्रसन्न कर उसने पूछा कि बह उसे राय दे कि वह युद्ध करे या शान्ति। शेख़ ने जो शेर ख़ां की चापलूसी से फूल गया था, स्वीकार किया कि हुमायूं की सेना की हालत खराब थी तथा युद्ध अफ़ग़ानों के लिए लाभप्रद था। अब्बास के अनुसार इस परामर्श के पश्चात् शेर ख़ां ने युद्ध का निश्चय कर लिया।

जौहर तथा अब्बास के अनुसार हुमायूं ने शेख़ ख़लील को शेर ख़ां के पास भेजा। फ़िरिश्ता, निज़ामुद्दीन अहमद तथा बदायूनी के अनुसार शेर ख़ां ने शेख़ ख़लील को भेजा (जौहर, स्टीवर्ट, २३; फ़िरिश्ता ब्रिग्स, २, पृ. ८७; तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ६८; मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, ३५१)। जौहर वहां उपस्थित था तथा अब्बास ने इस घटना का अधिक वर्णन किया है। इनका कथन सत्य प्रतीत होता है। डा. त्रिपाठी, (राइज़ एण्ड फाल, पृ. ९५) लिखते हैं कि मुग़लों की स्थिति अच्छी थी तथा सन्धिवार्ता शेर ख़ां ने प्रारम्भ की।

उसकी सेना कुछ दूर तक मुग़लों द्वारा पीछा किये जाने पर पीछे हट जाए।[८२] यह इस कारण किया गया जिससे मुग़लों का मान बढ़े तथा यह प्रतीत हो कि अफ़ग़ान अपनी शक्तिहीनता के कारण पराजित हुए हैं।

हुमायूं ने इस तरह की शर्तें क्यों रखीं ? क्या उसे शेर ख़ां की नीयत पर सन्देह था ? अथवा यह केवल औपचारिक था ? यह बताना कठिन है। शेर ख़ां ने मुग़लों की इन शर्तों को स्वीकार कर लिया।[८३] बाद की घटनाओं से यह
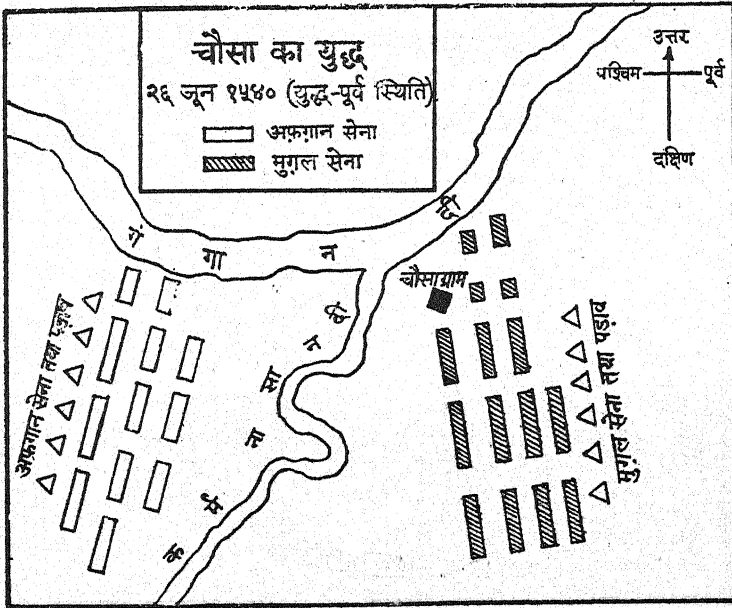
स्पष्ट है कि उसने यह केवल दिखावे के लिए किया था। शेर ख़ां ने हुमायूं को विश्वास दिलाने के लिए मुग़ल खेमें में जो अनाज आ रहा था उसमें रुकावट डालना बन्द कर दिया। हुमायूं ने भी नदी पार करने के लिए पुल बनाने की

८२ तारीखे शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३७१।

८३ बदायूनी (मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३५१) के अनुसार शेर ख़ां ने कुरान की शपथ लेकर इन शर्तों को स्वीकार किया। जौहर (स्टीवर्ट, पृ. २३) के अनुसार सन्धि हो गयी। फ़िरिश्ता के अनुसार दोनों दलों ने शपथ ग्रहण कर सन्धि की शर्तें स्वीकार कीं (ब्रिग्स, २, पृ. ८७)। तबक़ाते अकबरी (डे, २, पृ. ६९) में केवल इतना लिखता है कि सन्धि निश्चय हो गयी।

आज्ञा दे दी। शेर खां इस बीच ख्वास की प्रतीक्षा कर रहा था। ख्वास खां भी ३० मई १५३६ को पहुँच गया। ख्वास खां के पहुँचने के पश्चात् शेर खां ने यह समाचार प्रचारित कर दिया कि झारखण्ड के चेरुह सरदार या जमींदार उस पर आक्रमण करने आ रहे हैं। उसने अपने सैनिकों को तैयार किया तथा प्रायः लगभग आठ मील झारखण्ड की तरफ बढ़ गया। पर यह कहकर कि चेरुह सरदार अभी दूर हैं वह पुनः लौट आया। दूसरे दिन भी इसी तरह जाकर वह
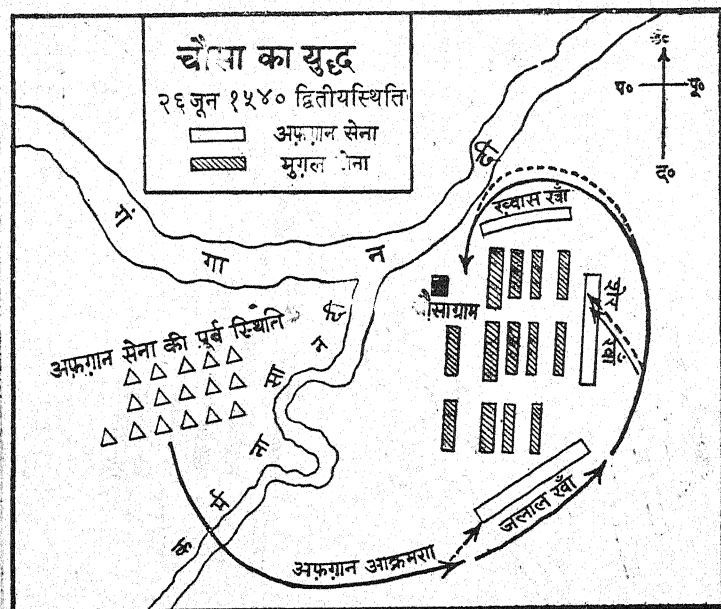
लौट आया। पांच-छः दिन शेर खां इस तरह का युद्धाभ्यास करता रहा।[८४] इससे मुग़लों को विश्वास हो गया कि शेर खां चेरुह सरदार पर आक्रमण कर रहा है। शेर खां के सैनिकों को इससे युद्धाभ्यास भी हो गया तथा उन्हें रात्रि में बिना शोर तथा गड़बड़ी किये आक्रमण करने की आदत भी पड़ गयी।

इसी बीच मानसून आरम्भ हो गया था। पानी बरसने लगा था जिससे

८४ मखज़ने अफ़ग़ाना के अनुसार पांच-छः दिन तक; अब्बास के अनुसार केवल दो दिन ही उसने इस तरह का युद्धाभ्यास किया (डार्न, पृ. १२०, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३७२)। शेरखां ने जिस सरदार पर आक्रमण किया उसकी विवेचना के लिए देखिए होदीवाला, १, पृ. ४५४।

गंगा-कर्मनासा का पाट भी बढ गया था। चेरुह सरदार पर शेर खां के आक्रमण की सूचना पाकर हुमायूं ने शेर खां तथा चेरुह सरदार के युद्ध से अपने को तटस्थ रहने की घोषणा की। हुमायूं का यह विचार आश्चर्यजनक प्रतीत होता है, विशेषतः इस कारण कि उसने यहां भी उसी तरह का व्यवहार किया जैसा गुजरात के अभियान में उसने चित्तौड़ के सम्बन्ध में किया था।

सातवें दिन शेर ख़ां ने उसी तरह का युद्धाभ्यास किया। २५ जून १५३९ को प्रातः शेर ख़ां ने ख़्वास ख़ां को चुने हुए सैनिकों के साथ रवाना कर दिया जैसे वह चेरुह सरदार पर आक्रमण करने जा रहा हो। शेख ख़लील ने पत्र द्वारा हुमायूं को सूचित किया कि ख़्वास ख़ां सेना के साथ रवाना हो गया है तथा सम्राट को सतर्क रहना चाहिए जिससे वह उस पर आक्रमण न कर दे।[८५] किन्तु हुमायूं ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया तथा उस रात सम्राट तथा मुग़ल निश्चिन्त थे।

रात्रि में शेर ख़ां ने अपनी सेना एकत्र की तथा मुग़ल सेना के दूसरी तरफ शान्ति के साथ रवाना हुआ। कुछ दूर जाने पर उसने प्रमुख सरदारों की एक विचार-गोष्ठी की। ख़्वास ख़ां भी जो प्रातः रवाना हो गया था, आ मिला। शेर ख़ां ने मुग़ल सम्राट की धोखेबाजी, अफ़ग़ानों के प्रति उसके विचार, अपनी स्वामिभक्ति इत्यादि का वर्णन कर अन्त में कहा कि युद्ध के सिवा अब अफ़ग़ानों के लिए अन्य मार्ग नहीं रह गया है। सभी सरदारों ने प्रतिज्ञा की कि वे मुग़लों को पराजित करने में प्राण की बाजी लगा देंगे।[८६] कुछ दूर और जाने के पश्चात् उत्साहित अफ़ग़ान सेना प्रातः होने के कुछ पूर्व मुग़ल खेमे की तरफ़ लौट पड़ी (२६ जून १९३९)।[८७]

८५. जौहर, स्टीवर्ट, पृ. २४; क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. १९२।

८६ शेर ख़ां के भाषण इत्यादि के लिए देखिए, तारीखे शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३७३-७४।

८७ चौसा का युद्ध किस दिन हुआ था इस विषय में डा. कानूनगो (शेरशाह पृ. १९४) २७ जून; डा. बनर्जी (हुमायूं, १, पृ. २२८) डा. ईश्वरी प्रसाद (हुमायूं पृ. १३४) तथा डा. यदुनाथ सरकार (मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. ६३) २६ जून स्वीकार करते हैं। बदायूनी (मुन्तख़-बुत्तवारीख़, १, पृ. ३५२) इस घटना को ९४६ हिज़री तथा इसकी तारीख़ के लिए यह मिसरा लिखता है :

'सलामत बुवद पादशाह कसे।' अकबरनामा, १, पृ. १५९ में इसकी तिथि ९ सफ़र, ९४६ हि. (२६ जून, १५३९) दिया है। बेवरिज ने अकबरनामा के अंग्रेजी अनुवाद में, ७ जून, १५३९ दिया है जो सही नहीं है।

मुग़ल सेना शेर ख़ां की गतिविधि से अनभिज्ञ थी। अफ़ग़ानों की चेरुह सरदार के युद्ध में व्यस्तता तथा सन्धि हो जाने की निश्चिन्तता से मुग़ल सेना सुख से सो रही थी। रात की पहरेदारी का उत्तरदायित्व मुहम्मद जमान मिर्ज़ा पर था। ऐसे संकट काल में ऐसे व्यक्ति को, जिसने राज्यारोहण के उपरान्त बराबर हुमायूं का विरोध किया हो, यह उत्तरदायित्व देना हुमायूं की अदूरदर्शिता का स्पष्ट प्रमाण है।

अफ़ग़ानों ने अपनी सेना को तीन भागों में विभाजित किया। पहला दल शेर ख़ां के पुत्र जलाल ख़ां, दूसरा शेर ख़ां तथा तीसरा ख़्वास ख़ां के नेतृत्व में था।[८८] अफ़ग़ानों ने कर्मनासा नदी को पार कर मुग़ल सेना पर आक्रमण किया। उन्होंने नदी के पुलों पर अधिकार कर लिया। जलाल ख़ां ने कर्मनासा की तरफ के भागों, शेर ख़ां ने उससे आगे बढ़कर मुग़ल सेना के मध्य भाग तथा ख़्वास ख़ां ने गंगा के तट के निकट के भाग पर आक्रमण किया। इस तरह मुग़ल सेना तीन तरफ से घिर गयी। उनके दो तरफ नदी थी और बाकी तरफ अफ़ग़ानों की सेना।

मुग़ल सेना इतनी बेखबर थी तथा आक्रमण इतना तीव्र था कि मुग़लों को अपने घोड़ों पर जीन कसने तथा अस्त्र-शस्त्र धारण करने तक का अवसर नहीं मिला।[८९] आक्रमण का समाचार सुनकर हुमायूं तैयार होकर बाहर आया। मुग़ल सेना में गड़बड़ी फैल गयी थी और मुग़ल सैनिकों में भगदड़ मची हुई थी। हुमायूं ने शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया तथा इस भय से कि कहीं उसके अन्य सैनिक भाग न जाएं, उसने निकट के पुलों को तोड़ देने की आज्ञा दी। इसका परिणाम बहुत ही भयंकर हुआ क्योंकि जिस समय हुमायूं युद्ध में पराजित होकर भागना चाहता था, इन पुलों के नष्ट हो जाने से भागना एक तरह से असम्भव हो गया।

हुमायूं ने मुग़ल सेना को अफ़ग़ानों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए इकट्ठा करने का प्रयत्न किया, किन्तु केवल ३०० के लगभग सैनिक ही उसके नक्कारे

८८ अकबरनामा, १, पृ. १५९।

८९ वही, पृ. १५९।
"He (Sherkhan) first of all deluded his enemies by signing a peace treaty and then threw them totally off their guard by undertaking a campaign against his local Hindu enemy, the Chero chieftain." सरकार, मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. ६३।

की आवाज़ पर उसके साथ आ सके। इन सैनिकों के बल पर भी हुमायूं शेर ख़ां से युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। उसने बड़ी बहादुरी के साथ अफ़ग़ानों के एक हाथी को घायल कर दिया जिसमें उसे स्वयं चोट लगी।[६०] हुमायूं युद्ध करके उसका निर्णय कर लेना चाहता था किन्तु कुछ बुद्धिमान साथियों ने देखा कि यह एक तरह से आत्महत्या ही थी। उन्होंने हुमायूं के घोड़े की लगाम पकड़ कर उसे युद्ध के मैदान से बाहर निकाला। कठिनाई से हुमायूं नदी के तीर पर पहुँचा। किन्तु पुलों के टूट जाने से नदी पार करना आसान नहीं था। हुमायूं ने अपना घोड़ा नदी में डाल दिया किन्तु नदी की धारा इतनी तेज़ थी कि उसके लिए नदी पार करना असम्भव हो गया। इस परिस्थिति में निज़ाम नामक एक भिश्ती की मशक की सहायता से हुमायूं नदी के दूसरे तट पर पहुँचा।[६१] जिस समय हुमायूं नदी पार कर रहा था, इस कठिन पराजय की भयंकर परिस्थिति में भी उसका दार्शनिक मस्तिष्क शान्त था। उसने भिश्ती से उसका नाम पूछा और उससे यह सुनकर कि उसका नाम निज़ाम था उसने उस व्यक्ति के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा कि उसका नाम निज़ामुद्दीन औलिया[६२] होगा।

६० जौहर, स्टीवर्ट, पृ. २५।

६१ हुमायूं के निज़ाम द्वारा सहायता पाने की घटनाओं के विषय में समकालीन इतिहासकारों में थोड़ी भिन्नता है। जौहर के अनुसार हुमायूं ने घोड़ा नदी में डाल दिया। वह कुछ ही देर में डूब गया। उसी बीच एक व्यक्ति मशक फुलाये दिखायी दिया। उसने संकेत किया कि "हे बादशाह मशक पकड़ ले।" उसी की सहायता से हुमायूं ने नदी पार की। जौहर उसका नाम पूछने तथा उसे गद्दी पर बैठाने के लिए वचन देने का भी वर्णन करता है, (स्टीवर्ट, पृ. २५-२६)। निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि सम्राट ने अपना घोड़ा नदी में डाल दिया वह आधा डूब गया एक भिश्ती की सहायता से वह बचा तथा पानी से निकलकर आगरा की तरफ रवाना हुआ (तबक़ाते अकबरी डे, २, पृ. ६६)। अबुल फ़ज़ल के अनुसार हुमायूं पुल के निकट पहुँचा। वहाँ पुल टूट चुका था। वह घोड़े सहित नदी में कूद पड़ा। वह घोड़े से पृथक हो गया तथा निज़ाम भिश्ती की मशक की सहायता से उसने नदी पार की। वह भिश्ती से नाम पूछने तथा गद्दी पर बैठाने का वचन देने का उल्लेख करता है (अकबरनामा १, पृ. १६५)।

६२ निज़ामुद्दीन औलिया दिल्ली सल्तनत काल के प्रसिद्ध सन्तों में से थे। इनका जन्म बदायूं में १२३६ में तथा मृत्यु दिल्ली में १३२५ में हुई। इनकी मजार दिल्ली में है जो निज़ामुद्दीन कहलाती है। इनकी जीवनी के लिए देखिए हबीब, हज़रत अमीर ख़ुसरु ऑफ देहली, पृ. २६–४०;

हुमायूं ने निज़ाम को वचन दिया कि वह राजसिंहासन पर आरूढ़ हो जाएगा तो उसको आधे दिन तक बादशाह बनाएगा।[६३] नदी पार कर हुमायूं आगरा की तरफ रवाना हुआ।

चौसा के युद्ध का परिणाम

चौसा का युद्ध निर्णयात्मक था और इसने शेर ख़ां की शक्ति में चार चांद लगा दिये। इस युद्ध में हुमायूं पूर्ण रूप से पराजित हुआ और उसकी सेना नष्ट हो गयी। यही नहीं, इससे मुग़लों के यश को बहुत बड़ा धक्का लगा। बाबर के आगमन से अब तक के युद्धों में यह मुग़लों की प्रथम पराजय थी।

इस युद्ध में कुछ प्रमुख अमीर मारे गये। मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा, जिसने हुमायूं के विरुद्ध कई बार विद्रोह किया था, भागने का प्रयत्न किया पर वह डूबकर मर गया। इसके प्रमुख मृत अमीरों में मौलाना मुहम्मद परग़ारी, मौलाना कासिम अली सद्र, थट्टा के मौलाना जलाल भी थे।[६४] बाबा बेग जलयार तथा कुचबेग को हुमायूं ने अपनी रानी बेग़ा बेगम को हिफाज़त से लाने के लिए भेजा। बेगम के ख़ेमे के पास ये सभी मारे गये। इनके अतिरिक्त लगभग आठ हज़ार मुग़ल सेना भी मारी गयी।[६५]

कई स्त्रियां भी इस युद्ध में या तो डूबकर मर गयीं या उनका पता न चला। गुलबदन बेगम ने इनमें से कुछ स्त्रियों का नाम दिया है। हुमायूं की दो पत्नियां—चांदबीबी तथा शादबीबी—हुमायूं की प्रमुख बेगम बेग़ा बेगम की पुत्री आक़िक़ा तथा सुल्तान हुसेन बैक़रा की पुत्री आयशा बेगम इनमें प्रमुख थीं। इन खोयी हुई स्त्रियों के अतिरिक्त शेर ख़ां ने हुमायूं की प्रमुख पत्नी बेग़ा बेगम को बन्दी बना लिया। शेर ख़ां ने युद्ध के समय भी बेग़ा बेगम की रक्षा का प्रबन्ध किया तथा उसने हुक्म जारी किया कि कहीं भी मुग़ल स्त्रियों अथवा बच्चों को न मारा जाए और जो मिलें उन्हें बेग़ा बेगम के ख़ेमे में भेज दिया जाए। इस तरह लगभग चार हज़ार स्त्रियां जमा हो गयीं।[६६]

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम, ३, पृ. ६३२।

६३ अकबरनामा, १, पृ. १५६।

६४ वही, पृ. १५६।

६५ फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ८८।

६६ इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३७५-७६ तथा पृ. ३७४ का पहला नोट; चौसा में लापता तथा मृत मुग़ल स्त्रियों के लिए देखिए, गुलबदन, हुमायूं-नामा, बेवरिज, पृ. १३६-३७।

जिस समय हुमायूं को बेगा बेगम के लापता होने का समाचार मिला, उसने अपने चार अमीरों को उसे तलाश करने के लिए भेजा किन्तु उस युद्ध में तरदी बेग के अतिरिक्त सभी मारे गये और तरदी बेग ने लौटकर परिस्थिति की सूचना दी। बाद में शेर ख़ां ने बेगा बेगम को हुमायूं के पास यह कहकर वापस भेजा कि उन पर कोई अत्याचार नहीं हुआ है। बेगा बेगम बाद में हाजी बेगम के नाम से प्रसिद्ध हुई। उसे अकबर का विशेष स्नेह प्राप्त था और हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् अकबर के राजत्व में उसने दिल्ली में हुमायूं के मक़बरे का निर्माण कराया।

इस युद्ध ने शेर ख़ां को बंगाल तथा बिहार का तत्काल अधिकारी बना दिया। यह उसकी मुग़लों से खुलकर प्रथम लड़ाई थी। प्रारम्भ का भय समाप्त हो गया। अब वह कभी भी मुग़लों से लड़कर उन्हें पराजित कर सकता था। अविजेय मुग़लों की पराजय ने अफ़ग़ान सैनिकों में अपार उत्साह पैदा कर दिया तथा उन्हें शेर ख़ां के नेतृत्व में कठिन से कठिन कार्य करने के लिए तैयार कर दिया।[९७]

चौसा के युद्ध में हुमायूं की पराजय के कारण

चौसा के युद्ध में मुग़ल पूर्ण रूप से पराजित हो गये। उनकी सेना के अधिकतर सैनिक मारे गये अथवा बन्दी बनाये गये। जो बचे वे इधर-उधर भाग गये। मुग़ल अमीर तथा स्त्रियां भी इस युद्ध में पूर्ण रूप से बचायी न जा सकीं। स्वयं मुग़ल सम्राट बड़ी कठिनाई से नगण्य साथियों के साथ भागकर अपने प्राण बचा सका। अफ़ग़ानों ने मुग़लों की शक्ति को इस तरह चूर कर दिया कि युद्ध के परिणाम के विषय में सन्देह नहीं रह गया।

हुमायूं की पराजय का प्रथम कारण उसकी सेना की दुर्व्यवस्था थी। बहुत-से घोड़े मारे गये थे या बीमार थे। बंगाल में इतने दिनों रुकने के कारण सैनिकों में शिथिलता आ गयी थी। उनके खाने-पीने का प्रबन्ध भी ठीक नहीं था। इस तरह युद्ध के लिए जिस तरह की चुस्ती की आवश्यकता होती है, वह उसकी सेना में नहीं थी।

चौसा के मैदान में तीन महीने रुककर हुमायूं ने शेर ख़ां को उसकी सेना को संगठित करने का सुअवसर दिया। इन तीन महीनों तक रुकने का मुग़लों को कोई लाभ नहीं हुआ। आगरा से कोई सहायता नहीं प्राप्त हो सकी। इसके विपरीत कामरान तथा अस्करी के आगरा के निकट रहने से हुमायूं तथा उसके स्वामिभक्त

[९७] क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. १९६।

अमीरों के मन में संशय बना हुआ था। इसके अतिरिक्त हुमायूं ने मार्ग बदलकर तथा नदी को पारकर अफ़ग़ानों को अपनी हीनावस्था का ज्ञान होने दिया तथा सेना को संकट में डाल दिया।

सन्धि के वातावरण तथा इस विश्वास ने कि अब शेर ख़ां से युद्ध नहीं करना पड़ेगा, मुग़लों को इस तरह निश्चिन्त कर दिया था कि उन्होंने रात्रि की सुरक्षा का भी उचित प्रबन्ध नहीं किया। जिस समय अफ़ग़ानों ने आक्रमण किया मुग़ल बेख़बर सो रहे थे। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह था कि हुमायूं ने उस रात्रि की सुरक्षा का उत्तरदायित्व मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा को सौंपा था। ऐसे व्यक्ति को जिसने हुमायूं के राज्यारोहण के पश्चात् कई बार विद्रोह किया हो, ऐसे उत्तर-दायित्व का कार्य देना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था। मुहम्मद ज़मान को हुमायूं के भाग्य से क्या रुचि हो सकती थी ? जिस समय अफ़ग़ानों ने आक्रमण किया, वह बेख़बर था।

चौसा की पराजय शेर ख़ां में प्रथम श्रेणी के सेनापति का गुण प्रदर्शित करती है। उसने प्रत्येक दृष्टि से अपनी सेना को तैयार कर लिया था। उसकी सेना का साहस तथा धैर्य ऊंचा था और उसके पास युद्ध के सभी साधन उपलब्ध थे। शेर ख़ां ने अपनी सेना को रात्रि में शान्ति से आक्रमण करने का भी प्रशिक्षण दे दिया था। नैपोलियन ने एक बार कहा था कि युद्ध में आदमियों का नहीं बल्कि 'आदमी' का महत्त्व है। शेर ख़ां ने इस युद्ध में अपनी योग्यता से पूर्ण रूप से इस कथन को चरितार्थ कर दिया।

यह कहना कि शेर ख़ां के धोखे से आक्रमण के कारण हुमायूं पराजित हुआ[६८] बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। हुमायूं स्वयं सन्धिवार्ता तोड़कर मनेर से बंगाल की तरफ बढ़ा था। गुजरात अभियान में उसने मांडू के दुर्ग पर सन्धि निश्चित हो जाने के पश्चात् आक्रमण किया था। फिर यदि शेर ख़ां ने उसके साथ उसी तरह का व्यवहार किया तो इसमें आश्चर्य या दुःख का कोई कारण नहीं प्रतीत होता। शत्रु से सदा सतर्क रहना चाहिए। चौसा के युद्धस्थल में मुग़लों ने जैसी निश्चिन्तता दिखलायी वह परिस्थितियों के प्रति उनकी उदासीनता का स्पष्ट प्रमाण है।

६८ "But to these causes of victory we must also add his uttar lack of srcuples. He felt no qualms of conscience in breaking his word and sanctioning arrangements which were contrary to his declared intentions." (ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं पृ. १३६)।

चौसा से आगरा

निज़ाम भिश्ती की मशक की सहायता से गंगा नदी पार कर हुमायूं, नदी के दूसरे तट पर बीरपुर के निकट पहुँचा। वहां से वह चुनार आया।[९९] यहां तीन दिन रुककर वह आगे बढ़ा। यहां गहोर का शासक राजा बीरभान उससे अरैल[१००] के निकट मिला। उसने हुमायूं की बड़ी सहायता की। हुमायूं के साथी भूख, प्यास तथा थकान से परेशान थे। राजा ने उनके लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध किया। बहुत-से सैनिकों के पास घोड़े नहीं थे, उनके लिए घोड़ों का प्रबन्ध किया गया। पांच-छः दिन हुमायूं यहां रुका रहा। इसी समय सूचना मिली कि अफ़ग़ानों की सेना हुमायूं का पीछा करती हुई उसके निकट पहुँच गयी है। बीरभान ने अपने पांच-छः हज़ार सैनिकों के साथ अफ़ग़ानों की सेना का मार्ग रोक लिया। इससे हुमायूं को आगे बढ़ जाने का अवसर मिला।

अरैल से हुमायूं कड़ा पहुँचा। कन्नौज के निकट के गंगातट के भागों पर अफ़ग़ानों ने अधिकार कर लिया था। इस कारण यह मार्ग सुरक्षित नहीं था। गंगातट को छोड़कर हुमायूं यमुनातट के मार्ग से कालपी होते हुए आगरा की तरफ रवाना हुआ। मार्ग में उसके अपने सैनिक उसे छोड़-छोड़कर भागते जा रहे थे। जो अमीर तथा सैनिक उसके पास थे उनके हृदय में भी वह सच्चाई, सहानुभूति तथा स्वामिभक्ति नहीं थी जिसकी हुमायूं को अत्यन्त आवश्यकता थी। कालपी में कासिम क़राचा के पुत्र ने हुमायूं के लिए अत्यधिक उपहार (पेशकश) का प्रबन्ध किया था। किन्तु उसके पिता ने जो हुमायूं के साथ आ रहा था, उसे रोक दिया। इस कारण केवल नाममात्र की चीजें हुमायूं के सामने पेश की गयीं। हुमायूं को इसकी सूचना मिल गयी थी, जिससे उसे बहुत क्रोध आया। उसने पेशकश में से केवल एक जड़ाऊ ज़ीन (और वह भी कामरान को देने के लिए) ही स्वीकार की तथा अन्य वस्तुएं अस्वीकार कर दीं।[१०१]

९९ हुमायूं चौसा से चुनार आया या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। समकालीन इतिहासकारों में केवल गुलबदन बेगम ही लिखती है कि वह चुनार में तीन दिन रुका रहा (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १३५)। मार्ग में हुमायूं सारनाथ में चौखण्डी स्तूप के निकट रुका रहा। वहां एक अभिलेख है जिससे यह प्रमाणित होता है। (बंगाल पास्ट एण्ट प्रेसेन्ट, जिल्द ६३ पृ. ११–१७)।

१०० अरैल इलाहाबाद जिले के करछना तहसील में, इलाहाबाद दुर्ग की दूसरी तरफ, यमुना के दाहिने किनारे नैनी स्टेशन के निकट स्थित था।

१०१ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. २६-२७।

आगरे में

हुमायूं के आगरा पहुँचने[१०२] की सूचना किसी को नहीं थी। सबसे पहले कामरान से मुलाकात हुई। एक-दूसरे को देखते ही दोनों भाइयों की आंखों में आंसू भर आये।[१०३] उसी दिन हुमायूं ने अपने सम्बन्धियों से मुलाकात की; इनमें गुलबदन बेगम भी थी। उसने गुलबदन से कहा कि बंगाल अभियान के समय तो वह सोचता रहता था कि उसे भी साथ ले गया होता, किन्तु हलचल के बाद उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह उसके साथ नहीं गयी थी। हिन्दाल की माता तथा अन्य व्यक्तियों के कहने से हुमायूं ने हिन्दाल को क्षमा कर दिया। वह अलवर से बुलाया गया तथा पुरानी सभी बातें भुलाकर संकट काल में एकता स्थापित हुई। कामरान तथा अस्करी तो वहां थे ही, मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा भी अपने पुत्र के साथ आगरा आ पहुँचा। उसे भी क्षमा कर दिया गया। इस तरह आगरा में सभी प्रमुख मुग़ल अमीर तथा स्त्रियां उपस्थित हो गये। हुमायूं भी शेर ख़ां से युद्ध के लिए अस्त्र-शस्त्र तथा सामग्रियां एकत्र करने में व्यस्त हो गया।

निज़ाम भिश्ती

हुमायूं के आगरा पहुँचने के कुछ ही दिन पश्चात् निज़ाम भिश्ती भी पहुँचा। हुमायूं ने उसे आधे दिन के लिए राज सिंहासन पर बैठने दिया। उसे कुछ शासन सम्बन्धी आदेश देने का अधिकार भी दिया गया तथा उसने जो आदेश दिया उसे चलने दिया गया।[१०४] अमीर तथा अन्य लोगों ने उसका अभिवादन किया।

[१०२] चौसा से आगरा पहुँचने में हुमायूं ने अधिक समय नहीं लगाया। हैदरमिर्ज़ा के अनुसार हुमायूं सफ़र ९४६ हि. (१८ जून १५३९ से १७ जुलाई १५३९ के बीच) में आगरा पहुँचा तारीख़े रशीदी (एलियस तथा रास पृ. ४७१)। डा. क़ानूनगो के अनुसार आगरा पहुँचने में उसने १३ दिन लगाये, अर्थात् वह १० जुलाई को आगरे पहुँचा (शेरशाह, पृ. १९७, टिप्पणी)। हुमायूं मार्ग में तीन दिन चुनार तथा पांच दिन अरैल रुका रहा। क्या हुमायूं ने केवल पांच दिन ही में यह यात्रा पूरी की? यह सम्भव नहीं प्रतीत होता। उसने इससे अधिक समय लगाया होगा।

[१०३] तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ७०; मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३५३।

[१०४] अबुल फ़ज़ल نیم روز ('नीम रोज़') शब्द का प्रयोग करता है। (अकबरनामा, १, पृ. १६०) गुलबदन बेगम का वर्णन अबुल फ़ज़ल के वर्णन से कुछ भिन्न है। गुलबदन के अनुसार निज़ाम दो दिन तक

कामरान बीमारी का बहाना कर दरबार में नहीं गया। हुमायूं के इस कार्य से वह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने हुमायूं से कहलाया कि उस समय जब शेर ख़ां निकट था इस तरह का कार्य उचित न था। भिश्ती को अधिक से अधिक इनाम इत्यादि दिया जा सकता था किन्तु उसे सिंहासन पर बैठाने की आवश्यकता नहीं थी।[१०५]

कामरान के कथन में बहुत कुछ तथ्य था। निज़ाम एक बहुत ही साधारण एवं निम्न कोटि का व्यक्ति था। ऐसे व्यक्ति को मुग़ल सिंहासन पर बैठाने तथा अमीरों द्वारा उसका अभिवादन करने से मुग़ल सिंहासन की मानहानि हुई। हुमायूं का यह कार्य एक मज़ाक बन गया। यह कार्य भावना से प्रभावित था। जिस व्यक्ति ने हुमायूं के प्राण बचाये थे तथा जिसके कारण उसे पुनः सिंहासन पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उसके आभार से वह दबा जा रहा था। हुमायूं का यह दृष्टिकोण व्यक्तिगत रूप में आदर्श कहा जा सकता है किन्तु प्रशासनीय विचार से यह उचित नहीं था।

विचार विमर्श

हुमायूं जुलाई १५३९ में आगरे पहुँचा। इस समय से लेकर शेर ख़ां के विरुद्ध पुनः आक्रमण करने के समय (मई, १५४०) तक लगभग दस महीने हुमायूं आगरे में ही रहा। यह समय उसने युद्ध की तैयारी तथा शेर ख़ां के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा स्थापित करने में व्यतीत किया। क्या इतना समय व्यर्थ के विचार-विमर्श करने में बरबाद करना उपयुक्त था? यदि नहीं, तो हुमायूं इस बीच क्या करता रहा?

चौसा से लौटने के पश्चात् हुमायूं स्वयं चालीस दिन बीमार रहा।[१०६] कदाचित् चौसा के युद्ध से उसे ऐसा मानसिक धक्का लगा जिसे सहना उसके लिए सरल नहीं था। चौसा के युद्ध में उसे कुछ घाव भी लगे थे जिससे उसका कष्ट और बढ़ गया था। इस तरह कुछ दिन यों ही बीत गये।

कामरान की सेना में बीस हजार बहुत ही अच्छे सैनिक थे। यदि उसने यह सेना हुमायूं की सेवा में उपस्थित कर दी होती तो संभव था कि हुमायूं ने

सिंहासन पर बैठाया गया और वह जिसको जो चाहता था देने दिया गया। अमीरों को उसे अभिवादन करना पड़ता था (हुमायूंनामा बेवरिज पृ. १४०)। जौहर के अनुसार (स्टीवर्ट, पृ. २७) उसे केवल दो घंटे के लिए ही गद्दी पर बैठाया गया।

१०५ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १४०।

१०६ वही पृ. १३७।

अफ़ग़ानों से चौसा की पराजय का बदला ले लिया होता। किन्तु कामरान अपनी सेना को हुमायूं के नेतृत्व में भेजने के लिए तैयार नहीं था। उसने शेर खां से स्वयं युद्ध करने की आज्ञा मांगी। हुमायूं ने इसकी आज्ञा नहीं दी तथा उसने कहा कि 'शेर खां ने मुझसे युद्ध किया है और उसका बदला मैं लूंगा।' इस तरह दोनों भाइयों में समझौता न हो सका।[१०७]

हुमायूं ने कामरान के आक्रमण करने का क्यों विरोध किया? हुमायूं के राज्य काल के प्रारम्भ में कामरान का व्यवहार अच्छा नहीं था। हुमायूं उसे संशय की दृष्टि से देखता था। बंगाल से इतने शीघ्र लौटने का एक प्रमुख कारण कामरान की राजधानी में उपस्थिति भी थी। हुमायूं को भय था कि यदि कामरान शेर खां को पराजित करने में सफल हो जाता तो उसकी शक्ति में वृद्धि हो जाती तथा वह जनप्रिय भी हो जाता। उस समय वह हुमायूं के लिए एक कठिन परिस्थिति उपस्थित कर सकता था। इसके अतिरिक्त कामरान को भेजने से हुमायूं की कमज़ोरी स्पष्ट हो जाती और प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि में हुमायूं एक शक्तिहीन मनुष्य समझा जाता। हुमायूं के स्वयं युद्ध करने के निश्चयात्मक विचार में आत्म-निर्भरता तथा आत्मविश्वास की झलक मिलती है। वास्तव में यह हुमायूं की प्रतिष्ठा का प्रश्न था।[१०८]

कामरान अपने दृष्टिकोण से अपनी सेना को हुमायूं के नेतृत्व में देने के लिए

१०७ अबुल फ़ज़ल के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में कामरान ने शेर खां के विरुद्ध अपने नेतृत्व में युद्ध करने के लिए अपनी सेवाएं अर्पित कीं। यह स्वीकार न होने से उसने अपनी सेना नहीं दी तथा कुछ दिन पश्चात् लाहौर चला गया (अकबरनामा, १, पृ. १६१-६२)। जौहर ने इस विषय में कुछ नहीं लिखा है। बदायूनी (भाग १, पृ. ३५३-५४) भी लिखता है कि कामरान अपने नेतृत्व में शेर खां से युद्ध करना चाहता था। उसके अस्वीकार होने पर उसने पंजाब जाने का निश्चय किया। निज़ामुद्दीन अहमद नेतृत्व के प्रश्न का वर्णन नहीं करता है। फ़िरिश्ता का वर्णन भी निज़ामुद्दीन के समान है।

१०८ डा. त्रिपाठी का मत भिन्न है। उनके अनुसार :
"Humayun had an experience of the strength & resourcefulness of Sherkhan. He did not, therefore, encourage Kamran to invite a conflict with him until full preparations were completed. Moreover, it was not wise to stake the troops of Kamran which appeared to be the only effective force then available". (राइज़ एण्ड फाल पृ. ९७)

तैयार नहीं था। हुमायूं की पराजय के पश्चात् कामरान उसे अयोग्य समझने लगा था और उसका विचार था कि हुमायूं शेर ख़ां को पराजित करने में सफल नहीं हो सकेगा। हुमायूं द्वारा निज़ाम भिश्ती को गद्दी पर बैठाने के कारण कामरान बहुत नाराज़ था और उसने हुमायूं को इस कार्य के लिए क्षमा नहीं किया। इसके अतिरिक्त कामरान के परामर्शदाता ख़्वाजा कलां ने गंगा के भाग में किसी भी तरह का अभियान करने की राय नहीं दी और इस परामर्श को कामरान ने स्वीकार कर लिया। वास्तव में दोनों भाइयों में पारस्परिक सद्भावना की कमी थी। ऐसी परिस्थिति में कामरान को यह संदेह था कि कदाचित् हुमायूं उसकी सेना का उपयोग उसी के विरुद्ध करे। इसके अतिरिक्त कामरान को अपनी रक्षा के लिए भी सेना की आवश्यकता थी। ईरान की सेना ने कुछ ही दिन पूर्व दो बार क़न्धार पर आक्रमण किया था। अपने चुने हुए सैनिकों के अन्त के पश्चात् इन भागों पर अधिकार रखना सरल नहीं था। कामरान की काबुल से अनुपस्थिति काल में मध्य एशिया में ऊज़बेक नेता ऊबेदुल्ला खां की मृत्यु हो गयी थी।[१०६] उसकी मृत्यु के पश्चात् योग्य नेता के अभाव में वहाँ गड़बड़ी का भय था। कामरान कदाचित् निकट रहकर मध्य एशिया पर दृष्टि रखना चाहता था। इसके अतिरिक्त ऊबेदुल्ला खां की मृत्यु के पश्चात् शाह तहमास्प को अब ऊज़बेकों से भय नहीं था। इस कारण कामरान के प्रान्त पर ईरानी आक्रमण का भय था।

हुमायूं के बंगाल निवास के समय कामरान आगरा आया, किन्तु वह मीर फख़ अली के सहायता मांगने पर आया था। इसमें कोई संदेह नहीं कि यहाँ आकर वह हिन्दाल को सही मार्ग पर लाने में सफल हुआ तथा उसने कोई ऐसा कार्य नहीं किया जो हुमायूं के लिए हानिकर हो। यदि वह चाहता तो अपने २०,००० सैनिकों की सहायता से आगरा तथा दिल्ली पर अधिकार करने का प्रयत्न करता, किन्तु उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया। फिर उसने हुमायूं की सहायता क्यों नहीं की ? कदाचित् अपनी सुरक्षा का विचार उसके मन में इतना बढ़ गया था कि वह भागकर पंजाब जाना चाहता था जिससे वह अपने भूभाग की रक्षा कर सके। इस तरह दोनों भाइयों का विवाद कामरान की सेना के उपयोग का नहीं वरन् उसके नेतृत्व का था।

इसी बीच कामरान बीमार पड़ गया। भारत की जलवायु उसके लिए बहुत अनुकूल नहीं थी। दो-तीन महीने की बीमारी के कारण वह अपने हाथ-पैर का

[१०६] अहसानत्तवारीख़, १, पृ. २९४-३०३।

ठीक तरह प्रयोग भी नहीं कर पाता था।[११०] उसका रोग इतना अधिकबढ़ गया और वह इतना कमजोर हो गया कि पहचाना भी नहीं जाता था तथा उसके जीवित रहने की आशा भी कम थी।[१११] प्रसिद्ध हक़ीम अबुल बक़ा की दवा से वह कुछ संभला। बीमारी में उसे यह सन्देह हो गया कि हुमायूं तथा उसकी विमाताओं ने मिलकर उसे विष दे दिया है। जब हुमायूं को उसके इस सन्देह का पता चला तो वह स्वयं उसके पास गया तथा उसने शपथ लेकर उसे विश्वास दिलाने का प्रयास किया कि उसका सन्देह निराधार था, किन्तु कामरान को विश्वास नहीं हुआ। उसने लाहौर जाने का निश्चय कर लिया तथा हुमायूं से अनुमति मांगी। उस परिस्थिति में हुमायूं उसको अनुमति देने के लिए तैयार नहीं था तथा उसने उसकी प्रार्थना पर ध्यान ही नहीं दिया। किन्तु कामरान बारबार जाने की ज़िद करता था। कामरान ने हैदर मिर्ज़ा को अपनी तरफ मिला लिया तथा समस्त राज्यकार्य उसे ही सौंप दिया। उसने हैदर मिर्ज़ा से लाहौर चलने की याचना की। उसने दीनता से कहा, "ऐसी स्थिति में जब शत्रुओं ने मेरे राज्य पर एवं रोग ने मेरे शरीर पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया है और मैं रुग्ण हो गया हूँ, भ्रातृभाव का हाथ मेरी ओर से मत खींचो तथा इन दो महान् संकटों से मेरी रक्षा करो और मुझे लाहौर पहुँचा दो।"[११२] हुमायूं को जब इसकी सूचना मिली तो वह बहुत ही चिन्तित हुआ। अत्यन्त द्रवित शब्दों में उसने कामरान से कहा कि "शेर ख़ां तथा मुग़ल सम्राट में युद्ध छिड़ा हुआ है। इसी युद्ध पर बाबर के पुत्रों तथा साम्राज्य का भाग्य निर्भर है। यदि हैदर मिर्ज़ा लाहौर चला जाएगा तो वह सुरक्षित स्थान में पहुँच जाएगा तथा बच जाएगा किन्तु बाकी सभी मारे जाएंगे। हुमायूं की पराजय के पश्चात् लाहौर के पतन में देर नहीं लगेगी।" उसने हैदर मिर्ज़ा को याद दिलाया कि उसका उत्तरदायित्व केवल कामरान के प्रति ही नहीं वरन् सभी के प्रति था। यदि वह इस तरह चला जाएगा तो सभी यही कहेंगे कि हैदर मिर्ज़ा ने कठिन

११० तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास, पृ. ४७२। फ़िरिश्ता के अनुसार उसकी बीमारी का कारण उसके खानपान में त्रुटियां थीं जिसके कारण उसको पेचिस (रक्तातिसार) का रोग हो गया (ब्रिग्स, २, पृ. ८९)। निज़ामुद्दीन अहमद उसके रोग के लिए 'अमराज़े मुतज़ादा' अर्थात् एक दूसरे के विरुद्ध रोग लिखता है (तबकाते अकबरी, फा० पृ. ४४)।

१११ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज पृ. १४०-४१।

११२ तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास, पृ. ४७२-७३।

समय में बाबर के वंशजों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया।[११३]

हुमायूं की प्रार्थना पर हैदर मिर्ज़ा तो रुक गया किन्तु, कामरान इससे बहुत ही नाराज़ हुआ। उसने लाहौर जाने का पूर्ण निश्चय कर लिया। उसकी ज़िद को देखकर हुमायूं ने उससे प्रार्थना की कि यदि वह जाना ही चाहता है तो जाए पर अपनी सेना छोड़ता जाए। कामरान इसके लिए भी तैयार नहीं हुआ। उसने पहले ख्वाजा़ कलां को लाहौर भेज दिया तथा नाममात्र के कुछ सैनिकों को छोड़कर[११४] स्वयं भी चला गया। व्यापारियों तथा अन्य लोगों ने अपने परिवारों की स्त्रियों इत्यादि को भी कामरान के साथ भेज दिया। कामरान ने गुलबदन से भी लाहौर चलने के लिए कहा। प्रारम्भ में तो वह तैयार नहीं हुई किन्तु बाद में हुमायूं के कहने से वह उसके साथ चली गयी।[११५]

कामरान के इस तरह हुमायूं को कठिन परिस्थिति में छोड़कर जाने से, मुग़लों की मनःस्थिति तथा साहस पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह था कि जिस समय कामरान रवाना हुआ उसी समय शेर ख़ां की प्रगति की भयंकर सूचनाएं प्राप्त हुईं। हैदर मिर्ज़ा, जो उस समय वहां उपस्थित था, स्पष्ट लिखता है कि कामरान मिर्ज़ा के प्रस्थान के साथ ही साथ शेर ख़ां के सौभाग्य की उन्नति तथा चग़ताई शक्ति का ह्रास प्रारम्भ हो गया।[११६] अबुल फ़ज़ल भी कामरान के इस कार्य की निन्दा करता है।[११७] उसका सब से बड़ा अपराध तो यह था कि वह स्वयं ही नहीं गया बल्कि अन्य व्यक्तियों को भी हुमायूं के साथ से भगा ले जाना चाहता था। उसके लाहौर चले जाने का प्रभाव इससे स्पष्ट हो जाता है कि लोग भागकर रक्षित स्थान में जाने लगे। शेर

११३ वही, पृ. ४७३-७४; अकबरनामा, १ पृ. १६२।

११४ हैदर मिर्ज़ा के अनुसार कामरान ने इस्कन्दर सुल्तान के नेतृत्व में एक हज़ार सैनिक छोड़े थे (तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास, पृ. ४७४)। फ़िरिश्ता इसका समर्थन करता है (ब्रिग्स, २, पृ. ८६)। अबुल फ़ज़ल के अनुसार कामरान ने तीन हजार आदमी मिर्ज़ा अब्दुल्लाह मुग़ल के नेतृत्व में छोड़े (अकबरनामा, १, पृ. १६२)। निज़ामुद्दीन अहमद के अनुसार उसने प्रारम्भ में तो अपनी सेना छोड़ने का वचन दिया था किन्तु बाद में केवल दो हज़ार सैनिक आगरा में छोड़कर सेना लेकर लाहौर चला गया (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ७१)।

११५ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज़ पृ. १४१-४२।

११६ तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास, पृ. ४७२।

११७ अकबरनामा, १, पृ. १६१-६२।

खां का आतंक इतना अधिक था कि उसके पास कोई नहीं गया। भय और आतंक युद्ध की पहली पराजय होती है। मुग़लों का हतोत्साह उनकी पराजय का संकेत कर रहा था।

इस तरह हुमायूं ने लगभग दस महीने बरबाद कर दिये। उसने तैमूर वंशियों, विशेषतया अपने भाइयों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। पारिवारिक मतभेद, उसका आलसी स्वभाव तथा बीमारी उसके इतने दिनों आगरा रुकने के प्रमुख कारण थे।

चौसा के युद्ध के पश्चात् शेर खां की गतिविधि

चौसा की विजय ने अफ़ग़ानों का उत्साह तथा यश आकाश तक फैला दिया। शेर खां ने फिर भी अपना समय बरबाद नहीं किया। चौसा के युद्ध के पश्चात् उसने ख्वास खां को बिहार की तरफ झारखण्ड के चेरुह सरदार के विरुद्ध और जलाल खां बिन जालू तथा हाजी खां बटनी को बंगाल की तरफ भेजा और स्वयं हुमायूं का पीछा करता हुआ आगे बढ़ा।[११८] उसने गंगा नदी को पार कर कन्नौज तक के भूभागों पर अपना अधिकार कर लिया। चौसा की विजय के पश्चात् उसने बरमज़ीद गौड़[११९] को एक सेना के साथ हुमायूं का पीछा करने के लिए भेज दिया। शेर खां हुमायूं को कदाचित् बन्दी नहीं बनाना चाहता था। इसी कारण उसने उसका पीछा करने में उतनी सक्रियता नहीं दिखलायी किन्तु गंगा के पूर्वी तट के भूभागों पर उसने अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

शेर खाँ के सेनानायकों (हाजी खां बटनी तथा जलाल खां बिन जालू) ने गौड़ को घेर लिया। मुग़ल सेनापति जहांगीर कुली बेग ने रक्षा करने का प्रयत्न किया। किन्तु अफ़ग़ान सेना अधिक थी तथा आगरे से किसी तरह की सहायता की आशा नहीं थी। अन्त में उसने गौड़ खाली कर दिया। वह आगरे की तरफ रवाना हुआ, किन्तु अफ़ग़ानों के इस आश्वासन पर कि उसके प्राण नहीं लिये जाएंगे, उसने समर्पण कर दिया। इसी समय बिहार का प्रबन्ध कर शेर खां भी गौड़ पहुँच गया। अफ़ग़ानों ने अपने वचन का पालन नहीं किया तथा जहांगीर

११८ तारीखे शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३७७; डार्न, हिस्ट्री ऑफ दी अफ़ग़ान्स, पृ. १२३।

११९ बरमज़ीद गौड़ एक अफ़ग़ान तथा मुसलमान था। डा. कानूनगो का यह कथन कि वह राजपूत था तथा उसका नाम ब्रह्मजीत या ब्रह्मादित्य था (शेरशाह, पृ. २२५, ३६९) सही नहीं है। देखिए होदीवाला, १, पृ. ४५७-५८।

कुली को पांच हजार मुग़ल सैनिकों के साथ, जिन्हें हुमायूं गौड़ से आगरा वापस जाते समय छोड़ आया था, शेर खां कि आज्ञा से मार डाला गया।[१२०] ख़ानख़ाना यूसुफ खैल को भी, जिसे मुंगेर में अफ़ग़ानों ने बन्दी बनाया था, मार डाला गया। ख्वास खां ने भी चेरुह सरदार को पराजित कर उसके राज्य को नष्ट कर डाला।

इस तरह शेर खां वास्तव में एक बड़े भूभाग का स्वामी बन गया था, किन्तु अभी तक वह केवल अफ़ग़ानों का नेता था तथा उसे वैधानिक स्थान प्राप्त नहीं हुआ था। उसने गौड़ में 'अल सुल्तान उल आदिल' की उपाधि धारण की, अपने नाम से सिक्के चलाये तथा उसके नाम से खुत्बा पढ़ा गया। इस तरह उसने राजत्व ग्रहण किया तथा शेर खां से शेरशाह बन गया।[१२१]

पूर्ण रूप से सुल्तान बनने के लिए दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार करना आवश्यक था। ख़िज्र खां को बंगाल का गवर्नर नियुक्त कर शेरशाह हुमायूं से अन्तिम युद्ध करने के लिए १५४० के प्रारम्भ में बंगाल से रवाना हुआ। इलाहाबाद के निकट पहुँचकर उसने अपने पुत्र कुतुब खां को, मालवा के जागीरदारों को आगरा तथा दिल्ली के निकट गड़बड़ी करने के लिए प्रोत्साहित करने को, मांडू भेजा। वह स्वयं कन्नौज की तरफ बढ़ गया। मालवा, सारंगपुर तथा मांडू के शासक मल्लू खां रायसीन तथा चन्देरी के शासक पूरनमल, तथा कुछ अन्य जागीरदारों ने कदाचित् ईसा खां को सहायता का वचन दिया था। कुतुब खां के चन्देरी की तरफ जाने की सूचना पाते ही हुमायूं ने यादगार नासिर मिर्ज़ा, क़ासिम हुसेन खां ऊज़बेक तथा इस्कन्दर सुल्तान को एक सेना के साथ उसके विरुद्ध भेजा।[१२२] मालवा के सरदारों ने मुग़लों के आगमन की सूचना पाकर कुतब खां की सहायता

[१२०] अकबरनामा, १, पृ. १६०; तारीखे शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३७८।

[१२१] शेर खां ने अपने को कहाँ सुल्तान घोषित किया, यह विवादग्रस्त है। समकालीन इतिहासकार एकमत नहीं हैं। इसकी विवेचना के लिए देखिए, क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. २००-२०८।

[१२२] डा. ईश्वरी प्रसाद अब्बास के आधार पर लिखते हैं कि अस्करी तथा हिन्दाल भेजे गये (हुमायूं, पृ. १४२); बदायूंनी (मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३५४), निज़ामुद्दीन अहमद (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ७२), फ़िरिश्ता (ब्रिग्स, २, पृ. ८६), अबुल फ़ज़्ल (अकबरनामा, १, पृ. १६१) के अनुसार यादगार नासिर मिर्ज़ा, क़ासिम हुसेन सुल्तान, इस्कन्दर सुल्तान भेजे गये। यही सत्य प्रतीत होता है।

नहीं की। कुतुब ख़ां मुग़लों द्वारा पराजित हुआ तथा मारा गया। शेर ख़ां को अपने पुत्र की मृत्यु का बहुत दुःख हुआ। उसने मालवा के सरदारों को, जिन्होंने वचन देकर भी सहायता नहीं दी, कभी भी क्षमा नहीं किया तथा बाद में उसने उनसे इसका बदला लिया। कुतुब ख़ां की पराजय से मुग़लों को कुछ उत्साह हुआ।

हुमायूं का आगरे से प्रस्थान

शेरशाह के कन्नौज की तरफ बढ़ने की सूचना पाकर हुमायूं आगरा से रवाना हुआ (मई १५४०)। उसने सेना इकट्ठी अवश्य की थी, किन्तु जल्दी के कारण सेना संगठित न हो पायी थी। इसके अतिरिक्त कामरान तथा कुछ अन्य अमीरों के चले जाने के कारण निराशा का वातावरण फैला हुआ था। बीरभान ने (जो अरैल से हुमायूं के साथ आगरा आया था) उसे यह सुझाव दिया कि शेर ख़ां से युद्ध करने के स्थान पर पन्ना राज्य की पहाड़ियों में मुग़ल सेना ले जायी जाए तथा उसे अच्छी तरह प्रशिक्षित करने के पश्चात् शेरशाह पर आक्रमण किया जाए। हुमायूं ने इस परामर्श को स्वीकार नहीं किया। बीरभान का सुझाव बहुत कुछ अंशों में विचारणीय था किन्तु शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति में आगरा छोड़ देने का अर्थ वास्तव में बिना युद्ध के पराजय स्वीकार करना था। हुमायूं ने इस कारण शेरशाह से युद्ध करने का निश्चय किया। बीरभान के इस सुझाव से मुग़ल सेना की वास्तविक स्थिति का हम अनुमान लगा सकते हैं।

आगरे से चलकर हुमायूं ने कन्नौज के निकट भोजपुर[१२३] नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला। गंगा की दूसरी तरफ कन्नौज के सामने शेरशाह अपनी सेना के साथ डटा हुआ था। मुग़लों ने गंगा नदी पार कर भोजपुर घाट पर एक पुल तैयार किया। अफ़ग़ानों ने उन्हें रोकना चाहा। एक छोटा-सा संघर्ष हुआ।[१२४] हुमायूं की सेना ने नदी पार नहीं की तथा नदी के किनारे और आगे बढ़कर कन्नौज के निकट अपना पड़ाव डाला। अफ़ग़ान नौकाओं पर मुग़ल सेना का पीछा

[१२३] डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार भोजपुर कन्नौज से ३१ मील उत्तर-पश्चिम था (हुमायूं, पृ. १४३); डा. बनर्जी (हुमायूं, १, पृ. २४०, फुटनोट) के अनुसार २३ मील।

[१२४] अबुल फ़ज़ल लिखता है कि १५० मुग़ल सैनिकों ने अफ़ग़ानों की बड़ी सेना को पराजित कर दिया तथा ख़ेमे में वापस आये। उसी के पश्चात् अफ़ग़ानों ने गर्दबाज़ नामक हाथी के द्वारा पुल तोड़ने का प्रयत्न किया तथा उसके स्तम्भों को तोड़ डाला। उसी समय मुग़लों ने तोप चलाई

कर रहे थे। मुग़लों को उन पर तोप चलानी पड़ी। अफ़ग़ान इस बार भयभीत नहीं थे तथा युद्ध के लिए लालायित थे। मुग़लों के कन्नौज पहुँचने से दोनों सेनाएं एक दूसरी के सामने आ गयीं।

हुमायूं के गंगा के तट पर पहुँचते ही शेरशाह ने अपने एक दूत द्वारा हुमायूं के पास यह संदेश भेजा कि चूंकि दोनों सेनाएं युद्ध के लिए तैयार हैं इसलिए यह आवश्यक है कि दोनों नदी के एक तरफ हो जाएं। उसने कहा कि यदि हुमायूं नदी को पार करने के लिए तैयार न हो तो वह स्वयं नदी को पार करेगा। नदी पार करते समय दूसरी सेना कुछ मील पीछे हट जाएगी जिससे आक्रमण का भय न रहे। हुमायूं ने शेरशाह के इस वचन को एक तरह से चुनौती समझा और उसने स्वयं नदी को पार करने की इच्छा प्रकट की। मुग़लों के नदी पार करते समय शेर ख़ां दस-बारह मील पीछे हट गया। जिस समय हुमायूं की सेना नदी पार कर रही थी, शेरशाह के कुछ परामर्शदाताओं ने उससे कहा कि हुमायूं पर उसी समय आक्रमण कर दिया जाए, किन्तु शेरशाह ने उन्हें समझाया कि ऐसा करना उचित नहीं। इस बात से शेरशाह की बहादुरी और उसकी महत्ता का पता चलता है।

हुमायूं का नदी पार करना उसकी रण नीति के लिए बहुत सहायक नहीं हुआ। नदी पार करते समय मुग़ल सेना की वास्तविक स्थिति का ज्ञान अफ़ग़ानों को हो गया। इसके अतिरिक्त नदी पार करने के पश्चात् जिस स्थान पर मुग़लों ने अपना पड़ाव डाला वहां भूमि नीची थी जिससे मुग़लों को बाद में वर्षा प्रारम्भ होने के पश्चात् बड़ी कठिनाई हुई। हुमायूं ने नदी पार करने का निश्चय भावनावश किया जिससे अफ़ग़ान यह न समझें कि मुग़ल कायर हैं। इसके अतिरिक्त उस समय हुमायूं की सेना से उसके सैनिक भाग रहे थे जिससे युद्ध अधिक दिन टालना कठिन मालूम हो रहा था।[१२५]

कन्नौज का युद्ध

दोनों सेनाएं एक दूसरी के सामने कन्नौज[१२६] के निकट लगभग एक महीने

जिससे हाथी के पांव कट गये तथा शत्रु पराजित हुए। (अकबरनामा, १, पृ. १६३)। कदाचित् युद्ध निर्णायक नहीं था तथा पुल को तोड़कर अफ़ग़ानों ने मुग़लों को नदी नहीं पार करने दी।

१२५ तारीखे रशीदी, एलियस तथा रास, पृ. २७४-७५।

१२६ डा. कानूनगो इस युद्ध को बिलग्राम का युद्ध कहते हैं तथा युद्धस्थल हरदोई जिले में बिलग्राम के निकट निश्चित करते हैं। डा. बनर्जी

तक डटी रहीं। शेरशाह के इतने दिन प्रतीक्षा करने के दो प्रमुख कारण थे। उसने ख़्वास ख़ां को चेरुह सरदार के विरुद्ध झारखण्ड की तरफ भेजा था। उसे ख़्वास ख़ां की विजय का समाचार मिल चुका था और वह उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। शेरशाह को वर्षा की भी सम्भावना थी। मुग़ल पड़ाव में पानी तथा कीचड़ भर जाने की सम्भावना थी। हुमायूं ने कदाचित् युद्ध इस कारण नहीं प्रारम्भ किया क्योंकि उसको अपने तोपख़ाने पर विश्वास था तथा वह चाहता था कि युद्ध शेरशाह ही प्रारम्भ करे जिससे मुग़ल अपने तोपख़ाने से अफ़ग़ान आक्रमणकारियों को भून डालें। उसकी सेना असंगठित थी। सम्भव है वह समय प्राप्त कर अपनी सेना को संगठित करना चाहता था।

अफ़ग़ान तथा मुग़ल सेनाओं की वास्तविक संख्या क्या थी, यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि हुमायूं की सेना अफ़ग़ानों की सेना से अनुमानतः दुगुनी थी।[१२७] परन्तु मुग़ल सेना संगठित नहीं थी। मुग़ल तोपख़ाना शक्तिशाली था। इसमें सात सौ तोप की गाड़ियां

(हुमायूं, १, पृ. २४३) तथा डा. ईश्वरी प्रसाद इसे कन्नौज का युद्ध कहते हैं। यह युद्ध शेरगढ़ तथा नानामऊ घाट के बीच के नदी-तट के दूसरी तरफ ऊंची जमीन पर हुआ था। शेरशाह ने इस विजय के उपलक्ष्य में सिक्के चलाये जिस पर शेरगढ़ उर्फ कन्नौज अंकित है। देखिए डा. ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १५०-५१; कानूनगो, शेरशाह, पृ. २१६ तथा २१९-२० फुटनोट। मिर्ज़ा हैदर इसे गंगा का युद्ध लिखता है क्योंकि यह गंगा के तट पर हुआ था।

१२७ कन्नौज के युद्ध में दोनों दलों की सेनाओं की संख्या कितनी थी यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। जौहर के अनुसार आगरा से चलते समय हुमायूं की सेना में ९०,००० अश्वारोही थे, बदायूनी, निज़ामुद्दीन अहमद तथा फ़िरिश्ता हुमायूं की सेना को एक लाख लिखते हैं तथा मिर्ज़ा हैदर दोनों सेनाओं की संख्या दो लाख लिखते हैं तथा युद्ध में अफ़ग़ान सेना को १५,००० और मुग़ल सेना को ४०,०००। निज़ामुद्दीन अहमद तथा फ़िरिश्ता के अनुसार शेर ख़ाँ की सेना पचास हज़ार बदायूनी के अनुसार पांच हजार तथा कुछ हस्तलिखित प्रतियों में पचास हज़ार है, जो अधिक सही प्रतीत होती है। (जौहर, स्टीवर्ट, पृ. २९, फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ९०; तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ७२-७३, मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३५४, तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास, पृ. ४७२-७७; इलियट तथा डासन, ५, पृ. १३१)। डा. कानूनगो ने शेर ख़ां की सेना को केवल १३,००० माना है जो असम्भव प्रतीत होता है क्योंकि अब्बास के अनुसार शेर ख़ां ने सभी स्वस्थ्य अफ़ग़ानों को सेना

(गरदून) थीं, जिनमें से प्रत्येक को चार-चार जोड़ी बैल खींचते थे। इन पर एक-एक छोटी तोप (ज़र्बज़न) लदी हुई थी जिससे पांच सौ मिस्काल का गोला चलाया जाता था तथा उसका निशाना अचूक था। २१ गाड़ियां ऐसी थीं जिन्हें आठ-आठ जोड़ी बैल खींचते थे। इनमें पत्थर के गोलों की जगह पांच हज़ार मिस्काल
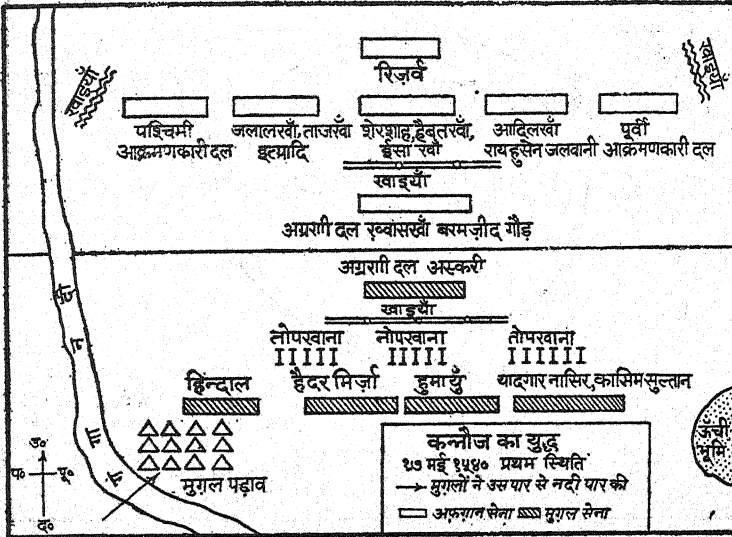
के पिघलाये हुए पीतल के गोले चलाये जाते थे तथा उनका मूल्य दो सौ मिस्काल चांदी के बराबर था। एक 'फरसंग' की दूरी पर जो वस्तु भी दृष्टिगत होती उसे वे मार सकते थे।[१२८]

में भर्ती कर लिया था। डा. बनर्जी मिर्ज़ा हैदर की संख्या को उलटकर स्वीकार करते हैं अर्थात् मुग़ल सेना १५,००० तथा अफ़ग़ान सेना ४०,००० (बनर्जी, हुमायूं १, पृ. ४२४३; क़ानूनगो, शेरशाह पृ. २२२) कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग ३ पृ. ३५ ने हैदर मिर्ज़ा की संख्या स्वीकार की है। डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार हुमायूं की सेना तीस-चालीस हज़ार थी (हुमायूं, पृ. १४४)।

१२८ तारीख़े रशीदी, इलियट तथा डासन, ५, पृ. १३१-३२; एलियस तथा रास द्वारा अनुवादित पृ. ४७४, इरविन, आर्मी ऑफ दि इण्डियन मुग़ल्स, पृ. ११५।

शेर ख़ां ने अपनी सेना को सात भागों में विभाजित किया था।[१२९] अग्रणी दल का नेतृत्व ख़्वास ख़ां तथा बरमज़ीद गौड़ कर रहे थे। मध्य में शेरशाह के नेतृत्व में आज़म हुमायूं सरवानी (जिसे हैबत ख़ां नियाज़ी की उपाधि प्राप्त थी), ईसा ख़ां सरवानी, सरमस्त ख़ां, कुतब ख़ां लोदी, बिजली ख़ां, सईफ़ ख़ां सरवानी
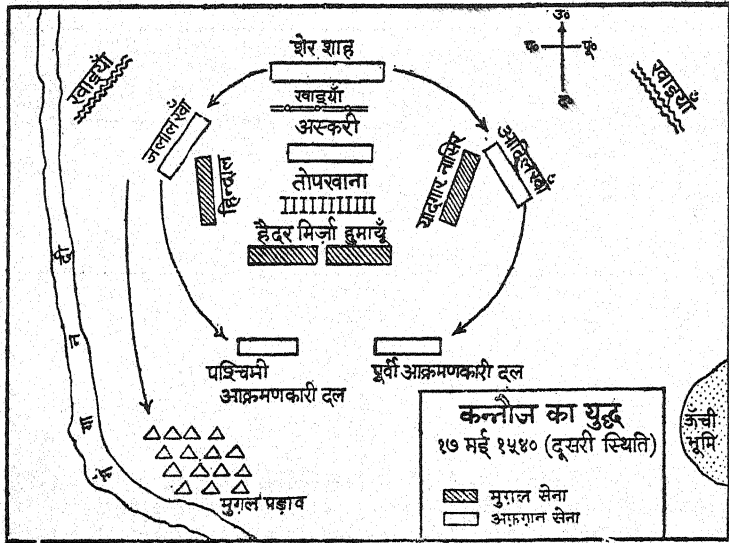
इत्यादि थे। उसके दाहिने जलाल ख़ां के नेतृत्व में ताज ख़ां जलोई तथा नियाज़ी अफ़ग़ान इत्यादि[१३०] तथा बायें तरफ आदिल ख़ां सूर, राय हुसेन जलवानी तथा किरानी अफ़ग़ान इत्यादि थे। दाहिने तथा बायें दस्तों के दोनों तरफ आक्रमण-

[१२९] अब्बास ख़ां ने उसके दाहिने, बाय तथा मध्य (अर्थात् तीन) के दस्तों का ही वर्णन किया है (इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३८१)। कदाचित् उसने दो आक्रमणकारी दस्तों (फ्लैंकिंग डिवीजन्स) तथा अग्रणी दस्ते का उल्लेख नहीं किया है। डा. ईश्वरी प्रसाद (हुमायूं, पृ. १४६) केवल छः दस्ते लिखते हैं किन्तु युद्ध के प्लान में रिज़र्व तथा अग्रणी दल को लेकर सात होते हैं। हैदर मिर्ज़ा के अनुसार शेरशाह की सेना छः भागों में विभाजित थी। उसने रिज़र्व का उल्लेख नहीं किया है (तारीख़े रशीदी, इलियट तथा डासन, ५, पृ. १३३-३४)।

[१३०] जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ३०६; अकबरनामा, १, पृ. १६४; डार्न, पृ. १२६; इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३८०।

कारी दस्ते थे तथा सबसे पीछे रक्षित सेना (रिज़र्व फोर्स) थी। शेरशाह ने इस तरह दाहिने तथा बायें अपने पुत्रों (जलाल ख़ां तथा कुतुब ख़ां) को रखकर युद्ध में अपनी स्थिति मजबूत कर ली थी। पूर्व तथा पश्चिम में दो खाइयां खोदकर अफ़ग़ान सेना और भी मजबूत बन गयी थी।

मुग़ल सेना भी अफ़ग़ान सेना की भांति कई भागों में विभाजित थी। सेना के मध्य में हैदर मिर्ज़ा तथा हुमायूं थे। हैदर मिर्ज़ा हुमायूं की बायीं ओर था। इस तरह उसका दायां बाजू हुमायूं के बायें बाजू की ओर था। हैदर मिर्ज़ा के समस्त सैनिक उसकी बायीं तरफ नियुक्त थे तथा उसके साथ चार सौ बहुत ही अनुभवी व्यक्ति थे जिन्हें युद्ध तथा रणक्षेत्र का पूर्ण ज्ञान था।[१३१] हैदर मिर्ज़ा की बायीं तरफ हिन्दाल तथा हुमायूं की दाहिनी तरफ यादगार नासिर तथा क़ासिम हुसेन सुल्तान थे।[१३२] इन सेनाओं के सामने तोपखाना था। तोपखाने के आगे खाइयां तथा उसके आगे अस्करी का अग्रणी दल था। तोपखाने का नेतृत्व मुहम्मद ख़ां रूमी, उस्ताद अहमद रूमी तथा हुसेन ख़लीफ़ा के हाथ में था।

एक महीने, जब तक दोनों सेनाएं एक दूसरी के सामने डटी रहीं, छिटफुट लड़ाइयां होती रहीं। इसी बीच वर्षा प्रारम्भ हो गयी। अफ़ग़ानों ने युद्ध के लिए यही सबसे उपयुक्त समय समझकर मुग़लों पर आक्रमण कर दिया। शेरशाह की योजना मुग़लों को नदी के बाकी तीन तरफ से घेर लेने की थी। बाबर ने पानीपत के युद्ध में जो तुलग़मा युद्ध नीति अपनायी थी वही नीति यहां शेरशाह ने अपनायी। युद्ध के पहले शेरशाह ने अफ़ग़ानों को एक भाषण द्वारा उत्साहित किया।[१३३] अफ़ग़ान सेना के दोनों आक्रमणकारी दस्तों ने आगे बढ़कर मुग़ल सेना को घेर लेने का प्रयत्न किया। युद्ध का प्रारम्भ हिन्दाल तथा ज़लाल ख़ां

१३१ तारीखे रशीदी, इलियट तथा डासन, ५, पृ. १३३।

१३२ डा. ईश्वरी प्रसाद (हुमायूं पृ. १४६) के अनुसार यादगार नासिर हैदर मिर्ज़ा के बायें तथा अस्करी हुमायूं के दायें था। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि जलाल ख़ां इत्यादि मिर्ज़ा हिन्दाल के सामने तथा मुबारिज़ ख़ां, बहादुर ख़ां इत्यादि यादगार नासिर मिर्ज़ा एवं हुसेन ख़ां के समक्ष पहुँचे। ख्वास खां, बरमज़ीद एवं अन्य समूह मिर्ज़ा अस्करी के मुकाबले में आये (अकबरनामा, १ पृ., १६४-६५)। ख्वास ख़ां अग्रणी दल में था, इसलिए अस्करी का मुग़ल अग्रणी दल में तथा हिन्दाल का हैदर मिर्ज़ा के बायें रहना अधिक सही मालूम होता है। डा. बनर्जी ने इसी मत को स्वीकार किया है।

१३३ तारीखे शेरशाही, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३८१।

सूर के युद्ध से हुआ । जलाल ख़ां कठिन परिस्थिति में फंस गया तथा घोड़े पर से गिर पड़ा । संभव था कि उसकी सेना पूर्ण रूप से पराजित हो जाती किन्तु उसके अन्य चार सहायक—सरदार जलाल ख़ां जलोई, मियां अयूब कलकपुर, मुहम्मद गुकबूर, ग़ाज़ी मुक़बिल सिलहदार[१३४] डटे रहे जिससे हिन्दाल की सेना का प्रभाव कम हो गया । जलाल के दस्ते की यह हालत देखकर शेरशाह स्वयं उसकी सहायता के लिए जाना चाहता था किन्तु कुतुब ख़ां लोदी ने उसे समझाया कि यह उचित नहीं होगा क्योंकि उसके हटने से अफ़ग़ान सेना यह समझेगी कि केन्द्र भी टूट गया । शेरशाह ने उसका परामर्श मान लिया तथा अन्य कमाण्डरों को उसकी सहायता के लिए भेज दिया ।

अग्रणी दस्तों में भी युद्ध प्रारम्भ हो गया । ख़्वास ख़ां ने आगे बढ़कर अस्करी की सेना पर आक्रमण कर दिया । किन्तु सबसे अधिक भार यादगार नासिर तथा क़ासिम हुसेन पर पड़ा । ये दोनों आदिल ख़ां तथा सरमस्त ख़ां द्वारा पीछे हटा दिये गये । दाहिने डिवीज़न के सैनिक भागकर मध्य में चले गये, जो हुमायूं के नेतृत्व में था ।[१३५] इनके आने से इस भाग में खलबली तथा हुल्लड़ प्रारम्भ हो गया । इससे अफ़ग़ानों के आक्रमणकारी दस्तों को मौका मिला और उन्होंने चक्कर से घूमकर मुग़ल सेना के दाहिने भाग पर आक्रमण कर दिया तथा एक दल मुग़लों के पीछे भी उन्हें घेरने के लिए पहुँच गया । इस तरह घिर जाने से मुग़ल सेना में और भी गड़बड़ी फैल गयी । मुग़ल अमीरों के पास दासों की बड़ी संख्या थी । प्रत्येक प्रतिष्ठित अमीर जिसके पास सौ सैनिक थे, उसके पास पांच सौ सेवक तथा दास थे ।[१३६] इन दासों ने बड़ी गड़बड़ी मचायी । वे आतंकित होकर अपने स्वामियों से पृथक् हो गये और इधर-उधर भागने लगे । वर्षा के कारण मुग़ल पड़ाव, जो नीची जमीन पर था, पानी से भर गया । हैदर मिर्ज़ा ने निकट की ऊंची ज़मीन पर सेना को ले जाना चाहा । हुल्लड़, वर्षा तथा कीचड़ में इससे और भी गड़बड़ी पैदा हो गयी । सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह हुआ कि मुग़लों की इतनी बड़ी-बड़ी तोपें धरी ही रह गयीं तथा वे उनका प्रयोग भी न कर सके । अफ़ग़ानों ने मुग़लों को चारों तरफ से घेरकर मारकाट प्रारम्भ कर दी ।

१३४ वही, पृ. ३८१-८२ ।

१३५ तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास, ४७६; अकबरनामा, १, पृ. १६५; जौहर, स्टीवर्ट पृ. ३०

१३६ तारीख़े रशीदी, इलियट तथा डासन, ५, पृ, १३४-३५ ।

यह सब इतनी शीघ्र हो गया कि मुग़लों को अपना युद्धकौशल दिखाने का अवसर ही नहीं मिला। हैदर मिर्ज़ा, जो इस युद्ध का संचालन कर रहा था, लिखता है कि चग़ताई लोग बिना घायल हुए ही रणक्षेत्र से भाग खड़े हुए। एक तोप भी न चलायी गयी। अफ़ग़ानों ने भागते हुए मुग़ल सैनिकों का चार मील तक पीछा किया। मुग़ल भागकर नदी की तरफ गये तथा अपने प्राण बचाने के लिए नदी में कूद पड़े और हज़ारों की संख्या में मारे गये।

हुमायूं ने बहादुरी से युद्ध किया तथा युद्धस्थल पर डटा रहा। इसी समय एक अफ़ग़ान ने हुमायूं के घोड़े पर आक्रमण किया जिससे उसका घोड़ा बिगड़ गया। बड़ी कठिनाई से अस्करी, यादगार नासिर तथा कुछ अन्य व्यक्तियों को एकत्र कर वह नदी के तट पर आया। इसी समय उसे एक हाथी दिखायी दिया। उसने हाथी पर बैठकर नदी पार करना चाहा, किन्तु फीलबान के विचार पवित्र नहीं थे, इसलिए उसे मार डाला गया।[१३७] उसने नदी में अपना घोड़ा डाल दिया, किन्तु वह घोड़े से अलग हो गया। उसे शमसुद्दीन मुहम्मद गज़नवी ने सहायता दी जिससे बड़ी कठिनाई से उसने नदी पार की।[१३८]

कन्नौज के युद्ध से पलायन

कन्नौज से हुमायूं आगरा की तरफ रवाना हुआ। मार्ग में भोगांव[१३९] के किसानों ने उसका विरोध किया। उन्होंने बाज़ार बन्द कर दिया तथा तीन हज़ार अश्वारोहियों के साथ उस पर आक्रमण किया। हुमायूं ने उन पर आक्रमण करने के लिए अस्करी से कहा। उसने देर कर दी जिससे यादगार नासिर ने नाराज होकर कहा कि "तुम लोगों के पारस्परिक विरोध के कारण स्थिति इस सीमा तक पहुँच गयी, फिर भी सावधान नहीं होते।" अन्त में हिन्दाल तथा यादगार नासिर मिर्ज़ा ने उनसे घोर युद्ध कर उन्हें पराजित किया।[१४०] यहां से चलकर हुमायूं आगरा पहुँचा। पराजय ने उसे इतना निराश कर दिया था कि

१३७ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ३१-३२; जौहर के अनुसार साफे बांधकर उसे नदी पार करनी पड़ी।

१३८ अकबरनामा, १, पृ. १६६-६७, मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३५५। यह शमसुद्दीन अकबर की धाय माहम अंगा का पति था।

१३९ उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में परगना तथा तहसील भोगांव १७° १७′ उत्तर तथा ७९° १४′ पूर्व। डिस्ट्रिक्ट गजेटियर मैनपुरी, जिल्द १०, पृ. १९६।

१४० जौहर, स्टीवर्ट पृ. ३३, अकबरनामा, १, पृ. १६६-६७।

वह अपने महल में नहीं गया, प्रसिद्ध सन्त रफ़ीउद्दीन सफवी के निवास पर रुका। आसपास के प्रदेशों में अव्यवस्था थी तथा उपद्रव मचा हुआ था। कन्नौज के युद्ध के पश्चात् शेरशाह ने बरमज़ीद गौड़ को हुमायूं का पीछा करने के लिए भेजा। उसने उसे यह आज्ञा दी कि वह मुग़लों से युद्ध न करे, केवल उनका पीछा करे।

अफ़ग़ानों की इस सेना के आगमन से हुमायूं ने देखा कि आगरा सुरक्षित नहीं है। एक रात आगरा में रहकर अपना परिवार तथा जो कोष वह ले जा सकता था उसे लेकर वह पंजाब की तरफ रवाना हुआ।

कन्नौज के युद्ध का परिणाम

कन्नौज का युद्ध मध्य युग का एक परावर्तन बिन्दु है। इसने मुग़लों की सत्ता समाप्त कर अफ़ग़ानों के सिर पर राजमुकुट रख दिया। चौसा के युद्ध से प्रारम्भ सत्ता-परिवर्तन के कार्य को इस युद्ध ने पूर्णता प्रदान की। मुग़ल सम्राट हुमायूं कन्नौज के युद्ध के पश्चात् अपने साम्राज्य से निष्कासित हो गया तथा १५ वर्ष तक उसे दर-दर की ठोकरें खानीं पड़ी।

पानीपत के युद्ध में अफ़ग़ानों की पराजय से उनकी शक्ति तथा यश की जो हानि हुई थी, उसे इस युद्ध ने पुनः स्थापित कर दिया। यही नहीं, जिस युद्ध-कौशल से मुग़लों ने अफ़ग़ानों को पानीपत के युद्ध में पराजित किया था उसी युद्धकला से अफ़ग़ानों ने मुग़लों को पराजित किया। यह युद्ध अफ़ग़ानों के युद्धकौशल का प्रतीक था।

हुमायूं की तुलना में शेरशाह अधिक कुशल शासक था। मुग़लों को भगाकर उसने एक संगठित शासन की नींव डाली जिसके आधार पर अकबर तथा उसके पश्चात् अन्य शासकों ने शासन चलाया। इस तरह हुमायूं की पराजय जनता तथा शासन की दृष्टि से वरदान बन गयी।

युद्ध में मुग़लों को बड़ी हानि उठानी पड़ी। उनके बहुत-से अमीर मारे गये। दासों तथा सैनिकों में तो जो वहां मौजूद थे वे सभी मारे गये।[१४१] मुग़लों द्वारा परित्यक्त सामान तथा अस्त्र-शस्त्र अफ़ग़ानों ने लूट लिये।

मुग़लों के यश को गहरा धक्का लगा। हुमायूं को अब साधारण आदमी भी सहायता देने से डरता था। इस कारण कन्नौज से आगरे के मार्ग में उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

[१४१] तारीखे रशीदी, इलियट तथा डासन, ५, पृ. १३५। हैदर मिर्ज़ा लिखता है कि एक हज़ार आदमी थे, केवल आठ बचे, जिससे इस युद्ध में मुग़लों की क्षति का अनुमान लगाया जा सकता है।

हुमायूं की पराजय के कारण

आगरा से कन्नौज की यात्रा करते समय हुमायूं की सेना की अवस्था कुछ ऐसी थी कि उसे स्वयं युद्ध में सफलता की आशा नहीं थी। सेना जल्दी में एकत्र की गयी थी तथा प्रशिक्षित नहीं थी। कामरान के लाहौर चले जाने तथा अन्य अमीरों के भाग जाने से स्थिति और भी कमज़ोर हो गयी थी। हैदर मिर्ज़ा के अनुसार हुमायूं की सेना में युद्ध से भागने का नारा लगाया जा रहा था तथा युद्धस्थल से भी कितने ही व्यक्ति भाग खड़े हुए। इन भागने वालों में मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा तथा उसके पुत्र भी थे। युद्धभूमि में हुमायूं के दोनों भाइयों, यादगार नासिर मिर्ज़ा, कासिम हुसेन सुल्तान तथा हैदर मिर्ज़ा के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमुख सेनानायक नहीं था। बाबर के समय के सेनानायक अब नहीं थे। इस तरह मुग़ल सेना में अनुभवी सेनानायकों की कमी थी। स्वयं हुमायूं में वह जोश अथवा अर्जित यश नहीं था जो इस अनियन्त्रित सेना में शक्ति तथा उत्साह फूंक सकता। इसके विपरीत चौसा की पराजय के पश्चात् हुमायूं के यश तथा मन: स्थिति दोनों को ही धक्का लगा था।[१४२]

दूसरी तरफ अफ़ग़ान सेना संगठित थी। राष्ट्रीय जागरण की भावना तथा चौसा की विजय ने अफ़ग़ानों को उत्साह से भर दिया था। उनके सेनानायकों में कुछ ने अल्प काल में ही बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी तथा उनका नाम लड़ने वाले सैनिकों में उत्साह भर देता था। उनका नेता शेरशाह योग्य सैनिक था तथा निम्न श्रेणी से उच्च स्थान प्राप्त करने के कारण वह प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार था। वह अफ़ग़ानों का लाड़ला था तथा वे उसके लिए अपना प्राण अर्पण करने में अपना सौभाग्य समझते थे। शेरशाह युद्धकौशल में प्रवीण था। कन्नौज की विजय उसकी युद्धकला की श्रेष्ठता का प्रमाण है। उसने मुग़लों की कमजोरी का अध्ययन कर लिया था और उसका पूरा लाभ भी उठाया। युद्ध के पूर्व उसके भाषण ने अफ़ग़ानों को उत्साह से भर दिया।

गंगा नदी पार कर हुमायूं एक नयी मुसीबत में फंस गया। उसने जो स्थान अपनी सेना के लिए चुना वह ठीक नहीं था। वह नीचे, नदी के तट पर तथा अफ़ग़ानों के निकट था। यही नहीं, युद्ध स्थल तथा उसका पड़ाव एक ही था।

[१४२] अब्बास लिखता है कि हुमायूं ने युद्ध के पश्चात् राज़ीउद्दीन सफ़वी से कहा कि उसने कुछ दरवेशों को मुग़लों के घोड़ों को मारते हुए देखा था (इलियट तथा डासन, ४, पृ. ३८२)। डा. बनर्जी इसके आधार पर लिखते हैं कि हुमायूं के दिमाग में कोई गड़बड़ी आ गयी थी (बनर्जी, हुमायूं, १, पृ. २४८)।

इस तरह युद्ध के समय उसके पड़ाव के दासों, नौकरों तथा अन्य कर्मचारियों ने बड़ी गड़बड़ी मचायी। हुमायूं जानता था कि वर्षा आने ही वाली है तथा उसका पड़ाव नदी के तट पर नीची ज़मीन पर है। फिर भी उसने तत्काल युद्ध प्रारम्भ नहीं किया तथा युद्ध के मैदान में व्यर्थ समय गंवाया। इस तरह उसने रक्षात्मक नीति अपनायी तथा शत्रु के आक्रमण की प्रतीक्षा करता रहा।[१४३]

वर्षा ने मुग़लों की परिस्थिति को अत्यन्त भयंकर बना दिया। हैदर मिर्ज़ा की ऊंचे स्थान पर चलने की आज्ञा ने मुग़ल सेना को और भी अव्यवस्थित कर दिया तथा अफ़ग़ानों को आक्रमण करने में सुविधा हुई। सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह था कि अपने भाग्य-निर्णायक युद्ध के संचालन का उत्तरदायित्व हुमायूं ने हैदर मिर्ज़ा को दे दिया था। चौसा के युद्ध के अनुभव से (जब उसने मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा को रात की सुरक्षा का उत्तरदायित्व दिया था) उसने कोई लाभ नहीं उठाया। यही नहीं, शेरशाह की प्रगति के कारण हुमायूं को बड़ी घबराहट में युद्ध के लिए अग्रसर होना पड़ा था। इस कारण वह पूर्ण रूप से युद्ध के लिए तैयार नहीं हो सका था।

१४३ "This battle proved that the army that cannot take the offensive is doomed and purely passive defence is futile". (सरकार, मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. ६५)

८. निष्कासन—पंजाब तथा सिन्ध में

आगरा में अधिक दिन रुकना अथवा वहां सेना एकत्र करना हुमायूं के लिए असम्भव था। अस्करी, हिन्दाल तथा अन्य प्रमुख अमीर अभी वहां उपस्थित थे, किन्तु भय तथा निराशा ने मुग़लों की सक्रियता तथा कार्यशीलता प्रायः समाप्त कर दी थी। अफ़ग़ान सेना उनका पीछा कर रही थी तथा जनता मुग़ल विरोधी हो गयी थी। इस परिस्थिति में हुमायूं को अपने महल में भी जाने का साहस नहीं हुआ तथा उसने शेख़ मुबारक के गुरु सन्त सैयिद रफ़ीउद्दीन के यहाँ ही ठहरना उचित समझा। सन्त ने उसे आश्वासन तथा आशीर्वाद दिया कि उसे पुनः राज्य प्राप्त होगा। उसने उसे रोटी तथा खरबूज़ा खाने को दिया तथा परामर्श दिया कि वह आगरा से लाहौर चला जाए। जो भी कोष साथ ले जाया जा सकता था उसे लेकर अपने सम्बन्धियों तथा स्वामिभक्त सेवकों के साथ हुमायूं आगरा से रवाना हुआ।[१]

आगरा से लाहौर

हुमायूं की मानसिक अवस्था इतनी दयनीय थी कि उसने बड़े दुःख से कहा कि उस हलचल में स्त्रियों को साथ ले जाना कठिन है। चौसा के युद्ध में अक़ीक़ा बीबी (आठ वर्ष की) गायब हो गयी थी। हुमायूं को बाद में पछतावा हुआ कि उसने उसकी हत्या क्यों नहीं कर दी। हिन्दाल इससे भयभीत हुआ कि कहीं हुमायूं स्त्रियों की हत्या न कर दे। उसने कहा कि वह अपने प्राण रहते उनकी रक्षा करेगा। उसने अपनी माता तथा प्रमुख स्त्रियों को अपने साथ कर लिया तथा सतर्कता से साथ अपनी जागीर—अलवर—की तरफ रवाना हुआ।[२]

आगरा से हुमायूं सीकरी कस्बे की ओर रवाना हुआ। वह सीकरी में कुछ घण्टे रुका। उसी समय एक बाण आकर गिरा। उसका पता लगाने के लिए

१ अकबरनामा, १, पृ. १६७।

२ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १४३।

जो लोग भेजे गये वे घायल हुए।[३] स्पष्ट था कि शत्रु निकट थे अथवा वहाँ की जनता मुग़ल विरोधी थी। वहां रुकना उचित न था। हुमायूं वहां से बजौना कस्बे में पहुँचा।[४] यहाँ सूचना मिली कि बरमज़ीद गौड़ हुमायूं का पीछा करता हुआ आ रहा है। जौहर, जो उस समय सेना में उपस्थित था, लिखता है कि उस समाचार से सेना में हाहाकार मच गया। कोई किसी को पहचानता नहीं था अपनी-अपनी वस्तुएं छिपाकर लोग तेज़ी से आगे बढ़ने लगे। हुमायूं ने यहां साहस से काम लिया। उसने लोगों को सान्त्वना दी और कहा कि धैर्य से काम लेना चाहिए और यदि मौत ही आए तो उसे स्वीकार करना चाहिए। सुरक्षा के लिए उसने अपनी सेना को चार भागों में विभाजित कर दिया। दायें मिर्ज़ा हिन्दाल, बायें यादगार नासिर मिर्ज़ा, मध्य में हुमायूं तथा अन्य अमीर उसके पीछे रवाना हुए।[५] इससे लोगों में थोड़ा साहस आया। यहां से चलकर हुमायूं दिल्ली पहुंचा (२५ मई १५४४)। यहां क़ासिम हुसेन सुल्तान तथा अन्य अमीर उससे आकर मिले। यहां रुकना भी ठीक नहीं था। यहां से आगे बढ़कर हुमायूं रोहतक पहुँचा।

हिन्दाल तथा अस्करी को हुमायूं ने अलवर और सम्भल से धन तथा अन्य वस्तुएं लाने के लिए भेजा था। स्त्रियों की रक्षा करता हुआ हिन्दाल वहां से आ रहा था। मार्ग में कुछ लोगों ने उस पर आक्रमण किया जिसमें उसके घोड़े को भी एक तीर लगा। भीषण युद्ध के पश्चात् हिन्दाल ने उनकी रक्षा की।[६] अस्करी, हिन्दाल तथा हैदर मिर्ज़ा रोहतक में हुमायूं से आ मिले।[७] मुग़लों का सम्मान इतना कम हो गया था कि रोहतक के दुर्ग वालों ने उनके पहुँचने पर नगर का द्वार बन्द कर लिया। मुग़लों को युद्ध कर उस पर अधिकार

३ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ३४।

४ साम्राज्य खोने पर भी हुमायूं को राजत्व के नियमों का बड़ा ध्यान था। चलते समय फख अली हुमायूं के आगे निकल गया जो राज्योचित नियमों के विरुद्ध था। हुमायूं इससे बहुत क्रुद्ध हुआ तथा उसने फख अली को मृत्यु दण्ड देने की धमकी दी। फख अली की स्वामिभक्ति में कोई सन्देह नहीं था। उसने भूल स्वीकार की तथा पीछे चलने लगा। जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ३४-३५।

५ जौहर (स्टीवर्ट, पृ. ३६) तीन भाग लिखता है किन्तु पिछले दल को भी मान लिया जाए तो चार भाग होते हैं।

६ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १४३।

७ अकबरनामा, १, पृ. १६७।

करना पड़ा। यहां से आगे बढ़कर हुमायूं सरहिन्द पहुँचा (२४ जून १५४०)। अफ़ग़ान मुग़लों का पीछा कर रहे थे। उनसे मुग़ल दल की रक्षा करने के विचार से हुमायूं ने हिन्दाल को सरहिन्द में रुकने की आज्ञा दी। हुमायूं ने अभी माछीवारा में सतलज नदी को पार ही किया था कि उसे शेरशाह के दिल्ली पहुँचने की सूचना मिली। बरमज़ीद गौड़ तथा कुतुब ख़ां ने हिन्दाल को भी हटने के लिए विवश कर दिया।[८] हिन्दाल तथा अन्य मुग़ल तेज़ी के साथ लाहौर की तरफ़ रवाना हुए। हुमायूं ने पुनः हिन्दाल को जालन्धर में रुकने की आज्ञा दी। हुमायूं के आगे बढ़ने के पश्चात् ही अफ़ग़ानों ने भी सतलज को पार किया तथा हिन्दाल को जालन्धर में घेर लिया।[९]

लाहौर में एकता का प्रयत्न

कुछ ही दिन बाद मिर्ज़ा हैदर तथा अन्य लोगों के साथ हुमायूं लाहौर पहुँचा। वहां दौलत ख़ां की सराय के निकट कामरान ने सम्राट का स्वागत किया तथा ख़्वाजा दोस्त मुहम्मद मुंशी के बाग में, जो अत्यन्त आकर्षक स्थान था, उसे ठहराया गया।[१०] कुछ ही दिन बाद मुज़फ़्फ़र तुर्कमान की कुमक के साथ पहुँच जाने से मिर्ज़ा हिन्दाल जालन्धर छोड़कर सकुशल लाहौर पहुँच गया। जालन्धर पर अफ़ग़ानों का अधिकार हो गया। धीरे-धीरे अस्करी तथा सभी प्रमुख अमीर वहां पहुँच गये (जुलाई १५४०)। केवल मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा तथा उलूग मिर्ज़ा इधर-उधर लूटमार करने में व्यस्त रहे।[११]

लगभग तीन महीने हुमायूं लाहौर में रुका रहा (जुलाई से अक्टूबर १५४०)। इस बीच एक तरफ तो उसने मुग़लों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया और दूसरी तरफ शेरशाह से सन्धि वार्ता भी करता रहा। एकता स्थापित करने के लिए लाहौर में उपस्थित सभी मुग़ल अमीरों की उसने एक सभा बुलाई (७ जुलाई १५४०)।[१२] उपस्थित लोगों ने एकता स्थापित करने के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञा पत्र (तज़किरा) पर अपने हस्ताक्षर किये। इसके पश्चात् विचार-विमर्श की गोष्ठी प्रारम्भ हुई।

८ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ३६।
९ वही, वही।
१० अकबरनामा, १, पृ. १६७।
११ तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास, पृ. ४७८।
१२ वही, पृ. ४७७; अकबरनामा, १, पृ. १६८; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ७४-७५।

हुमायूं ने अपने प्रारम्भिक भाषण में एकता का महत्त्व समझाया। सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा की मृत्यु के पश्चात् उसके १८ पुत्रों ने, पारस्परिक वैमनस्य के कारण, किस तरह खुरासान खो दिया इसकी याद दिलायी। उसने कहा कि बाबर ने कष्ट तथा परिश्रम से भारत के साम्राज्य का निर्माण किया था। यदि आपसी फूट के कारण यह साम्राज्य हाथ से निकल गया तो बुद्धिमान लोग उन सभी की निन्दा करेंगे। उसने अपील की कि ईर्ष्या त्यागकर अफ़ग़ानों के विरुद्ध युद्ध के विषय में विचार करना चाहिए जिससे उन्हें सम्मान प्राप्त हो सके।[१३]

विचार-विमर्श में तीन व्यक्तियों ने अपना मत विशेष रूप से प्रकट किया। कामरान ने सुझाव रखा कि लाहौर में रुकना ठीक नहीं; हुमायूं मिर्ज़ाओं तथा सेना को लेकर कुछ दिन पर्वतों में समय व्यतीत करें; कामरान मुग़लों के परिवारों को लेकर उन्हें काबुल में सुरक्षित स्थान पर पहुँचाकर लौट आयेगा। हिन्दाल ने इसके विरोध में प्रस्ताव रखा कि सभी लोग भक्कर चले जाएं और वहां से गुजरात पर अधिकार किया जाए; दोनों प्रान्तों पर अधिकार करने के पश्चात् अफ़ग़ानों से मुग़ल साम्राज्य को मुक्त कराने में कठिनाई नहीं होगी। हिन्दाल के सुझाव का समर्थन यादगार नासिर मिर्ज़ा ने भी किया। तीसरा सुझाव हैदर मिर्ज़ा का था। उसने कहा कि मुग़ल सरहिन्द तथा रावलपिंडी की पहाड़ियों में चले जाएं तथा उस पर अधिकार कर लें। वह स्वयं थोड़ी सेना लेकर कश्मीर पर आक्रमण कर उसे दो महीने में अपने अधिकार में कर लेगा। वह सुरक्षित स्थान था। मुग़ल वहां अपने परिवारों को पहुँचा दें। शेरशाह की सबसे बड़ी शक्ति उसकी बड़ी-बड़ी तोपें थीं। तोपों को पर्वतों पर पहुँचाना अफ़ग़ानों के लिए कठिन होगा। उसकी विशाल सेना खाद्य सामग्री के अभाव में नष्ट हो जाएगी।[१४] इस तरह मुग़ल अपने लक्ष्य में सफल होंगे। कामरान ने हैदर मिर्ज़ा के प्रस्ताव का विरोध किया। उसने कहा कि उन लोगों के पास परिवार वालों की संख्या बहुत बड़ी थी। इन सबको पर्वतों में भेजने का अर्थ उन्हें नष्ट करना था। वाद-विवाद से कुछ भी तथ्य नहीं निकला। इस तरह कठिन परिस्थिति में तथा प्रतिज्ञा करने पर भी मुग़लों में एकता स्थापित न हो सकी।

[१३] अकबरनामा, १, पृ. १६८।

[१४] वही पृ. १६६; मासीरे रहीमी, १, पृ. ५४०; तारीखे रशीदी, एलियस तथा रास, पृ. ४७६-८०।

एकता के प्रयत्न की विफलता के लिए उत्तरदायी कौन था ? अबुल फ़ज़ल तथा मिर्ज़ा हैदर ने इसका उत्तरदायी कामरान को ठहराया है।[१५] अबुल फ़ज़ल लिखता है कि कामरान अपने स्वार्थ में चाहता था कि सभी छिन्न-भिन्न हो जाएं और वह स्वयं काबुल जाकर वहां विलासमय जीवन व्यतीत कर सके। हैदर मिर्ज़ा के अनुसार कामरान ने कोई बात निश्चित नहीं होने दी। आधुनिक लेखकों ने भी कामरान की स्वार्थपरता की आलोचना की है।[१६]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कामरान का व्यवहार सहृदयता से दूर था। उन कठिनाइयों में उसे आंखें मूंदकर हुमायूं की सहायता करनी चाहिए थी। किन्तु, कामरान के पक्ष में कहा जा सकता है कि उसे अपनी जागीर बचाने की चिन्ता थी। उसने देखा कि हुमायूं, अस्करी तथा हिन्दाल ने अपना भूभाग तो खो ही दिया है, अब वे उसके प्रदेश पर भी अधिकार करना चाहते हैं। पंजाब पर अधिकार रखना सरल नहीं था, काबुल तथा अफ़गानिस्तान की इतनी आय नहीं थी कि सबका खर्च चल सके। इस कारण वह स्वयं हुमायूं को छोड़कर काबुल चला जाना चाहता था। उसकी भूल केवल इतनी थी कि उसे समझना चाहिए था कि वह अकेले शेरशाह से काबुल भी नहीं बचा सकेगा। इसके अतिरिक्त केवल कामरान ही नहीं, बल्कि अन्य अमीर भी इतने भयभीत थे कि वे पुनः शेरशाह से युद्ध करने के लिए तैयार नहीं थे। मुग़लों के साधन भी इस समय सीमित थे। इस कारण हुमायूं को छोड़कर इस बात में शेष सभी लोगों में मतैक्य था कि शेरशाह से तत्काल युद्ध न किया जाए।

जो प्रस्ताव रखे गये थे उन सभी में कोई न कोई दोष अवश्य था। हिन्दाल क सुझाव के अनुसार भक्कर में अधिक समय इतने लोगों के साथ मुग़लों का रुकना कठिन था, फिर भी यह सुझाव बहुत अनुपयुक्त नहीं था। बहादुर शाह की मृत्यु के पश्चात् गुजरात कठिन परिस्थितियों से गुज़र रहा था। उत्तराधिकार की समस्या तथा अन्य कठिनाइयों ने वहां की शान्ति समाप्त कर दी थी। ऐसी स्थिति में उस पर अधिकार करना कठिन नहीं था। मालवा पर अभी शेरशाह का अधिकार नहीं हुआ था। इस तरह अफ़ग़ानों से युद्ध करने के लिए वह उपयुक्त स्थान था। कामरान का प्रस्ताव तो अपने को बचाने का था। वह किसी तरह काबुल के भाग को शेरशाह तथा हुमायूं दोनों से सुरक्षित रखना चाहता था। इसके अतिरिक्त मुग़ल अमीरों के परिवारों को

[१५] अकबरनामा, १, पृ. १६८-६६; तारीखे रशीदी, पृ. ४८१।
[१६] अर्सकिन, २, पृ. १९७, २००; डा. ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. १६०।

अपने अधिकार में काबुल में रखकर वह एक तरह से अधिकतर लोगों को अपने नियन्त्रण में रखना चाहता था। हैदर मिर्ज़ा ने अपनी योजना में यह नहीं कहा कि सब मिलकर कश्मीर विजय करें, बल्कि वह अकेला विजय हेतु जाता और अन्य मुग़ल उसकी प्रतीक्षा करते। मुग़ल परिवारों को इस बीच पर्वतों में रखना भी खतरे से खाली नहीं था। मुग़लों का सबसे बड़ा दुर्भाग्य तो यह था कि सभी अपने प्रस्ताव को सबसे अधिक उपयुक्त समझते थे तथा झुकने के लिए तैयार नहीं थे। इस तरह किसी निश्चय पर पहुँचना असम्भव हो गया।

शेरशाह से सन्धि वार्ता

कन्नौज के युद्ध के पश्चात् शेरशाह ने गंगा नदी को पार किया तथा हुमायूं का पीछा करने के लिए उसने बरमज़ीद गौड़ को भेजा किन्तु उसने यह आदेश दिया था कि वह हुमायूं से युद्ध न करे। उसने एक दूसरी सेना सम्भल के विरुद्ध भेजी। हुमायूं के आगरा से चले जाने के पश्चात् बरमज़ीद गौड़ ने आगरा में प्रवेश किया तथा बहुत-से मुग़लों को, जो वहां उपस्थित थे, मार डाला। ये मुग़ल सैनिक नहीं थे तथा इनके मारने का कोई कारण नहीं था। कुछ दिन पश्चात् आगरा पहुँचने पर शेरशाह ने बरमज़ीद के इस कार्य के लिए उसकी भर्त्सना की किन्तु उसे कोई दण्ड नहीं दिया गया। यहां से उसने ख़्वास खां तथा बरमज़ीद को हुमायूं का पीछा करने के लिए भेजा। इन्हीं के भय से हुमायूं लाहौर की तरफ तेज़ी से भागता गया। कुछ दिन आगरा में बिताकर शेरशाह दिल्ली गया। उसने हाजी खां बटनी को मेवात का गवर्नर नियुक्त किया। दिल्ली का समुचित प्रबन्ध करने के पश्चात् वह वहां से पंजाब की तरफ रवाना हुआ।

इसी बीच कामरान ने अपने सद्र क़ाज़ी अब्दुल्ला को गुप्त रूप से शेरशाह के पास दिल्ली भेजा। कामरान ने शेरशाह को यह आश्वासन दिया कि यदि पहले की भांति पंजाब उसके पास रहने दिया जाए तो वह थोड़े समय में योग्य सेवाएं करने में सफल होगा।[१७] उसका अभिप्राय था कि वह हुमायूं को मरवा

१७ अकबरनामा, १, पृ. १६६, अबुल फ़ज़ल के शब्द इस प्रकार हैं:

و مضمون مکتوب چناں نوشت که اگر پنجاب بدستور سابق بر من مقرر دارند
در اندک زمان کار هائے شائسته بتقدیم رسانم -

व मज़मूने मकतूब चुनां नविश्त कि अगर पंजाब बदस्तूर साबिक़ बरमन मुक़र्र दारन्द दर अन्दक ज़मान कारहाये शायेस्ता ब तक़दीम रसानम।

डालेगा या बन्दी बनाकर शेरशाह को समर्पित कर देगा। शेरशाह ने कामरान के दूत का स्वागत किया। उसे यह जानकर सन्तोष हुआ कि मुग़ल पारस्परिक वैमनस्य के कारण एकता नहीं स्थापित कर सकेंगे। शेरशाह कामरान को हुमायूं से अलग तो करना चाहता था किन्तु वह जानता था कि उसकी वास्तविक लड़ाई हुमायूं से है। परिस्थिति का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसने सद्र के साथ अपना दूत भी लाहौर भेजा। कामरान ने शेरशाह के दूत का स्वागत किया तथा उसके लिए एक जश्न किया जिसमें उसने हुमायूं को भी आमंत्रित किया[१८] और सम्राट इसमें सम्मिलित भी हुआ। कामरान इस तरह अपना महत्त्व दिखाना चाहता था। वह यह प्रमाणित करना चाहता था कि वह हुमायूं से बड़ा है। इस जश्न में हुमायूं का सम्मिलित होना उपयुक्त नहीं था।

लाहौर में शेरशाह का एक दूत हुमायूं से भी मिला। हुमायूं ने भी उसके स्वागत में एक दावत दी। कामरान सतर्क तथा सशंकित था। उसने हुमायूं से प्रार्थना की कि उसे भी जश्न में बुलाया जाए तथा उसने हुमायूं ही के पास बैठने की इच्छा प्रकट की।[१९] कामरान ने यह प्रार्थना अस्करी और हिन्दाल से अपना महत्त्व बढ़ाने तथा हुमायूं और शेरशाह के दूत की वार्ता पर दृष्टि रखने के लिए की थी। दावत के पश्चात् हुमायूं ने शेरशाह के पास एक कविता भेजी जिसका अर्थ था कि वह शेर ख़ां को अपना मित्र समझता था, किन्तु उसके व्यवहार से उसे निराशा हुई है।[२०] शेरशाह ने हुमायूं की इस कविता का कोई उत्तर नहीं दिया।

हुमायूं ने पुनः कामरान के सद्र काज़ी अब्दुल्ला के साथ मुज़फ़्फ़र बेग को शेरशाह के पास यह लिखकर भेजा कि उसने पूरा हिन्दुस्तान उसके लिए छोड़ दिया है, अब सरहिन्द दोनों राज्यों की सीमा हो जाए। शेरशाह जानता था कि मुग़ल शक्तिहीन हैं। उसने उन्हीं शब्दों

१८ वही, पृ. १७०।

१९ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज पृ., १४४-४५।

२० कविता इस प्रकार थी :

दर आइना गरचे ख़ुद नुमाई बाशद
पैवस्ता ज़ ख़ेशतन जुदाई बाशद।
ख़ुद रा ब मिसले गौर दीदन अजब अस्त,
ईं बुल अजबो कारे ख़ुदाई बाशद।

अर्थात् यद्यपि दर्पण में अपना चेहरा देखा जा सकता है फिर भी वह अपने से अलग रहता है। अपने आपको दूसरे के रूप में देखना यह बड़े आश्चर्य की बात है, यह चमत्कार ईश्वर का कार्य है। (गुलबदन, हुमायूंनामा, पृ. ४८)।

में उत्तर दिया—"मैंने आपके लिए काबुल छोड़ दिया है। आप वहीं जाएं।[२१]

शेरशाह की इन बातों से हुमायूं को बड़ी निराशा हुई तथा सन्धिवार्ता समाप्त हो गई।

हुमायूं तथा कामरान दोनों ही शेरशाह से अलग-अलग सन्धिवार्ता कर रहे थे। इस कारण यह प्रश्न उठता है कि वैधानिक दृष्टि से पंजाब तथा काबुल के भागों पर किसका अधिकार था? कन्नौज की पराजय के पश्चात् १५४० में लाहौर पहुँचने पर हुमायूं यह समझता था कि उसका साम्राज्य छोटा होकर बदख़्शां से सरहिन्द तक ही सीमित रह गया है। इसी कारण उसने सरहिन्द को मुग़ल तथा अफ़ग़ान राज्यों की सीमा बनाने के लिए शेरशाह से कहा। सिक्का तथा ख़ुत्बा अब भी हुमायूं के नाम से चलता था।[२२] कामरान स्वतन्त्र रूप से सन्धिवार्ता अवश्य कर रहा था किन्तु हुमायूं की वैधानिकता को उसने कभी चुनौती नहीं दी थी। इस तरह वैधानिक दृष्टि से तो यहां का शासक हुमायूं था किन्तु वास्तव में ये भाग कामरान के थे। दोनों भाई शेरशाह को अलग-अलग प्रसन्न कर अपने पक्ष में करने में लगे हुए थे। यह देखकर कि पंजाब हाथ से निकला जा रहा है, कामरान बावला हो गया और उस मन:स्थिति में उसने हुमायूं को समाप्त करने के लिए शेरशाह को पत्र लिखा, जिससे उसके भाग्य का शत्रु ही समाप्त हो जाए।

शेरशाह को मुग़लों की पारस्परिक वार्ता की सूचना थी। उनके मतभेद तथा उनकी वार्ता की विफलता से उसे प्रसन्नता हुई। कामरान तथा हुमायूं की सन्धिवार्ता ने मुग़लों की कमजोरी को और भी स्पष्ट कर दिया। इस परिस्थिति में उन्हें पराजित करना तथा पंजाब से निकालना कठिन नहीं था। शेरशाह ने हुमायूं को जो कठोर उत्तर भेजा वह उसके द्वारा मुग़लों की कमजोरी से लाभ उठाने का प्रमाण है।

शेरशाह जानता था कि पंजाब में कोई प्राकृतिक सीमारेखा या क्षेत्र नहीं था। यदि सरहिन्द सीमा माना जाता तो मुग़लों और अफ़ग़ानों का संघर्ष निरन्तर होता रहता। मुग़लों में एकता की कमी थी। इस समय उनसे अपनी शर्तें मनवायी जा सकती थीं। इस दृष्टि से शेरशाह का प्रस्ताव पूर्णतया व्यावहारिक था। इसके अतिरिक्त मुग़लों को पानीपत के पूर्व जो भाग प्राप्त थे

२१ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १४४।

२२ कैटलाग ऑफ क्वायन्स, इन्डियन म्यूज़ियम, कलकत्ता, नं. ४; कैटलाग ऑफ क्वायन्स, प्राविन्शियल म्यूज़ियम, लखनऊ नं. ३; लाहौर से ९४६ हिजरी तक हुमायूं के सिक्के मिलते हैं।

वहीं तक शेरशाह उन्हें सीमित रखना चाहता था और इबराहीम लोदी के साम्राज्य की सेवाओं को अफ़ग़ानों और मुग़लों की सीमाएं समझता था।

शेरशाह ने मुग़लों को अफ़ग़ानिस्तान के भागों पर अधिकार रखने की स्वीकृति क्यों दी ? ये भाग उसकी तथा उसकी जाति की जन्मभूमि थे। अफ़ग़ान सैनिकों को भर्ती करने का यही केन्द्र था तथा इसके बिना मुस्लिम राज्यों से सम्बन्ध असम्भव था। उस परिस्थिति में मुग़लों को उन भागों से भी निकाल देने का विचार कोरी कल्पना नहीं थी। वास्तव में शेरशाह का यह निश्चय हुमायूं के प्रति सद्‌भावना के कारण नहीं था,[२३] वरंच उसकी सूझबूझ का परिणाम था। शेरशाह का जन्म भारत में हुआ था। इस कारण अफ़ग़ानिस्तान के प्रति उसका प्रेम मुग़लों अथवा अन्य अफगानों की भांति नहीं था। उसने स्वयं अपनी जागीर के विभाजन के प्रश्न पर कहा था कि रोह (अफ़ग़ानिस्तान) का कानून यहां नहीं चलेगा। वह यह भी समझता था कि इन भागों पर अधिकार करने में बराबर संघर्ष होता रहेगा क्योंकि मुग़लों को बदख़्शां तथा मध्य एशिया से अफ़ग़ानिस्तान के भागों पर आक्रमण करने में सुविधा होती। शेरशाह अपने को लोदी साम्राज्य का उत्तराधिकारी समझता था, इस कारण उसकी सीमा तक अपने को सीमित रखता था। फिर भी शेरशाह सतर्क था तथा उसने इस पर दृष्टि रखी कि मुग़ल अफ़ग़ानों को अपनी सेना में न रख सकें। इसके लिए वह अफ़ग़ानिस्तान से आये हुए अफ़ग़ानों को पारितोषिक तथा धन देकर अपनी तरफ मिलाये रखता था। अफ़ग़ान राष्ट्रीयता की भावना से भी उसे इसमें सहायता मिली।

मुग़लों की दशा अत्यन्त ही दयनीय थी। एकता स्थापित करने का हुमायूं का प्रयत्न विफल हो गया। कामरान का व्यवहार स्वार्थपूर्ण तथा निराशा-जनक था। उसकी दृष्टि इतनी संकुचित हो गयी थी कि यदि शेरशाह ने थोड़ा भी प्रश्रय दिया होता तो वह हुमायूं को गिरफ्तार कर अफ़ग़ानों को समर्पित कर देता। किन्तु शेरशाह ने कामरान से इस तरह की कोई मांग नहीं की। क्या शेरशाह उसे नीच कार्य समझता था ? अथवा उसे कामरान पर विश्वास नहीं था ? मुग़ल सम्राट को बन्दी बनाकर रखने या मार डालने में क्या उसे विद्रोह

[२३] "The abstention from an attack on the Mughals at Kabul and a free permission to them to settle there, must be pronounced a generous gesture on the part of the Afghan King." (बनर्जी, हुमायूं, पृ. १२)।

तथा अन्य कठिनाइयों का भय था? इन प्रश्नों का निश्चित रूप से उत्तर देना कठिन है।

लाहौर से विदाई

शेरशाह ने मुग़लों के मतभेद से लाभ उठाया। मुग़लों को पंजाब से भगाने में अब किसी तरह के संघर्ष का भय नहीं था। उसने आगे बढ़कर सरहिन्द पर अधिकार कर लिया तथा उसी महीने सतलज पार कर उसने सुल्तानपुर[२४] में प्रवेश किया। शेरशाह के इतने निकट पहुँचने की सूचना ने मुग़लों को कँपा दिया। लाहौर पर कब आक्रमण हो जाएगा, कहा नहीं जा सकता था।

कामरान ने देखा कि पंजाब उसके हाथ से निकल गया। वह इसके लिए हुमायूं को उत्तरदायी समझता था। सम्राट से उसका विश्वास उठ गया था। काबुल तथा क़न्धार बचाने की उसकी उत्सुकता बढ़ गयी। वह बारबार अफ़ग़ानिस्तान जाने पर जोर देने लगा। हुमायूं के लिए उसे अनुमति देने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था। उसने कामरान को आशीर्वाद दिया तथा उसे जाने की अनुमति दे दी।[२५] हैदर मिर्ज़ा कश्मीर जाने के लिए उत्सुक था। जो सैनिक उसके साथ जाना चाहते थे उन्हें लेकर कश्मीर पर आक्रमण करने की अनुमति भी हुमायूं ने उसे दे दी।

हुमायूं के सामने अब तीन मार्ग थे—बदख़्शां, कश्मीर या सिन्ध की तरफ अपने बचे हुए अमीरों तथा सैनिकों को लेकर अग्रसर होना। बदख़्शां जाने में दो कठिनाइयां थीं। प्रथम, कामरान उसे अफ़ग़ानिस्तान के मार्ग से जाने देने के लिए तैयार नहीं था; दूसरे, बाबर ने बदख़्शां सुलेमान मिर्ज़ा को दे दिया था। बिना उससे युद्ध किये उस पर अधिकार करना असम्भव था। हुमायूं के पास न तो युद्ध के साधन थे, न कोई केन्द्र ही था जहां से वह इस अभियान का नियन्त्रण कर सकता। इस तरह हुमायूं ने बदख़्शां जाने का विचार त्याग दिया। कश्मीर अभी विजय नहीं हुआ था। उधर जाने से हुमायूं को एक निर्धन तथा अविकसित देश में फँसने का भय था। काबुल जाने अथवा उसको अफ़ग़ानों के विरुद्ध केन्द्र बनाने का प्रश्न ही नहीं था क्योंकि कामरान किसी भी तरह काबुल को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। वह बार-बार यही कहता था कि "काबुल बाबर बादशाह ने मेरी माता (गुलरुख़ बेगम) को दिया था। हुमायूं का काबुल जाना उचित नहीं।" हुमायूं ने इसका उत्तर यह दिया कि बाबर काबुल के विषय में

२४ कपूरथला कस्बे से १६ मील दक्षिण, ३१°१३′ उत्तर तथा ७५°१५′ पूर्व।
२५ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ३६।

बार बार कहता था कि "मैं काबुल किसी को न दूंगा। मेरे पुत्रों को काबुल के विषय में कोई लोभ नहीं करना चाहिए, क्योंकि ईश्वर ने मुझे सब पुत्र काबुल में दिये हैं और अधिकांश विजयें काबुल में ही बैठकर हुई हैं।"[२६] इस तरह हुमायूं यह प्रदर्शित करना चाहता था कि काबुल पर सभी भाइयों का समान अधिकार है। इससे कामरान और भी सशंकित हुआ।

लाहौर त्यागने का निश्चय कर हुमायूं ने रावी नदी को पार किया तथा पश्चिम की तरफ रवाना हो गया (३१ अक्टूबर १५४०।[२७]

गुलबदन बेगम मुग़लों की उस समय की मनःस्थिति का वर्णन करती हुई लिखती हैं कि जैसे ही हुमायूं के जाने की सूचना मिली, ऐसा प्रतीत हुआ मानो क़यामत का दिन था। लोगों ने अपने-अपने स्थान को उसी तरह सजा-सजाया छोड़ दिया। नकद धन जितना ले जा सकते थे, ले लिया तथा रवाना हो गये।[२८]

हुमायूं का मन अपनी यात्रा के विषय में निश्चित नहीं था। उसने हैदर मिर्ज़ा को विश्वास दिलाया था कि यदि कश्मीर विजय में उसे प्रारम्भिक सफलता प्राप्त होगी तो वह उधर प्रस्थान करेगा।[२९] यहाँ से चलकर हुमायूं चेनाब के तट पर हज़ारा पहुँचा। कामरान अभी तक हुमायूं के साथ आ रहा था, यद्यपि उसने काबुल जाने का विचार कर लिया था। उसके साथ हुमायूं भी बदख़्शां जाना चाहता था किन्तु कामरान उसे उधर जाने देने के लिए तैयार नहीं था। यहां हुमायूं से विदा लेकर कामरान भीरा गया। शेरशाह की प्रगति से भयभीत होकर ख़्वाजा कलां सियालकोट से भागकर भीरा आ गया था। ख़्वाजा कलां हुमायूं का साथ देना चाहता था। किन्तु कामरान ने उसको उसके ही घर में बन्दी बना लिया तथा उस पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् हुमायूं भी वहां पहुँचा। कामरान के इस व्यवहार से हुमायूं के सहायकों में रोष फैल गया तथा उनमें से ज़ब्बार कुली कुरची ने कामरान की हत्या करनी चाही, किन्तु हुमायूं ने इसकी अनुमति नहीं दी।[३०]

यहां से आगे बढ़कर ये लोग खुशाब पहुँचे। यहां से ६ कोस चलने के पश्चात् एक ऐसा मार्ग मिला जिसमें दो सेनाएं एक साथ नहीं जा सकती थीं। वहां से

२६ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १४७।
२७ अकबरनामा, १, पृ. १७०।
२८ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १४४।
२९ अकबरनामा, १, पृ. १७१; तारीख़े रशीदी, पृ. ४८१।
३० जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ४०।

दो मार्ग निकलते थे, एक काबुल को जाता था दूसरा मुल्तान को। इस दर्रे पर पहुँचकर कामरान पहले उसमें प्रवेश करना चाहता था। हुमायूं ने सम्राट होने के नाते इसका विरोध किया क्योंकि एक बादशाह की हैसियत से उसे ही प्रथम जाना चाहिए था। दरबारियों ने भी परम्परा के आधार पर हुमायूं का पक्ष लिया। अबुल बक़ा नामक एक सम्माननीय अमीर के समझाने पर कामरान को अन्त में हुमायूं की बात स्वीकार करनी पड़ी।[३१] किन्तु दर्रे को पार कर हुमायूं को वहीं छोड़कर कामरान ने अस्करी, ख़्वाज़ा कलां तथा कुछ अन्य अमीरों के साथ काबुल का रास्ता लिया। सिन्ध नदी के तट पर मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा तथा उसके दो लड़के जो अभी तक मुल्तान के आसपास लूटमार कर रहे थे कामरान के साथ हो लिये तथा वे भी काबुल की ओर रवाना हो गये।

कामरान के पलायन से हुमायूं के दल में निराशा छा गयी तथा उनकी संख्या भी कम हो गयी। कामरान के जीवन की यह एक ऐसी रेखा है जहां से उसका हुमायूं विरोधी कार्य स्पष्ट रूप से प्रारम्भ हो जाता है। हुमायूं यहां से मुल्तान पहुँचा। कुछ दिन मुल्तान में रुककर वह उच्च की तरफ रवाना हुआ।

हिन्दाल ने कामरान के व्यवहार का विरोध किया था तथा वह कामरान के प्रति हुमायूं की दयालुता से क्रोधित था। वह तत्काल सिन्ध और गुजरात की तरफ जाना चाहता था। हुमायूं को ठीक निश्चय न करते देखकर वह स्वयं सिन्ध तथा गुजरात पर आक्रमण करने के अभिप्राय से हुमायूं को वहीं छोड़कर, यादगार नासिर मिर्ज़ा, कासिम हुसेन तथा कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ सिन्ध की तरफ तीव्र गति से रवाना हुआ।[३२] इस तरह अपने सभी भाइयों द्वारा परित्यक्त हुमायूं अपने कुछ विश्वासपात्र सैनिकों के साथ झेलम के पश्चिमी किनारे से होता हुआ ३१ दिसम्बर १५४० को उच्च पहुँचा।[३३] मार्ग में उसे बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जल तथा अनाज का अभाव था। एक सेर बाजरे के लिए एक अशर्फी खर्च करने पर भी अन्न मिलना कठिन था।[३४]

उच्च में

हिन्दाल ने हुमायूं का साथ तो छोड़ दिया किन्तु उसे बहुत अधिक सफलता

[३१] वही, पृ. ४०-४१।
[३२] अकबरनामा, १, पृ. १७१।
[३३] वही, पृ. १७२। उच्च २९° १४′ उत्तर तथा ७१° ४′ पूर्व में मावलपुर के दक्षिण पूर्व में ३८ मील पर स्थित है।
[३४] बदायूनी, मुन्तख़बुत्तवारीख, १, पृ. ३५६; अकबरनामा, १, पृ. १७१।

नहीं प्राप्त हुई। वीस दिन बिना अन्न और जल के वह इधर-उधर मारा-मारा फिरा। हुमायूं के उच्च पहुँचने के कुछ दिन पूर्व वह सम्राट के दल से मिला। दोनों भाइयों में पुनः सुलह हुई। दोनों उच्च पहुँचे और यहां से एक योजना के अनुसार कार्य प्रारम्भ हुआ।[३५]

उच्च में हुमायूं को बख़्शु लंगाह से कुछ सहायता की आशा थी। यह उस बलोच वंश का था जो १५२५-२६ में मुल्तान पर राज्य करता था। किन्तु उस वर्ष मिर्ज़ा शाह हुसेन अरग़ून से पराजित होकर वह उच्च की तरफ चला गया था। उससे सहायता पाने की आशा से हुमायूं ने उसके पास ख़िलअत भेजी और उसे ख़ानेजहां की उपाधि, झण्डा एवं नक़्क़ारा प्रदान करने का आश्वासन दिया। हुमायूं का संवाद पाकर बख़्शु विशेष उत्साहित नहीं हुआ। वह जानता था कि एक निर्वासित, शक्तिहीन भूतपूर्व सम्राट से प्राप्त सम्मान का कोई अर्थ नहीं। फिर भी हुमायूं की तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसने ख़ाने-पीने की सामग्री से उसकी सहायता की तथा व्यापारियों को उसके पड़ाव में ख़ाने के सामान ले जाने की आज्ञा दी। किन्तु वह स्वयं उपस्थित नहीं हुआ। इस तरह हुमायूं को अन्न से लदी १०० नावें प्राप्त हुईं। नौकाओं की सहायता से वह चेनाब नदी पार कर भक्कर पहुँचा (२६ जनवरी १५४१)।[३६]

ख़ुशाब में शेरशाह ने ख़्वास खां तथा अन्य अफ़ग़ान सरदारों को, हुमायूं को पंजाब से भगाने के लिए नियुक्त किया। हुमायूं के सहायकों की संख्या इतनी कम थी कि यदि ख़्वास ख़ां चाहता तो हुमायूं को गिरफ्तार कर सकता था, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अफ़ग़ानों का लक्ष्य हुमायूं को पंजाब से भगा देना था न कि उसको बन्दी बनाना।[३७]

सिन्ध में

पंजाब पार कर हुमायूं सिन्ध नदी के पूर्वी तट पर स्थित रोहरी पहुँचा। यह भक्कर का एक प्रसिद्ध नगर था। यहां हुमायूं चारबाग़ नामक उद्यान में

[३५] अकबरनामा, १, पृ. १७१-७२।

[३६] वही पृ. १७२; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १४८। भक्कर सिन्ध नदी पर एक द्वीप है। यह २७° ४३′ उत्तर तथा ६८° ५६′ पूर्व में सक्कर तथा रोहरी के बीच में स्थित था।

[३७] अबुल फ़ज़ल (अकबरनामा, १, पृ. १७२) लिखता है कि यद्यपि मुग़लों की सेना कम थी किन्तु ख़्वास ख़ां तथा अफ़ग़ान सेना को युद्ध करने का साहस नहीं हुआ।

ठहरा। उसके अन्य सहयोगी भी वहां आकर रुके, किन्तु सभी के ठहरने के लिए वहां स्थान काफी नहीं था, इस कारण हिन्दाल अपने साथियों के साथ चार-पांच कोस दक्षिण रुका। बाद में नदी को पार कर उसने नदी के दूसरे तट पर अपना पड़ाव डाला।[३८]

उत्तर में पंजाब, पूर्व में राजपूताना, दक्षिण-पूर्व में गुजरात तथा पश्चिम में बलूचिस्तान एवं दक्षिण-पश्चिम में समुद्र से घिरा होने के कारण मध्य युग में सिन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान था। सिन्ध के शासक शाह हुसेन ने मुग़लों के साथ अच्छा सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न किया था। उसने बाबर के नाम से ख़ुत्बा पढ़कर उससे अपनी रक्षा कर ली थी।[३९] गुजरात अभियान के समय हुमायूं की प्रार्थना पर शाह हुसेन ने उत्तर से गुजरात पर उस समय आक्रमण किया जिस समय हुमायूं दूसरी तरफ से आक्रमण कर रहा था। शाह हुसेन ने रादनपुर के मार्ग से बढ़कर पाटन को घेर लिया। उसके एक सेनापति सुल्तान महमूद ने महमूदाबाद तक बढ़कर, वहां तक के भाग को नष्ट कर दिया। अरग़ून सुल्तान के आक्रमण का कोई परिणाम नहीं हुआ क्योंकि सिन्ध के अमीर इस अभियान के पक्ष में नहीं थे।[४०]

शाह हुसेन बुद्धिमान था। वह अपने राज्य की रक्षा के लिए सतर्क था। इसी कारण जब उसने अपने एक दूत, मीर अलीका अरग़ून, को हुमायूं के पास उसे बंगाल विजय पर बधाई देने के लिए गौड़ भेजा, तो उसी के साथ उसने मीर ख़ुश मुहम्मद अरग़ून को, कामरान के पास उसकी क़न्धार विजय पर बधाई देने के लिए आगरा भेजा।[४१] वास्तव में ये दोनों दूत मुग़लों की अवस्था का पता लगाने के लिए भेजे गये थे। चौसा के युद्ध के पश्चात् ही उसे भय हुआ कि मुग़ल सिन्ध में आ सकते हैं, इस कारण उसने उच्च से भक्कर तक नदी के दोनों तरफ की कृषि को बरबाद करने की आज्ञा दी।[४२] कन्नौज के युद्ध के पश्चात् वह और भी सतर्क हो गया। उसने भक्कर के दुर्ग को आवश्यक वस्तुओं से भर दिया तथा निकट के स्थानों को नष्ट कर दिया। इस तरह उसने अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर लिया था।

[३८] अकबरनामा, १, पृ. १७२-७३; रोहरी कस्बा, २७°४१′ उत्तर तथा ६८°५६′ पूर्व सिन्ध नदी के पूर्वी तट पर स्थित है।

[३९] तारीख़े मासूमी, पृ. १४२।

[४०] वही, पृ. १६२-६४।

[४१] वही, पृ. १६५।

[४२] वही, पृ. १६६; इलियट तथा डासन, १, पृ. ३१७।

भक्कर का गवर्नर इस समय सुल्तान महमूद था। हुमायूं की सेना के पहुँचते ही सुल्तान महमूद ने इसे आक्रमण समझा और मुग़लों का सामना करने के लिए तैयार हो गया। रोहरी का दुर्ग उसने नष्ट कर दिया और स्वयं भक्कर के द्वीप दुर्ग में अपनी सेना के साथ चला गया। अपने साथ वह अपनी नावें भी लेता गया जिससे हुमायूं उन पर अधिकार न कर सके। हुमायूं ने उसे दुर्ग को समर्पित करने और स्वयं उपस्थित होने के लिए लिखा। सुल्तान महमूद ने अपने स्वामी शाह हुसेन अरग़ून की आज्ञा के बिना दुर्ग को समर्पित करना अस्वीकार कर दिया, किन्तु उसने हुमायूं के साथ सद्व्यवहार किया। उसने अन्न तथा आवश्यक वस्तुएं बाजार के सुपरिन्टेन्डेन्ट मेहतर अशरफ़ के नेतृत्व में हुमायूं के पास भेज दीं।[४३]

डा. बनर्जी लिखते हैं कि भक्कर के गवर्नर को हुमायूं तथा शाह हुसेन के पत्र-व्यवहार का ज्ञान नहीं था, इसी कारण उसने सम्राट का विरोध किया।[४४]

विद्वान् लेखक का मत ठीक नहीं प्रतीत होता। शाह हुसेन का अपने राज्य तथा दुर्ग की रक्षा का प्रबन्ध करना, जिसका वर्णन किया जा चुका है, तथा बाद में भी शाह हुसेन का दुर्ग को समर्पित न करना प्रमाणित करता है कि गवर्नर को अपने स्वामी की इच्छा का ज्ञान था। फिर, पत्र-व्यवहार के समय दुर्ग पर आक्रमण करना हुमायूं के लिए उचित नहीं था।

भक्कर के दुर्ग को अधीन करने में असफल होकर हुमायूं ने दो प्रतिनिधियों, अमीर ताहीर तथा अमीर समन्दर, को शाह हुसेन अरग़ून के पास सन्देश लेकर भेजा। इसमें उसने सिन्ध में बिना सूचना के आने के लिए क्षमा मांगी तथा उसे आश्वासन दिया कि वह सिन्ध पर अधिकार नहीं करना चाहता था और केवल परिस्थिति वश उसके राज्य में पहुँच गया था। उसने शाह हुसेन अरग़ून से अपने लिए गुजरात पर आक्रमण करने में सहायता देने की प्रार्थना की।[४५]

हुमायूं के अमीर किसी सुरक्षित स्थान के लिए चिन्तित थे जहां वे अपने परिवारों को रख सकते। उनकी बातों को ध्यान में रखकर हुमायूं ने सिन्ध के शासक के पास निम्नलिखित शर्तें दूत द्वारा भेजीं :[४६]

४३ तारीख़े मासूमी, (पृ. १६८) के अनुसार उसने ५०० गदहों के बोझ के बराबर अनाज एवं भोजन सामग्री भेजी।

४४ बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. २६।

४५ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज पृ. १४८; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ७७।

४६ अकबरनामा १, पृ. १७३; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १४८-४६; तारीख़े मासूमी, पृ. १६८।

१. शाह हुसेन मुग़लों की अधीनता स्वीकार करे।

२. वह स्वयं हुमायूं के सामने उपस्थित हो।

३. गुजरात विजय में शाह हुसेन मुग़लों की सहायता करे।

४. कुछ समय के लिए शाह हुसेन भक्कर का दुर्ग मुग़लों को समर्पित कर दे जिससे वे अपना परिवार वहां सुरक्षित रख सकें।

इसी समय बहुत से दारीजा एवं साफ़ियानी जाति के लोग हुमायूं की सेना में भर्ती हो गये जिससे उसकी सेना तथा सहायकों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी।[४७] अनाज की कमी से भाव बहुत अधिक बढ़ गया तथा अकाल की स्थिति हो गयी। सहायकों की संख्या बढ़ने से हुमायूं के मन में आशा का संचार हुआ कि यदि आवश्यकता पड़ी तो वह शक्ति से भी इन भू-भागों पर अधिकार कर सकेगा। शुक्रवार की नमाज़ के समय रोहरी की मस्जिद में उसके नाम से ख़ुत्बा पढ़ा गया।[४८] अकाल से बचने के लिए यादगार नासिर मिर्ज़ा को नदी की दूसरी तरफ तथा हिन्दाल को सेहवान के निकट पातर में[४९] पड़ाव डालने का प्रबन्ध करना पड़ा।

शाह हुसेन ने हुमायूं के दूत का स्वागत किया। अपने उत्तर में उसने हुमायूं से गुजरात अभियान में सहायता देने तथा स्वयं उपस्थित होने की बात कही किन्तु वह रोहरी का दुर्ग मुग़लों को समर्पित करने के लिए तैयार नहीं था। उसने मुग़लों को रोहरी छोड़कर हाजकान[५०] जाने की सलाह दी, क्योंकि वहां अनाज की अधिकता थी तथा निकट होने के कारण शाह हुसेन को वहाँ उपस्थित होने में सुविधा थी।[५१]

४७ तारीख़े मासूमी, (पृ. १७०) के अनुसार दो लाख। कदाचित् यह संख्या अतिशयोक्ति है।

४८ वही, पृ. १७०। जौहर उस समय वहां उपस्थित था किन्तु वह उसका उल्लेख नहीं करता।

४९ आधुनिक 'पात कुहना' ग्राम के पास। आईने अकबरी, २, पृ. ३४२ के अनुसार यह मुल्तान के सूबे के सीविस्तान सरकार में था। देखिए मेजर जनरल एम.आर. हेग, दि इण्डस डेल्टा कन्ट्री, पृ. ९१; बेवरिज द्वारा अकबरनामा का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. ३६२, टिप्पणी २।

५० बर्न्स, नैरेटिव ऑफ सिन्ध; आईने अकबरी, २, पृ. ३४१। हाजकान, जाजकान या चाचकान थट्टा के पूर्व, रन के पश्चिम में सिन्ध की शाखा पर स्थित था। अकबर के समय में यह मुल्तान सूबे की सरकार में था। इसमें ११ महाल थे जिनका राजस्व ११,७८४,५८६ दाम था।

५१ अकबरनामा, १, पृ. १७३-७४।

शाह हुसेन ने अपनी सतर्कता नहीं छोड़ी। वह जानता था कि हुमायूं को खुलकर सहायता देने का अर्थ शेरशाह को आमन्त्रित करना था। हुमायूं एक निष्कासित शासक था। उसके पास न इतने साधन थे न यश था कि वह अफ़ग़ानों से युद्ध कर सकता। अधिक सम्भव था कि मुग़ल सुविधा पाकर सिन्ध में ही जमे रहते और इस तरह शाह हुसेन का राज्य ही समाप्त हो जाता। इस परिस्थिति में शाह हुसेन ने मुग़ल सम्राट को अन्न तथा मीठी बातों से सन्तोष तो दिलाया, किन्तु वह किसी तरह इन्हें अपने राज्य के बाहर निकालना चाहता था। इसी कारण हुमायूं द्वारा भेजे गये दूत को वह उसकी स्वीकृति से ही रोके रहा तथा हुमायूं को स्पष्ट उत्तर न देकर उसको कई महीने भुलावे में डाले रखा। रोहरी के दुर्ग की रक्षा का भी उसने उचित प्रबन्ध किया था, यद्यपि उसे हुमायूं के स्वभाव का ज्ञान था तथा वह समझता था कि हुमायूं जिस उद्यान में ठहरा था उसकी सुन्दरता को छोड़कर वह स्वयं रोहरी पर आक्रमण नहीं करेगा।[५२] रोहरी के दुर्ग की रक्षा का प्रबन्ध कर वह स्वयं सीविस्तान पर आक्रमण करने के लिए रवाना हो गया।

कुछ दिन रोहरी के उद्यान में रुकने के पश्चात् हुमायूं ने पुनः अपने मीरे माल (कोषाध्यक्ष) अब्दुल ग़फ़ूर को शाह हुसेन को बुलाने के लिए भेजा। शाह हुसेन ने उत्तर दिया कि उसकी लड़की (माह चुचक) से कामरान का विवाह निश्चित था और वह उसके प्रबन्ध में लगे होने के कारण उपस्थित होने में असमर्थ था।[५३]

शाह हुसेन के उत्तर के पश्चात् अब उससे संघर्ष के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं था। हुमायूं ने इस बीच कई महीने व्यर्थ की वार्ता में व्यतीत कर दिये जिसका कोई परिणाम नहीं हुआ। इसी समय हिन्दाल के क़न्धार जाने की सूचना मिली।[५४] मुग़ल दल के अधिकतर अमीर उसका साथ छोड़कर चले ही गये थे। हिन्दाल के चले जाने पर स्थिति और भी बिगड़ जाती। अतः हुमायूं इस समाचार से चिन्तित हुआ। हिन्दाल से मिलकर उसे समझाना आवश्यक था, यह सोचकर वह पातर पहुँचा। उसने यहां हिन्दाल से उसकी क़न्धार यात्रा के विषय में पूछा। हिन्दाल ने इसे निराधार बताया जिससे हुमायूं को बड़ा सन्तोष हुआ।

५२ तारीख़े मासूमी, पृ. १६९।

५३ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १४९।

५४ अकबरनामा, १, पृ. १४७; तबकाते अकबरी, २, डे, पृ. ७७; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १४९।

हमीदा बानो से विवाह

हुमायूं पातर में कुछ दिन रहा। इस बीच एक दिन वह हिन्दाल की मां दिलदार बेगम से मिलने गया। यहां सभी स्त्रियां उससे मिलने तथा उसका स्वागत करने आयीं। इन स्त्रियों में हुमायूं की दृष्टि एक १४ वर्ष की लड़की पर पड़ी। हुमायूं ने हिन्दाल से उसके विषय में पूछा। हिन्दाल ने उत्तर दिया कि वह उसके शिक्षक मोर बाबा दोस्त[५५] की पुत्री हमीदा बानो थी। यह जानकर कि उसकी मंगनी तब तक नहीं हुई थी, हुमायूं ने अपने निकट ही खड़े हमीदा बानो के भाई ख़्वाजा मुअज़्ज़म से कहा कि "यह लड़का मेरा अपना सम्बन्धी होता है" और हमीदा बानो से भी कहा कि "यह भी मेरी सम्बन्धी है।"[५६] दूसरे दिन हुमायूं ने दिलदार बेगम से हमीदा बानो से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। हिन्दाल हुमायूं की इस बात को सुनकर क्रोधित हुआ और उसने कहा, "आप मुझे उत्साहित करने तथा सान्त्वना देने नहीं आये हैं, बल्कि अपने लिए दुलहिन का प्रबन्ध करने आये हैं। अगर आप इसी तरह का विचार रखेंगे तो मैं यहां से आपको छोड़कर चला जाऊँगा।"[५७] मिर्ज़ा हिन्दाल ने आगे कहा कि वह हमीदा बानो को अपनी बहन और पुत्री की तरह समझता है। हुमायूं बादशाह था और सम्भव था कि दोनों की न बन सके।[५८] हुमायूं इससे बड़ा नाराज हुआ और वहां से उठकर चला गया।

५५ मीर बाबा दोस्त ईरान का निवासी था तथा हुमायूं के समय में सद्र के पद पर नियुक्त हुआ था। (तारीखे मासूमी, पृ. १७१ के अनुसार उसका नाम शेख अली अकबर जामी था। इसकी विवेचना के लिए देखिए गुलबदन बेगम के हुमायूंनामा के अंग्रेजी अनुवाद में बेवरिज की टिप्पणी पृ. २३७-४१) बाद में अकबर के समय यह तीन हज़ार का मनसबदार नियुक्त हुआ। जौहर ने मीर बाबा दोस्त को हिन्दाल का आख़ुन्द कहा है। आख़ुन्द का अर्थ शिक्षक या धर्मप्रचारक है।

५६ हुमायूं ने कदाचित् यह इस कारण कहा क्योंकि उसकी माता माहम बेग़म भी शेख अहमद जाम ज़िन्दापील से सम्बन्धित थी, जिससे हमीदा का परिवार भी था।

५७ जौहर।

५८ हुमायूंनामा, पृ. ५२।

حضرت پادشاه اند - مبادا معاش نیک نه شود تا باعث کلفت شود -

"हज़रत पादशाह अन्द मबादां मआशे नेक न शवद" ता बायसे कुलफ़त शवद।

हुमायूं का यह व्यवहार अनुचित था। निष्कासन की कठिन परिस्थिति में, अपने से १९ वर्ष छोटी लड़की से, प्रथम बार ही देखकर, विवाह का प्रस्ताव करना उसके चरित्र की दुर्बलता का द्योतक है। हुमायूं की अवस्था इस समय लगभग ३३ वर्ष की थी और हमीदा बानो १४ वर्ष की थी। देखने में भी दोनों में बहुत अन्तर था। हुमायूं के कई पत्नियां थीं। गुलबदन बेगम ने ६ पत्नियों का उल्लेख किया है।[५९] जिनमें से ४ कदाचित् उस समय उसके साथ थीं। ऐसी परिस्थिति में एक लड़की को देखकर उससे तुरन्त विवाह करने का प्रस्ताव उच्छृङ्खलता का प्रतीक है। हिन्दाल हमीदा बानो को अपनी बहन समझता था और उसकी कम उम्र होने के कारण उसे अपनी लड़की की तरह मानता था। इस परिस्थिति में हुमायूं के इस प्रस्ताव से उसका क्रोधित होना स्वाभाविक था।

हुमायूं के क्रोधित होकर चले जाने से दिलदार बेगम को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने अपने पुत्र हिन्दाल को उसके व्यवहार के लिए डाँटा और उससे कहा कि बादशाह के सामने उसे इस तरह का व्यवहार नहीं करना चाहिए। इस समस्या को दिलदार बेगम ने स्वयं अपने हाथ में लिया और उन्होंने हुमायूं को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने उसके क्रोधित होकर चले जाने पर आश्चर्य तथा दुःख प्रकट किया और उसे सूचित किया कि हमीदा बानो की माता ने इस प्रश्न पर दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ कर दी है और लड़की की स्वीकृति के लिए प्रयत्नशील है।[६०] हुमायूं इससे बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे कुछ आशा हुई कि उसकी मनोकामना पूरी होगी। उसने दिलदार बेगम को लिखा कि वे जो भी प्रयत्न करेंगी वह उसे स्वीकार करेगा, और जहां तक 'निर्वाह-व्यय' का प्रश्न था जो कुछ भी वे चाहें वह स्वीकार कर लेगा। अन्त में उसने लिखा कि उसकी आँखें मार्ग पर लगीं हुई हैं।[६१]

दिलदार बेगम ने हिन्दाल को समझा-बुझाकर उससे इस विवाह की स्वीकृति ले ली। हुमायूं का मन देखकर उन्होंने एक मजलिस उसके स्वागत में बुलायी। बादशाह ने दिलदार बेगम से मुलाकात के अवसर पर हमीदा बानो से मुलाकात करने की इच्छा प्रकट की। हमीदा बानो बुलायी गयी पर वह नहीं आयी। फिर सुभान क़ुली को उसे बुलाने के लिए भेजा गया किन्तु हमीदा बानो आने के लिए फिर भी तैयार नहीं

५९ हुमायूं की पत्नियों के लिए इस पुस्तक का ग्यारहवां अध्याय देखिए।
६० गुलबदन हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५०।
६१ वही।

हुई। वह बार-बार कहती रही कि "बादशाह से भेंट करना एक बार ही जायज है, दूसरी बार नामहरम (जिसके सामने स्त्रियों का जाना उचित नहीं) है। मैं नहीं जाऊँगी।" चालीस दिन तक हमीदा बानो को समझाने का प्रयत्न होता रहा। एक दिन दिलदार बेगम ने कहा कि "आखिर तुम किसी से विवाह तो करोगी ही, फिर बादशाह से अच्छा कौन होगा?" हमीदा बानो ने उत्तर दिया "मैं किसी से विवाह जरूर करूँगी लेकिन वह ऐसा मनुष्य होगा जिसके गरीबान मेरे हाथ छू सकें न कि ऐसा जिसके दामन को भी मैं न छू सकूँ।"[६२] अर्थात् दोनों में इतना सामाजिक अन्तर था कि यह विवाह उचित नहीं था। दिलदार बेगम ने उसे बहुत समझाया, अन्त में बड़ी कठिनता से हमीदा बानो विवाह के लिये तैयार हुई।[६३]

६२ गुलबदन के शब्द इस प्रकार हैं:

آرے بکسے خواهم رسید که دست من بگریبان او برسد نه آنکه بکسے برسم که
دست من می دانم بدامن او نرسد

आरे ब कसे ख़्वाहम रसीद कि दस्ते मन ब गरेबाने ऊ बरसद न आकि ब कसे बेरसम कि दस्ते मन मीदानम ब दामने ऊ न रसद (हुमायूंनामा, फा. पृ. ५३)।

डा. बनर्जी (भाग २, पृ. ३४) ने इसका अर्थ यह लगाया है कि हुमायूं बहुत लम्बा था तथा हमीदा कद में उससे बहुत छोटी थी। यह अर्थ ठीक नहीं है। यह वाक्य अलंकारिक है तथा इससे हुमायूं तथा हमीदा के सामाजिक स्तर की भिन्नता की तरफ इशारा है। हमीदा बानो को इस तरह हुमायूं की लम्बाई की तरफ इशारा करना असम्भव प्रतीत होता है। यदि उसका यह अर्थ होता तो गुलबदन बेगम, जिसने इसका वर्णन किया है, ऐसा न लिखती, क्योंकि इससे हमीदा की बेशर्मी प्रकट होती है।

६३ हमीदा बानो ने हुमायूं से विवाह करना क्यों अस्वीकार किया, इस विषय में डा. विंसेंट स्मिथ और सर रिचार्ड बर्न (स्मिथ, अकबर, पृ. १३; कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ४. पृ. ३८) का यह सुझाव कि वह किसी दूसरे को प्यार करती थी और उसकी मंगनी हो चुकी थी, सत्य नहीं है क्योंकि यह समकालीन इतिहासकारों द्वारा समर्थित नहीं है। केवल जौहर लिखता है कि विवाह सम्बन्धी बातचीत चल रही थी। मंगनी हो गयी थी या हमीदा बानो किसी अन्य से प्रेम करती थी, यह किसी भी समकालीन इतिहासकार ने नहीं लिखा है। गुलबदन बेगम ने स्पष्ट रूप से हमीदा बानो के इस विवाह के अस्वीकार करने का कारण लिखा है और कदाचित् वही कारण मुख्य था। दोनों उपर्युक्त लेखकों के विचार

२६ अगस्त १५४१ को दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। हुमायूं ने, जो स्वयं ज्योतिषशास्त्र का ज्ञाता था, दिन और समय निश्चित किया। जब निश्चित समय में देर होने लगी तो हुमायूं ने मीर अबुल बक़ा को तुरन्त समय से विवाह सम्पन्न करने के लिए जल्दबाजी की। विवाह के पश्चात् मीर अबुल बक़ा को दो लाख सिक्के 'निकाहाना' के रूप में दिये गये।[६४]

हुमायूं और हमीदा बानो का विवाह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यह एक शिआ-सुन्नी विवाह था। उस समय जब इस्लाम के इन दो सम्प्रदायों में पारस्परिक वैमनस्य अपनी सीमा पर था, इस विवाह से हुमायूं की उदारता प्रकट होती है। इस विवाह के १४ महीने पश्चात् हमीदा बानो के गर्भ से अकबर का जन्म हुआ जो भारत का ही नहीं बल्कि विश्व के महान् शासक के रूप में विख्यात हुआ। दोनों की आयु में काफी अन्तर था फिर भी दोनों का पारिवारिक जीवन बहुत ही सुखी रहा। इससे इस विवाह की सफलता प्रकट होती है।

हिन्दाल का पलायन

हुमायूं की गतिविधि तथा मरुभूमि की कठिनाइयों से हिन्दाल परेशान तो था ही, इसी समय कन्धार के गवर्नर कराचा खां ने उसे क़न्धार आने के लिए आमन्त्रित किया।[६५] हिन्दाल इसके प्रति आकर्षित भी हुआ, किन्तु हुमायूं को छोड़ने का वह पूर्ण निश्चय नहीं कर पा रहा था। हमीदा से हुमायूं के विवाह करने के पश्चात् अपना विरोध प्रदर्शित करने के बहाने यहाँ से क़न्धार रवाना

इस दृष्टि से काल्पनिक हैं। श्रीमती बेवरिज के अनुसार हमीदा बानो की प्रारम्भिक अस्वीकृति का कारण हुमायूं की कई पत्नियों का होना था। (हुमायूंनामा का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. १५०, नोट १)

६४ दो लाख चांदी के सिक्के देना उस समय हुमायूं के लिए असम्भव प्रतीत होता है। कदाचित् दो लाख रुपये नहीं बल्कि दो लाख दाम (पांच हज़ार रुपये) उसे दिये गये। (बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. ३७ नोट ३) विवाह की तिथि के विषय में अबुल फ़ज़ल केवल ९४८ हि. लिखता है। गुलबदन बेग़म केवल इतना ही कहती है कि विवाह सोमवार, जुमादिउल अव्वल ९४८ हि. को हुआ। किस महीने के किस हफ्ते में हुआ यह वह नहीं लिखती। डा. बनर्जी इससे प्रथम सप्ताह (२६ अगस्त) निश्चित करते हैं तथा डा. ईश्वरी प्रसाद ने श्रीमती बेवरिज के मत को स्वीकार किया है (सितम्बर, १५४१)। (बनर्जी, २, पृ. ३७; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५१; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं पृ. २०७)

६५ अकबरनामा, १, पृ. १७४।

होने का उसे अच्छा अवसर मिला। विवाह के पश्चात् ही हुमायूं को छोड़कर वह क़न्धार की तरफ रवाना हो गया।

हुमायूं के भाइयों में हिन्दाल ही उसके साथ रह गया था। उसके जाने से मुग़ल दल को और भी निराशा हुई। हुमायूं के भाइयों में हिन्दाल उसके साथ रहना अवश्य चाहता था, किन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो पाता था और वह कुछ दिन साथ रहकर भाग खड़ा होता था। इस बार भी वैसा ही हुआ। वास्तव में हिन्दाल के हृदय में दो विरोधी भावनाओं का संघर्ष हो रहा था। एक तरफ हुमायूं के साथ मिलकर सहयोग करने की प्रवृत्ति उसमें थी और दूसरी तरफ समकालीन परिस्थितियों तथा अपने अन्य भाइयों की आकांक्षाओं को देखकर वह भी हुमायूं के प्रभाव से अलग होकर स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करना चाहता था। इस परिस्थिति में उसकी द्वितीय प्रवृत्ति ने विजय पायी और उसने हुमायूं को त्याग दिया। जिस परिस्थिति में हुमायूं था उसमें उसे छोड़ना मुग़लों के लिए बहुत बड़ी कमजोरी का कारण बना।

अबुल बक़ा की मृत्यु

हुमायूं का चचेरा भाई यादगार नासिर मिर्ज़ा हिन्दाल के अधिक समीप था। क़न्धार जाते समय हिन्दाल ने उससे भी साथ चलने के लिए कहा। हुमायूं इससे बहुत ही चिन्तित हुआ। सभी सम्बन्धियों ने उसका साथ छोड़ दिया था। यदि नासिर मिर्ज़ा भी चला जाता तो हुमायूं की शक्ति को बहुत बड़ा धक्का लगता। हमीदा बानो से विवाह के तीन ही दिन पश्चात् हुमायूं पातर से रोहरी आया। शाह हुसेन अरग़ून की शर्तों को अस्वीकार करने के पश्चात् अब भक्कर के दुर्ग पर शक्ति से अधिकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था। इसके लिए आपसी एकता आवश्यक थी। हुमायूं ने इस कारण यादगार नासिर को समझाने के लिए अबुल बक़ा को भेजा। वह बाबर के समय का एक प्रमुख अमीर था। उसी ने हुमायूं की बीमारी के समय बाबर से कोई बहुमूल्य वस्तु न्यौछावर करने की सलाह दी थी।[६६] मुगलों में उसका विशेष आदर तथा सम्मान था।

मीर अबुल बक़ा ने नासिर मिर्ज़ा से मुलाकात की तथा निम्नलिखित शर्तों पर उसे हुमायूं की सहायता करने पर राज़ी किया :[६७]

६६ वही, पृ. ११६ तथा ११८।
६७ वही, पृ. १७४-७५।

१. यादगार नासिर सिन्ध नदी पारकर हुमायूं से मिलेगा तथा हुमायूं की सेवा में रहकर उसकी सहायता करेगा।

२. हिन्दुस्तान विजय के पश्चात् यादगार नासिर को, उसकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप, हुमायूं अपने साम्राज्य का एक तिहाई भाग देगा।

३. न्हिदुस्तान की विजय के पूर्व यदि हुमायूं काबुल पर अधिकार करेगा तो यादगार नासिर को ग़ज़नी, चीर्ख़ तथा लोहगढ़[६८] के भाग प्राप्त होंगे। ये स्थान बाबर ने अपने छोटे भाई नासिर मिर्ज़ा की पत्नी, अर्थात् यादगार नासिर की माता, को दिये थे।

इस प्रकार एक तरह से साम्राज्य के विभाजन की शर्त स्वीकृति हुई। हुमायूं की इन शर्तों को स्वीकार करने की आलोचना की जा सकती है, किन्तु उसकी परिस्थितियों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने कोई भूल नहीं की। यादगार नासिर मिर्ज़ा से सहयोग प्राप्त करने का इस सन्धि के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं था।

भक्कर के दुर्गवासियों को हिन्दाल के क़न्धार जाने तथा यादगार नासिर के उसका साथ देने को सूचना थी। उन्हें इससे प्रसन्नता थी, क्योंकि इससे मुग़लों की आक्रामक शक्ति कम हो जाती।

यादगार नासिर मिर्ज़ा के विचार परिवर्तन से भक्कर दुर्ग के रक्षकों को बहुत निराशा हुई। उन्होंने इस सबकी जड़ अबुल बक़ा को ही समझा। मीर १८ जमादि उल अव्वल ९४८ हि.[६९] को यादगार नासिर से मिलकर दूसरे दिन लौट रहा था। मार्ग में भक्कर के रक्षकों ने उस पर आक्रमण किया। वह घायल हुआ तथा दूसरे दिन उसकी मृत्यु हो गयी।[७०] हुमायूं को इससे बहुत

६८ लोहगढ़ अब लोगर कहलाता है तथा ग़ज़नी जिले में है। बाबर के अनुसार यह काबुल का एक तूमान परगना था। चीर्ख़ लोहगढ़ के परगने में एक गांव है। आईने अकबरी, २, पृ. ४१०; बाबरनामा, बेवरिज, पृ. २१७ में चीर्ख़ का वर्णन है।

६९ अकबरनामा, १, पृ. १७४। हिजरी वर्ष को सभी स्वीकार करते हैं किन्तु इसके दिन तथा अंग्रेजी तिथि के विषय में मतभेद है। डा. बनर्जी के अनुसार १८ जमादिउल अव्वल ९४८ हि. को शुक्रवार ९, सितम्बर १५४१ था। बेवरिज अकबरनामा के अंग्रेजी अनुवाद में ११ सितम्बर लिखते हैं कुछ समकालीन इतिहासकारों ने उस दिन मंगलवार लिखा है। बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. ४३, नोट २।

७० अकबरनामा, १, पृ. १७५; अर्सकिन, २, पृ. २२२; श्रीमती बेवरिज

दुःख हुआ, क्योंकि मीर अबुल बक़ा ने उसकी सहायता करने में अपने प्राण खोये थे। ऐसे समय जब सभी उसे छोड़कर भाग रहे थे, ऐसे उपयोगी व्यक्ति उसके साथ नहीं थे।

सेहवान पर आक्रमण

पातर से भक्कर लौटने पर शाह हुसेन अरग़ून के दूत शेख़ मीरक ने हुमायूं से मुलाकात की। शाह हुसेन ने अन्य शर्तों को स्वीकार कर लिया था किन्तु वह हुमायूं के सामने उपस्थित होने को तैयार नहीं था। वास्तव में वह हुमायूं को धोखे में रखना चाहता था। हुमायूं ने दूत को विदा किया तथा शाह हुसेन को सामने उपस्थित होने के लिए कहा। कुछ दिन व्यतीत होने पर भी शाह हुसेन नहीं आया। युद्ध के अतिरिक्त अब अन्य कोई मार्ग नहीं था।

यादगार नासिर नदी पार कर हुमायूं से आ मिला था। विचार विमर्श के पश्चात् यादगार नासिर को भक्कर दुर्ग के अभियान के लिए छोड़कर हुमायूं थट्टा की तरफ रवाना हुआ (सितम्बर १५४१, १ जमादि उल आखिर ९४८ हि.) मार्ग में सेहवान के निकट कुछ सिन्धियों ने हुमायूं के दल पर आक्रमण किया, किन्तु हुमायूं के दल ने उन्हें मार भगाया। ६ नवम्बर १५४१ (१७ राजब, ९४८ हि.) को हुमायूं सेहवान[७१] कस्बे में पहुँचा और उसने दुर्ग का घेरा प्रारम्भ किया।

सेहवान का घेरा काफी दिनों तक चला। शाह हुसेन ने भक्कर के दुर्ग में आवश्यक वस्तुएं जमा कर दीं और स्वयं सेहवान तथा भक्कर के बीच चक्कर लगाता रहा, जिससे मुग़लों को खाने-पीने की वस्तुएं न प्राप्त हो सकें तथा उसके दुर्ग रक्षकों को किसी तरह की कमी न हो। इस बीच मुग़लों को काफी कष्ट हुआ। खाने-पीने तथा युद्ध सामग्री की कमी तथा बीमारियों के अतिरिक्त बाढ़ ने मुग़लों के कष्ट को भीषण बना दिया। इस परिस्थिति में बहुत-से अमीर तथा सिपाही हुमायूं को छोड़कर भागने लगे। शाह हुसेन ऐसे व्यक्तियों को प्रोत्साहित करता था तथा उन्हें धन और पद देकर अपनी तरफ़ कर लेता था। मीर ताहिरसद्र तथा ख्वाजा ग़ियासुद्दीन जामी जैसे व्यक्ति भी हुमायूं को छोड़कर शाह हुसेन से जा मिले। इसी तरह मीर बरक़ा, मिर्ज़ा हसन,

(हुमायूंनामा पृ. १५१) लिखती हैं कि उसे सुल्तान भक्कारी के पास भेजा गया, वह बीमार पड़ा तथा उसकी मृत्यु हो गयी। उनका यह वर्णन सही नहीं है।

[७१] सेहवान २६° २६′ उत्तर तथा ६७° ५४′ पूर्व में स्थित था। (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ७९, नोट २)

जफ़र अली, ख्वाजा महीब अली बख्शी हुमायूं को छोड़कर यादगार नासिर से भक्कर में जा मिले।[७२] इसी बीच हुमायूं को पता चला कि मुनीम खां, फ़ज़ील बेग तथा अन्य लोग भाग जाना चाहते हैं। हुमायूं ने भागने वालों को रोकने के लिए उनके नेता मुनीम ख़ां को बन्दी बना लिया।

दूसरी तरफ यादगार नासिर मिर्ज़ा रोहरी में डटा हुआ था। इस तरह मुग़ल सेना दो भागों में बंटी हुई थी। सिन्धियों ने तीन बार यादगार नासिर पर आक्रमण किया। अन्तिम बार के आक्रमण में मुग़लों ने बहुत-से शत्रुओं को मार डाला। इस तरह यादगार नासिर को पराजित करने में असफल होकर शाह हुसेन ने एक दूसरा षड्यंत्र रचा।

सेहवान में हुमायूं की स्थिति दिन प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। स्थिति यहां तक पहुँच गयी कि शाह हुसेन के पड़ाव पर आक्रमण करने के लिए अली-बेग जलायर पांच सौ सिपाहियों का भी प्रबन्ध न कर सका।[७३] इस दुर्दशा की अवस्था में हुमायूं ने यादगार नासिर से सहायता मांगी। यादगार नासिर ने तरदी बेग तथा कासिम बेग को सेना के साथ भेजा तथा स्वयं हुमायूं की सहायता के लिए जाने की तैयारी की। शाह हुसेन इससे सतर्क हुआ। उसने यादगार नासिर को फुसलाकर अपने पक्ष में करने की योजना बनायी। उसने बाबर कुली को यादगार नासिर के पास भेजकर कहलाया कि उसके कोई पुत्र नहीं है और वह यादगार नासिर से अपनी पुत्री का विवाह कर उसे अपना राज्य देना चाहता है।[७४] यही नहीं, उसने यह भी आश्वासन दिया कि दोनों मिलकर सरलता से गुजरात पर अधिकार कर सकेंगे। यादगार नासिर इस कुचक्र में फंस गया। उसने हुमायूं की सहायता की मांग पर ध्यान नहीं दिया तथा प्रारम्भ में सहायतार्थ भेजी गयी सेना को भी वापस बुला लिया। सेहवान का घेरा चलाना असम्भव था। हुमायूं को विवश होकर सेहवान का घेरा उठाना पड़ा। बचे हुए सैनिकों को लेकर वह भक्कर की तरफ रवाना हुआ।

मार्ग में हुमायूं को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वह घोड़े से गिर पड़ा जिससे उसके हाथ-पांव में चोट लगी। सिन्धी सेना ने एक बार अचानक आक्रमण कर दिया और मुग़ल महिलाओं को नंगे पैर भागकर अपनी

७२ अकबरनामा, १, पृ. १७६।
७३ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ४६।
७४ तारीखे मासूमी, पृ. १७४; अकबरनामा, १, पृ. १७७; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ८१।

रक्षा करनी पड़ी।[७५] हुमायूं ने निराश होकर मुनीम खां को शाह हुसेन से मुग़लों के प्रति उदारता दिखाने की प्रार्थना करने के लिए भेजा। शाह हुसेन ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी किन्तु हुमायूं को अधिक तंग नहीं किया गया।

भक्कर पहुँचकर हुमायूं को और निराशा हुई। यहां यादगार नासिर नदी पार करने के लिए उसे नावें देने को तैयार नहीं था। रात में उसने सिन्धियों से नावें हटा लेने को कह दिया और प्रातः उसने हुमायूं से यह कहकर क्षमा मांग ली कि शत्रु नावें लेकर भाग गये।[७६] इस समय स्थानीय दो जमींदारों—हाला तथा गन्जम—की सहायता से हुमायूं ने सिन्ध नदी पार की। हुमायूं के नदी पार करने की सूचना से यादगार नासिर इन जमींदारों से बड़ा नाराज़ हुआ। कुछ अरगून सैनिकों को मारकर उनके सिरों के साथ वह नाटकीय ढंग से हुमायूं के सामने उपस्थित हुआ जिससे उसका सन्देह मिट जाए। हुमायूं ने उसे क्षमा कर दिया। शाह हुसेन के कहने पर यादगार नासिर ने दोनों जमींदारों को हुमायूं के ख़ेमे से जहां वे शाह हुसेन के डर से छिपे हुए थे, पकड़कर शाह हुसेन को दे दिया। शाह हुसेन ने उन्हें मार डाला।[७७] इस तरह हुमायूं की मूर्खता से उसके आपत्तिकाल के दो सहायकों की निर्मम हत्या हुई।

यादगार नासिर हुमायूं के आदमियों को भड़काता रहा और हुमायूं के ख़ेमे से इनका भागना इतना साधारण हो गया कि उसको रोकने के लिए हुमायूं को एक बार रात भर जागना पड़ा। यादगार नासिर अब खुले रूप से हुमायूं का विरोध करने लगा। वह उसे रोहरी में पड़ाव डालने देने के लिए भी तैयार नहीं था। यही नहीं, एक बार उसने हुमायूं पर छापा मारने का भी विचार किया।[७८] बड़ी कठिनाई से उसे रोका जा सका। हुमायूं के लिए आपत्तिकाल की ये कठिनाइयां असहनीय थीं। मुग़ल पड़ाव में दुर्भिक्ष की अवस्था थी। मित्र, सम्बन्धी सभी उसे धोखा देते जा रहे थे। किसी का विश्वास नहीं किया जा सकता था। इस मानसिक कष्ट की अवस्था में चारों तरफ से निराश हुमायूं ने सन्यास लेने का विचार किया और राजत्व त्यागकर काबा जाने का विचार करने लगा। ऐसी कठिन स्थिति में उसने जोधपुर जाने का विचार किया। वहां के शासक मालदेव ने कुछ दिन पूर्व उसे आमन्त्रित किया था।

७५ जौहर-स्टीवर्ट, पृ. ४७; अंग्रेजी अनुवाद में स्त्रियों के अर्धनग्न अवस्था में भागने का उल्लेख है।

७६ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ८२।

७७ अकबरनामा, १, पृ. १७८; तबक़ाते अकबरी, डे, ८२-८३।

७८ वही; वही।

मालदेव तथा हुमायूं

राजपूताना के इतिहास में राठौर वंश का प्रमुख स्थान है। बारहवीं सदी के अन्त में यहां का शासक जयचन्द (११७०-९४) था। मुहमद ग़ोरी के द्वारा चन्दवार के युद्ध में पराजित होने के पश्चात् इस वंश की शक्ति को बहुत बड़ा धक्का लगा, किन्तु इस वंश का अन्त नहीं हुआ। यहां से भागकर ये लोग जोधपुर चले गये, जो बाद में इस राज्य का केन्द्र बना। जिस समय मुग़ल साम्राज्य की स्थापना हुई उस समय जोधपुर पर मालदेव राज्य करता था। राव मालदेव, राव गांगा का जेष्ठ पुत्र था। इसका जन्म ५ दिसम्बर १५११ को हुआ था। गांगा का स्वभाव विनम्र और सुशील था। उसने अपना राज्य बढ़ाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत मालदेव उग्र स्वभाव का और उच्चाभिलाषी था। इस कारण वह अपने पिता का विरोध करता था। एक दिन जब अफ़ीम की पिनक में गांगा ऊपर की मंजिल के झरोखे में बैठा था, मालदेव ने पीछे से जाकर उसे उठाकर नीचे फेंक दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी।[७९] पिता को मारकर जिस समय मालदेव जोधपुर की गद्दी पर बैठा उस समय उसके अधिकार में केवल सोजत तथा जोधपुर के परगने थे। प्रारम्भ में बहादुर शाह के उत्कर्ष से उसे कठिनाई हुई किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् निकट के राज्यों के पारस्परिक झगड़ों से लाभ उठाकर कुछ ही वर्षों में उसने आसपास के अनेक राज्यों पर अधिकार कर जोधपुर के साम्राज्य को बहुत बढ़ा लिया। जिस समय हुमायूं तथा शेर खां में कन्नौज की लड़ाई हुई उस वर्ष तक नागौर, मेड़ता, बीकानेर, जैसलमेर पर तो मालदेव का अधिकार था ही, साथ ही जयपुर के कुछ भाग भी उसके अधिकार में थे। इसके अतिरिक्त मेवाड़ पर भी उसने आक्रमण किया था।[८०] राजपूताने में उसकी शक्ति सबसे अधिक थी। अजमेर तथा नागौर विजय के पश्चात् उसकी सीमा मुग़ल सीमा से (बाद में शेरशाह की सीमा से) मिलती थी। अजमेर तथा नागौर दिल्ली शासन के अधीन रह चुके थे। मालदेव का राज्य दिल्ली के निकट था तथा उसके

७९ ओझा, जोधपुर का इतिहास, १, पृ. २८०-८१; रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, १, पृ. ११५; कविराज श्यामलदास, वीरविनोद, २, पृ. ८०८।

८० श्रीराम शर्मा, स्टडीज इन मेडिवल इन्डियन हिस्ट्री, अध्याय १२, हुमायूं तथा मालदेव पृ. १६६; निज़ामुद्दीन अहमद के अनुसार उस समय उसकी शक्ति एवं सेना की बराबरी करने वाला और कोई व्यक्ति हिन्दुओं में नहीं था। तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ८३-८४।

पास लगभग ५०,००० बलवती अश्वारोही सेना थी।[८१] वह महत्त्वाकांक्षी भी था। इस परिस्थिति में दिल्ली के शासक से कभी न कभी संघर्ष असम्भव नहीं था।

मालदेव का निमन्त्रण

जिस समय हुमायूं सिन्ध में था उसे मालदेव का निमंत्रण मिला।[८२] जिसमें उसने संकेत किया था कि यदि हुमायूं जोधपुर आ जाए तो वह उसकी सहायता करेगा। मालदेव के इस निमंत्रण के कारण क्या थे? मुग़ल-अफ़ग़ान संघर्ष में जोधपुर के लिए तटस्थ रहना अधिक उपयुक्त था। किन्तु मालदेव निश्शंक तथा बहादुर व्यक्ति था। वह कठिनाइयों से डरता नहीं था। इस परिस्थिति में उसे अपनी शक्ति को दृढ़ करने के लिए अच्छा अवसर मिला। कुछ राजनीतिक घटनाएं ऐसी हुईं जिनसे उसे अपना निश्चय पक्का करने में सरलता हुई।

महत्त्वाकांक्षी मालदेव ने राज्य विस्तार की इच्छा से प्रेरित होकर कुपा की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना बीकानेर की तरफ रवाना की।[८३] चढ़ाई की ख़बर पाकर बीकानेर के शासक राव जैतसी ने अपने मन्त्री नगराज से सलाह कर उसे शेरशाह के पास सहायता के हेतु भेजा।[८४] नगराज तथा कल्याण मल के लौटने के पहले ही मालदेव ने बीकानेर पर आक्रमण कर, जैतसी को युद्ध में मारकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।[८५] बीकानेर द्वारा शेरशाह से सहायता मांगने की सूचना पाकर ही मालदेव ने हुमायूं को आमंत्रित किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे भय था कि वह शेरशाह से बीकानेर की रक्षा नहीं कर सकेगा। इसी कारण हुमायूं के जोधपुर राज्य में प्रवेश करने

८१ क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. २६७; रघुवीर सिंह, पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ. ३०; राजपूत इतिहासकारों के अनुसार उसकी सेना ८०,००० थी।

८२ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ८४ के अनुसार मालदेव ने कई बार उसे जोधपुर आने के लिए आमन्त्रित किया। अबुल फ़ज़ल भी लिखता है कि उसने कई पत्र भेजकर अपनी स्वामिभक्ति का आश्वासन दिया था। अकबरनामा, १, पृ. १७९; डा. क़ानूनगो के अनुसार (शेरशाह पृ. २६६-६७) मालदेव का निमन्त्रण फरवरी तथा अगस्त १५४१ के बीच प्राप्त हुआ होगा।

८३ जोधपुर राज्य का ख्यात, १, पृ. ६९; ओझा, जोधपुर का इतिहास, १, उद्धृत, पृ. २९२।

८४ जय सोम का कर्मचन्द्र वंशोत कीर्त्तनं काव्यम्; ओझा, जोधपुर का इतिहास, जिल्द १, पृ. २९२।

८५ रेऊ मारवाड़ का इतिहास, १, पृ. १२५-२६; यह घटना १५९८ विक्रमी (१५४१-४२ ई.) की है। ओझा, जोधपुर का इतिहास, १, पृ. २९२-९३।

के पश्चात् ही उसने उसे बीकानेर देने का आश्वासन दिया।[८६] हुमायूं को आमंत्रित करने के पश्चात् शेरशाह से युद्ध अनिवार्य था। मालदेव इसके लिए तैयार था। हुमायूं के निष्कासन को वह अस्थायी समझता था। मुग़ल सम्राट को दिल्ली के तख़्त पर बैठाकर वह उत्तरी भारत की राजनीति को नियंत्रित कर सकता था।[८७] मालदेव का निमंत्रण हुमायूं के राजपूतों के प्रति प्रेम के कारण नहीं था।[८८] प्रथम दो मुग़ल सम्राटों ने कभी राजपूतों की सहायता नहीं की जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके। वास्तव में यह मालदेव की अपनी रक्षार्थ तथा अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए था। मालदेव बुद्धिमान राजनीतिज्ञ था। निमंत्रण भेजने के पूर्व उसने हानि-लाभ का अनुमान लगा लिया होगा, क्योंकि इसमें असफलता का अर्थ उसका विनाश था।[८९] परिस्थिति भी मालदेव के पक्ष में थी। शेरशाह अभी अपने शासन और साम्राज्य को पूर्ण रूप से संगठित नहीं कर सका था। बंगाल में ख़िज्र खां के विद्रोह के परिणामस्वरूप शेरशाह अपनी सेना के एक भाग के साथ पूर्वी अभियान में लगा था। लगभग ५०,००० अफ़ग़ान सेना गक्खर के विरुद्ध लगी हुई थी। इस तरह शेरशाह की अधिकतर सेना के दो भाग उसके साम्राज्य के पूर्वी तथा पश्चिमी सीमाओं में व्यस्त थे। दोनों भागों की सेनाओं को एकत्र करने में काफ़ी समय लग जाता। ग्वालियर अब भी शेरशाह के अधिकार में नहीं आया था और शेरशाह का सेनापति शुजात खां उसका घेरा डाले हुए पड़ा था। मालवा के सरदार शेरशाह के विरुद्ध थे। राजपूत सेनाएं स्थायी नहीं थीं, बल्कि समय पर इकट्ठी की जाती थीं। मालदेव की सेना उस समय उसके पास थी। ऐसी परिस्थिति में यदि हुमायूं १५४१ की वर्षा ऋतु में जोधपुर आ जाता तो संभव था कि मालदेव उसकी सहायता कर उसे दिल्ली के तख़्त पर बैठाने में सफल होता। किन्तु इस बीच हुमायूं सिन्ध के भागों में मारा-मारा फिरता रहा तथा सिन्ध की विजय में लगा रहा, जिस पर अधिकार करना वह अधिक आवश्यक समझता था। सिन्ध की कठिनाइयां, हिन्दाल का पलायन,

८६ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५४।

८७ डा. ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २१०।

८८ "Probably, he also considered Humayun personally a friend of the Rajputs and was aware of his relations with the Sisodias of Mewer." बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. ५९, का यह विचार सत्य नहीं है।

८९ क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. २६६।

यादगार नासिर का विद्रोह तथा सिन्ध पर विजय पाना असम्भव देखकर हुमायूं को जोधपुर के निमंत्रण की याद आयी।

हुमायूं की जोधपुर यात्रा

चारों तरफ से निराश होकर हुमायूं ने जोधपुर जाने का विचार किया। उसने यादगार नासिर को वह प्रदेश समर्पित कर दिया तथा उसे यह चेतावना दी कि शाह हुसेन अरग़ून उसे भक्कर पर अधिकार नहीं करने देगा। भक्कर को छोड़कर हुमायूं उच्च आया (मई १५४२)। मार्ग में उसे जल, अन्न तथा जानवरों के लिए चारे का बहुत कष्ट हुआ। उच्च में उसने बख़्शु लंगाह से सहायता मांगी, किन्तु इस बार उसने सहायता नहीं दी। मार्ग में मुग़लों पर आक्रमण कर लोग उन्हें लूट भी लेते थे। स्थिति इतनी खराब हो गयी कि मुग़लों को बेर तथा इसी प्रकार के जंगली फलों को खाकर समय काटना पड़ा।[९०] इस तरह हुमायूं को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उच्च से दिलावरा, वासिलपुर होते हुए ३१ जुलाई १५४२ को बीकानेर से १२ कोस पर हुमायूं ने पड़ाव डाला। मार्ग में अली बेग ने सुझाव दिया कि दिलावरा के दुर्ग पर अधिकार कर लिया जाए किन्तु हुमायूं ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि इससे मालदेव नाराज हो जाएगा।[९१]

मालदेव के राज्य में पहुँचने के पश्चात् हुमायूं को ऐसा आभास हुआ कि मालदेव कदाचित् उसकी सहायता नहीं करेगा। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि हुमायूं के साथियों को मालदेव से धोखे का भय हुआ तथा उन्होंने हुमायूं को सतर्क रहने के लिए कहा। हुमायूं ने मीर समन्दर को अपना दूत बनाकर मालदेव के दरबार में भेजा। लौटकर मीर समन्दर ने सूचना दी कि मालदेव यद्यपि स्वामिभक्ति की बात करता है पर उससे सहायता की आशा नहीं है और उसके विचार पवित्र नहीं हैं।[९२]

मुग़लों की अवस्था इस समय बहुत ही शोचनीय थी। अन्न तथा पानी के बिना उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा।[९३] हुमायूं की सेना फलौदी परगने में पहुँची।

९० जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ५२-५३।

९१ वही, पृ. ५३। हुमायूं ने उत्तर दिया, "इस दुर्ग पर अधिकार जमा लेने से मैं संसार का बादशाह न हो जाऊंगा पर मालदेव ज़रूर नाराज़ हो जाएगा।"

९२ अकबरनामा, १, पृ. १७१-८०।

९३ जौहर लिखता है कि मार्ग में हुमायूं को एक मुग़ल मिला जिससे उसने ऋण लिया था। वह प्यास के कारण मरने-मरने को हुआ था। हुमायूं

यहाँ उन्हें आवश्यक वस्तुएं प्राप्त हुईं। मालदेव ने भी सूखे मेवे, अशर्फियों से लदा ऊँट, कवच तथा एक पत्र भेजा, जिसमें हुमायूं का स्वागत करते हुए उसने लिखा कि "मैं आपको बीकानेर देता हूँ।"[९४] इसी बीच हुमायूं का एक दरबान राजू भागकर मालदेव के पास आया। वहां उसने मालदेव को सूचित किया कि हुमायूं के पास कुछ बहुमूल्य हीरे-जवाहरात हैं। वही सूचना एक दूसरे व्यक्ति जान मुहम्मद इशाक आक़ा से भी मिली। स्थिति का पता लगाने के लिए मालदेव ने नागौर के सनकाई नामक अपने एक विश्वासपात्र सेवक को एक व्यापारी के वेश में हुमायूं के पास भेजा। उसने यह प्रकट किया कि वह हुमायूं से हीरे खरीदना चाहता है। हुमायूं ने इसका उत्तर दिया कि ऐसे अमूल्य हीरे खरीदे नहीं जा सकते। वे या तो तलवार के ज़ोर से प्राप्त किये जा सकते हैं या किसी सम्राट से दान द्वारा प्राप्त हो सकते हैं।[९५] इस वार्ता ने तथा मालदेव के इस बने हुए व्यापारी के आगमन ने हुमायूं को सशंकित कर दिया।

हुमायूं ने एक दूसरे दूत रायमल सोनी को मालदेव के पास भेजा। सन्देह इतना अधिक हो गया था कि उससे यह कहा गया कि यदि वह लिखकर परिस्थितियों की सूचना न दे सके तो संकेत द्वारा इसकी सूचना दे। संकेत के लिए निश्चित हुआ कि यदि वह एक हाथ की पांचों अंगुलियों को मोड़ ले तो इसका अनुमान लगाया जाए कि मालदेव विश्वसनीय व्यक्ति है, किन्तु यदि उसे धोखे का भय हो तो केवल सबसे छोटी अंगुली दबाकर इशारा करे।[९६]

रायमल सोनी को भेजने के पश्चात् हुमायूं ने फलौदी से आगे बढ़कर कुलये योगी (या योगी तालाब) नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला। यहाँ रायमल द्वारा भेजा गया संदेशवाहक आया। उसने अपनी कनिष्ठा बन्द की, जिससे मालदेव से धोखे का संकेत मिला। इससे हुमायूं के मुग़ल दल में बड़ी बेचैनी हुई। हुमायूं फिर भी निराश नहीं हुआ। उसे आशा थी कि मालदेव निश्चय ही उसकी सहायता करेगा। इसके अतिरिक्त मार्ग की कठिनाइयां तथा

ने उससे कहा, "जो ऋण मुझ पर है यदि उसे तू जल की एक करौती के बदले में क्षमा कर दे तो मैं तुझे जल पिलाऊंगा।" मुग़ल ने इसे स्वीकार किया। हुमायूं ने कुछ लोगों को साक्षी बनाया और जल मुग़ल को दिया (जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ५४)। इससे हुमायूं के चरित्र, पानी की कठिनाई तथा हुमायूं के धन की कमी प्रमाणित होती है।

९४ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५४ ; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ५५।

९५ अकबरनामा, १, पृ. १८०; जौहर, स्टीवर्ट पृ. ५५।

९६ अकबरनामा, १, पृ. १८०।

अन्य कोई सहायक न होने से भी उसने पुनः एक बार मालदेव के विचारों के विषय में पता लगाने का प्रयत्न किया। उसने तीसरी बार शमसुद्दीन अतक़ा ख़ां को मालदेव के पास भेजा।

शेरशाह तथा मालदेव

शेरशाह की पंजाब विजय तथा उसकी मुग़लों से सन्धि वार्ता का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। शेरशाह मुग़लों को पंजाब से पूर्णतया हटा देना चाहता था। इसी हेतु उसने ख़्वास खां को हुमायूं का, तथा कुतुब ख़ां को कामरान का पीछा करने के लिए नियुक्त किया था। कामरान के सिन्ध नदी पार करने के पश्चात् कुतुब ख़ां सिन्ध नदी से लौट आया। ख़्वास ख़ां भी हुमायूं के सिन्ध प्रवेश करने के पश्चात् पंचनद से लौट आया।[९७] शेरशाह कुछ दिन ख़ुशाब में शासन प्रबन्ध करने के लिए रुका रहा। बलोच लोगों को अधीन रखने के लिए उसने रोहतास नामक दुर्ग का निर्माण प्रारम्भ किया। हैदर मिर्ज़ा ने कश्मीर पर अधिकार कर लिया था। कश्मीर के भूतपूर्व शासक क़ाज़ी चक को सहायता देकर शेरशाह ने हैदर मिर्ज़ा को व्यस्त रखा। इसी समय उसे बंगाल में ख़िज्र खां के विद्रोह की सूचना मिली। हैबत खां नियाज़ी, ख़्वास ख़ां तथा अन्य सरदारों को ५०,००० सेना के साथ गक्खर प्रदेश में छोड़कर वह बंगाल चला गया (मार्च १५४१)।

बंगाल में शान्ति स्थापित कर तथा वहां का शासन संगठित कर शेरशाह ने मालवा पर आक्रमण किया। इस समय मालवा में तीन स्वतन्त्र सरदार शासन करते थे। मांडू, उज्जैन तथा सारंगपुर में मल्लू ख़ां, रायसीन में पूरनमल तथा हिन्दीया तथा सेवास में मुईन ख़ां। शेरशाह के पहुँचते ही हुमायूं द्वारा नियुक्त मुहम्मद कासिम ने ग्वालियर समर्पित कर दिया। गागरोन में रायसीन के राजा प्रतापशाह के शक्तिशाली सहायक पूरनमल ने उसकी अधीनता स्वीकार की। कादिर शाह ने भी शेरशाह की अधीनता स्वीकार की, किन्तु एक रात वह भागकर गुजरात चला गया। मुईन ख़ां ने भी अधीनता स्वीकार की शेरशाह को कादिर के भागने का अनुभव था। उसने मुईन ख़ां को बन्दी बना लिया तथा उसका राज्य अपने अधीन कर लिया।[९८] पूरा मालवा बिना ख़ून

९७ कानूनगो, शेरशाह, पृ. २३१।

९८ शेरशाह के मालवा विजय के लिए देखिए—कानूनगो, शेरशाह, पृ. २४९-६२; आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, शेरशाह एण्ड हिज़ सक्सेसर्स, पृ. ४२-४३।

बहाये शेरशाह के अधिकार में आ गया। शासन प्रबन्ध करने के लिए वहां अपने अधिकारी नियुक्त कर शेरशाह ने रणथम्भौर की ओर कूच किया। दुर्ग के प्रबन्धक उस्मान खां ने बिना युद्ध के किला उसे सुपुर्द कर दिया। वहां अपने अधिकारी नियुक्त कर शेरशाह आगरा लौटा। इस तरफ शेरशाह ने बलोचिस्तान से बंगाल तथा मालवा में जितने समय में शान्ति स्थापित की तथा शत्रुओं को पराजित किया, उतने समय हुमायूं सिन्ध में कठिन परिस्थितियों में घूमता रहा। इससे दोनों की शक्ति तथा योग्यता का मूल्यांकन हो सकता है।

आगरा पहुँचने के कुछ ही दिन बाद शेरशाह को हुमायूं की जोधपुर यात्रा की सूचना मिली। जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है, शेरशाह मुग़लों को हिन्दुस्तान की भूमि से भगा देना चाहता था। वह मालदेव की शक्ति को जानता था। जोधपुर दिल्ली से अधिक दूर नहीं था। रणथम्भौर तथा मालवा को अधीन करने के पश्चात् आगरा की स्थिति सुरक्षा की दृष्टि से अच्छी हो गयी थी। फिर भी झज्जर[९९] मालदेव के अधिकार में था। यह दिल्ली से केवल ३० मील की दूरी पर था।

हुमायूं के आगमन की सूचना से शेरशाह का सशंकित होना स्वाभाविक था। व्यर्थ के कूटनीतिक पत्र-व्यवहार का अवसर नहीं था। शेरशाह प्रत्येक कार्य को तत्काल तथा व्यावहारिक ढंग से करने का अभ्यासी था। वह आगरा से नागौर की तरफ तत्काल रवाना हो गया। कुछ दूर आगे बढ़ने के पश्चात् उसने अपना एक दूत मालदेव के पास भेजा। उसने मालदेव को सूचित किया क या तो वह स्वयं हुमायूं को जोधपुर से भगा दे या यदि उसको कठिनाई हो तो वह अफ़ग़ानों को ऐसा करने के लिए सुविधा दे। अर्थ स्पष्ट था, यदि हुमायूं ने जोधपुर में प्रवेश किया तो अफ़ग़ान दूसरी तरफ से जोधपुर में प्रवेश कर मुग़लों को वहाँ से निकाल देंगे। शेरशाह ने नागौर तथा उसके निकट के भागों पर जो जोधपुर के भाग थे, अधिकार कर ही लिया था। जोधपुर पहुँचने में उसे अधिक समय नहीं लगता। शेरशाह उस समय मालदेव से युद्ध करना नहीं चाहता था, इस कारण उसने लिखा कि यदि मालदेव हुमायूं को भगा देगा तो वह नागौर पर उसका अधिकार स्वीकार कर लेगा और अलवर तथा अन्य स्थान जो वह चाहेगा उसे देगा।[१००]

९९ २८° ३५′ अक्षांश तथा ७८° ४३′ देशान्तर पर स्थित।
१०० गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५४।

हुमायूं की जोधपुर से वापसी

जिस समय अतक़ा ख़ां मालदेव के दरबार में पहुँचा उसी समय शेरशाह का दूत भी वहां पहुँचा। मालदेव के लिए बड़ी कठिन परिस्थिति थी। वह हुमायूं और शेर शाह दोनों से बचना चाहता था। किन्तु उसे अब अपने को या तो अफ़ग़ानों का मित्र घोषित करना था या मुग़लों का। मुग़ल पक्ष लेने का अर्थ था शेरशाह का जोधपुर पर आक्रमण। मालदेव युद्ध करने की परिस्थिति में नहीं था। उसकी सेना तैयार नहीं थी। मुग़लों की अवस्था ऐसी नहीं थी कि वे अफ़ग़ानों से मालदेव की रक्षा करते। मालदेव ने शेरशाह के दूत को दिखाने के लिए अपने कुछ सैनिकों को मुगलों के पड़ाव की दिशा में भेजा, जिससे अफग़ान दूत को यह विश्वास हो जाए कि मालदेव शेरशाह के पत्र के अनुसार कार्य करने को तैयार है, साथ ही मालदेव ने अतक़ा ख़ां को रोक लिया, जिससे वह भी देख ले कि सेना भेजी जा रही है, तथा हुमायूं को इसकी सूचना दे दे। अतक़ा ख़ां ने राजपूत सेना को जाते हुए देखा।[१०१] उसके मन में पहले से मालदेव पर संशय तो था ही, उसे विश्वास हो गया कि मालदेव का विचार मुग़लों पर आक्रमण करने का है। बिना अनुमति लिए ही उसने वहां से भाग जाने का निश्चय किया। हुमायूं का भूतपूर्व पुस्तकाध्यक्ष, मुल्ला सुर्ख़ उस समय मालदेव की सेवा में था। उसने भी हुमायूं को सूचित किया कि हुमायूं आगे न बढ़े, जहां है वहां से फौरन रवाना हो जाए, मालदेव उसे (हुमायूं को) बन्दी बनाना चाहता है, मुग़ल उस पर बिलकुल विश्वास न करें। उसने अपने भूतपूर्व सम्राट को यह भी सूचित किया कि अफ़ग़ान नेता ने मालदेव के पास हुमायूं को किसी भी तरह गिरफ्तार करने के लिए दूत भेजा है तथा उसके बदले में उसे अलवर और नागौर देने का वचन दिया है।[१०२] अतक़ा ख़ां मालदेव के दरबार से बिना मालदेव की आज्ञा लिये ही लौट आया और उसने हुमायूं को सूचित किया कि रुकने का समय नहीं है। मुग़ल पड़ाव में हलचल मच गयी। भागने की तैयारी होने लगी।

मुग़ल पड़ाव उठाने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय दो गुप्तचरों को बन्दी बनाकर प्रस्तुत किया गया। अभी उनसे पूछताछ की जा रही थी कि

१०१ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ८५। यदि मालदेव का विचार वास्तव में हुमायूं के ऊपर आक्रमण कर उसे बन्दी बनाना होता तो उसने अतक़ा ख़ां को बन्दी बना लिया होता या उससे छिपकर सेना भेजता।

१०२ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५४।

उनमें से एक ने महमूद गिर्दबाज़ की कमर से तलवार खींच ली और सबसे पहले उसी पर आक्रमण कर दिया। उसके बाद उसने बाकी ग्वालियरी को घायल कर दिया। दूसरे गुप्तचर ने एक की कमर से कटार खींच ली तथा कुछ लोगों को घायल कर दिया और हुमायूं के घोड़े की भी हत्या कर दी। बड़ी कठिनता से इन दोनों की हत्या की जा सकी।[१०३] इसी समय शोर हुआ कि मालदेव आ गया। हलचल मच गयी। मुग़ल अमीर अपने स्वार्थ में कितने लीन थे तथा हुमायूं की अवस्था कितनी हीन हो गयी थी, यह गुलबदन के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है। वह लिखती है कि इस हलचल में कोई ऐसा घोड़ा नहीं था जिस पर गर्भवती हमीदा बेगम भाग सकती। हुमायूं ने तरदी बेग से घोड़ा देने को कहा किन्तु उसने इन्कार कर दिया। हुमायूं ने अपना घोड़ा इसके लिए देने और स्वयं जौहर के ऊँट पर यात्रा करने का विचार व्यक्त किया। सौभाग्य से माहम अंगा के पति-नदीम बेग ने अपनी माता का घोड़ा बेगम को दिया और स्वयं ऊँट पर सवार होकर रवाना हुआ।[१०४]

जोनी तालाब से चलकर हुमायूं फलौदी पहुँचा। राजपूत मुग़लों का पीछा कर रहे थे। तरदी बेग और मुनीम ख़ां को कुछ सैनिकों के साथ स्त्रियों की रक्षा के लिए नियुक्त कर हुमायूं आगे बढ़ा। फलौदी से हुमायूं सातलमेर पहुँचा।[१०५] मार्ग में राजपूतों के दल से मुग़लों का युद्ध हुआ।[१०६] मुग़ल सेना

१०३ वही। समकालीन इतिहासकारों में इसे घटना के विषय में भिन्नताएं हैं। अबुल फ़ज़ल (अकबरनामा, १, पृ. १८०) के अनुसार हीरे खरीदने के बहाने इन लोगों ने मुग़ल पड़ाव में प्रवेश किया। निज़ामुद्दीन (तबक़ाते अकबरी, डे, पृ. ८६) लिखता है कि दो गुप्तचर पकड़े गये, अभी उनसे पूछताछ हो ही रही थी कि उन्होंने आक्रमण कर दिया। बदायूनी (मुन्तख़बुत्तवारीख़, पृ. ४४०) के अनुसार दो गुप्तचर पड़ाव के पास पकड़े गये तथा उन लोगों को मृत्यु दण्ड दिया गया। उसी समय एक ने आक्रमण कर दिया। जौहर (स्टीवर्ट, पृ. ५५-५६) के अनुसार पथ-प्रदर्शन के लिए दो ऊंटवान पकड़े गये। इनके ऊंटों को राजसी ऊंटों के साथ बांधने को कहा गया तथा हुमायूं ने आज्ञा दी कि इनके हथियार छीनकर उन्हें बन्दी बना दिया जाए। उसी समय उन लोगों ने आक्रमण किया।

१०४ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५४-५५।

१०५ बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. ६९।

१०६ अकबरनामा, १, पृ. १८१; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५५-५६; निज़ामुद्दीन के अनुसार शेख़ अली बेग के नेतृत्व में २२ मुग़लों ने संख्या में

की संख्या कम थी फिर भी राजपूतों ने जमकर युद्ध नहीं किया। कदाचित् ये मुग़लों से लड़कर हुमायूं को बन्दी नहीं बनाना चाहते थे। मार्ग की कठिनाइयां असहनीय थीं। हवा गर्म थी। घोड़े तथा चौपाये घुटने तक बालू में धंस जाते थे। अधिकांश स्त्रियां तथा पुरुष पैदल थे। सबसे बड़ा कष्ट जल का था। तीन-तीन दिन उन्हें बिना जल के रहना पड़ा। पानी के लिए आपस में लड़ाई होती थी। डोल ज्योंही कुंए से बाहर निकाला जाता त्योंही लोग उस पर टूट पड़ते थे, जिससे रस्सी टूट जाती थी। अनेक व्यक्ति प्यास से मर गये और नष्ट हो गये।[१०७] इस तरह कठिनाइयों को सहता हुआ हुमायूं जैसलमेर के निकट पहुँचा (१३ अगस्त १५४२)।

जैसलमेर राज्य में गौ हत्या वर्जित थी। हुमायूं के आदमियों ने यहां कुछ गायों की हत्या कर दी, यहां का शासक रावल लोनकरन इससे बहुत नाराज़ हुआ। उसने मुग़ल सम्राट के पास अपना दूत भेजकर इसकी शिकायत की तथा स्पष्टीकरण मांगा। मुग़लों ने इसके लिए क्षमा मांगने के बजाय दूत को बन्दी बना लिया। रावल लोनकरन ने अपने आदमियों द्वारा ऐसा प्रबन्ध किया कि मुग़लों को जल न प्राप्त हो सके। रावल के पुत्र मालदेव ने मुग़लों पर आक्रमण कर उनके कुछ आदमियों को घायल कर दिया तथा अपने दूत को स्वतन्त्र कर लिया।[१०८]

यहां से हुमायूं ने अमरकोट (उमरकोट) जाने का विचार किया। अमरकोट के राना के पिता को शाह हुसेन अरगून ने मरवा डाला था।[१०९] हुमायूं को आशा थी कि उसकी सहायता से वह सिन्ध विजय करने में सफल होगा। २२ अगस्त १५४२ को हुमायूं केवल सात घुड़सवारों के साथ अमरकोट पहुँचा।[११०] यहां अमरकोट के राना बीरसाल[१११] ने हुमायूं का स्वागत किया। उसे दुर्ग

अपने से एक बड़ी राजपूत सेना को पराजित किया। (तबक़ाते अकबरी डे, २, पृ. ८४) बदायूनी (मुन्तख़बुत्तवारीख़, पृ. ४४०) का वर्णन भी निज़ामुद्दीन ही जैसा है। जौहर के अनुसार भी मुग़ल सेना की संख्या कम थी (स्टीवर्ट, पृ. ५७)।

१०७ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५५-५७।

१०८ अकबरनामा, १, पृ. १८१-८२; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ५८-५६।

१०९ हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५७।

११० अकबरनामा, १, पृ. १८२।

१११ अबुल फ़ज़ल के अनुसार (अकबरनामा, १, पृ. १८७) राणा का नाम

के अन्दर स्थान दिया गया तथा मुग़लों को सभी आवश्यक वस्तुएं प्राप्त हुईं।

क्या मालदेव विश्वासघाती था ?

समकालीन तथा आधुनिक इतिहासकारों ने मालदेव के हुमायूं के प्रति किये गये व्यवहार की आलोचना की है। मुग़ल इतिहासकारों ने मालदेव को विश्वासघाती तथा धोखेबाज़ कहा है जिसने हुमायूं को आमन्त्रित कर उसे बन्दी बनाने का प्रयत्न किया। अबुल फ़ज़ल लिखता है, "कुछ लोग ऐसा भी कहते थे कि पहले मालदेव की भावना हुमायूं के प्रति शुद्ध थी और वह उसकी सेवा भी करना चाहता था। बाद में या तो हुमायूं की सेना की बुरी दशा और अल्प संख्या देखकर अथवा शेरशाह के झूठे वायदों एवं बढ़ती हुई शक्ति के कारण मालदेव बदल गया या सम्भवतः इसका कारण शेरशाह का भय हो। जो भी हो वह हुमायूं का विरोधी हो गया था। लोगों का बहुमत फिर भी इसी ओर था कि प्रारम्भ से अन्त तक मालदेव का सहायता का वचन देना और इस सम्बन्ध में बादशाह (हुमायूं) को पत्र भेजना कपटपूर्ण था।"[११२] जौहर ने मालदेव पर हुमायूं के सामने उपस्थित न होने और उचित सेवा-सत्कार न करने का दोष लगाया है तथा वह लिखता है कि मालदेव का विचार हुमायूं को कष्ट पहुँचाने का था।[११३] गुलबदन बेगम पुस्तकाध्यक्ष मुल्ला सुर्ख़ के पत्र द्वारा हुमायूं को सूचित करने, हुमायूं के पड़ाव पर दो जासूसों के पकड़े जाने का वर्णन करती है जिससे प्रकट होता है कि मुग़लों को मालदेव की नीयत में सन्देह था।[११४] बदायूनी के अनुसार शेरशाह की चेतावनी पाकर मालदेव ने "एक बहुत बड़ी सेना को विश्वासघात एवं बादशाह को बन्दी बनाने के लिए स्वागत के बहाने भेजा।"[११५] तारीख़े मासूमी के अनुसार हुमायूं को गुप्तचरों से समाचार मिला कि "मालदेव ने शेरशाह के धूर्ततापूर्ण आश्वासन एवं उसके प्रभुत्व को देखकर एक सेना को इस आशय से नियुक्त कर दिया कि शाही लश्कर का मार्ग रोककर आक्रमण करे।"[११६] फ़िरिश्ता लिखता है कि जब मालदेव

राना परसाद था। तारीख़ें मासूमी (पृ. १७७) बीरसाल लिखता है जो सही है।

[११२] अकबरनामा, १, पृ. १८०।

[११३] जौहर, स्टीवर्ट पृ. ५५।

[११४] गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५४-५५।

[११५] मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४४०।

[११६] तारीखे मासूमी, पृ. १७६।

को पता चला कि मुग़ल सेना बड़ी ही अव्यवस्थित है और दुर्दशा को प्राप्त हो चुकी है तो वह उनको आमंत्रित करने पर पश्चात्ताप करने लगा और यह प्रयत्न करने लगा कि उन्हें बन्दी बनाकर शेर ख़ां अफ़ग़ान के पास अपनी निष्ठा एवं स्वामिभक्ति के प्रमाण में भेज दे।[११७] निज़ामुद्दीन अहमद संतुलित इतिहासकार है। वह लिखता है कि जब राय मालदेव को हुमायूं के पहुँचने का समाचार प्राप्त हुआ और यह ज्ञात हुआ कि उनके साथ बहुत थोड़ी-सी सेना है तो वह बड़ा चिन्तित हुआ। कारण कि वह अपने में शेर ख़ां का मुकाबला करने की शक्ति नहीं पाता था। शेर ख़ां ने भी मालदेव के पास राजदूत भेजकर अत्यधिक आश्वासन एवं धमकियां दी थीं। राय मालदेव ने अत्यधिक निष्ठुरता प्रदर्शित करते हुए यह निश्चय किया कि यदि संभव हो सके तो उन्हें बन्दी बनाकर शत्रु को सौंप दे, कारण कि नागौर का राज्य तथा उसके अधीनस्थ स्थान शेर ख़ां के हाथ आ चुके थे, अतः उसे भय था कि कहीं शेर ख़ां उससे रुष्ट न हो जाए। इस उद्देश्य से उसने एक बहुत बड़ी सेना हुमायूं के विरुद्ध भेजी। अतक़ा ख़ां को जाने की अनुमति इस कारण न दी गयी कि वह हुमायूं को सावधान न कर दे। अतक़ा ख़ां ने उसके व्यवहार से उसके हृदय की बात भाँप ली और बिना अनुमति के लौट गया। हुमायूं के एक किताबदार ने, जो उसकी पराजय के पश्चात् दिल्ली से राजा मालदेव के पास चला गया था, एक प्रार्थनापत्र उसकी सेवा में भेजा कि मालदेव विश्वासघात कर रहा है, आप जितनी शीघ्र उसके राज्य से निकल जाएं अच्छा है। अतक़ा ख़ां के प्रयत्न तथा किताबदार के पत्र के कारण हुमायूं तत्काल अमरकोट की ओर चल पड़ा।[११८]

मारवाड़ की हस्तलिखित पुस्तकों में इस घटना का वर्णन इस प्रकार है :

"शेरशाह से हारकर जब बादशाह हुमायूं मालदेव जी से सहायता प्राप्त करने को जोधपुर के निकट आकर ठहरा, तब रावजी ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। इसके बाद हुमायूं ने जोधपुर के निकट रहना अनुचित समझ फलौदी में अपना मुकाम करने की इच्छा प्रकट की। इसे उन्होंने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। जब इसी के अनुसार वह देइझट से फलौदी को रवाना हुआ तब मार्ग के ग्रामों में होने वाले उपद्रव को रोकने के लिए इन्होंने अपने सैनिक भी उसके पीछे भेज दिये। परन्तु शाही लश्कर को इससे उलटा यह

[११७] फ़िरिश्ता ब्रिग्स, १, पृ. ९३।
[११८] तबक़ाते अकबरी डे, २, पृ. ८५-८६।

सन्देह हो गया कि शायद ये लोग मार्ग में हमको मारकर शाही ख़जाना लूटने को ही साथ हुए हैं।

"इसके बाद एक दुर्घटना और हो गयी। जिस समय हुमायूं फलौदी पहुँचा उस समय उसके कुछ सैनिकों ने मिलकर एक गाय को मार डाला। इससे रावजी की सेना में घोर असन्तोष फैल गया। यह देख हुमायूं का सन्देह और भी बढ़ गया और वह फलौदी को छोड़ सिन्ध की तरफ चल पड़ा। परन्तु रावजी के सैनिकों ने समझा कि हिन्दुओं के धर्म का अपमान करने के लिए ही शाही सैनिकों ने यह गोवध किया है। इससे वे लोग उत्तेजित हो गये और उन्होंने जाते हुए बादशाह का पीछा किया। सातलमेर में पहुँचते-पहुँचते दोनों पक्षों के बीच मुठभेड़ हो गयी। परन्तु अन्त में अपने आदमियों की संख्या की अधिकता के कारण हुमायूं बचकर निकल गया और जैसलमेर होता हुआ अमरकोट जा पहुँचा।"[११६]

मुग़ल इतिहासकारों के वर्णनों से निम्नलिखित बातें प्रकट होतीं हैं :

१. मालदेव ने हुमायूं को आमन्त्रित किया।

२. निमन्त्रण के कई महीने बाद हुमायूं जोधपुर पहुँचा।

३. हुमायूं के जोधपुर पहुँचते ही शेरशाह ने भी मालदेव के राज्य में पहुँचकर उसे चेतावनी दी कि वह उसे अपने राज्य से बाहर निकाल दे।

४. हुमायूं के जोधपुर में प्रवेश करने पर प्रारम्भ में मालदेव ने आश्वासन दिया किन्तु वह हुमायूं के सामने उपस्थित नहीं हुआ।

५. मुग़ल दूत अतक़ा ख़ां तथा शेरशाह का दूत एक साथ मालदेव के दरबार में पहुँचे।

६. मालदेव ने हुमायूं के पीछे एक सेना भेजी जिसकी शक्ति तथा संख्या मुगलों से कहीं अधिक थी फिर भी कोई मुग़ल बन्दी नहीं बनाया गया, यद्यपि एक साधारण युद्ध हुआ।

७. मालदेव ने अपने जासूस हुमायूं के ख़ेमे में भेजकर उसकी स्थिति का पता लगाने का प्रयत्न किया।

उपर्युक्त वर्णन तथा घटनाओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि जिस समय मालदेव ने हुमायूं को निमन्त्रित किया था उस समय की अपेक्षा जब

११६ रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, १, पृ. १२७; वीर विनोद, २, पृ. ८०६ में कविराज श्यामलदास लिखते हैं कि बादशाह के साथियों ने गाय मारी जिससे मालदेव नाराज हुआ। उसकी नाराजगी की खबर पाकर हुमायूं डरकर अमरकोट चला गया।

हुमायूं आया तब परिस्थिति पूर्ण रूप से बदल चुकी थी। शेरशाह बंगाल से लौट आया था, मालवा पर उसका अधिकार हो चुका था और वह जोधपुर के राज्य में प्रवेश कर अपनी सेना के साथ उस पर आक्रमण करने को तैयार था। मालदेव की सेना भी कदाचित् तैयार नहीं थी। मुग़ल सेना नाममात्र की थी। अफ़ग़ान सेना का सामना करना असम्भव था। इस तरह हुमायूं के आगमन के समय मारवाड़ की पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी सीमा पर राजनीतिक परिस्थिति ही बदल गयी थी। यदि मालदेव ने बुद्धिमानी न दिखायी होती तो शेरशाह ने जोधपुर पर आक्रमण कर दिया होता और मुग़ल तो भाग ही जाते, मालदेव भी पददलित होता। हुमायूं की सबसे बड़ी भूल यह थी कि जिस समय निमंत्रण दिया गया उस समय न आकर वह कई महीने बाद आया। इसमें मालदेव का दोष नहीं था। मालदेव ने हुमायूं के प्रति कठोरता नहीं दिखायी। उसके व्यवहार से उसकी कठिनाई तथा असमंजस स्पष्ट प्रकट होता है। यदि वह चाहता तो हुमायूं को बन्दी बना सकता था, किन्तु वह ऐसा करना नहीं चाहता था। वह चाहता था कि किसी तरह हुमायूं जोधपुर से चला जाए। यह मालदेव के पक्ष में ही नहीं बल्कि हुमायूं के पक्ष में भी ठीक था। ऐसा प्रतीत होता है कि मालदेव को हुमायूं की शक्ति का अनुमान नहीं था। जिस तरह हुमायूं ने अपने दूत भेजे तथा मालदेव की वास्तविक नीयत का पता लगाना चाहा उसी तरह मालदेव ने भी अपने गुप्तचर भेजे। दुर्भाग्यवश ये गुप्तचर पकड़े गये जिससे मुग़ल सशंकित हो गये। मारवाड़ के समकालीन इतिहासकारों के वर्णन से भी यह साबित होता है कि यह सब विषम परिस्थितियों तथा सन्देह का परिणाम था। मालदेव का इसमें कोई दोष नहीं था। अबुल फ़ज़ल तथा निज़ामुद्दीन अहमद के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है; वे भी पूर्ण रूप से मालदेव को विश्वासघाती नहीं मानते। शेरशाह के प्रभाव का वे स्पष्ट उल्लेख करते हैं जिससे प्रमाणित होता है कि राज्य की सुरक्षा के लिए उसके सामने और कोई मार्ग नहीं था। वास्तव में उन कठिन परिस्थितियों में मालदेव हमारी सहानुभूति का पात्र है। उसके विश्वासघात का प्रश्न नहीं उठता।[१२०]

अमरकोट में

हुमायूं अमरकोट बड़ी बुरी अवस्था में पहुँचा। उसके पास न धन था न कपड़े। साथियों, सैनिकों तथा सहयोगियों की संख्या भी कम थी। जो थे भी

[१२०] क़ानूनगो, शेरशाह, पृ. २७६; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २११; त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फाल, पृ. १०५।

उन्हें कई महीनों से वेतन नहीं मिला था जिससे वे शोर मचाते रहते थे।[121] हुमायूं ने तरदी बेग से बीस प्रतिशत ब्याज पर ८०,००० अशर्फ़ियों का ऋण लिया।[122] जौहर के अनुसार सब लोगों की तलाशी ली गयी तथा जिसके पास जितना धन था सब इकट्ठा किया गया। बाद में प्रत्येक व्यक्ति का आधा धन वापस कर दिया गया और केवल आधा ही लिया गया।[123] प्राप्त धन सेवकों तथा साथ के लोगों में वितरित कर दिया गया। केवल धन ही नहीं लोगों से उनके आधे कपड़े भी लिये गये, जिन्हें हुमायूं ने अपने लिए रख लिया। इस तरह धन एकत्र कर हुमायूं ने सेना को दिया जिससे उन लोगों ने घोड़े, हथियार तथा अन्य आवश्यक वस्तुयें खरीदीं।

अमरकोट में हुमायूं लगभग दो महीने रहा (२२ अगस्त से ११ अक्टूबर १५४२ के बीच) यहाँ राणा तथा मुग़लों ने मिलकर शाह हुसेन अरग़ून पर आक्रमण करने की तैयारी की। राणा भी शाह हुसेन से प्रसन्न नहीं था। वह उससे अपने पिता की मृत्यु का बदला लेना चाहता था। उसने दो हजार अपनी तथा पांच हजार अपने मित्रों की सेनाएं[124] हुमायूं की सेवा के लिए देने का वचन दिया। इससे हुमायूं को बड़ी आशा हुई। अपने परिवारों को अमरकोट के दुर्ग में रखकर ये लोग जून के[125] विरुद्ध रवाना हुए। (राजब १, ९४९ हि.)।

[121] जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६२; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५७।

[122] गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५७।

[123] जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६३-६४।

[124] वही, पृ. ६२। गुलबदन बेग़म (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५७) दो-तीन हजार अच्छी सेना लिखती है।

[125] अबुल फ़ज़ल के अनुसार जून जाजकान सरकार का एक महाल था तथा इसका लगान ३१,६५,४१८ दाम था। (आईने अकबरी, २, पृ. ३४१) यह बहुत ही उपजाऊ महाल था। सम्भवतः यह थट्टा तथा सेहवान के मध्य में सिन्ध के पूर्वी तट पर था। हेग के अनुसार सिन्ध डेल्टा प्रदेश में अमरकोट से ७५ मील दक्षिण-पश्चिम तथा थट्टा से ५० मील उत्तर-पूर्व में रन के बायें तट पर (मेजर जनरल एम.आर. हेग, दि इण्डस डेल्टा कन्ट्री, पृ. ९२-९३)। जून का नगर उस समय सिन्ध के प्रसिद्ध नगरों में से था। आज यहां केवल उसके भग्नावशेष हैं जो आधुनिक टांडो गुलाम हैदर के दक्षिण-पूर्व में दो मील पर है। १६५८ ई. में राजकुमार दारा शिकोह कुछ समय के लिए भागता हुआ यहीं ठहरा था और यहीं उसकी पत्नी नादिरा बेगम की मृत्यु हुई थी।

राणा तथा मुग़ल सेना १५ कोस पर पड़ाव डाले हुए थी। उसी समय तरदी बेग ने हुमायूं को हमीदा बानो के पुत्र-जन्म की सूचना दी। हुमायूं की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। उस मरुभूमि में जश्न मनाने तथा नियमानुसार अमीरों और अन्य लोगों को इनाम देने के लिए धन नहीं था। हुमायूं ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। वितरित करने के लिए वस्तुओं के अभाव में उसने जौहर से कस्तूरी मंगाकर, उसे तोड़कर अमीरों में बांटते हुए कहा कि उसके पास पुत्र के जन्म के अवसर पर यही वितरित करने को है। "भगवान इस पुत्र का नाम और यश इस कस्तूरी की सुगन्ध की तरह फैलाये।"[१२६] इस तरह विश्व के महान सम्राट अकबर का जन्मोत्सव मनाया गया। तरदी बेग को इस शुभ सूचना देने के उपहार स्वरूप उसके पुराने कसूरों को क्षमा कर दिया गया।[१२७]

अकबर की जन्म-तिथि

अकबर की जन्म-तिथि के विषय में समकालीन तथा आधुनिक इतिहासकारों में मतभेद है। अबुल फ़ज़ल के अनुसार अकबर का जन्म रविवार ५, राजब ९४९ हि. अर्थात् १५ अक्टूबर १५४२ ई. को हुआ। इस तिथि को अन्य समकालीन इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है।[१२८] इसके विपरीत जौहर लिखता है कि अकबर का जन्म शनिवार १४ शाबान, ९४९ हि. को हुआ था।[१२९] कुछ विद्वानों ने[१३०] जौहर की तिथि को ही सही माना है। इनमें डा. विन्सेन्ट स्मिथ प्रमुख हैं। वे लिखते हैं कि अबुल फ़ज़ल ने जान बूझकर

[१२६] जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६६।

[१२७] गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज पृ. १५८।

[१२८] अकबरनामा, १, पृ. १८३; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ८९-९०; मुन्तख़बुत्त-वारीख़ (पृ. ४४१-४२) तथा फ़िरिश्ता (ब्रिग्स, २, पृ. ९५) के अनुसार अकबर का जन्म रविवार की रात्रि में ५ राजब, ९४९ को हुआ था। गुलबदन बेगम (हुमायूंनामा, बेवरिज पृ. १५७) के अनुसार अकबर रविवार के प्रातः चौथी राजब को पैदा हुआ था।

[१२९] जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६५।

[१३०] जाफ़र शरीफ़, इस्लाम इन इन्डिया; कविराज श्यामलदास, बर्थ डेट ऑफ अकबर, जरनल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, १८८६, पृ. ८०-८८; विन्सेन्ट स्मिथ, बर्थ ऑफ अकबर, इण्डियन एन्टीक्वेरी, १९१५, पृ. २३८।

अकबर की जन्म-तिथि बदल दी। इन विद्वानों का मत है कि जन्म के समय जौहर उपस्थित था, इस कारण उसके द्वारा लिखी गयी तिथि अधिक विश्वसनीय है। जौहर के गलत तिथि लिखने का कोई कारण नहीं हो सकता है। अकबर की असली जन्म-तिथि बाद में उसे जादू-टोने से बचाने के लिए बदल दी गयी, क्योंकि मुग़लों को यह भय था कि यदि अकबर की सही जन्म-तिथि का पता लग जाएगा तो जादू-टोने से उसकी हानि की जा सकती है। पांचवीं राजब का दिन यह जानकर चुना गया क्योंकि इसी दिन पैगम्बर मुहम्मद साहब गर्भ में आये थे। रविवार को चुनने का कारण ईरानियों में इसकी महत्ता का होना बताया जाता है।

इन विद्वानों के मत का खण्डन आधुनिक इतिहासकारों ने किया है।[१३१] अब यह सर्वसम्मति से स्वीकृत है कि अबुल फ़ज़ल द्वारा दी गयी तिथि सही है। जौहर के संस्मरण अबुल फ़ज़ल के अकबरनामा के लिए ही लिखे गये थे। यदि अबुल फ़ज़ल ने जानबूझकर तिथि बदली तो वह आसानी से जौहर की तिथि ही बदल देता।[१३२] इसके अतिरिक्त अपने संस्मरण लिखने के समय जौहर के पास कोई लिखित नोट नहीं थे। इस तरह उसे अपनी स्मृति पर ही निर्भर होना पड़ा। वह अधिक पढ़ा-लिखा नहीं था और संस्मरण लिखते समय बूढ़ा भी हो गया था। अतएव उसकी तिथि पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता है। इसी कारण उसकी तिथि और दिन में भी अन्तर है। १४ शाबान शनिवार नहीं था बल्कि बृहस्पतिवार का दिन था। अपने पूरे संस्मरण में जौहर ने केवल पांच तिथियों का उल्लेख किया है और उनमें से तीन तिथियां गलत साबित हो चुकी हैं। गुलबदन बेगम ने अपने संस्मरण में वही तिथि दी है जिसे अबुल फ़ज़ल ने स्वीकार किया था। गुलबदन बेगम स्त्री थी तथा अकबर की माता हमीदा बानो से उसकी घनिष्टता थी। तिथि लिखने के पूर्व उसने निश्चय ही उससे पूछा होगा। मां होने के नाते हमीदा बानो को निश्चय ही अकबर की तिथि याद होगी। इस तरह सही तिथि को जानने के लिए वह अच्छी

१३१ बनर्जी, दि बर्थ ऑफ अकबर, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, कलकत्ता, १९३९, पृ. १००२-१२; बनर्जी, हुमायूं २, पृ. ७५-८६। डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दि डेट ऑफ अकबर्स बर्थ, हिस्ट्री एण्ड पोलिटिकल साइन्स जरनल, आगरा कालेज, आगरा, जिल्द २, नम्बर पृ. १२-२३। इस पुस्तक के लेखक का लेख---सम्राट अकबर की जन्म तिथि, सरस्वती, इलाहाबाद, अप्रैल, १९४६।

१३२ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ९०-९१, नोट १।

परिस्थिति में थी। अबुल फ़ज़ल ने जौहर, गुलबदन बेगम इत्यादि की तिथियों का अध्ययन करने के पश्चात् अकबर की जन्म-तिथि का उल्लेख किया है। तिथियों के उल्लेख की दृष्टि से अबुल फ़ज़ल बहुत ही विश्वसनीय इतिहासकार है। यदि यह मान भी लिया जाए कि अकबर की जन्म-तिथि अन्धविश्वास के कारण बदली गयी तो और किसी मुग़ल राजकुमार की तिथि क्यों नहीं बदली गयी? इसके अतिरिक्त जो दान-पुण्य उस जन्म-तिथि के दिन होते थे वे कदाचित् सभी व्यर्थ जाते। यदि मुग़ल इतने अन्ध-विश्वासी थे तो क्यों वे इस तरह की भूल करते कि उन्हें कोई पुण्य भी न प्राप्त हो? फिर यदि अबुल फ़ज़ल ने तिथि बदली तो अकबरनामा की रचना के समय अकबर बालक नहीं रह गया था वरंच प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुका था, उस समय टोने का भय भी उतना नहीं रह गया था। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि अकबर का जन्म १५ अक्टूबर १५४२ को हुआ था तथा अबुल फ़ज़ल द्वारा दी गयी तिथि सही है।

जून में

पुत्र-जन्म के आनन्दोत्सव के लिए न समय था न सुविधा। हुमायूं अपनी सेना के साथ पांच दिन चलकर जून नगर के निकट पहुँचा। यहां अरग़ून गवर्नर जानी बेग अपनी सेना के साथ मुग़लों का विरोध करने के लिए तैयार था। हुमायूं ने शत्रु पर आक्रमण कर उसे पीछे हटा दिया। यहां से हुमायूं ने जून नगर में प्रवेश किया तथा बाग़ेआईना में ठहरा। यहां उसने जीते हुए ग्रामों को अपने अमीरों में वितरित किया। कुछ दिन बाद अमरकोट से स्त्रियों को भी बुला लिया गया। हमीदा बानो तथा अकबर दिसम्बर १५४२ को जून पहुँचे।[133]

काबुल तथा बदख़्शां की स्थिति

कामरान मिर्ज़ा के १५४१ में हुमायूं का साथ छोड़ने का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं। कामरान सिन्ध नदी पार कर काबुल तथा क़न्धार चला गया।

अपनी शक्ति सुदृढ़ करने के लिए कामरान बदख़्शां पर भी अपनी शक्ति स्थापित करना चाहता था। उसने मिर्ज़ा सुलेमान को अपने नाम से ख़ुत्बा पढ़वाने के लिए लिखा। मिर्ज़ा सुलेमान के अस्वीकार करने पर उसने बदख़्शां पर आक्रमण कर दिया। युद्ध हुआ। सामना करना असम्भव जानकर मिर्ज़ा सुलेमान ने समर्पण कर दिया तथा कामरान के नाम से ख़ुत्बा पढ़कर और सिक्का चलाने का वचन देकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। सुलेमान

[133] जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६७; गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५८; अकबरनामा, १, पृ. १८४-८५।

के कुछ प्रदेश लेकर अपने आदमियों में वितरित कर कामरान काबुल वापस गया।[134]

यह स्थिति अधिक दिन तक न चली। कामरान की असावधानी से लाभ उठाकर सुलेमान मिर्ज़ा ने बदख़्शां के उन भागों पर जिन्हें कामरान ने छीन लिया था पुनः अधिकार कर लिया। कामरान ने दूसरी बार उस पर चढ़ाई की। सुलेमान ने अपने को क़िलए ज़फ़र में बन्द कर लिया। खाद्य सामग्री की कमी होने लगी। उसके अधिकांश अमीरों ने कामरान की अधीनता स्वीकार कर ली। सुलेमान को विवश होकर समर्पण करना पड़ा। कामरान ने शासन प्रबन्ध के लिए वहां अपने आदमी नियुक्त किये तथा सुलेमान मिर्ज़ा और उसके पुत्र इबराहीम को बन्दीगृह में डाल दिया (८ अक्टूबर १५४१; १७ जमादि उस्सानी, ६४८ हि.)।[135]

कामरान ने क़राचा बेग को कन्धार में नियुक्त किया था। क़राचा बेग हिन्दाल का मित्र था। सिन्ध से हुमायूं को छोड़कर क़राचा बेग के निमन्त्रण पर हिन्दाल क़न्धार चला गया तथा अपने मित्र की सहायता से उसने क़न्धार पर अधिकार कर लिया।[136] कामरान हिन्दाल के लाहौर के व्यवहार से अप्रसन्न था ही, इस समाचार ने उसे और भी क्रोधित कर दिया। शक्तिशाली सेना के साथ उसने क़न्धार पर आक्रमण किया। इसी बीच यादगार नासिर मिर्ज़ा भी सिन्ध से निराश होकर क़न्धार पहुँचा। हुमायूं के जोधपुर चले जाने के पश्चात् यादगार नासिर को आशा थी कि शाह हुसेन से उसका सम्बन्ध और भी निकटतम हो जाएगा, किन्तु उसे निराशा हुई। दो महीने में ही स्पष्ट हो गया कि सिन्ध के शासक से उसे कोई सहायता नहीं मिलेगी। हुमायूं के पास जाने में उसे शर्म का अनुभव हुआ। अन्य मार्ग न देखकर वह क़न्धार पहुँचा। उसके वहां पहुँचने के समय कामरान क़न्धार घेरे हुए था, कुछ ही दिन में हिन्दाल ने दुर्ग समर्पित कर दिया। कामरान हिन्दाल को बन्दी बनाकर यादगार नासिर के साथ काबुल लौट आया। अस्करी अब तक ग़ज़नी का गवर्नर था। क़न्धार के दुर्ग तथा नगर में कामरान ने अस्करी को नियुक्त किया। प्रारम्भ में कामरान ने हिन्दाल के साथ कठोर व्यवहार किया किन्तु बाद में उसे

[134] अक़बरनामा, १, पृ. २००।

[135] वही, पृ. २००-२०१।

[136] गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १६०। अकबरनामा, १, पृ. २०१।

स्वतन्त्र कर दिया गया तथा उसे जूये शाही[137] की जागीर दी गयी।

सिन्ध में अन्तिम दिन

यादगार नासिर के सिन्ध से निकल जाने से शाह हुसेन को सांस लेने का अवसर मिला। मुग़लों के सिन्ध से निकल जाने के पश्चात् उसने अपने दुर्गों की मरम्मत करायी तथा रक्षा का अन्य प्रबन्ध किया। इसी समय उसे हुमायूं के पुनः वापस आने, जानी बेग की पराजय तथा हुमायूं के जून निवास की सूचना मिली। मुग़लों का सामना करने के लिए नई शक्ति से वह थट्टा आया और वहां से आगे बढ़कर उसने जून से आठ मील की दूरी पर पड़ाव डाला।[138]

जून में हुमायूं ने निकट के शासकों से सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसकी अपील पर 'सूदा' एवं 'समीचा' तथा 'कच्छ' एवं 'जाम' के जमींदार पन्द्रह-सोलह हज़ार अश्वारोहियों के साथ उसकी सेवा में आ गये।[139] इससे हुमायूं को बड़ी आशा हुई।

जून में हुमायूं को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। सुल्तान महमूद भक्कारी के नेतृत्व में सिन्धी बारबार मुग़लों पर आक्रमण कर रहे थे। इन्हीं आक्रमणों में एक दिन शेख़ अली बेग की मृत्यु हो गयी।[140] इससे हुमायूं को बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि वह उस समय उसका प्रमुख सहायक था। शाह हुसेन अरग़ून ने हुमायूं के सहायकों तथा अमीरों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया और उसने कुछ लोगों को अपने पक्ष में कर भी लिया। इनमें बाबर के प्रधान मन्त्री निज़ामुद्दीन ख़लीफ़ा का पुत्र ख़ालिद बेग प्रमुख था।

बैराम ख़ां का आगमन

कन्नौज की पराजय के पश्चात् बैराम ख़ां हुमायूं से अलग हो गया था।

[137] अकबरनामा, १, पृ. २००। जुये शाही, आधुनिक जलालाबाद है। बदायूनी के अनुसार उसे ग़ज़नी दिया गया (मुन्तख़बुत्तवारीख़ पृ. ४४२); गुलबदन के अनुसार कामरान ने ग़ज़नी देने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु बाद में लमगानात एवं तनगीहार उसे दिये गये। (गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १६२)

[138] तारीख़े मासूमी, पृ. १७८-७९; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६८।

[139] जौहर, स्टीवर्ट, ६७-६८; गुलबदन (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १५८) के अनुसार उनके आने से सेना की संख्या १०,००० तक पहुँची।

[140] गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज पृ. १५९, तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ९२-९३; अकबरनामा, १, पृ. १८५।

अफ़ग़ानों के उत्तरी भारत पर अधिकार करने के पश्चात् बैराम ने सम्भल में मियां अब्दुल वहाब तथा लखनोर के राजा मित्र सेन के यहां शरण ली। उस भाग के प्रमुख अफ़ग़ान नसीर ख़ां के प्रभाव से राजा मित्र सेन ने बैराम को उसे समर्पित कर दिया। नसीर ख़ां ने उसे ईसा ख़ां को समर्पित कर दिया। ईसा ख़ां बैराम की योग्यता से परिचित था उसने उसका शेरशाह से परिचय कराया। शेरशाह ने उठकर उसका स्वागत किया तथा उसे गले लगा लिया और उसे उच्च स्थान प्रदान किया। बैराम फिर भी हुमायूं के प्रति स्वामिभक्त रहा तथा अवसर पाकर एक दिन वह ग्वालियर के भूतपूर्व गवर्नर अबुल कासिम के साथ बुरहानपुर से भाग खड़ा हुआ। पीछा करने वाले अफ़ग़ानों द्वारा दोनों पकड़े गये। शेरशाह की आज्ञा थी कि बैराम ख़ां को मार डाला जाए और अबुल कासिम को भागने दिया जाए। पीछा करने वाले अफ़ग़ान बैराम को नहीं पहचानते थे। पकड़े जाने पर दोनों ने ही अपने को बैराम कहा। दोनों बन्दियों में अबुल कासिम अधिक सुन्दर था। उसे ही बैराम समझकर अफ़ग़ान उसे बन्दी बनाकर शेरशाह के सामने ले गये। इस तरह बैराम ख़ां को भागने का अवसर मिला। शेर शाह अबुल कासिम से बहुत नाराज़ हुआ और उसने उसे मरवा डाला। बैराम ख़ां यहां से भागकर गुजरात पहुँचा और वहां से वह सिन्ध में हुमायूं से मिला।[१४१] उसके आगमन से इस कठिन परिस्थिति में, जब सभी भाग रहे थे, हुमायूं बड़ा प्रसन्न हुआ। उसका स्वागत करते हुए उसने कहा, "हमारे दुःख का साथी आ गया।"[१४२]

शाह हुसेन से अन्तिम संघर्ष

शाह हुसेन ने राणा वीरसाल को हुमायूं से अलग करने का प्रयत्न किया। शाह हुसेन द्वारा भेजी गयी खिलअत और कटार राणा ने हुमायूं को भिजवा दी[१४३] तथा किसी भी प्रलोभन पर वह मुग़ल सम्राट को छोड़ने को तैयार

१४१ बैराम के संक्षिप्त प्रारम्भिक जीवन तथा इस घटना के लिए देखिए, जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६६; बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. ९०-९१, पृ. ९० का चौथा नोट; इलियट तथा डासन ५, पृ. २१५, नोट; अकबरनामा, १, पृ. १८५-८६।

شریک درد ما آمد -

१४२ 'शरीके दर्दे मा आमद।'

१४३ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६८ के अनुसार एक कुत्ते को वह खिलअत पहनाकर तथा कटार बाँधकर शाह हुसेन के पास भेजा गया जिससे शाह हुसेन बड़ा शर्मिन्दा हुआ।

नहीं हुआ। दुर्भाग्यवश, कुछ समय बाद तरदी बेग तथा ख़्वाजा ग़ाज़ी[१४४] से किसी बात पर वादविवाद होने के कारण बीर सांल नाराज़ हो गया तथा यह कहकर चला गया कि "मुग़लों की सहायता करना समय तथा शक्ति का दुरुपयोग है।" वीर साल के जाने के पश्चात् सदा, समीचा तथा अन्य जातियों के लोग भी चले गये।[१४५] इनके जाने से भगदड़ मच गयी, अन्य लोग भी, जिन्हें हुमायूं में पूर्ण आस्था नहीं थी, जाने लगे। इस तरह हुमायूं के बहुत-से सहयोगी उसे छोड़कर चले गये। उनके चले जाने से शाह हुसेन को अवसर मिला तथा वह मुग़ल सेना पर अचानक आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। जौहर लिखता है कि मुनीम ख़ां मुग़ल पड़ाव का परित्याग कर शाह हुसेन से जा मिला। उसने उसे सूचित किया कि हुमायूं का पड़ाव मैदान में है जहां रक्षा तथा शरण का कोई प्रबन्ध नहीं है। सौभाग्य से हुमायूं को भी मुनीम ख़ां की इस बात का पता चल गया। यह समाचार पाते ही हुमायूं ने फौरन खाइयां खोदने की आज्ञा दी और डंडा लेकर खाइयां खोदने के लिए उसने स्वयं विभिन्न स्थानों पर लोगों को नियुक्त किया। तीन दिन में रक्षात्मक खाई बनकर तैयार हो गयी। जब शाह हुसेन आया तो खाइयों से रक्षित मुग़ल पड़ाव देखकर मुनीम ख़ां पर नाराज़ हुआ।[१४६]

शाह हुसेन निराश नहीं हुआ उसने नाकेबन्दी कर मुग़ल पड़ाव में पहुँचने वाली आवश्यक वस्तुओं को रोक दिया। हुमायूं की अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। उसके पास शत्रु पर आक्रमण करने के लिए न तोपें थीं न इतने आदमी ही कि शत्रु का सामना किया जा सके। चारों तरफ से खाइयों द्वारा घिरा हुमायूं का पड़ाव उसके लिए बन्दीगृह-सा बन गया था। सिन्ध-विजय का स्वप्न टूट गया। सिन्ध में उसे जो कष्ट हुआ वैसा कष्ट उसे कभी न प्राप्त हुआ। हताश होकर उसने शाह हुसेन अरग़ून से सन्धि करने का निश्चय किया।

सिन्ध से विदाई

शाह हुसेन हुमायूं की कठिनाई से लाभ उठाना चाहता था। यह जानकर कि मुग़ल स्वयं चले जाना चाहते हैं उसने बाबर कुली को सन्धिवार्ता के लिए

१४४ गुलबदन ने (बेवरिज, पृ. १५८) इसका नाम तारदी मुहम्मद ख़ां तथा जौहर ने (स्टीवर्ट, पृ. ६९) ख़्वाजा गाज़ी लिखा है।

१४५ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६९; हुमायूंनामा बेवरिज, पृ. १६९।

१४६ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ६९।

भेजा। सन्धि की शर्तों के अनुसार मुग़लों ने सिन्ध छोड़ने का वचन दिया। उनके जाने में सुविधा देने के लिए शाह हुसेन ने सेना को ले जाने के लिए तीस नावें, एक लाख मिस्कल नक़द, २००० गदहों के ले जाने के बराबर अनाज, ३०० ऊंट[१४७] तथा ३०० घोड़े देने का वचन दिया। उसने जून नगर के सामने सिन्ध नदी पर पुल बनाने की भी प्रतिज्ञा की जिससे मुग़ल सुविधा से जा सकें। सब वस्तुएं शीघ्र पहुँचा दी गयीं। हुमायूं ने सिन्ध से बिदा ली (११ जुलाई १५४३; ७ रबीउल आखिर ९५० हि.)[१४८] तथा सिन्ध नदी पार कर क़न्धार की तरफ रवाना हुआ। उसे कामरान से तो अधिक आशा नहीं थी किन्तु वह समझता था कि अस्करी कदाचित् उसे क़न्धार का दुर्ग समर्पित कर देगा और उसके सहयोग से वह पुनः शक्ति प्राप्त करने में समर्थ होगा। उसके अधिकतर अमीरों ने उसका साथ छोड़ दिया था; प्रमुख अमीरों में केवल बैराम ख़ां तथा तरदी बेग ही उसके साथ थे।

शाह हुसेन का हृदय साफ नहीं था। एक तरफ उसने हुमायूं को अपने राज्य से बाहर निकालने में सुविधा दी और दूसरी तरफ उसने काबुल में कामरान और क़न्धार के गवर्नर अस्करी को हुमायूं की क़न्धार यात्रा की सूचना भी दे दी[१४९] जिससे कामरान और अस्करी उससे प्रसन्न हों और साथ ही यदि हुमायूं उनके हाथ पड़ जाय तो भविष्य में हुमायूं से उसे कोई ख़तरा न रहे।

शाह हुसेन को यह भय था कि यदि वह मुग़लों के किसी एक दल को अपने में मिला नहीं लेगा तो उसे भविष्य में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा वह शत्रु को विभाजित कर देना चाहता था। इसी बीच कामरान ने शाह हुसेन की लड़की से विवाह करने का प्रस्ताव अब्दुल वहाब द्वारा भेजा। कामरान और शाह हुसेन की सीमाएं निकट थीं। कामरान ने क़न्धार विजय कर अपनी शक्ति और बढ़ा ली थी। इस परिस्थिति में सिन्ध के शासक ने कामरान के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और अपनी सच्चाई दिखलाने के लिए उसने बाबर की सौतेली बहन शहर बानू बेगम को भेजा।

१४७ गुलबदन के अनुसार १००० ऊंट। ये ऊंट भी जंगली थे तथा करीब २०० ऊंट भाग गये। हुमायूंनामा (बेवरिज, पृ. १६३), तबक़ाते अकबरी (डे, २, पृ. ९३) के अनुसार ३०० ऊंट।

१४८ अकबरनामा, १, पृ. १८९।

१४९ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ९३।

सिन्ध से ईरान

जिस समय हुमायूं क़न्धार की तरफ जा रहा था, मार्ग में कामरान का दूत अब्दुल वहाब मिला। इससे उसने सीवी (सिविस्तान), जो अब्दुल वहाब के अधीन था, प्राप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। हुमायूं बोलन के दर्रे से होता हुआ शाल पहुँचा।[१५०] अस्करी इस समय कामरान का सहायक था। कामरान ने अस्करी को हुमायूं को बन्दी बनाने की आज्ञा दी थी। अस्करी हुमायूं पर आक्रमण की तैयारी कर रहा था। हुमायूं को अस्करी के विचारों की सूचना मिली। ऐसी परिस्थिति में क़न्धार पर आक्रमण करने का विचार त्यागकर वह दक्षिण की तरफ घूमकर मश्तंग की ओर रवाना हुआ। मार्ग में डाकुओं ने उस पर आक्रमण किया। उसे ठंड से भी बहुत कष्ट उठाना पड़ा क्योंकि उसके साथियों के पास ठंड से बचने के लिए पर्याप्त वस्त्र नहीं थे। इन परिस्थितियों का सामना करता हुआ हुमायूं मश्तंग पहुँचा।[१५१]

यहां से उसने अस्करी को स्नेहमय तथा उपदेशपूर्ण पत्र भेजा। अस्करी के कुछ अमीरों ने उसे हुमायूं का पक्ष लेने का सुझाव दिया किन्तु अस्करी ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया तथा हुमायूं के विरुद्ध योजनाएं बनाता रहा।

अस्करी दो हज़ार सैनिक लेकर हुमायूं के विरुद्ध रवाना हुआ। मार्ग का ज्ञान न होने के कारण उसने जय बहादुर[१५२] नामक ऊज़बेक को भी अपने साथ ले लिया था। यह व्यक्ति एक समय हुमायूं की सेना में था। उसने रात्रि में जाकर बैराम ख़ां को अस्करी के विचारों की सूचना दे दी। यह सूचना पाकर प्रारम्भ में तो हुमायूं चिन्तित नहीं हुआ क्योंकि अब भी उसे उन पर पूर्ण अविश्वास नहीं था। वह अपने भाइयों से लड़ने को तैयार नहीं था, किन्तु पुनः परिस्थिति

१५० आधुनिक क्वेटा (अकबरनामा, १, पृ. १९०)। गुलबदन (बेवरिज पृ, १६५) इस स्थान को शाल मस्तान तथा निज़ामुद्दीन अहमद (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ९४) की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में शाल ज़मीस्तान और कुछ में शाल व मस्तान लिखा है।

१५१ मश्तंग क्वेटा के दक्षिण-पश्चिम, दक्षिण की ओर ३२ मील पर क्वेटा खिलात के बीच में था।

१५२ जौहर उसे जोबी बहादुर लिखता है, अबुल फ़ज़ल, अकबरनामा, १, पृ. १९०, जय बहादुर या जी बहादुर ऊज़बेक लिखता है। इलियट तथा डासन, ५, पृ. २१५, में उसका नाम हवाली या जवानी लिखा है इसके विवेचन के लिए देखिए, होदीवाला, स्टडीज़ इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री, १, पृ. ५१०।

समझकर वह भयभीत हुआ। वह समझ गया कि यदि बचना है तो तत्काल कार्य करना होगा। उसने निश्चय किया कि वह ईरान होता हुआ मक्का चला जाएगा। अस्करी के कोई पुत्र नहीं था और उसे आशा थी कि अस्करी तथा उसकी स्त्री अकबर की देखभाल करेंगे। इस तरह बालक अकबर को दो धायों के साथ वहीं छोड़कर, हमीदा बानो बेगम तथा कुछ साथियों के साथ हुमायूं वहां से ईरान की ओर अग्रसर हुआ।[१५३]

हुमायूं के रवाना होने के कुछ ही देर बाद वहां अस्करी पहुँचा। उसे हुमायूं के भाग जाने से निराशा हुई। यह सूचना पाकर कि अकबर खेमे में छोड़ दिया गया है उसने उस पर अधिकार कर लिया। उसने अकबर तथा अन्य लोगों के साथ सद्व्यवहार किया।[१५४] अकबर उसकी दो धायों, जीजी अनगा तथा माहम अनगा और हुमायूं द्वारा छोड़ी गयी वस्तुओं को लेकर वह क़न्धार लौट गया (१५ दिसम्बर १५४३)। उसने अपने महल के पास अकबर के रहने का प्रबन्ध किया और उसकी देख-रेख अपनी स्त्री सुल्तान बेगम को सुपुर्द कर दी। सुल्तान बेगम ने अकबर के साथ बहुत ही प्रेम और सहृदयता का व्यवहार किया। अस्करी ने इस तरफ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। केवल दो बार अकबर से उसके सम्बन्ध का ज्ञान हमें प्राप्त है। धायों के कहने से अकबर को बुरी नज़र से बचाने के लिए उसने एक बार अपने साफे से उसे मारा तथा दूसरी बार हसन अब्दाल की दरगाह पर उसने अकबर को मुंडन के लिए ले जाने की आज्ञा दी।[१५५]

हुमायूं मुश्तंग से सीस्तान की तरफ रवाना हुआ। उसके साथियों की संख्या तीस से अधिक नहीं थी जिसमें केवल दो स्त्रियां[१५६]—हमीदा बानों और हसन

१५३ घोड़ों की कमी थी। हुमायूं ने तरदी बेग से घोड़ा मांगा, उसने इनकार कर दिया। कोई मार्ग न देखकर हमीदा तथा हुमायूं एक ही घोड़े पर चढ़कर आगे बढ़े। जौहर, स्टीवर्ट, ७६; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ६५; अकबरनामा, १, पृ. १६१।

१५४ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १६५-६६; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ६५; अकबरनामा, १, पृ. १६३ ; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ७७ के अनुसार जब अकबर उसे समर्पित किया गया तो उसने उसे गोद में उठा लिया तथा उसे हृदय से लगा लिया।

१५५ अकबरनामा, १, पृ. १६४-६५। तुर्की में यह प्रथा थी कि जब पुत्र अपने पांव चलने लगता तो पिता या पिता का बड़ा भाई या जो कोई उसके स्थान पर होता, पगड़ी सिर पर से उतारकर बालक के चलते समय उसे मारता था और बालक गिर पड़ता था।

१५६ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ६५ के अनुसार उसके साथ केवल २२ आदमी

अली ईशक आग़ा की बलोच पत्नी—थीं। मुश्तंग से हुमायूं गरमसीर पहुँचा। मार्ग में ठंड से उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ा। अस्करी के पीछे आने का भय लगा हुआ था। एक बार उन्हें रात भर बरफ में रहना पड़ा। असहनीय ठंड थी। पास में न ईंधन था न भोजन। भूख से सभी व्याकुल थे। अन्त में एक घोड़ा मारा गया। उबालने के लिए बर्तन के अभाव में ढाल तथा शिरस्त्राण में मांस पकाकर खाना पड़ा।[१५७] बलोच प्रदेश में कुछ लोग उन्हें बन्दी बनाकर अस्करी को समर्पित करना चाहते थे। उस समय अली ईशक आग़ा की बलोच बीबी ने उनकी भाषा में बात कर हुमायूं की सहायता की। कामरान ने बलोच सरदार मलिक हाती को एक फ़रमान द्वारा हुमायूं को बन्दी बनाकर उसके पास भेजने के लिए लिखा था तथा इसके लिए उसने बहुत पारितोषिक देने का वादा किया था। हुमायूं से मिलकर सरदार के विचार बदल गये। उसने हुमायूं के साथ उदारता का व्यवहार किया। वह हुमायूं को अपने ख़ेमे में लाया तथा उसके लिए आवश्यक वस्तुएं प्रदान कीं।[१५८] यहां से जब हुमायूं रवाना हुआ तो बलोच सरदार ने उसे गरमसीर पहुँचा दिया। यहां का प्रमुख अधिकारी मीर अब्दुल हई अस्करी द्वारा नियुक्त हुआ था। अपने स्वामी के भय से वह स्वयं तो उपस्थित नहीं हुआ किन्तु हुमायूं के लिए उसने कुछ आवश्यक वस्तुएं भेज दीं। अस्करी का मालगुजारी वसूल करने का अधिकारी, ख़्वाजा ज़लालुद्दीन महमूद,[१५९] बाबा हाज़ी के दुर्ग में लगान वसूली के लिए आया हुआ था। हुमायूं के बुलाने पर वह उपस्थित हुआ। उसने अपनी सेवा तथा धन हुमायूं को अर्पित किया। आपत्ति-काल में यह बहुत बड़ी सहायता थी। हुमायूं ने प्राप्त वस्तुएं अपने सहायकों में वितरित कीं तथा ख़्वाज़ा ज़लालुद्दीन महमूद को 'बादशाह की व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधीक्षक' नियुक्त किया।[१६०]

थे। फ़िरिश्ता तथा बदायूनी इसका समर्थन करते हैं। गुलबदन (बेवरिज, पृ. १६६) तीस आदमी तथा दो स्त्रियां लिखती हैं। जौहर (स्टीवर्ट, पृ. ७६) चालीस पुरुष तथा दो स्त्रियां लिखता है।

१५७ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १६६-६७।

१५८ वही, पृ. १६७; अकबरनामा, १, पृ. २०२।

१५९ आईने अकबरी, १, पृ. ३८४। बाद में यह व्यक्ति अकबर का दीवान हुआ तथा इसे ढाई हज़ार का मनसबदार नियुक्त कर ग़ज़नी भेजा गया। बाद में मुनीम ख़ां ने अकबर के राज्य के तीसरे वर्ष इसकी हत्या करा दी। मआसिरुल उमरा, भाग १, पृ. ६१५-१८।

१६० अकबरनामा, १, पृ. २०२।

कठिनाइयों में हुमायूं ने पुनः संसार से विरक्त होने का विचार किया किन्तु अपने आपत्तिकाल के साथियों के समझाने से उसने यह विचार स्थगित कर दिया। भाइयों से सहायता की कोई आशा नहीं थी इसके विपरीत कामरान के प्रदेश में अधिक दिन रहने से संघर्ष का भय था। केवल एक मार्ग था—ईरान के शाह से सहायता प्राप्त करना। हुमायूं ने ईरान के शाह तहमास्प को एक निष्ठायुक्त पत्र लिखा (२८ दिसम्बर १५४३)। पत्र में उसने ईरान में प्रवेश करने तथा शाह से मुलाकात करने की प्रार्थना की थी। इस पत्र को जय बहादुर द्वारा भेजा गया।

उत्तर प्राप्त होने तक हुमायूं का विचार गरमसीर में रुकने का था। इसी समय सूचना मिली कि अस्करी उसका पीछा करता हुआ आ रहा है। रुकने तथा सोचने का समय नहीं था। हुमायूं ने बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये हेलमन्द नदी पार की तथा ईरान के सीस्तान प्रान्त में प्रवेश किया।[१६१]

[१६१] वही, पृ. २०४।

९. ईरान यात्रा तथा भाइयों से संघर्ष

हुमायूं ने ईरान के सीस्तान प्रान्त में कठिन परिस्थिति में प्रवेश किया। तब तक शाह ने उसके प्रार्थना पत्र का उत्तर भी नहीं दिया था।[1] औपचारिक दृष्टि से हुमायूं को शाह की आज्ञा के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए थी, पर इसके लिए समय नहीं था। सीस्तान के गवर्नर अहमद सुल्तान शामलू को कदाचित हुमायूं के प्रार्थना पत्र का ज्ञान था। उसने निष्कासित मुग़ल सम्राट का उचित स्वागत करने का प्रबन्ध किया। हुमायूं के सीस्तान प्रान्त में प्रवेश करते ही शामलू ने अपने एक प्रमुख व्यक्ति को हुमायूं का स्वागत करने के लिए भेजा। नगर से तीन-चार मील पर पहुंचने पर अपने प्रमुख अमीरों के साथ उसने सम्राट का स्वागत किया। नगर में गवर्नर ने अपना निवास स्थान हुमायूं को रहने के लिए दिया तथा अपनी स्त्रियों, माता तथा अन्य स्त्रियों को हमीदा बानो का स्वागत करने के लिए भेजा। हुमायूं को उपहार भी दिये गये। अहमद सुल्तान शामलू के भाई हुसेन कुली मिर्ज़ा ने हुमायूं को कुछ पुस्तकें भेंट कीं तथा दोनों में शिआ-सुन्नी सिद्धान्तों पर वार्तालाप हुआ जिससे हुमायूं को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजसी स्वागत के अतिरिक्त बहुत दिनों के बाद हुमायूं को आराम प्राप्त हुआ।[2]

हुमायूं का स्वागत करने के पश्चात् ही अहमद सुल्तान शामलू ने शाह के पुत्र तथा हिरात के गवर्नर सुल्तान मुहम्मद मिर्ज़ा को हुमायूं के आगमन की

[1] जौहर के अनुसार हुमायूं ने ईरान के शाह के पास सीस्तान से पत्र लिखा (स्टीवर्ट, पृ.८०); अबुल फ़ज़ल (अकबरनामा, १, पृ. २०३) के अनुसार उसने गरम सीर से पत्र लिखा। जौहर तथा अबुल फ़ज़ल के द्वारा दी गयी पत्र की विषयवस्तु एक ही है। सम्भव है हुमायूं ने सीस्तान प्रवेश करने पर दूसरा पत्र भी लिखा हो। किन्तु दूसरे पत्र की प्रतिलिपि हमें प्राप्त नहीं है। रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ७-८।

[2] अकबरनामा, १, पृ. २०४; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ७९। बायज़ीद, ब्यात तज़किरये हुमायूं व अकबर पृ. ८; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ९६।

सूचना भेज दी और शाह से हुमायूं को हिरात के मार्ग से दरबार में भेजने की आज्ञा मांगी।[३]

इसी समय दो मुग़ल अमीर, हाजी मुहम्मद तथा हसन कोका, अस्करी को छोड़कर हुमायूं से आ मिले। इन लोगों ने हुमायूं को परामर्श दिया कि वह पुनः लौटकर क़न्धार पर अधिकार करे। इन लोगों ने वहां के कुछ अमीरों से सहायता मिलने की भी आशा दिलायी, किन्तु हुमायूं ने इनकी बात स्वीकार नहीं की तथा बैराम ख़ां के इस मत का समर्थन किया कि ईरान के शाह से मुलाक़ात करने के पश्चात् कार्यक्रम निश्चित करना चाहिए।[४]

हुमायूं का पत्र तथा यह सूचना पाकर कि शरणार्थी सम्राट ने सीस्तान में प्रवेश किया है, शाह तहमास्प बहुत प्रसन्न हुआ। तीन दिन तक कज़वीन में इस ख़ुशी में नक्कारे बजते रहे। शाह ने हुमायूं के दूत को बिदा कर दिया और गवर्नरों तथा अफसरों को सूचना भिजवा दी कि हुमायूं का राजसी स्वागत होना चाहिए और उसकी आवश्यकता की सभी वस्तुएं उसके लिए उपलब्ध होनी चाहिए।[५] आज्ञापत्र से स्पष्ट है कि हुमायूं का शानदार स्वागत किया गया।

३ अकबरनामा, १, पृ. २०५।

४ वही पृ. २०४।

५ खुरासान के हाकिम के नाम जो पत्र भेजा गया उससे अन्य पत्रों का अनुमान लगाया जा सकता है। शाह के इस पत्र के लिए देखिए अकबरनामा १, पृ. २०६-१३। शाह के पत्र में हुमायूं के स्वागत के लिए प्रत्येक बात का वृहत् रूप में उल्लेख है। कितने व्यक्ति उसका स्वागत करें, क्या भोजन दिया जाए, शरबत किस चीज का हो, इत्यादि का भी ब्यौरा है। पत्र में कहा गया है कि शाही भोजन के १२०० थाल प्रति दिन बादशाह के दरबार में पेश किये जाएं। जब हुमायूं पड़ाव करे तो गुलाब का शरबत एवं स्वादिष्ट नीबू का रस तैयार रखा जाए और उसे बरफ़ के साथ दिया जाए। शरबत के बाद मशहद के मुश्की सेब, तरबूज एवं अंगूर इत्यादि सफेद रोटी के साथ दिये जायं। सफेद रोटी घी तथा दूध में सानकर बनायी गयी हो जिसमें पोस्ता तथा राज़ियाना (एक तरह का बीज) पड़ा हो। भोजन के बाद मिठाइयां एवं फालूदा, जो मिश्री एवं उत्तम प्रकार की साफ की गयी शकर से तैयार किया गया हो, तरह तरह के मुरब्बे, गुलाब इत्यादि से खुशबूदार की गयी सेवईं इत्यादि दी जाए। दरबार में स्वागत के दिन प्रत्येक अमीर को नौ घोड़े उपहार स्वरूप भेंट किये जाएं जिसमें तीन बादशाह के लिए हों, एक 'अमीरे मुअज्जम' बैराम ख़ां के लिए हो और पांच अन्य प्रतिष्ठित अमीरों के लिए। नगर में पहुँचने के एक दिन पूर्व ईदगाह

कुछ दिन सीस्तान में व्यतीत कर हुमायूं हिरात के लिए रवाना हुआ। मार्ग में फराह[६] के निकट उससे शाह के दूत, जो हुमायूं के पत्र का उत्तर ला रहा था तथा शाह के दरबार से लौटते हुए अपने दूत, जय बहादुर (चूली बहादुर) से मुलाकात हुई। हुमायूं को यहां शाह का पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उसने ईरान में हुमायूं के आगमन का स्वागत किया था तथा उसके शीघ्र मिलने की आशा व्यक्त की थी।[७]

हिरात में

सीस्तान से हुमायूं ने हिरात में प्रवेश किया। मार्ग में जहां भी हुमायूं का पड़ाव पड़ता वहां कोई न कोई प्रतिष्ठित एवं सम्मानित व्यक्ति उसका स्वागत करता तथा उसके लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध करता। हिरात में उसका शानदार स्वागत हुआ। शाह तहमास्प के ज्येष्ठ पुत्र, हिरात के गवर्नर, मुहम्मद ख़ां ने प्रमुख लोगों के साथ नगर के तीन-चार मील बाहर उसका स्वागत किया। नगर में प्रवेश करते समय हिरात के बूढ़े तथा जवान सभी ने दो कतारों में खड़े होकर हुमायूं का अभिवादन किया। उसे हिरात की सबसे सुन्दर इमारत मंज़िले बेगम में ठहराया गया। दो-तीन दिन बाद मुहम्मद ख़ां ने ज़हांआरा बाग़ में उसका स्वागत किया। इसमें नगर के सभी लोग आये हुए थे जिससे समस्त मैदान भरा हुआ था, मानो ईद या नौरोज़ हो। इस जलसे में गायन, नृत्य और भोजन का वृहत् प्रबन्ध किया गया। हुमायूं के स्वागत में कुछ कविताएं पढ़ी गयीं जिसे सुनकर उसकी आंखों में आंसू आ गये।

हुमायूं कुछ दिन हिरात में रुका रहा।[८] प्रत्येक सप्ताह उसे शाह द्वारा भेजे गये उपहार तथा शुभ कामनाएं प्राप्त होती रहीं। यहां हुमायूं ने नौरोज़

उद्यान के सामने ऐसे खेमे लगवाने की आज्ञा हुई जिनके भीतर लाल अतलस, बीच में बारीक मलमल और ऊपर इस्फ़हानी मलमल लगायी गयी हों।

६ ३२°२६′ उत्तर तथा ६२°८′ पूर्व हिरात के दक्षिण १६४ मील। अब यह नगर नष्ट हो गया है।

७ इस पत्र की फारसी प्रतिलिपि के लिए देखिए रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ६७-६८।

८ हिरात में हुमायूं कितने दिन रुका रहा इसके विषय में समकालीन इतिहासकार एकमत नहीं हैं। अबुल फ़ज़ल के अनुसार हुमायूं २७ जनवरी १५४४ को पहुँचा (अकबरनामा १, पृ. २१४); जौहर के अनुसार हुमायूं वहां एक महीने रहा (स्टीवर्ट पृ. ८६) वह फरवरी

के त्यौहार से सम्बन्धित जलसे भी देखे जो ईरान में बहुत शान से मनाये जाते थे। इस जलसे में हुमायूं राजसिंहासन पर बैठाया गया। उसके दाहिने राजकुमार मुहम्मद मिर्ज़ा और बायें सद्र मीर मुहम्मद युसुफ बैठाये गये। गान तथा मनोरंजन हुआ और हुमायूं को बहुत-सी वस्तुएं भेंट के रूप में प्राप्त हुईं।

हिरात में समय बड़े आनन्द में व्यतीत हुआ। नित्य किसी न किसी स्थान की सैर होती थी। हुमायूं ने हिरात के प्रमुख स्थानों, सन्तों के मक़बरों और बगीचों की सैर की। हर समय आमोद-प्रमोद की महफिलें आयोजित होती रहती थीं। भोग-विलास तथा आनन्द की सभी वस्तुएं उपलब्ध थीं।[९]

हिरात से क़ज़वीन

हिरात से हुमायूं ने मशहद जाने की अनुमति के लिए शाह को एक पत्र लिखा। शाह ने इस पत्र का उत्तर भेजा जिसमें उसने हुमायूं के मशहद जाने की स्वीकृत दी।[१०] हिरात से हुमायूं मशहद की तरफ रवाना हुआ। मार्ग में वह जाम पहुँचा। यहां उसने कई धार्मिक स्थानों के दर्शन किये और प्रार्थना की जिनमें शिहाबुद्दीन अहमद अलजामी का मजार भी था।[११] अहमद अलजामी हुमायूं की मां माहम बेगम तथा उसकी पत्नी हमीदा बानो के पूर्वज थे।

जाम में कुछ दिन रहने के पश्चात् हुमायूं मशहद पहुँचा (१५ मुहर्रम ९५०हि. ८ अप्रैल १५४४ ई.)। यहां भी उसका स्वागत हुआ और वह एक बहुत ही सुन्दर स्थान, चहार बाग़ में ठहराया गया। मशहद में वह चालीस दिन रुका रहा। यहां वह अपना समय कभी-कभी रात भर प्रार्थनाओं में बिताता था।

के अन्त तक वहां रहा तथा नौरोज़ भी वहां मनाया जो २१ मार्च को पड़ा। इससे स्पष्ट है कि वह उसके बाद चला अर्थात् डेढ़-दो महीने वह वहां रुका रहा।

९ अकबरनामा, १, पृ. २१४; हुमायूंनामा बेवरिज, पृ. १६९।

१० इन दोनों पत्र के लिए देखिए रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. १५-१८।

११ जाम के मजार में एक अभिलेख है जो हुमायूं के यहां आने की यादगार में लिखा गया था। हुमायूं ने यहां एक कविता भी अपने हाथ से अहमदेजाम के मकबरे के संगमरमर पत्थर पर लिखी। मासीरे रहीमी का लेखक अबुल बाक़ी १६११ में यहां आया था और उसने हुमायूं की इस कविता को पढ़ा था। दुर्भाग्य से इसने अपनी पुस्तक में इस कविता को नहीं लिखा है। हुमायूं ने जाम में कब कविता लिखी, इसकी तिथि के विषय में मतभेद है। कुछ लेखकों का मत है कि हुमायूं यहां दुबारा आया था। रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. १८-१९।

यहां उसने इमाम अली के मज़ार की यात्रा की तथा वहां के नियम के अनुसार इबादत की तथा दीपक बुझाया। उसने वहां अपना धनुष लटकाने के लिए दिया।[१२] मशहद में हुमायूं को शाह का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उसने हुमायूं से कज़वीन आने के लिए लिखा था।

मशहद से हुमायूं नीशापुर, सब्ज़बार,[१३] दामग़ान बिस्ताम, सामनाम और सूफीयाबाद होता हुआ दर्स पहुँचा। यहां से हुमायूं ने बैराम ख़ां को शाह के पास अपने दूत के रूप में भेजा। शाह तहमास्प कज़वीन में था। बैराम ख़ां के उपस्थित होने पर उन्होंने उससे कहा कि वह शिआ लोगों की तरह बाल काट ले और ईरानी टोपी (ताज) पहने। बैराम ने कहा कि वह एक दूसरे शासक का सेवक है और यह केवल अपने स्वामी की आज्ञा से ही वैसा कर सकता है। शाह तहमास्प इससे बहुत नाराज़ हुआ और उसने कहा कि बैराम की जो इच्छा हो करे। उसे डराने के लिए शाह ने कुछ बंदियों[१५] को उन्हें सुन्नी कहकर फांसी देने की आज्ञा दी। शाह ने हुमायूं को पत्र लिखा कि वह अपने स्थान पर रहे तथा बूबक बेग को भेज दे।

बूबक बेग ने शाह से मिलकर उसका क्रोध शान्त किया जिससे शाह ने

१२ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ८७-८८।

१३ नीशापुर ३६° १२′ उत्तर तथा २८०;४०° पूर्व में स्थित है। यह खुरासान के चार प्रमुख नगरों में एक था। सब्ज़वार नीशापुर के पश्चिम ६४ मील पर स्थित है।

१४ अबुल फ़ज़ल के अनुसार बैराम ने शाह से सुल्तानिया तथा सूरलीक के बीच मुलाकात की तथा क़ज़वीन लौट आया। मासीरे रहीमी से ऐसा प्रतीत होता है कि बैराम का शाह के दरबार में जोरदार स्वागत हुआ। बायज़ीद के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि बैराम कज़वीन से हुमायूं का पत्र लेकर जनजाम में जाकर मिला तथा लौट आया। निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि बैराम कज़वीन भेजा गया। वह सूरलीक में शाह से मिला तथा उसका उत्तर लेकर हुमायूं के पास लौट आया। शाह ने हुमायूं के आने पर प्रसन्नता प्रकट की थी। बदायूनी तथा फ़िरिश्ता का वर्णन संक्षिप्त है। जौहर द्वारा वर्णन इन सबसे भिन्न है जो यहां दिया गया है। सफ़वी इतिहासकारों द्वारा शाह की विरोधी बातों का वर्णन न होना स्वाभाविक है। जौहर का वर्णन सही है। अकबरनामा, १, पृ. २१६; तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ९८-९९; बदायूनी मुन्तख़बुत्त-वारीख़, पृ. ४४४; बायजीद, पृ. ३२; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १५४-५५।

१५ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ९०-९१। ये बन्दी चिराग़कुश कहलाते थे।

हुमायूं को कजवीन आने की अनुमति दी। दर्स से चलकर हुमायूं कजवीन आया। यहां वह तीन दिन रुका रहा। यहां बैराम आकर उससे मिला। शाह इस बीच गरमी व्यतीत करने के लिए कजवीन से सुल्तानियां चला गया था। शाह से मिलने के लिए हुमायूं यहां से चौथे दिन सुल्तानियां की तरफ रवाना हुआ।

शाह तहमास्प से मुलाकात

अबहर तथा सुल्तानियां के मार्ग में हुमायूं की शाह तहमास्प से मुलाकात हुई।[१६] शाह के पड़ाव तक पहुँचने में जब हुमायूं को एक दिन की दूरी बाकी रह गई तो शाह के वज़ीर काजी जहां कज़वीनी तथा अन्य अमीरों ने आगे बढ़कर हुमायूं का स्वागत किया। कुछ और चलने के पश्चात् राजसी परिवार के व्यक्तियों, शाह के भाई शाह मिर्ज़ा और बहराम मिर्ज़ा एवं अन्य लोगों ने मुग़लया सम्राट का स्वागत किया तथा उपहार दिये।[१७] यहां से शाह के भाइयों के साथ उससे मिलने के लिए हुमायूं आगे बढ़ा।

हुमायूं से मिलने के समय शाह ने आगे बढ़कर हुमायूं का स्वागत किया[१८] और हुमायूं को गले लगाकर अपने कालीन पर अपनी दाहिनी तरफ बैठाया। उसने हुमायूं से उसके स्वास्थ्य तथा यात्रा के बारे में पूछा। शाह ने इसके

१६ दोनों सम्राटों का मिलन कहां हुआ यह विवादग्रस्त है। अकबरनामा, १, पृ. २१६ के अनुसार अबहर तथा सुल्तानियां के बीच में; बायज़ीद के अनुसार ये जनजाम (सुल्तानियां से २१ मील) में मिले; बदायूनी के अनुसार सूरलीक इलाक़; निज़ामुद्दीन के अनुसार बिलाक़ सूरलीक; फ़िरिश्ता के अनुसार अबहर तथा सुल्तानियां के बीच बीलाक़ क़दार में; तथा तारीखे रहीमी के अनुसार सुल्तानियां में। बायज़ीद, पृ. ३२; बदायूनी, मुन्तखबुत्तवारीख, पृ. ४४४; फ़िरिश्ता ब्रिग्स, २, पृ. १५४-५५; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ९९।

१७ बहराम मिर्ज़ा ने हुमायूं को एक घोड़ा, वस्त्र तथा शिआ टोपी दी। हुमायूं ने एक वस्त्र तो पहन लिया पर शिआ टोपी नहीं पहनी। जौहर लिखता है कि जो घोड़ा उसे उपहार में दिया गया था वह साधारण नहीं था और उसे हुमायूं की घुड़सवारी की योग्यता जानने के लिए दिया गया था। जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ९३।

१८ अबुल फ़ज़ल के अनुसार दोनों शासकों की मिलन-तिथि जमादिउल अव्वल, ९५१ हि. (२१ जुलाई तथा १९ अगस्त १५४४ के बीच) थी। श्री रे के अनुसार दोनों का मिलन अगस्त के तीसरे सप्ताह में हुआ। देखिए, रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. २६।

पश्चात् हुमायूं से ईरानी ताज पहनने के लिए कहा। हुमायूं ने इसे स्वीकार कर लिया और शाह से कहा कि ताज बड़प्पन की निशानी है और वह उसे प्रसन्नता से पहनेगा। शाह तहमास्प ने स्वयं अपने हाथ से यह ईरानी टोपी हुमायूं के सिर पर रख दी। शाह से मिलने के पश्चात् हुमायूं बहराम मिर्ज़ा के महल में ठहराया गया। यहां हुमायूं के बाल शिआ लोगों के बालों की तरह काटे गये।[१६]

हुमायूं के ईरान निवास को हम तीन कालों में विभाजित कर सकते हैं :

(१) प्रारम्भ में शाह ने हुमायूं को शिआ बनाने का प्रयत्न किया; इसके पश्चात्। (२) लगभग दो माह तक दोनों शासकों में मतभेद रहा तथा इस बीच एक-दूसरे से न मुलाकात हुई और न किसी तरह का पत्र-व्यवहार हुआ। (३) अन्त में दोनों के मतभेद दूर हो गये और शाह ने हुमायूं को सहायता देकर विदा किया।

शाह से मतभेद

ईरान में हुमायूं का भव्य स्वागत हुआ था तथा शाह ने स्वयं उसमें दिलचस्पी ली थी। दोनों का मिलन भी मधुर था किन्तु यह अधिक दिन नहीं रहा। हुमायूं के स्वागत के पश्चात् दूसरे दिन सुबह शाह सुल्तानियां जा रहा था। हुमायूं शाह से मिलने गया, किन्तु शाह ने हुमायूं की बातों का उत्तर नहीं दिया। इससे हुमायूं को बहुत दुःख हुआ। दोनों शासक सुल्तानियां की तरफ रवाना हुए। शाह ने हुमायूं के पास यह समाचार भेजा कि यदि वह शिआ मत स्वीकार कर लेगा तो वह उसे हर तरह की सहायता देने के लिए तैयार है और यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो उसे आग में फेंक दिया जाएगा। हुमायूं ने इसका उत्तर दिया कि उसे राजत्व की आकांक्षा नहीं है और उसने मक्का जाने के लिये शाह से ईरान से केवल गुज़रने की अनुमति मांगी थी। शाह ने फिर दूसरा संवाद भेजा जिसमें उसने हुमायूं से कहलवाया कि शाह सुन्नियों के विरुद्ध एक युद्ध की घोषणा करना चाहता है और यह सौभाग्य है कि एक सुन्नी बादशाह उसके अधिकार में आ गया है। इसके पश्चात् शाह ने काज़ी जहां को हुमायूं के पास भेजा। काज़ी जहां ने हुमायूं को परामर्श दिया कि जिन परिस्थितियों में हुमायूं था उसमें शाह से सुलह कर लेना अधिक युक्तिसंगत था। हुमायूं ने काजी जहां से सभी बातें लिखित रूप में पेश करने के लिए कहा। काज़ी जहां ने तीन काग़ज़ शाह तहमास्प की स्वीकृति से उसके सामने पेश

१६ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ९५।

किये। हुमायूं ने दो को तो स्वीकार कर लिया किन्तु तीसरे को स्वीकार करने के लिए वह तैयार नहीं था। काज़ी जहां ने उसे समझाया कि उसे इस समय स्वीकार कर लेना चाहिए। हुमायूं ने अन्त में यह कहकर कि धार्मिक विचारों में ज़बरदस्ती नहीं होनी चाहिए, विवश होकर तीसरे पत्र पर भी हस्ताक्षर कर दिये।[२०]

शाह तथा उसके अमीर हुमायूं के इस व्यवहार से सन्तुष्ट हुए। शाह ने इसके पश्चात् शिकार का प्रबन्ध किया और हुमायूं को कई स्थानों पर शिकार के लिए ले जाया गया। यहां हुमायूं ने अपनी तीरंदाजी की योग्यता का प्रमाण दिया।

हुमायूं ने शाह को बहुत-से हीरे तथा लाल पत्थर भेंट किये। इसमें एक बहुत ही बड़ा था जो कदाचित् कोहनूर था।[२१] इसे देखकर शाह बहुत प्रभावित हुआ और उसने बैराम बेग को खां की उपाधि से विभूषित किया। इस तरह दूसरे के सेवक को उपाधि देने का नियम नहीं था। इससे हुमायूं की हीनावस्था का अनुमान होता है। बैराम ने, जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है, शाह से शिआ टोपी पहनने से इनकार कर दिया था किन्तु अब अपने स्वामी की ही शिआ मत स्वीकार करने की विवशता को जानकर बैराम ने ख़ां की उपाधि स्वीकार कर ली।

मतभेद के कारण

ईरान में प्रवेश करने के पश्चात् हुमायूं का शानदार स्वागत हुआ था। उसके शिआ औपचारिकता स्वीकार करने के पश्चात् दोनों का सम्बन्ध और दृढ़ होना चाहिए था। इसके विपरीत दोनों में फिर कैसे मतभेद हो गया? वास्तव में कई कारणों ने मिलकर यह परिस्थिति उपस्थित कर दी।

हुमायूं ने कुछ अमीर, जैसे रोशन बेग कोका, ख़्वाजा ग़ाज़ी दीवान तथा मुहम्मद नेज़ाबाज़, जो कामरान के सेवक थे, हज से लौटकर यहीं थे। ये लोग

२० वही, पृ. ९५-९६। जौहर की हस्तलिखित प्रतियों में इस घटना के वर्णन में कहीं-कहीं भिन्नताएं हैं। देखिए, रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ.२८-२९; अर्सकिन, २, पृ. २८६।

२१ एच. बेवरिज,'बाबर्स डायमन्ड', एशियाटिक क्वार्टरली रिव्यू, अप्रैल, १८९९, में लेख; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १७३, नोट १; शाह ने इसे पुनः दक्कन के निजाम शाह को भेज दिया। बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. १२०, नोट १; अकबरनामा १, पृ. २१७; जौहर, स्टीवर्ट पृ. ९९-१००।

शाह से हुमायूं के विरुद्ध बातें करते थे[२२] तथा वे उसे विश्वास दिलाना चाहते थे कि अपने दुर्व्यवहार के कारण ही हुमायूं को अपने भाइयों से अलग होना पड़ा था। वे लोग कहते थे कि यदि उन्हें कुछ सेना मिल जाए तो वे क़न्धार जीतकर शाह को समर्पित कर देंगे। क़न्धार प्राप्त करने का स्वप्न शाह के लिए आकर्षक था। कुछ किज़िलबाश तथा तुर्कमान लोगों ने, जो कदाचित् कामरान द्वारा धन प्राप्त कर उसके पक्ष में शाह को भड़काना चाहते थे, शाह को यह विश्वास दिलाया कि यदि वह हुमायूं की सहायता करेगा तो वह भी अपने पिता बाबर की ही तरह ईरानी सेना को नष्ट कर देगा, जैसे शाह इस्माईल सफ़वी से सहायता पाकर बाबर ने बेग वज़ीर तथा १२,००० अश्वारोहियों को, जो उसकी सहायता के लिए दिये गये थे, नष्ट कर दिया था।[२३]

गुजरात अभियान में सफलता प्राप्त करने के पश्चात् हुमायूं ने १२ उत्तम बाणों पर अपना नाम तथा ११ साधारण तीरों पर शाह तहमास्प का नाम लिखा था। इस तरह उसने सफ़वी शासक को हीन स्थान दिया था। शाह ने अब हुमायूं से ऐसा करने का कारण पूछा। हुमायूं ने इसका उत्तर दिया कि हिन्दुस्तान का क्षेत्रफल सफ़वी शासक के राज्य से बड़ा है। शाह ने कहा कि यह अभिमान का फल है कि हुमायूं एक साधारण व्यक्ति से पराजित होकर इस अवस्था को प्राप्त हुआ है। हुमायूं ने इसका उत्तर दिया कि यह सब ईश्वर की लीला है। इसके अतिरिक्त एक और मनोरंजक घटना हुई। फ़िरिश्ता लिखता है कि बातचीत में एक दिन शाह ने हुमायूं से उसकी पराजय का कारण पूछा। हुमायूं ने इसे अपने भाइयों के विरोध का परिणाम बताया। शाह ने कहा, "आपका अपने भाइयों के प्रति व्यवहार ठीक नहीं था।" उसी समय भोजन तैयार था। बहराम मिर्ज़ा नौकर की तरह सुराही लिये हाथ धुलाने के लिए खड़ा था। शाह ने उसकी तरफ देखकर कहा कि भाइयों के साथ ऐसा व्यवहार होना चाहिए। बहराम मिर्ज़ा इससे नाराज़ हुआ तथा उसने अपने साथियों को डरा दिया कि हुमायूं की बातों से रुष्ट होकर शाह उन्हें मार डालेगा।[२४]

[२२] हुमायूंनामा बेवरिज, पृ. १७३-७४; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १००,१०५।

[२३] बाबरनामा, बेवरिज पृ. ३६१, जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १०१।

[२४] फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १५५-५६; निज़ामुद्दीन (तबक़ाते अकबरी, २, पृ. ९९) भी इसका समर्थन करता है यद्यपि उसका वर्णन संक्षिप्त है। बदायूनी (मुन्तख़बुत्तवारीख, पृ. ४४४) के अनुसार हुमायूं के अपने

इन कारणों के अतिरिक्त वास्तविक कारण राजनीतिक तथा धार्मिक थे। शिआ और सुन्नी सम्प्रदायों में उस युग में वैमनस्य तथा संघर्ष था। ईरान का शाह तहमास्प एक कट्टर शिआ था और वह शिआ धर्म फैलाना चाहता था। हुमायूं सुन्नी था और उसके अधिकतर अनुयायी भी सुन्नी थे। इस परिस्थिति में दोनों शासकों में धार्मिक कारणों से मतभेद स्वाभाविक था। शाह के बैराम ख़ां तथा हुमायूं के साथ के व्यवहार से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। धार्मिक कारणों के अतिरिक्त राजनीतिक कारण भी थे। मुग़ल तथा सफ़वी राज्यों में प्रतिस्पर्धा थी। बाबर को शाह इस्माईल ने सहायता दी थी किन्तु उसने अपने वादे पूरे नहीं किये थे। बदायूनी तथा फ़िरिश्ता दोनों वंशों की प्रतिस्पर्धा का उल्लेख करते हैं।

दोनों शासकों में समझौता

दो महीने तक दोनों शासकों में कोई सम्बन्ध नहीं रहा। ऐसा कहा जाता है कि शाह तहमास्प हुमायूं को मार डालना चाहता था किन्तु उसकी बहन सुल्तान बेग़म[२५] ने शाह को समझाया कि ऐसा करना ठीक नहीं है और एक शरणार्थी सम्राट की सहायता करना धर्म है; यदि शाह सहायता नहीं कर सकते तो उन्हें जाने दें। इसके अतिरिक्त मन्त्री काज़ी जहां कज़वीनी तथा नूरुद्दीन हकीम ने भी मित्रता कराने में सहायता की।[२६]

शाह ने अपनी बहन से पूछा कि क्या हुमायूं शिआ मत स्वीकार कर सकता है तथा भारत में उसका प्रचार करेगा? यदि वह इसे स्वीकार कर ले तो शाह उसकी सहायता करेगा। सुल्तान बेग़म ने हुमायूं से इसके विषय में बातचीत की। हुमायूं ने उत्तर दिया कि वह जन्म से मुहम्मद साहब के वंश के ही प्रति निष्ठावान रहा है। चग़ताई अमीरों तथा कामरान के विरोध का एक कारण यह भी था। सुल्तान बेग़म ने शाह को हुमायूं की इस बात की सूचना दी तथा हुमायूं द्वारा

भाइयों को अपनी पराजय का कारण बताने से बहराम नाराज हुआ तथा उसका विरोध करने लगा। उसने बाबर की सहायता के दुष्परिणाम का भी हवाला दिया। अबुल फ़ज़ल (अकबरनामा १, पृ. २१६-१७) ने भी लिखा है कि शाह ने हुमायूं के दुर्भाग्य का कारण उसके भाइयों को बताया।

२५ सुल्तान बेगम बड़ी बुद्धिमती थी। वह राज्य के शासन में परामर्श देती थी। वह परदा नहीं करती थी तथा अपने भाई के साथ शिकार को जाती थी।

२६ फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १५६, तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ९९-१००।

लिखी गयी एक रुबाई पढ़ी जिसमें हुमायूं ने अपने को 'नादे अली' का सुमिरन करने वाला कहा था।[२७] शाह इससे कुछ प्रसन्न हुआ। उसने बैरम खां से अकेले में बातचीत की तथा अन्त में हुमायूं को सहायता देने का निश्चय कर लिया।

सहायता की शर्तों में निश्चय हुआ कि शाह हुमायूं को १२,००० अश्वारोही सैनिक देगा। यह सेना हुमायूं को ज़मीनदावर, क़न्धार, काबुल तथा ग़ज़नी विजय करने में सहायता देगी।[२८] सेना के साथ शाह का बच्चा राजकुमार मुराद भी जाएगा। शाह को इस सहायता के लिए क़न्धार प्राप्त होगा जो हुमायूं राजकुमार मुराद को समर्पित कर देगा। हुमायूं शाह की भतीजी (शाह की बहन तथा मासूम बेग की पुत्री) से विवाह करेगा।[२९] शाह ने कुमक की सूची हुमायूं को दी। उसने अपने पुत्र सुल्तान मुहम्मद मिर्ज़ा को खुरासान से आवश्यक सहायता देने का आदेश दिया। शाह ने हुमायूं को ३००० तुमान नकद तथा घोड़े, ऊंट, ईरानी कपड़े, राजसी तम्बू इत्यादि वस्तुएं दीं जिनका मूल्य लगभग २०,००० तुमान था।[३०] निश्चित हुआ कि हुमायूं की सहायता के लिए दी गयी सेना सीस्तान में उसकी प्रतीक्षा करेगी।

पुनः मित्रता हो जाने के पश्चात् एक दावत हुई तथा जलसे हुए। तीन दिनों तक जश्न होता रहा।

शाह से विदाई

जश्न तथा दावतों के पश्चात् दूसरे दिन प्रातः हुमायूं शाह से मिलने गया। तीन तह किये हुए एक छोटे कालीन पर शाह बैठा हुआ था। हुमायूं के लिए

२७ वही, १, पृ. १५६, नादे अली का जप शिआ करते हैं। इसमें हज़रत अली से सहायता की प्रार्थना रहती है।

२८ अकबरनामा, १, पृ. २३९ तथा जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १०६ के अनुसार १२,००० अश्वारोही। अबुल फ़ज़ल, अकबरनामा, १, पृ. २१८-१९ में इस कुमक में नियुक्त २६ प्रमुख व्यक्तियों के नाम का उल्लेख है। बायज़ीद पृ. ३५-३६ ने १८ के नाम दिये हैं। निज़ामुद्दीन अहमद तथा फ़िरिश्ता (तबकाते अकबरी, डे, २ पृ. ४४५; फ़िरिश्ता ब्रिग्स, २, पृ. १५६ में १०,००० है। बदायूनी भी १०,००० लिखता है यद्यपि एक हस्तलिखित प्रति में १२,००० हैं।

२९ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ११०। कदाचित् यह विवाह सम्पन्न नहीं हुआ।

३० तुमान एक सिक्का था जो मंगोल, ईरानियों और तुर्कों द्वारा प्रयोग किया जाता था। एक तुमान १५½ डालर के बराबर था। इसकी विवेचना के लिए देखिए, ईश्वरी प्रसाद हुमायूं, पृ. २७७, नोट २।

उस पर बैठने का स्थान नहीं था। शाह वैसे ही बैठा रहा। कोई स्थान न देखकर हुमायूं ज़मीन पर बैठने में संकोच कर रहा था। सौभाग्यवश वहां हाज़ी मुहम्मद कुश्का नामक मुग़ल उपस्थित था। परिस्थिति देखकर उसने सूझ से काम लिया तथा उसने अपना निषंग (तूणीर, तरकस) फाड़कर जमीन पर बिछा दिया जिस पर हुमायूं बैठा।[३१] शाह का यह व्यवहार आश्चर्य में डालने वाला है। एक तरफ स्वागत का समारोह तथा दूसरी तरफ साधारण शिष्टता भी न प्रदर्शित करना, एक पहेली प्रतीत होती है।

दोनों शासक तख्ते सुलेमान से (जहां वे ठहरे थे) आगे बढ़कर आठ मील पर रुके। यहां शाह ने हुमायूं के स्वागत में पुनः एक दावत दी। इसमें हिन्दुस्तानी भोजन भी बना। शाह ने चावल (खुश्का) दाल के साथ बहुत पसन्द किया तथा उसने इसकी प्रशंसा की।[३२] यहां से दोनों शासक मियाना आये। विदा का अवसर आया। वर्षा हो रही थी। औपचारिकता के अनुसार शाह दो सेब और चाकू लेकर खड़ा हो गया और कहा, "हुमायूं बादशाह, आपसे विदा लेता हूँ, इसे ले लें।" हुमायूं ने अन्तिम उपहार स्वीकार किया। शाह ने फातेहा पढ़ा और दोनों विदा हुए।

क्या हुमायूं ने शिआ मत स्वीकार किया ?

हुमायूं के ईरान निवास की घटनाओं का ज्ञान बहुत स्पष्ट नहीं है। मुग़ल इतिहासकार, विशेषतया अबुल फ़ज़ल, इस बात को ध्यान में रखते हुए भी कि हुमायूं शरणार्थी के रूप में ईरान आया हुआ था, किसी ऐसी बात का वर्णन नहीं करना चाहते थे जिससे मुग़ल वंश की हीनता प्रदर्शित हो। इसीलिए, हुमायूं के शिआ मत स्वीकार करने अथवा शाह की आज्ञाओं को विवशता में स्वीकार करने के विषय में वे मौन हैं। इस कारण यह निश्चय करना कठिन है कि हुमायूं ने शिआ मत स्वीकार किया अथवा नहीं फिर भी अन्य इतिहासकारों तथा घटनाओं से हम उसकी वास्तविक स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं।

जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है, हुमायूं ने शिआ टोपी पहनी, शिओं जैसे बाल कटवाये तथा काजी जहां के प्रभाव से अथवा शाह के क्रोध के भय से उन तीनों पर्चों पर हस्ताक्षर कर दिये जो शिआ धर्म के सिद्धान्तों से सम्बन्धित थे। कट्टर सुन्नी मुल्ला बदायूनी का वर्णन इस विषय में उल्लेखनीय

[३१] जौहर-स्टीवर्ट, पृ. १०७।
[३२] वही पृ. १०८।

है। वह लिखता है कि दोनों सम्राटों में पुनः मेल हो जाने के पश्चात् पुनः शिकार तथा जश्न का दौर प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात् शाह ने हुमायूं से शिआ मत स्वीकार करने तथा तबर्रा (इस धर्म के बाद के अनुयायी जो कुछ सम्मानित सहाबा के विरुद्ध कहते हैं) कहने के लिए आग्रह किया। हुमायूं ने वादविवाद के बाद एक कागज पर यह सब लिखकर लाने को कहा। वे लोग अपने समस्त धार्मिक विश्वासों को लिखकर लाये। बादशाह ने उन्हें पढ़ा तथा १२ इमामों का उल्लेख अपने खुत्बे में किया।[३३] ईरान में हुमायूं ने शिआ धर्म से सम्बन्धित स्थानों तथा हज़रत अली के मज़ार की यात्रा की। इस तरह बाहर से उसने शिआ मत स्वीकार करने जैसा व्यवहार किया।[३४] सम्भव है इन कार्यों में उसकी स्त्री हमीदा बानो तथा बैराम ख़ां का प्रभाव पड़ा हो।

हुमायूं उदार व्यक्ति था। अपनी उदारता के कारण वह शिआ तथा सुन्नियों में वैसा भेद नहीं रखता था, जैसे ईरान का शाह रखता था। ईरान में रहते हुए हुमायूं ने बहुत-से शिआ स्थानों की यात्रा की और शिआ मत के प्रति सहृदयता का भी परिचय दिया। भारत लौटने के पश्चात् उसने कई ऐसे अफसर नियुक्त किये जो शिआ थे। उसकी कविताओं से भी अनुमान होता है कि उसके मन में अली तथा शिआओं के सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा थी। भारत विजय के पश्चात् बहुत शीघ्र उसकी मृत्यु हो गयी और उसके शिआ मत प्रदर्शन का पूर्ण प्रभाव हमारे सम्मुख नहीं आता।

हुमायूं ईरान में प्रवेश करने को तैयार नहीं था। वह जानता था कि वह एक बड़े साम्राज्य का शासक रह चुका है। वह स्वयं ईरान के शाह को मुग़ल सम्राट से छोटा समझता था। हीनावस्था में एक शरणार्थी के रूप में वहां जाने में उसे लज्जा का अनुभव हो रहा था। वह भी जानता था कि ईरान शिआ

३३ मुन्तखबुत्तवारीख़, १, पृ. ४४५।

३४ "Humayun acted as any other man would have done in similar circumstances. He adopted the Shia creed under duress and protested to the Shah that compulsion in religious matters was forbidden by the Prophet of Islam." ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २३८।

"Not only Humayun was converted to the Shiah faith but, it seems, his followers also were converted." रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ३६।

राज्य है। शाह की कट्टरता का भी उसे ज्ञान था। बाबर को शिआ मत किस स्थिति में स्वीकार करना पड़ा था यह भी वह भूला नहीं था। शिआ मत स्वीकार करने के कारण ही बाबर को अन्तिम बार समरकन्द खोना पड़ा था।[३५] उसके अधिकतर अमीर सुन्नी थे। शिआ होने पर उनकी सहायता प्राप्त करना कठिन था। फिर काबुल, खुरासान तथा अफ़ग़ानिस्तान के अधिकतर मुसलमान सुन्नी थे, उन पर शिआ मत स्वीकार करने के पश्चात् शासन करना कठिन था। इन सब कठिनाइयों को जानते हुए भी उसे विवश होकर ईरान जाना पड़ा और उसे वही करना पड़ा जिसका उसको भय था। प्रारम्भ में उसने विरोध किया किन्तु अन्त में उसने समर्पण कर दिया।

हुमायूं का धर्म परिवर्तन सच्चे दिल से नहीं था। वह राजनीतिक सुविधा तथा परिस्थितियों का परिणाम था। उसने इसे वास्तविक धर्म परिवर्तन की तरह नहीं लिया। बदायूनी लिखता है कि एक बार शेख हमीद ने हुमायूं से शिकायत की कि उसके सैनिकों के अधिकतर नामों में अली रहता है।[३६] इसका अर्थ था कि वे सब शिआ मत से प्रभावित थे। हुमायूं इससे बहुत नाराज़ हुआ तथा उसने क्रोध से कहा कि उसके पितामह का ही नाम उमर शेख़ था। इससे स्पष्ट है कि ईरान से वापस आने के पश्चात् वह अपने को शिआ धर्मावलम्बी स्वीकार करने को तैयार नहीं था। मृत्यु के समय वह पूर्ण रूप से सुन्नी था या शिआ, यह बताना कठिन है।[३७] पर इतना निश्चय है कि वह समकालीन कट्टरता की तुलना में कहीं उदार था।

३५ सन् १५१० में ईरान के शाह ने शैबानी खां ऊजबेक को पराजित कर दिया। शैबानी मारा गया। शाह इस्माईल ने बाबर की विधवा बहन खानज़ादा बेगम को, जो शैबानी से विवाहित थी, बाबर के पास वापस भेज दिया। शाह ने बाबर को समरकन्द इस शर्त पर दिया कि वह शिआ मत का प्रसार करेगा, शाह के नाम से ख़ुत्बा पढ़ा जाएगा और सिक्का चलेगा। अक्तूबर १५११ में बाबर ने समरकन्द में प्रवेश किया। वहां के निवासियों को आशा थी कि समरकन्द पर अधिकार हो जाने पर वह शिआ मत के चिह्नों को समाप्त कर देगा। बाबर के ऐसा न करने पर जनता तथा अमीर विद्रोही हुए। बाबर को वहां से भागना पड़ा। ईरानी सेना पराजित हुई तथा उनका नेता नज्म मारा गया। ईरानी इतिहासकार अपनी सेना के पराजय का उत्तरदायित्व बाबर पर डालते हैं। देखिए विलियम्स, ऐन एम्पायर बिल्डर, पृ. १००-१०६।

३६ मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६८।

३७ "We cannot say whether he formally abandoned the

ईरान निवास के समय हुमायूं के प्रमुख सहयोगी

ईरान में बैराम बेग ने हुमायूं की बड़ी सहायता की। उसी ने हुमायूं को ईरान जाने के लिए परामर्श दिया था। बैराम स्वयं शिआ था और उसके पूर्वज ईरान के शासक रह चुके थे। ईरान में बैराम अपने सम्बन्धियों से मिला किन्तु उसके लिए यह गौरव की बात है कि वह हुमायूं के साथ रहा। शाह तहमास्प बैराम को अपनी सेवा में रखना चाहता था और उसने उसे दियारबक्र तथा अज़रबाइजान की जागीर भी देने का वायदा किया, किन्तु बैराम ने इसे स्वीकार नहीं किया। यही नहीं, शिआ होते हुए भी उसने ईरानी टोपी पहनने से इनकार कर दिया और ईरान छोड़कर हुमायूं के साथ-साथ रहा। वह हुमायूं का सेवक पहले था शिआ बाद में। हुमायूं के दूत तथा परामर्शदाता के रूप में बैराम ईरान में उसके लिए बहुत बड़ी शक्ति सिद्ध हुआ। ईरान के शाह बहराम मिर्ज़ा ने जब हुमायूं के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा तो उसके विरुद्ध बैराम ने हुमायूं को शान्ति से काम लेने के लिए उपयुक्त राय दी। क़न्धार विजय तथा इसके पश्चात् भी उसकी स्वामिभक्ति से हुमायूं को बल मिला। बैराम के अतिरिक्त हुमायूं की पत्नी हमीदा बानो ने भी उसकी बड़ी सहायता की। उसने शाह की बहिन को अपने स्वभाव तथा बातचीत से प्रभावित कर लिया। जैसा वर्णन किया जा चुका है, शाह की बहिन ही ने उसके क्रोध को शान्त कर उसे हुमायूं की सहायता करने के लिए तत्पर किया।

ईरान से विदाई

शाह से विदा लेकर हुमायूं बहराम मिर्ज़ा के साथ तबरेज़ की तरफ रवाना हुआ। सियान तक दोनों साथ आये। विदा होते समय हुमायूं ने एक हीरे की अंगूठी बहराम को दी जो हुमायूं की माता का स्मृति चिह्न था। शुभ कामनाओं के साथ दोनों विदा हुए।

तबरेज़ के गवर्नर ने नगर के बाहर जाकर हुमायूं का स्वागत किया। शाह तहमास्प के निर्देश के अनुसार पूरा नगर हुमायूं के स्वागत के लिए सजाया गया था। यहां हुमायूं की मुलाक़ात अब्दुस्समद नामक चित्रकार से हुई।[३८]

Shiah creed and died as a Sunni. Apparently therefore, it seems that Humayun died as a Shiah, yet this much can be said that he was never a sincere convert to the Shiah faith." रे, हुमायूं इत पर्सिया, पृ. ६३।

[३८] अकबरनामा, १, पृ. २२०।

कुछ दिन पश्चात् यह हुमायूं की सेवा में आ गया और मुग़ल चित्रकला का जन्मदाता बना। हुमायूं ने उसको अपनी सेवा में आमन्त्रित किया था, किन्तु उस समय वह इसके लिए तैयार नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त इतिहासकार बायज़ीद भी यहीं से हुमायूं के साथ हो गया। तबरेज़ में, जौहर के अनुसार, हुमायूं पांच दिन रहा। यहां उसे तबरेज़ के प्रसिद्ध खेल—भेड़ियों की दौड़ तथा पैदल चौग़ान—दिखाये गये। हुमायूं ने यहां प्राचीन काल के अवशेषों तथा नगर के प्रमुख भवनों की सैर की।

तबरेज़ से चार दिन की यात्रा के पश्चात् हुमायूं अदर्बेल के निकट पहुँचा। अदर्बेल के गवर्नर तथा प्रमुख अमीरों ने हुमायूं का स्वागत किया। यहां एक सप्ताह रहा। यहां उसने सफ़वी वंश के संस्थापक शेख सफ़ीउद्दीन तथा शाह इस्माईल की मज़ारों का दर्शन किया तथा यहां उसने कुछ उपहार भी दिये।[३९] पूर्व निश्चय के अनुसार वह यहां शाह की भतीजी से विवाह करना चाहता था जो कदाचित् सम्पन्न न हो सका।[४०] यहां से हुमायूं लाल सागर[४१] की तरफ रवाना हुआ किन्तु कुहरे के कारण वह पुनः अदर्बेल लौट आया और यहां से कज़वीन की तरफ लौट गया।

हुमायूं के कज़वीन पहुँचने के समय ही शाह तहमास्प भी वहां पहुँचा। यह सुनकर कि हुमायूं भी वहीं था उसे आश्चर्य हुआ। उसने आज्ञा दी कि हुमायूं फौरन कज़वीन से चला जाए। इस तरह हुमायूं को विवश होकर शाह की आज्ञा से कज़वीन छोड़ना पड़ा।[४२]

यहां से हुमायूं दर्स होता हुआ सब्ज़वार पहुँचा। दर्स में हमीदा बानो ने एक

३९ मोरियर अपनी पुस्तक 'ए जर्नी थ्रू पर्सिया, आरमीनिया एण्ड एशिया माइनर टू कान्सटेन्टीनोपल' (भाग २, पृ. २५४-५५) में लिखता है कि शाह इस्माईल की कब्र पर हुमायूं द्वारा दी गयी बहुत ही सुन्दर हाथी दांत, मोज़ेक, कछुए के खोल इत्यादि से बनी तह चढ़ी हुई एक सुनहली सुराही है। रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ४२, नोट ५ द्वारा उद्धत।

४० जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ११०; अर्सकिन, २, पृ. २९५; रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ४२।

४१ जौहर इसे 'दरियाए क़ुलज़ुम' लिखता है जिसका अर्थ लाल सागर है। कदाचित् उसका अर्थ कैस्पियन सागर से है, क्योंकि लाल सागर बहुत दूर है। जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ११०।

४२ यह हुमायूं की दूसरी कज़वीन यात्रा थी। इसका वर्णन केवल जौहर तथा मासीरे रहीमी में मिलता है। रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ४४।

पुत्री को जन्म दिया।[४३] यहां से हुमायूं मशहद पहुँचा। यहां के गवर्नर तथा अमीरों ने हुमायूं का स्वागत किया। हुमायूं ने इमाम अली तथा अन्य मकबरों की पुनः यात्रा की। मशहद से वह जाम (२६ दिसम्बर १५४४) होता हुआ सीस्तान पहुँचा। यहां लगभग १५ दिनों तक वह रुका रहा। यहां हुमायूं ने शाहज़ादा मुराद के नेतृत्व में मुग़ल सम्राट की सहायता के लिए दी गयी ईरानी सेना का निरीक्षण किया। इस सेना में १२००० घुड़सवार तथा शाह के अंगरक्षक दल के ३०० सैनिक भी थे। शाहज़ादा मुराद अभी बच्चा था। इस तरह वास्तविक रूप में ईरानी सेना का अभिभावक बुदाग़ ख़ां था।

क़न्धार विजय

सीस्तान से हुमायूं ने ईरान के शाह के साम्राज्य को छोड़कर कामरान के राज्य में प्रवेश किया। हुमायूं ने ईरानी सेनानायकों से बुस्त दुर्ग पर अधिकार करने के लिए कहा किन्तु उन्होंने यह कहकर प्रारम्भ में अस्वीकार कर दिया कि यह शाह की आज्ञा के विरुद्ध है। हुमायूं ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह इस विषय में शाह से आज्ञा ले लेगा। यहां से हुमायूं ने गरमसीर में प्रवेश किया। यहां मीर अब्दुल हई ने लकी का दुर्ग हुमायूं को समर्पित कर दिया।

ईरानी सेना ने बुस्त के दुर्ग को घेरा। यह दुर्ग कामरान के अधिकार में था। दुर्ग के रक्षकों ने युद्ध किया किन्तु वे पराजित हुए और उन्होंने दुर्ग समर्पित कर दिया।[४३]

इसी समय सूचना मिली कि मिर्ज़ा अस्करी क़न्धार से ख़जाने के साथ भागना चाहता है। यह समाचार सुनकर हुमायूं ने अपने विश्वसनीय सेवकों के साथ ५००० ईरानी सैनिकों को क़न्धार इस आशय से भेजा कि वे अस्करी को कोष हटाने से रोकें।[४४] हुमायूं के आक्रमण की सूचना पाकर अस्करी ने कामरान को सहायता के लिए लिखा। कामरान ने कुछ सेना क़ासिम हुसेन के साथ भेजी तथा उसने यह आदेश दिया कि हुमायूं का सामना किया जाए और दुर्ग का समर्पण न किया जाए।

बालक अकबर इस समय क़न्धार में था। कामरान ने क़ुरबान करावल बेगी को काबुल से अकबर को बुलाने के लिए भेजा। अस्करी के कुछ अमीरों ने परामर्श दिया कि बालक को हुमायूं को समर्पित कर दिया जाए, किन्तु

४३ बायज़ीद, पृ. ३९-४०।
४४ अकबरनामा, १, पृ. २२८; बायजीद, पृ. ४०।

अस्करी ने अकबर को काबुल भेजना ही ठीक समझा और शीतऋतु, बरफ तथा वर्षा के बावजूद उन्हें काबुल भेज दिया। बालक के साथ उसकी धाय, माहम अनगा, जीजी अनगा, अतगा ख़ां तथा अन्य अमीर भी भेजे गये।[४५]

क़न्धार के निकट मिर्ज़ा अस्करी के सैनिकों तथा हुमायूं द्वारा भेजी गयी कुमुक में युद्ध हुआ जिसमें बहुत से ईरानी मारे गये। किन्तु ईरानियों ने अस्करी तथा उसकी सेना को दुर्ग में शरण लेने के लिए विवश कर दिया। २१ मार्च १५४५ के लगभग हुमायूं भी दुर्ग के निकट जा पहुंचा।

क़न्धार का दुर्ग

मध्य युग में क़न्धार का दुर्ग अपनी स्थिति तथा शक्ति के कारण बहुत ही महत्त्वपूर्ण दुर्ग समझा जाता था। भारत से अफ़ग़ानिस्तान और ईरान के सम्बन्धों के बीच एक महत्त्वपूर्ण कड़ी था।[४६]

ईरान के शाह तथा मुग़ल सम्राटों में क़न्धार के लिए बराबर संघर्ष होता रहता था। बाबर की मृत्यु के पश्चात् साम मिर्ज़ा ने कई बार क़न्धार पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली थी।[४७] इसके पश्चात् दोनों देशों का कूटनीतिक सम्पर्क स्थगित रहा। हुमायूं के ईरान में प्रवेश करने के पश्चात् क़न्धार के दुर्ग को प्राप्त करने के आश्वासन से शाह ने उसे सहायता देना स्वीकार किया था।

बैराम ख़ां की काबुल यात्रा

क़न्धार पर शक्ति द्वारा अधिकार करने की कठिनाई का अनुभव कर हुमायूं ने बैराम ख़ां को कामरान के पास दूत बनाकर काबुल भेजने का निश्चय

४५ अकबरनामा, १, पृ. २२४-२५।

४३ अबुल फ़ज़ल (अकबरनामा, १, पृ. २३१) लिखता है कि क़न्धार का किला मिट्टी का बना हुआ था जिससे उसका तोड़ना कठिन था तथा उसकी दीवार की चौड़ाई साठ गज थी। साठ गज कदाचित् भूल है। अबुल फ़ज़ल ने 'शस्त' (६०) नहीं बल्कि 'शश' (६) लिखा होगा। "In an age when Kabul was part of Delhi Empire Qandhar was our indispensable first line of defence." सरकार, शार्ट हिस्ट्री ऑव औरंगजेब, पृ. २१-२२।

४७ इस्लामिक कल्चर, (१९३४) पृ. ४६४ इस पुस्तक के पिछले पृष्ठों में हुमायूं के शासन के प्रारम्भ में क़न्धार पर ईरानी आक्रमण का वर्णन किया जा चुका है।

किया।[४८] यह कूटनीतिक यात्रा थी। बैराम का लक्ष्य केवल कामरान से ही मिलना नहीं था वरन् अस्करी, हिन्दाल तथा अन्य मुग़ल अमीरों से मिलकर उन्हें हुमायूं के पक्ष में लाने का प्रयत्न करना था। इसके अतिरिक्त कामरान की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक था। बालक अकबर के विषय में भी हमीदा बानो तथा हुमायूं को उत्कंठा थी। इस यात्रा का उद्देश्य उसके विषय में भी पता लगाना था। बैराम ख़ां अपने साथ कामरान तथा सुलेमान मिर्ज़ा के नाम शाह का पत्र भी ले गया था।

काबुल पहुँचने पर कामरान ने बैराम का स्वागत किया किन्तु उस पर दृष्टि रखी गयी। तीन दिन पश्चात् बैराम से कामरान की मुलाकात हुई।[४९] दोनों में चार घंटे तक वार्ता हुई। इसके पश्चात् उसने सुलेमान मिर्ज़ा तथा हिन्दाल से भी मुलाकात की। ये दोनों कामरान के अधिकार में बन्दी के रूप में थे। कामरान ने बैराम को इनसे मिलने की आज्ञा तो दी किन्तु मिलते समय उसने अपना एक विश्वासपात्र व्यक्ति भी साथ कर दिया जिससे कोई गुप्त वार्ता न हो सके। बैराम ने यादगार नासिर मिर्ज़ा से भी मुलाकात की तथा बालक अकबर से मिलकर उसके विषय में जानकारी प्राप्त की। इस तरह प्रमुख व्यक्तियों से मिलकर बैराम क़न्धार वापस आया।

बैराम ख़ां की काबुल यात्रा सफल रही। कामरान को भय हुआ कि इस बार हुमायूं निश्चित ही सफल होगा। उसने सन्धि वार्ता के लिए ख़ानज़ादा बेगम को क़न्धार भेजा तथा हिन्दाल को आज़ाद कर दिया। सुलेमान मिर्ज़ा को भी स्वतन्त्र कर उन्हें बदख़्शां का प्रदेश वापस कर दिया गया।[५०] इस तरह

४८ निज़ामुद्दीन अहमद (तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १०१) तथा बदायूनी (मुन्तख़बुत्तवारीख़ १, पृ. ४४६) के अनुसार बैराम क़न्धार के घेरे के तीन महीने पश्चात् भेजा गया। फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १५७ के अनुसार दुर्ग के ६ महीने के घेरे के बाद भेजा गया।

४९ बायज़ीद पृ. ४४-४७; तबक़ाते अकबरी, २, पृ. १०१-२। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि बैराम को सन्देह था कि कामरान कहीं फ़रमानों को उठकर स्वीकार न करे और बैठा ही रहे। इस कारण वह अपने साथ एक कुरान उपहारस्वरूप भी लेता गया था। कुरान देखकर कामरान सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उठकर सीधा खड़ा हो गया। बैराम ने इसी बीच, जब कामरान खड़ा था, इन फरमानों को प्रस्तुत किया। अकबरनामा, १, पृ. २३०।

५० बायज़ीद, पृ. ४७-४९ ।

कामरान ने निकट के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। हिन्दाल तथा बहुत-से अमीर हुमायूं से जा मिले। सुलेमान मिर्ज़ा तथा यादगार नासिर मिर्ज़ा बदख़्शां चले गये।

इधर कन्धार का अवरोध चलता रहा। हुमायूं ने और भी शक्ति से दुर्ग पर चारों तरफ से आक्रमण आरम्भ कर दिया किन्तु अस्करी ने समर्पण नहीं किया। बैराम खां के काबुल से वापस आने तथा बहुत-से अमीरों के काबुल से भागकर हुमायूं की सेना में आ मिलने से अस्करी और भी निराश हुआ। इसी समय एक रात मुग़लों ने 'दुर्ग चहार-दर' की तरफ एक तोपखाना स्थापित कर लिया। दूसरे दिन प्रातः ईरानी सेना उस तरफ से आक्रमण करने के लिए बढ़ी। इसी बीच अस्करी ने सन्धि के लिए मीर ताहिर को दूत बनाकर भेजा तथा हुमायूं से ख़ानज़ादा बेगम के पहुँचने तक लड़ाई बन्द करने के लिए प्रार्थना की। वास्तव में यह मिर्ज़ा अस्करी की केवल चाल थी। कामरान ने अस्करी को लिखा था कि वह सहायता के लिए आ रहा है, तब तक अस्करी दुर्ग को समर्पित न करे। अस्करी इस तरह समय चाहता था जिससे वह तब तक अपनी शक्ति को संगठित कर ले।

क़न्धार पर अधिकार

इस बीच इतने दिनों तक कन्धार के दुर्ग पर घेरा डाले हुए ईरानी सैनिक थक गये थे और वे ईरान वापस लौट जाना चाहते थे। आक्रमण के समय उन्हें यह आशा थी कि हुमायूं के पहुँचते ही अस्करी, हिन्दाल तथा कामरान के बहुत-से अमीर और सैनिक हुमायूं के पास चले आएंगे और इस तरह उन्हें शीघ्र ही सफलता प्राप्त हो जाएगी। दुर्ग के इतने दिनों के घेरे ने उन्हें निराश कर दिया। इसी समय कामरान के कन्धार आने की सूचना मिली जिससे वे और भी आतंकित हुए।

सौभाग्यवश बैराम खां की कूटनीति के फलस्वरूप बहुत-से प्रमुख अमीर (जैसे उलूग़ मिर्ज़ा, क़ासिम हुसेन सुल्तान इत्यादि) कामरान का साथ छोड़कर हुमायूं के साथ आ गये। कामरान कन्धार की सहायता के हेतु न आ सका। अस्करी के सहयोगी भी उसे त्यागकर जाने लगे। निराश होकर अन्त में अस्करी ने दुर्ग को साढ़े पांच महीने के घेरे के पश्चात समर्पित कर दिया (३ सितम्बर १५४३)।[५१] वह काबुल जाना चाहता था किन्तु हुमायूं ने इसकी आज्ञा नहीं दी।

५१ रे, हुमायूं इन पर्सिया, ५२, नोट ४।

ख़ानज़ादा बेगम दुर्ग से बाहर आयी और उन्होंने मिर्ज़ा अस्करी के लिए हुमायूं से क्षमा मांगी। अस्करी के गले में तलवार लटकाकर उसे हुमायूं के सामने पेश किया गया। अन्य अमीर भी हुमायूं के सामने लाये गये। इस समय अस्करी को उसका मूल पत्र दिखाया गया जो उसने, हुमायूं के मरुभूमि में रहते समय, अपने बलोच सहायकों को लिखा था। अस्करी इससे बहुत ही शरमिन्दा हुआ। हुमायूं ने उसे कुछ दिन के लिए बन्दी बनाने की आज्ञा दी।[५२]

दुर्ग के आत्म-समर्पण के पश्चात् हुमायूं ने ईरानियों को आज्ञा दी कि वे दुर्ग निवासियों को दुर्ग से निकलने के लिए तीन दिन का समय दें और इस बीच उन्हें किसी भी तरह परेशान न किया जाए। क़न्धार पर अधिकार करने के पश्चात् हुमायूं ने दुर्ग को शाहज़ादा मुराद, बुदाग खां तथा उसके साथियों को समर्पित कर दिया और स्वयं उसने चार बाग़ में पड़ाव डाला। प्रारम्भ में दुर्ग में प्राप्त कोष पर हुमायूं ने अपनी तथा बुदाग खां की मुहरें लगा दीं। बाद में उसने कोष शाह के पास भेज दिया। शाह ने प्रसन्न होकर हुमायूं को ९ वस्त्र तथा एक द्रुतगामी खच्चर भेजा। शाह के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए हुमायूं खच्चर पर पांच-छः कदम चढ़कर उतर आया।[५३]

अस्करी के समर्पण के पश्चात् ही ईरानियों तथा हुमायूं में मतभेद प्रारम्भ हो गया। इस सम्बन्ध में तीन बातें प्रमुख थीं दुर्ग, दुर्ग में प्राप्त कोष का वितरण तथा अस्करी का भविष्य। ईरानी चाहते थे कि दुर्ग पर उनका अधिकार हो जाए और कोष को अधिकार में करके तथा अस्करी को बन्दी बनाकर वे शाह के पास भेज दें। हुमायूं ने दुर्ग समर्पित कर दिया तथा कोष भी दे दिया, किन्तु वह अस्करी को समर्पित करने के लिए तैयार नहीं था।

हुमायूं अपने सैनिकों के साथ चारबाग़ में पड़ाव डाले पड़ा था। बुदाग बेग तथा ईरानी सैनिक क़न्धार के दुर्ग में थे। इस बीच कुछ परिस्थितियों तथा कारणों के परिणामस्वरूप हुमायूं ने कन्धार पर अधिकार करने का निश्चय किया। हुमायूं ने बुदाग बेग के पास सूचना भेजी कि वह अस्करी को दुर्ग के अन्दर बन्दी रखना चाहता है। मुग़लों की योजना थी कि अस्करी के दुर्ग में प्रवेश करते समय दुर्ग पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया जाए। प्रमुख मुग़ल अमीर इस योजना के अनुसार निश्चित स्थानों पर नियुक्त कर दिये गये थे। दुर्ग के ईरानियों को सन्देह हो गया और उन्होंने कुछ दिनों तक किसी

[५२] अकबरनामा, १, पृ. २३५-३६।
[५३] रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ५३।

को भी दुर्ग के भीतर नहीं जाने दिया। कुछ हिन्दुस्तानी तथा मुग़ल ऊंटों पर घास तथा ईंधन बेचने के बहाने दुर्ग के अन्दर गये और पुनः लौट आये। एक रात अपने गट्ठरों में हथियार छिपाकर ये लोग दुर्ग के अन्दर प्रवेश कर गये। दरबानों को इन्होंने मार डाला तथा दुर्ग का फाटक खोल दिया। हाजी मुहम्मद तथा उलूग़ मिर्ज़ा मासूर फाटक पर नियुक्त थे। इन लोगों ने पहले प्रवेश किया। बैराम ने गन्दीगान फाटक से प्रवेश किया। ईरानी सैनिक इस अचानक आक्रमण के लिए तैयार नहीं थे। दुर्ग की रक्षा करना असम्भव देखकर बुदाग बेग ने दुर्ग छोड़ दिया तथा ईरानी सेना के साथ अपने देश लौट गया। हमायूं ने क़न्धार पर अधिकार कर बैराम ख़ां को वहां का दुर्गपति नियुक्त किया।[५४] इसके पश्चात् उसने शाह को एक पत्र भेजा जिसमें उसने लिखा कि "बुदाग का व्यवहार ठीक नहीं था, शाहज़ादा मुराद की मृत्यु हो चुकी थी, इस कारण बैराम ख़ां को, जो कि शाह का स्वामिभक्त सेवक है, क़न्धार जागीर के रूप में दिया गया है। शाह ने हमायूं के इस प्रबन्ध को स्वीकार किया।[५५]

क्या हुमायूं ने विश्वासघात किया ?

मुग़ल इतिहासकारों ने हुमायूं के क़न्धार के दुर्ग से ईरानियों को भगाकर अधिकार करने का समर्थन किया है। इसके विपरीत ईरानी इतिहासकारों ने हुमायूं के इस कार्य की निन्दा की है। मुग़ल इतिहासकारों के अनुसार, अभियान में अधिक दिन लग जाने के कारण ईरानी थक गये थे। क़न्धार पर अधिकार करने के बाद बहुत से ईरानी सैनिक हुमायूं से आज्ञा लिये बिना ही वापस लौटकर ईरान चले गये।[५६] शाह के साथ जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार उसे काबुल की विजय तक हुमायूं की सेवा में रहना चाहिए था। ईरानी सैनिकों में हुमायूं

५४ क़न्धार के दुर्ग पर हुमायूं ने पुनः कब अधिकार किया इसकी तिथि समकालीन इतिहासकारों ने नहीं दी है। जौहर लिखता है (स्टीवर्ट पृ. ११५) कि ईरानियों को दुर्ग देने के पश्चात् हुमायूं एक महीने खलीजा बाग़ में रुका रहा। ईरानियों को दुर्ग ७ सितम्बर १५४५ को दिया गया था। अनुमानतः अक्तूबर के दूसरे सप्ताह में उसने क़न्धार पर पुनः अधिकार किया।

५५ अकबरनामा, १, पृ. २४०-४१; बायज़ीद, पृ. ५०-५१; रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ५६-५७।

५६ अकबरनामा, १, पृ. २३८।

की सहायता करने का उत्साह भी नहीं था। बुदाग बेग तथा उसके आदमी क़न्धार की जनता पर अत्याचार कर रहे थे,[५७] जिससे जनता आतंकित थी तथा वे लोग हुमायूं से न्याय की आशा करते थे। शाहज़ादा मुराद की मृत्यु हो गयी थी।[५८] क़न्धार के दुर्ग को छोड़ने से हुमायूं को भय हुआ कि वह तुर्कमानों के हाथ में चला जाएगा। क़न्धार विजय के पश्चात् हुमायूं काबुल पर आक्रमण करना चाहता था। आक्रमण के पूर्व परिवार को किसी सुरक्षित स्थान में रखना आवश्यक था। जाड़ा प्रारम्भ हो गया था जिससे मुग़ल कष्ट में थे। हुमायूं ने बुदाग बेग से कुछ सामान तथा स्त्रियों को रखने के लिए दुर्ग में स्थान की मांग की। बुदाग बेग ने इसे अस्वीकार कर दिया। काबुल अभियान में स्त्रियों को ले जाना उपयुक्त न था। हुमायूं के प्रमुख अमीरों ने इस पर उसे परामर्श दिया कि दुर्ग पर अधिकार कर लेना चाहिए।[५९] जौहर के अनुसार क़न्धार पर पुनः अधिकार का कारण ईरानियों द्वारा अस्करी को बन्दी बनाकर ले जाने की मांग तथा हुमायूं के पड़ाव में आवश्यक सामग्रियों के ले जाने में उत्पन्न की हुई बाधा थी।[६०]

मुग़ल इतिहासकारों के विरुद्ध ईरानी इतिहासकार उपर्युक्त दलीलों को अस्वीकार करते हैं। वे हुमायूं तथा मुग़लों को प्रतिज्ञा तोड़ने के कारण विश्वासघाती समझते हैं। उनका मत है कि शाह के पुत्र मुराद की मृत्यु भी कन्धार पर अधिकार होने के पूर्व हो (दुर्ग के अवरोध के समय) हो गयी थी। इस कारण यह कहना कि राजकुमार की मृत्यु के कारण उस पर अधिकार

५७ वही १, पृ. २३८-३९; मुन्तख़बुत्तवारीख़ १, पृ. ४४७-४८।

५८ ईरानी इतिहासकारों के अनुसार शाह के पुत्र की मृत्यु क़न्धार अभियान के पूर्व ही हो गयी थी (अब्दुर्रहीम, मुग़ल रिलेशन्स विद पर्सिया, इस्लामिक कल्चर, १९३४, पृ. ४६४-६५)। इसके विपरीत मुग़ल इतिहासकारों के अनुसार बुदाग़ बेग के क़न्धार पर अधिकार करने के पश्चात् उसकी मृत्यु हुई। फिरिश्ता के अनुसार (ब्रिग्स, २, पृ. १५९) क़न्धार ईरानियों को समर्पित करने के पश्चात् हुमायूं काबुल पर आक्रमण करने को रवाना हुआ। मार्ग में मुराद की मृत्यु सुनकर वह लौट आया और बुदाग़ बेग द्वारा दुर्ग में प्रवेश न करने देने पर उसने दुर्ग का पुनः अवरोध किया।

५९ अकबरनामा, १, पृ. २३९-४०; बायज़ीद पृ. ५०। बदायूनी लिखता है कि शीत ऋतु की ठंड से बचने के लिए उसने दुर्ग में स्थान मांगा (मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ० ४४७)।

६० जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ११५।

किया गया, गलत है। मुग़ल कामरान के आक्रमण के लिए एक स्थान चाहते थे। इस कारण बैराम ख़ां के कहने पर उन्होंने धोखे से दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त दुर्ग के अन्दर कुछ क़िजीलबाश दुर्ग के सुन्नियों द्वारा मार डाले गये थे।[६१] ईरानी सेना क़न्धार से वापस नहीं गयी, बल्कि उसकी सहायता से ही बाद में काबुल जीता गया। काबुल की विजय के पश्चात् शाह ने हुमायूं को काबुल विजय पर बधाई देने के लिए तथा उससे क़न्धार वापस मांगने के लिए दूत भेजा किन्तु हुमायूं ने उसे झूठे आश्वासन देकर लौटा दिया।

दोनों पक्षों के कथनों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परिस्थितियों की विषमता और अन्य कारणों से दोनों दलों में गलतफहमी हो गयी। मुग़ल तथा ईरानियों का सहयोग दोनों के स्वार्थ के कारण था। फिर भी दोनों में शत्रुता के कुछ मूल कारण थे। दोनों में धार्मिक मतभेद था। अल्पकालीन सहयोग से दोनों का यह भेद गया नहीं तथा पारस्परिक धार्मिक संघर्ष होते रहे।[६२] क़न्धार के दुर्ग के अधिकतर निवासी सुन्नी थे, ईरानियों द्वारा उन पर अत्याचार की सूचना भी मुग़लों को प्राप्त हुई। इस तरह दोनों दलों में धार्मिक उत्तेजना जागृत हुई। यह मतभेद अस्करी को बन्दी बनाकर शाह के पास न भेजने से और भी बढ़ गया। ईरानी एक तरफ तो सहायक होने के कारण मुग़लों से अपने को उच्च समझते थे,[६३] दूसरी तरफ उन्हें बराबर यह भय लगा रहता था कि कहीं हुमायूं भी बाबर की तरह धोखा न दे। इस तरह दोनों दलों में परस्पर अविश्वास बढ़ा तथा वे एक दूसरे से सतर्क रहने लगे। हुमायूं तथा शाह में कोई लिखित सन्धि नहीं हुई थी। सम्भव है सभी ईरानी सैनिकों को इसका पूर्ण ज्ञान न हो। इस बीच मुराद की मृत्यु, बुदाग बेग के मुगलों के परिवारों को दुर्ग में शरण देने से इनकार करने, हुमायूं के सहयोगियों के किसी सुरक्षित स्थान की आवश्यकता पर जोर देने तथा शीत ऋतु की भयंकरता आदि से विवश होकर हुमायूं को क़न्धार पर अधिकार करना पड़ा।[६४]

६१ इस्लामिक कल्चर, १९३४, पृ. ४६५।

६२ बदायूनी (मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४४८) लिखता है कि एक दिन एक ईरानी सैनिक ने प्रथम तीन ख़लीफ़ाओं के विरुद्ध 'तबर्रा' कहा जिससे यादगार नासिर मिर्ज़ा बहुत ही नाराज़ हुआ और उसने बाण से उस व्यक्ति को मार डाला।

६३ फ़िरिश्ता के अनुसार ईरानी मुग़लों के अधीन रहने से असन्तुष्ट थे। ब्रिग्स, २, पृ० १५८।

६४ बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. १४२।

न्याय की दृष्टि से हुमायूं का क़न्धार पर अधिकार उचित नहीं कहा जा सकता। हुमायूं ने शाह से इस शर्त पर सहायता ली कि वह क़न्धार विजय करके ईरानियों को दे देगा। उसने ऐसा किया भी। यदि ईरानी सैनिक जनता पर अत्याचार करते थे, अथवा ईरानी सेनापतियों ने हुमायूं को जाड़े में शरण देने से इनकार किया था, या शर्त के अनुसार काबुल, ग़ज़नी और बदख़्शां पर अधिकार करने में हुमायूं की सहायता नहीं की, तो हुमायूं के लिए यह उचित था कि वह शाह को इसकी सूचना देता और उसके उत्तर के पश्चात् कार्य करता। हुमायूं ने ऐसा कुछ भी नहीं किया और शाह को सूचित किये बिना ही उसने क़न्धार के दुर्ग पर अधिकार कर लिया।[६५]

न्याय की दृष्टि से जो भी कहा जाए, व्यावहारिकता की दृष्टि से हुमायूं ने बुद्धिमानी का कार्य किया। उसने बैरम खां को क़न्धार का दुर्ग दे दिया और शाह को लिखा कि उसने केवल शाह के अधिकारियों में परिवर्तन ही किया है। शाह ने इसे स्वीकार कर लिया। ईरानी इतिहासकारों के अनुसार हुमायूं ने एक दूसरे दूत, काज़ी जैनुद्दीन शैख़ाली, को भी शाह के पास यह विश्वास दिलाने के लिए भेजा कि वह अपनी शक्ति संचित करने के पश्चात् क़न्धार लौटा देगा।[६६] हुमायूं के काबुल पर अधिकार करने के पश्चात् शाह ने एक दूत, बलद बेग, को भेजकर हुमायूं को बधाई दी तथा क़न्धार समर्पित करने को कहा, किन्तु हुमायूं ने बदख़्शां विजय के पश्चात् ऐसा करने का आश्वासन दिया।[६७] हिन्दुस्तान की विजय के पश्चात् हुमायूं के क्या विचार थे, यह बताना कठिन है।

हुमायूं के ईरान निवास का महत्त्व तथा परिणाम

हुमायूं को ईरान में शरण मिली तथा ईरानियों की सहायता से उसने क़न्धार के दुर्ग पर अधिकार किया। यदि ईरान के शाह ने उसे शरण न दी होती तो सम्भव था कि वह कामरान के हाथ पड़ जाता, और इसका क्या परिणाम होता, इसकी हम केवल कल्पना कर सकते हैं। यही नहीं, यदि शाह ने हुमायूं को गिरफ्तार कर लिया होता या उसे मार डाला होता तब भी कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो शाह से इसके लिए जवाब तलब करती। शाह की सहायता इस दृष्टि से

[६५] रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ६०-६१।
[६६] अब्दुर्रहीम का लेख, इस्लामिक कल्चर, १९३४, पृ. ४६५-६६।
[६७] वही, पृ. ४६६; अकबरनामा १, पृ. २४९।

महत्त्वपूर्ण थी। किन्तु इसके पश्चात् की विजयों की सफलता का श्रेय हुमायूं को है। इसमें शाह या उसके सैनिकों से कोई विशेष सहयोग नहीं प्राप्त हुआ था।

शाह ने सहायता अवश्य दी थी किन्तु उसका व्यवहार दया, प्रेम, सज्जनता, अपमान घृणा तथा नीचता का सम्मिश्रण है। एक तरफ तो उसने शानदार स्वागत किया, दावतें दी, गले मिला, अपनी भतीजी से विवाह का वचन दिया, सैनिक तथा धन दिया; और दूसरी तरफ, उसने हुमायूं को आग में जलाने की धमकी दी, उसे शिआ मत स्वीकार करने पर विवश किया तथा विदा के दूसरे दिन हुमायूं जब मिलने गया तो उसे बैठने को भी न पूछा। इस परस्पर विरोधी व्यवहार से उसकी सहायता का मूल्य बहुत ही कम हो जाता है।[६८]

हुमायूं के ईरान निवास का प्रभाव स्वयं उस पर तथा मुग़ल संस्कृति पर पड़ा। इससे मुग़लों से ईरान का कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। अकबर के राज्य ग्रहण करने के पश्चात्, इस सम्पर्क के परिणामस्वरूप बहुत-से अमीर, सैनिक तथा साहित्य और कला के विशेषज्ञ ईरान से भारत आये और इस तरह ईरानी कला तथा साहित्य का प्रभाव मुग़ल साहित्य और कला पर पड़ा। अब्दुस्समद तथा मीर सैयिद अली ने आगे चलकर मुग़ल चित्रकला को जन्म दिया। इसी तरह मुग़ल वास्तु कला पर भी ईरानी प्रभाव पड़ा। हुमायूं का मकबरा इसका स्पष्ट उदाहरण है। इस तरह हुमायूं का ईरान निवास व्यर्थ नहीं गया।[६९]

काबुल की प्रथम विजय

क़न्धार पर अधिकार करने के पश्चात् हुमायूं ने विजित भाग अपने राज्य के उच्च पदाधिकारियों को प्रदान कर दिये। इस तरह उलूग मिर्ज़ा को तीरी का प्रदेश, हाजी मुहम्मद खां को लहू के परगने, इस्माईल बेग को, जमीनदावर शेर अफ़ग़ान को किलात तथा हैदर सुल्तान को शाल प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त अन्य अमीरों को भी जागीरें प्राप्त हुईं।[७०]

इस बीच अस्करी हुमायूं की निगरानी से भागकर एक अफ़ग़ान के घर में जा छिपा। अफ़ग़ान ने स्वयं आकर इसकी सूचना दी। हुमायूं ने ख्वाजा अम्बर

६८ सर. जे. मैलकम हिस्ट्री ऑफ पर्सिया, २, पृ. ५०९; रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ५८।

६९ "The exile of Humayun in Iran, through humilating and painful, was not altogether barren in its result." रे, हुमायूं इन पर्सिया, पृ. ६२।

७० अकबरनामा, १, पृ. २४१।

नाज़िर को उसे पकड़ने के लिए भेजा। अस्करी ऊनी कालीन के नीचे छिपा हुआ था जहां से उसे पकड़कर लाया गया।[७१] हुमायूं ने उसे माहम अनगा के पति नदीम कोकलताश के संरक्षण में रख दिया।

क़न्धार विजय के उपरान्त हुमायूं ने काबुल विजय करने का निश्चय किया। इसी बीच कुछ व्यापारियों ने क़न्धार से जाते हुए ईरानी सैनिकों से उनके घोड़े खरीद लिये थे और उन्हें हुमायूं तथा उसके साथियों के हाथ उधार बेच दिये। उन्होंने इस बात की लिखा-पढ़ी कर ली कि वे मुग़लों द्वारा हिन्दुस्तान की विजय के पश्चात् इसका मूल्य लेंगे।[७२] हुमायूं के इस सौदे से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय हुमायूं के पास धन की कमी थी तथा व्यापारियों को यह आशा थी कि कदाचित् हुमायूं भारत पर अधिकार कर लेगा।

अपनी सेना को तैयार कर हुमायूं काबुल की तरफ रवाना हुआ। दवा बेग हज़ारा की सहायता से उसने तीरी के दुर्ग में प्रवेश किया। तीन दिनों की बीमारी के पश्चात् क़बल चक में उसकी बुआ ख़ानज़ादा बेग़म की मृत्यु हो गयी।[७३] वह वहीं दफनायी गयी तथा बाद में उसकी लाश काबुल ले जायी गयी जहां वह बाबर की कब्र के पास स्थायी रूप में दफना दी गयी।

मार्ग में हुमायूं को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कठिन मार्ग तथा जाड़े की कड़ी ठंड के साथ ही पड़ाव में महामारी फैल गयी जिससे बहुत-से लोगों की मृत्यु हुई। इस समय हुमायूं के पास लगभग २००० सैनिक और ७१ अफसर थे।[७४] वह शीघ्रातिशीघ्र काबुल पहुँच जाना चाहता था। मार्ग की

७१　वही।

७२　अकबरनामा, १, पृ. २४२। डा. बनर्जी का यह कथन कि इस घटना से यह पता चलता है कि हुमायूं भारतीय जनता का विश्वासपात्र था तथा इससे लोगों का उसके प्रति प्रेम प्रकट होता है, (बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. १४६, नोट २)। सत्य नहीं प्रतीत होता। वास्तविक रूप में ये व्यापारी थे और व्यापार में इस तरह का सौदा होता रहता था। वे स्वयं ही लिखते हैं कि व्यापारियों ने इन घोड़ों की कीमत स्वयं निश्चित की। उन्होंने इन घोड़ों को मुंह मांगे दाम में विक्रय किया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने खतरा लेकर यह सौदा किया। ये व्यापारी काबुल के थे। हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि काबुल भी उस समय हिन्दुस्तान का एक भाग समझा जाता था। इस घटना से हुमायूं की आर्थिक कठिनाई का पता चलता है।

७३　हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १७५-७६; अकबरनामा, १, पृ. २४२।

७४　बायज़ीद, पृ. ५२; अकबरनामा, १, पृ. २४३।

कठिनाइयों को देखकर हिन्दाल ने सुझाव दिया कि अभियान स्थगित कर दिया जाए तथा जाड़े में सेना क़न्धार में निवास करे। हुमायूं को यह परामर्श अच्छा नहीं लगा और उसने हिन्दाल से कहलाया कि वह अपना कार्य देखता रहे और उसकी चिन्ता न करे। यदि वह आराम चाहता है तो अपनी जागीर जमीनदावर में जाड़ा व्यतीत करे। इससे स्पष्ट होता है कि हुमायूं में पहले की कमजोरी कम हो गयी थी। हिन्दाल ने यह सुझाव सच्चे हृदय से दिया था। उसने हुमायूं से क्षमा मांगी तथा उसके साथ रवाना हो गया।

कामरान सतर्क था। उसने काबुल के दुर्ग की रक्षा का प्रबन्ध किया। उसने एक बड़ी सेना एकत्र की तथा क़ासिम बरलास को एक सेना के साथ हुमायूं को ख़िमार के दर्रे पर रोकने के लिए भेजा और मीर आतिशक़ासिम मुख़लिस तुरबाती को वहां तोपखाना स्थापित करने की आज्ञा दी। उसे आशा थी कि वह हुमायूं को सरलता से पराजित कर देगा। किन्तु भाग्य हुमायूं के साथ था। ख़्वाजा मुअज्ज़म, हाजी मुहम्मद तथा शेर अफ़ग़ान के नेतृत्व में हुमायूं की सेना ने ख़िमार दर्रे पर अधिकार कर क़ासिम बरलास को पीछे हटा दिया।

हुमायूं की प्रगति के परिणामस्वरूप कामरान के बहुत-से सहयोगी उसे छोड़कर हुमायूं से आ मिले। इन व्यक्तियों में कामरान का प्रधान मन्त्री बाबुस बेग, मीर आतिश तुरबाती तथा मीर अर्ज़ सैयिद अब्बास भी थे।[७५] कामरान इससे बहुत ही चिन्तित हुआ। उसने देखा कि संघर्ष व्यर्थ है अतः सन्धि करने का निश्चय किया। वार्ता के लिए उसने ख़्वाजा ख़ाबन्द महमूद तथा ख़्वाज़ा अब्दुल ख़ालिक़ को अपना दूत बनाकर भेजा। ये लोग हुमायूं से बात कर कामरान के पास लौट गये तथा कह गये कि यदि कामरान तैयार हो गया तो वे दोहपर तक वापस आएँगे। उनके न लौटने पर हुमायूं ने रोशन इशाक बेग को कामरान के पास भेजा।[७६] हुमायूं कामरान को इस शर्त पर क्षमा करने के लिए तैयार था कि वह स्वयं आकर क्षमा मांगे। कामरान ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। फिर भी हुमायूं को सन्धि की आशा थी। इस कारण उसने सैनिक कार्रवाइयां स्थगित कर दीं।

कामरान को सांस लेने का अवसर मिला। किन्तु उसका साहस समाप्त हो गया था। उसने देखा कि उसके निकट जितने भी व्यक्ति हैं उनमें वह किसी का

७५ बायज़ीद, पृ. ५५-५७; जौहर स्टीवर्ट, पृ. ११८; अकबरनामा, १, पृ. २४३-४४।

७६ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. ११९-२० बायज़ीद, पृ. ५७-५८।

विश्वास नहीं कर सकता। अर्द्ध रात्रि में उसने १२,००० सिपाहियों को बरखास्त कर दिया और अपने लड़के मिर्ज़ा इबराहीम तथा स्त्री के साथ दुर्ग छोड़कर ग़ज़नी की तरफ रवाना हुआ। हुमायूं ने हिन्दाल के नेतृत्व में ७०० भाले युक्त सिपाहियों को कामरान का पीछा करने के लिए भेजा। उसका लक्ष्य था कि या तो कामरान को गिरफ्तार कर लिया जाए या उसे इन भागों से भगा दिया जाए। कामरान एक स्थान से दूसरे स्थान को भागता गया और भागकर वह हज़ारा जिले में पहुँचा। यहां उसने अपनी लड़की का विवाह किया। यहां से भागकर वह सिन्ध की तरफ रवाना हुआ जहां उसने मिर्ज़ा शाह हुसेन अरग़ून की लड़की से विवाह किया और वहीं रहने लगा।[७७]

हुमायूं को कामरान के भागने की सूचना मिली। उसने बाबुस बेग को नागरिकों के रक्षार्थ तथा नगर पर अधिकार करने के लिए भेजा तथा स्वयं काबुल में प्रवेश किया (१७ नवम्बर १५४५)।[७८] यहां नागरिकों ने नगर में हुमायूं के स्वागत में रोशनी की। हुमायूं ने सार्वजनिक क्षमा की घोषणा की तथा अपने सेवकों को जागीरें प्रदान कीं। इस तरह हिन्दाल को ग़ज़नी, तथा उलूग मिर्ज़ा को जमीनदावर एवं तीरनी प्राप्त हुए। चौसा तथा कन्नौज के युद्ध में मारे गये लोगों के परिवारों को भी दान दिया गया।

अकबर से मिले हुए हुमायूं को दो वर्ष से अधिक हो गये थे और गुलबदन बेगम तथा दिलदार बेगम से वह पांच वर्ष से नहीं मिला था। काबुल विजय के पश्चात् इन सब लोगों से उसकी मुलाकात हुई।[७९] इसके पश्चात् हुमायूं अकबर

७७ तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १०७; अकबरनामा, १, पृ. २५७; मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४४६।

७८ बायजीद, निज़ामुद्दीन अहमद, बदायूनी तथा फ़िरिश्ता के अनुसार १० रमज़ान ९५२ हि. और गुलबदन बेगम तथा अबुल फ़ज़ल के अनुसार १२ रमज़ान ९५२ हि. (१७ नवम्बर १५४५) को काबुल पर हुमायूं ने अधिकार किया। गुलबदन तथा अबुल फ़ज़ल द्वारा दी गयी तिथि सही है। इस तिथि की विवेचना के लिए देखिए अर्सकिन, २, पृ. ३२५, नोट २; अकबरनामा, बेवरिज, पृ. ४८०, नोट २; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २५५-५६ नोट ६; तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १०६; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १६०; मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४४६।

७९ अबुल फ़ज़ल लिखता है कि इस समय अकबर की बुद्धि-परीक्षा हुई। एक शाहाना जश्न का आयोजन किया गया। अन्तःपुर की सभी स्त्रियां आयीं। अकबर लाया गया। उसने अपनी माता हमीदा बानो को

के खतने के सिलसिले में दावतों तथा जलसों में व्यस्त रहा।[८०] इसी समय ईरान के शाह का दूत हुमायूं के काबुल विजय के उपलक्ष में बधाई देने तथा कन्धार का दुर्ग प्राप्त करने की आशा से आया।

यादगार मिर्ज़ा काबुल से बदख़्शां चला गया था जिसका वर्णन किया जा चुका है। वह भी हुमायूं के पास वापस लौट आया। इसने हुमायूं के साथ बहुत अच्छा व्यवहार नहीं किया था, किन्तु हुमायूं ने इसे क्षमा कर दिया। यादगार नासिर मिर्ज़ा ने अपनी आदत नहीं छोड़ी। हुमायूं इससे बहुत क्रोधित हुआ और यह निश्चय हो जाने पर कि वह पुनः उसका विरोध करने पर उतारू है, उसने उसे बन्दी बना लिया।[८१] इसी समय मुईद बेग की मृत्यु हो गयी। यह हुमायूं के लिए एक दुर्भाग्य समझा जाता था और ईरानी इसे जीवित शैतान कहते थे।

बदख़्शां विजय

कामरान से अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सुलेमान मिर्ज़ा बदख़्शां चला गया था। यह उसके पूर्वजों का राज्य था, इस पर अधिकार करने में उसे अधिक कठिनाई नहीं हुई। उसने अपनी शक्ति संगठित की तथा ख़ुस्त, अन्दराव तथा कुन्दूज़ पर भी अधिकार कर लिया। ये भाग बदख़्शां के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते थे। मिर्ज़ा सुलेमान ने अपने नाम से ख़ुत्बा पढ़वाया तथा एक स्वतन्त्र शासक की भांति खुल्लमखुल्ला विरोध प्रारम्भ कर दिया। हुमायूं ने कई बार उसके पास फ़रमान भेजकर उसे काबुल बुलाया पर वह हर बार टालमटोल करता रहा और उपस्थित न हुआ। उसके कुछ सहयोगियों ने उसे डरा दिया था कि उसके काबुल पहुँचते ही हुमायूं बदख़्शां पर अधिकार कर लेगा। इस कारण हुमायूं के फ़रमान के उत्तर में उसने लिखा कि कामरान ने बदख़्शां लौटाते समय उससे कसम लिखा ली थी कि वह बिना युद्ध किये हुमायूं के सामने उपस्थित नहीं

'दैवी प्रकाश' द्वारा पहचान लिया (अकबरनामा, १ पृ. २४७)। अकबर का यह पहचानना दैवी प्रकाश के कारण नहीं वरन मातृ-स्नेह के कारण था। बालक अकबर ने देखा होगा कि उपस्थित महिलाओं में हमीदा बानो ही उससे मिलने को सबसे अधिक विह्वल है। यह स्वाभाविक था। माता ने बालक को लगभग दो वर्ष से नहीं देखा था और अकबर उसकी गोद में जा बैठा।

८० अकबरनामा, १, पृ. २४८-४९; बायज़ीद, पृ. ६०; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १७८-७९।

८१ अकबरनामा, १, पृ. २४९-५०।

होगा।[८२] हुमायूं की इच्छा थी कि सुलेमान मिर्ज़ा का राज्य उतना ही रहने दिया जाए जितना बाबर ने उसके पिता को दिया था किन्तु सुलेमान के इस पत्र से स्पष्ट हो गया कि युद्ध के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं था।

यादगार नासिर का अन्त

यादगार नासिर मिर्ज़ा ने हुमायूं के भाइयों की तरह उसे सदा धोखा दिया था। बदख़्शां अभियान के समय यदि उसे काबुल में ही बन्दी रखा जाता तो भय था कि कहीं वह पुनः कोई कठिनाई न उपस्थित कर दे। इसी बीच सूचना मिली कि वह भागने का प्रयत्न कर रहा है। उसके अपराधों की सूची बनी और उस पर तीस अपराध लगाये गये। उसे मृत्यु-दण्ड दिया गया और मुहम्मद अली तग़ाई को, जिसके सुपुर्द काबुल की प्रतिरक्षा थी, यह कार्य सौंपा गया, किन्तु उसने निवेदन किया कि उसने जीवन में एक गौरैया भी नहीं मारी है, उसके लिए यह कार्य असम्भव है। हुमायूं ने यह कार्य मुहम्मद क़ासिम मौज़ी को सौंपा, जिसने उसकी हत्या कर दी। बाद में उसकी लाश कज़वीन ले जायी गयी जहां उसे नासिर मिर्ज़ा (बाबर का छोटा भाई) के कब्रिस्तान में दफ़न कर दिया गया।[८३]

बदख़्शां अभियान

सुलेमान मिर्ज़ा से किसी भी तरह समर्पण की आशा न देखकर १५४६ में एक बड़ी सेना के साथ हुमायूं ने बदख़्शां की तरफ प्रस्थान किया। इन प्रस्थान में ईरानी दूत के साथ आये हुए कुछ ईरानी सैनिक तथा कूटनीतिज्ञ भी हुमायूं के साथ बदख़्शां रवाना हुए।[८४] प्रस्थान के पूर्व हुमायूं ने मीर मुहम्मद अली को काबुल की सुरक्षा के लिए नियुक्त कर दिया तथा बन्दी अस्करी को अपने साथ रखने का निश्चय किया जिससे उसकी अनुपस्थिति में वह कुछ गड़बड़ी न करे।

सुलेमान जानता था कि हुमायूं उस पर आक्रमण करेगा। इस कारण उसने युद्ध की तैयारी कर ली थी तथा शत्रु की प्रतीक्षा कर रहा था। तीरगरान नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में ईरान के शाह के अंगरक्षक दल के सैनिकों ने बड़ी बहादुरी दिखायी। सुलेमान भी बहादुरी से लड़ा किन्तु हुमायूं के सैनिकों के सामने वह खड़ा न रह सका। उसके सैनिक भागने लगे और उसे भी भागकर खुस्त में शरण लेनी पड़ी। उसके बहुत-से

८२ बायज़ीद, पृ. ६१; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १२२; अकबरनामा, १, पृ. ५१।

८३ बायज़ीद, पृ. ६१-६२; अकबरनामा, १, पृ. २५१।

८४ अकबरनामा, १, पृ. २५२।

सैनिकों ने हुमायूं की सेना में प्रवेश किया। सुलेमान खुस्त से भागकर कुलाब चला गया।[८५] हुमायूं ने आगे बढ़कर खुस्त पर अधिकार किया। वहां से कलागान होता हुआ किश्म पहुँचा। बदख्शां के अधिकांश उच्च पदाधिकारियों ने समर्पण कर दिया।

किश्म में हुमायूं ने बदख्शां के अधिकृत भाग अपने आदमियों में बांट दिये। इस तरह हिन्दाल को कुन्दुज तथा उसके निकट के भाग, मुनीम खां को खुस्त तथा बाबुस को तालीकान प्राप्त हुआ।[८६] बदख्शां की व्यवस्था करने के पश्चात् हुमायूं ने जाड़े भर क़िला-ए-ज़फ़र में रहकर बदख्शां की स्थिति को पूर्ण रूप से व्यवस्थित करने का निश्चय किया। इस विचार से वह क़िला-ए-ज़फ़र की तरफ रवाना हुआ, किन्तु मार्ग में शाखदान नामक स्थान पर वह अचानक बीमार पड़ गया (१५ नवम्बर १५४६)। चार दिन तक वह बेहोश रहा। इस बीच उसके शत्रुओं ने यह अफवाह फैला दी कि उसकी मृत्यु हो गयी है। इस समाचार ने पुनः राजनीतिक भूकम्प ला दिया। मिर्ज़ा सुलेमान के समर्थक सिर उठाने लगे। यही नहीं, हुमायूं के समर्थक भी परिस्थिति से लाभ उठाने का अवसर ढूंढ़ने लगे। मिर्ज़ा हिन्दाल भी कुत्सित विचारों सहित अन्य अमीरों को लेकर कोकटा नदी के तट तक पहुँच गया।[८७] मध्य युग में सम्राटों के व्यक्तित्व का कितना महत्त्व था तथा केवल उसकी मृत्यु की सूचना से ही कितनी गड़बड़ियां हो सकती थीं इन घटनाओं से हम इसकी कल्पना कर सकते हैं। हुमायूं की बेहोशी में कराचा बेग ने साहस, दृढ़ता तथा स्वामिभक्ति का प्रदर्शन किया। गड़बड़ी में उसे भय हुआ कि बन्दी अस्करी कहीं भाग न जाए, इस कारण उसने उसे अपने ख़ेमे में लाकर रखा तथा सतर्कता बरती। पांचवें दिन होश आते ही हुमायूं ने सबको समझाने के लिए कराचा बेग को भेजा और फ़ज़ील बेग को काबुल रवाना किया जिससे वहां गलत अफवाह न फैल सके।[८८]

हुमायूं को पूर्ण स्वस्थ होने में दो माह लगे। उसकी बीमारी में हमीदा बानो तथा मौलाना बायज़ीद ने, जो चिकित्साशास्त्र का उत्तम ज्ञाता था, उसकी बड़ी सेवा की।

काबुल पर कामरान का पुनः अधिकार

हुमायूं की बीमारी से कामरान ने लाभ उठाया। जैसा ऊपर वर्णन किया

८५ वही, पृ. १५१-५२; बनर्जी, २, पृ० १५७-५८; बायज़ीद, पृ. ७०।
८६ अकबरनामा, १, पृ. २५३।
८७ वही, वही।
८८ वही, पृ. २५३-५४; जौहर, स्टीवर्ट, १२३-२४।

जा चुका है, वह सिन्ध में शाह हुसेन अरग़ून के साथ रह रहा था। उसने शाह हुसेन से एक हज़ार अश्वारोही लिये तथा किलात आया। यहां कुछ अफ़ग़ान व्यापारियों से उसने जबरदस्ती घोड़े छीन लिये। ग़ज़नी के मार्ग में उसने पुनः कुछ घोड़े छीने और इस तरह लूट-पाट से आवश्यक वस्तुएं एकत्र करता हुआ वह ग़ज़नी पहुँचा। ग़ज़नी हिन्दाल मिर्ज़ा की ज़ागीर थी किन्तु इस समय हिन्दाल वहां नहीं था। वहां का शासन गवर्नर ज़ाहिद बेग के अधिकार में था। वह अच्छा शासक नहीं था। जिस समय कामरान पहुँचा, ज़ाहिद बेग शराब के नशे में बेहोश अपने बिस्तर पर सो रहा था। अब्दुर्रहमान क़स्साब की सहायता से कामरान के सैनिक कमन्द द्वारा किले में प्रवेश कर गये। कामरान ने बिना कठिनाइयों के ग़ज़नी पर अधिकार कर लिया। ज़ाहिद बेग पकड़कर उसके सामने लाया गया और मार डाला गया।[८९]

कामरान ने अपने दामाद दौलत सुल्तान को ग़ज़नी के शासन हेतु नियुक्त किया तथा यहां से काबुल की तरफ रवाना हुआ। जिस समय वह काबुल पहुँचा काबुल का हाकिम मुहम्मद तग़ाई अपने स्नानागार में था। वह वहां से नंगा निकाला गया और मार डाला गया। किसी को भी कामरान का सामना करने का साहस नहीं हुआ और कामरान ने काबुल पर अधिकार कर लिया।[९०]

हुमायूं का काबुल पर दूसरी बार अधिकार

अस्वस्थता की हालत में ही हुमायूं क़िला-ए-ज़फ़र लाया गया। कुछ स्वस्थ होने पर उसे काबुल के पतन की सूचना मिली। हुमायूं की स्थिति पुनः बिगड़ गयी थी। बदख़्शां में सुलेमान के पक्ष में विद्रोह के चिह्न स्पष्ट थे। काबुल के पतन ने उसे और भी निराश कर दिया। हुमायूं ने इस स्थिति में बुद्धिमानी से काम लिया। उसने देखा कि कामरान तथा सुलेमान मिर्ज़ा दोनों उसके विरोधी हैं। यदि दोनों आपस में मिल जाएंगे तो कठिनाई और बढ़ जाएगी। उसने सुलेमान मिर्ज़ा को सन्तुष्ट करने का निश्चय किया और उससे सन्धि कर ली। उसने बदख़्शां सुलेमान मिर्ज़ा को वापस कर दिया। पर उसके राज्य का कुछ भाग, कुन्दूज़, अन्दराब, ख़ुस्त, कमहर्द तथा ग़ूरी मिर्ज़ा हिन्दाल को दे दिया।[९१] इस तरह सुलेमान को बदख़्शां तो प्राप्त हुआ किन्तु उसकी शक्ति कम हो गयी।

८९ अकबरनामा, १, पृ. २५८, तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १०९।
९० वही, पृ. २५३-५४; वही, पृ. १०९-१०; बायज़ीद, पृ. ७७-७८।
९१ अकबरनामा १, पृ. २६०; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ११०।

जनवरी १५४७ को हुमायूं क़िला-ए-ज़फ़र से रवाना हुआ। तालीकान, कुन्दूज होते हुए काबुल के निकट ज़मज़मा के क्षेत्र में उसने पड़ाव डाला। यहां उसने अपने सहयोगियों के परामर्श पर काबुल पर आक्रमण किया।

प्रथम संघर्ष देहे अफ़ग़ानान के पास शेर अफ़ग़ान से हुआ, जो कामरान की एक बड़ी सेना लेकर डटा हुआ था। कामरान की सेना हिन्दाल द्वारा पराजित हुई तथा उसका नेता शेर अफ़ग़ान बन्दी बनाकर हुमायूं के सामने उपस्थित किया गया। हुमायूं ने उसे क्षमा प्रदान करनी चाही किन्तु कराचा ख़ां के विवश करने पर उसे मृत्यु दण्ड दिया गया।[६२] काबुल नगर पर हुमायूं का अधिकार हो गया। कामरान ने काबुल दुर्ग में शरण ली। प्रतिदिन संघर्ष होता रहता था। एक दिन कामरान का एक प्रमुख सहयोगी शेर अली हुमायूं के सैनिकों द्वारा पराजित हुआ और भागकर हज़ारा प्रदेश में चला गया।[६३]

हुमायूं के आगमन तथा उसकी सक्रियता से निराश होकर कामरान उद्दण्ड हो गया। हुमायूं के साथ आने वाले बहुत-से अमीरों तथा सैनिकों के परिवार काबुल के दुर्ग में थे। कामरान ने उन पर निगरानी रखी। उसने उनके सम्बन्धियों से उनके लिए जबरदस्ती पत्र लिखवाये कि यदि वे हुमायूं का साथ छोड़कर कामरान से न आ मिलेंगे तो उनके प्राणों का भय है।[६४] कामरान का यह तरीका बेकार नहीं गया और मीर मुर्शीद, इस्कन्दर सुल्तान, मिर्ज़ा संजर बरलास इत्यादि कई अमीर हुमायूं को छोड़कर कामरान से आ मिले। अपनी योजना की सफलता से कामरान ने और भी अत्याचार प्रारम्भ कर दिये जो बर्बरता तथा नीचता से पूर्ण थे। हुमायूं के स्वामिभक्त सेवक बाबुस बेग की स्त्री की इज्जत लेने के लिए, बाजार के गुण्डों को भेजा गया तथा उसके सात, पांच और तीन वर्ष के छोटे-छोटे बच्चों को मारकर उनकी लाशें लटका दी गयीं। मुहम्मद क़ासिम की स्त्री को उसके स्तन से लोहे के फाटक पर लटका दिया गया। इसी तरह के अमानुषिक अत्याचार अन्य लोगों के साथ भी हुए।[६५]

६२ बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. १६६।

६३ वही, पृ. १६७; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २७०-७१।

६४ गुलबदन बेगम से भी कामरान ने उसके पति ख़िज्र ख़्वाज़ा के पास पत्र लिखने को कहा। हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १८२।

६५ अकबरनामा, १, पृ. २६४-६५; बायज़ीद, पृ. ८३; गुलबदन बेगम, जो उस समय काबुल के ही दुर्ग में थी, लिखती है कि कामरान ने बड़ी लूट-पाट की तथा अफसरों की स्त्रियों तथा परिवारों पर बड़ा अत्याचार किया। हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १८१।

कामरान आतंक फैलाकर काबुल के दुर्गवासियों को अपने पक्ष में करना चाहता था।

कामरान के अत्याचार का यहीं अन्त नहीं हुआ। एक दिन वह हवेली से दालान में जा रहा था। उसी समय किसी ने तोप चलायी। कामरान बाल-बाल बच गया पर वह इससे बड़ा कोधित हुआ उसने बालक अकबर को क़िले के ऊपर ले जाकर किले की दीवार पर बैठा दिया। माहम अनगा बालक के साथ गयी और उसने बालक को अपनी गोद में ले लिया और अपनी पीठ गोलों की तरफ कर दी। हुमायूं की सेना काबुल के दुर्ग को घेरे हुए थी और उसका तोपख़ाना गोलाबारी कर रहा था। हुमायूं को कामरान की इस आज्ञा का पता चल गया और उसने तोपख़ाने के मुंह को दूसरी तरफ घुमा दिया। इस तरह अकबर को कोई हानि नहीं पहुँची।[९६]

कामरान का यह कार्य बड़ा ही निन्दनीय था। अबुल फ़ज़ल इसकी आलोचना करता हुआ लिखता है कि यह कौनसी मानवता एवं वीरता थी ? किस हिंसक पशु अथवा राक्षस की यह प्रथा है ? ऐसे आदेश देने वाले की जिह्वा क्यों न गूंगी हो गयी ? अबुल फ़ज़ल का क्रोध स्वाभाविक है।

कामरान ने यह कार्य क्यों किया ? वह चाहता था कि हुमायूं अपनी गोलाबारी बन्द कर दे। वह जानता था कि अकबर को किले की दीवार के ऊपर रखने की सूचना पाते ही हुमायूं गोलाबारी बन्द कर देगा। हुआ भी वैसा ही। यदि उसका लक्ष्य अकबर को मारने का होता तो अन्य साधनों से भी वह ऐसा कर सकता था। गुलबदन के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी सूचना भी किसी ने हुमायूं को जाकर दी[९७] जिससे कामरान के लक्ष्य की पूर्ति तथा अकबर की रक्षा हो गयी।

९६ गुलबदन बेगम का, जो वहां उपस्थित थी, वर्णन संक्षिप्त है। हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १८३; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ११२; अबुल फ़ज़ल अकबर के बचने का कारण दैवी शक्ति समझता है जो सत्य नहीं है। अकबरनामा, १, पृ. २६५-६६; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १२७।

९७ हुमायूंनामा, पृ. ८१; बेवरिज, पृ. १८३। गुलबदन उस समय वहां मौजूद थी, उसके शब्द इस प्रकार हैं :

آخر مردم بعرض اقدس اشرف رسانیدند که میرزا محمد اکبر را در روبرو نگاه داشته اند -

(आख़िर मरदुम ब अर्ज़े अक़दस अशरफ़ रसानीदन्द कि मिर्ज़ा मोहम्मद अकबर रा दर रुबरु निगाह दाशता अन्द।)

हुमायूं ने क़िले का अवरोध और कठोर कर दिया। इसी समय जमीनदावर से उलूग़ मिर्ज़ा, क़िलात से क़ासिम हुसेन खां शैबानी, क़न्धार से शाह क़ुली सुल्तान तथा कुछ अन्य लोग बदख़्शां से हुमायूं की सेवा में आ उपस्थित हुए।[९८] इससे हुमायूं को काफी शक्ति मिली तथा कामरान भी भयभीत हुआ।

सब तरफ से निराश होकर कामरान ने कठोर नीति को त्याग कर दया तथा पारतोषिक की प्रतिज्ञा कर अमीरों को अपने वश में करने का प्रयत्न किया, किन्तु दुर्ग के भीतर अमीरों में निराशा बढ़ती गयी। उन्हें स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि आज नहीं तो कल निश्चय ही दुर्ग पर हुमायूं अधिकार कर लेगा। यदि वे इस समय हुमायूं से मिल जाएंगे तो उन्हें अधिक लाभ होगा। इसी समय कामरान को पता चला कि हुमायूं की सहायता को और लोग भी आ गये हैं और दुर्ग की रक्षा करना अब असम्भव है। उसके हाथ-पैर फूल गये। २७ अप्रैल १५४७ की मध्य रात्रि में कामरान चुपके से काबुल के दुर्ग के दिल्ली दरवाज़े से निकलकर भाग गया।[९९] हुमायूं ने हिन्दाल तथा अन्य अमीरों को कामरान का पीछा करने के लिए भेजा। उन लोगों ने कामरान को पकड़ लिया। कामरान के पास भागने के लिए घोड़ा भी नहीं था और वह एक आदमी के कन्धे पर बैठकर भागने का प्रयत्न कर रहा था। हिन्दाल को कामरान पर दया आयी; उसने उसे एक घोड़ा दिया तथा उसे भाग जाने दिया। इस तरह कर्तव्य को त्यागकर हिन्दाल ने भाई के प्रेम से प्रभावित होकर उसे भागने में सहायता की।[१००]

९८ अकबरनामा, १, पृ. २६६।

९९ बायज़ीद (पृ. ८४) के अनुसार कामरान ने मिर्ज़ा हिन्दाल से सम्पर्क स्थापित कर लिया था। भागते समय पहरेदारों ने उसे पहचानकर पकड़ लिया। कामरान ने उसे घूस के तौर पर एक थैली दे दी। पहरेदार ने उसे छोड़ दिया और वह भाग गया। निज़ामुद्दीन के अनुसार ख़्वाज़ा खिज्र की तरफ एक छेद बनाया गया और कामरान नंगे पैर भाग गया (तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ११३)।

१०० अकबरनामा (भाग १, पृ. २६८) के अनुसार हाज़ी मुहम्मद खां एवं अन्य लोग जो कामरान का पीछा करने के लिए भेजे गये थे उस तक पहुँच गये किन्तु कृतघ्नता के प्राचीन जादू एवं प्रभाव के कारण उसे ऐसा समझकर छोड़ दिया मानो उसे देखा न हो। जौहर के अनुसार हिन्दाल ने कामरान को एक आदमी की पीठ पर भागते हुए देखा तथा उसने एक घोड़ा देकर उसे भागने में सहायता दी (स्टीवर्ट, पृ. १२७-२८)। निज़ामुद्दीन अहमद तथा बदायूनी के अनुसार हुमायूं ने हाज़ी मुहम्मद खां को कुछ सैनिकों के साथ कामरान का पीछा करने के लिए भेजा।

कामरान के दुर्ग छोड़कर भाग जाने के पश्चात् हुमायूं ने काबुल के दुर्ग में प्रवेश किया। पूरी रात उसके सैनिक नगर में लूटपाट करते रहे। कामरान के साथ सहयोग करने के कारण हुमायूं दुर्गवासियों से नाराज़ था। वह उन्हें दण्ड देना चाहता था। इसी से उसने अपने सैनिकों को उस रात कत्ले आम से नहीं रोका। कुछ धार्मिक व्यक्ति भी कामरान के साथ सहयोग करने के अपराध में मार डाले गये।[१०१] अभागे नागरिकों के प्रति हुमायूं का यह व्यवहार न्यायसंगत नहीं था। पिछले अध्याय में हम वर्णन कर आये हैं कि गुजरात अभियान के समय भी हुमायूं ने इसी तरह का व्यवहार किया था। काबुल के शान्तिमय किन्तु अभागे निवासियों के लिए कठिन अग्नि-परीक्षा थी। उन पर कामरान ने भी अत्याचार किया और हुमायूं ने भी।

कामरान का पलायन तथा हुमायूं से संघर्ष

काबुल के दुर्ग से निकलकर कामरान ने बदख़्शां जाने का विचार किया। रात में केवल एक सेवक अली क़ुली क़ुरची के साथ वह संजिद आया। मार्ग में हज़ारा लोगों ने उसका सामान लूट लिया। उसे पहचानकर उन लोगों ने उसे ज़ुहाक तथा बमियान भेज दिया। ज़ुहाक में उसकी मुलाकात अपने पुराने सेवक मिर्ज़ा बेग तथा शेर अली से हो गयी। उसने कुछ सेना भी एकत्र कर ली और उसकी सहायता से ग़ूरी दुर्ग के हाक़िम मिर्ज़ा बेग बरलास को पराजित कर उस पर अधिकार कर लिया।[१०२] शेर अली को वहीं छोड़कर वह स्वयं सुलेमान मिर्ज़ा से सहायता की आशा से बदख़्शां गया, किन्तु सुलेमान मिर्ज़ा से उसे कोई सहायता न प्राप्त हुई। चारों तरफ से निराश होकर उसने ऊज़बेकों से सहायता लेने का विचार किया तथा बल्ख़ की तरफ रवाना हुआ।

चग़ताइयों तथा ऊज़बेकों का पारस्परिक संघर्ष पुश्तैनी था। बल्ख़ उस समय पीर मुहम्मद ख़ां के अधिकार में था। उसने कामरान का स्वागत किया। चग़ताइयों (मुग़लों) को आपस में लड़ाकर वह लाभ उठाना चाहता था। कामरान को और कहीं से आशा नहीं थी। दोनों में एक सन्धि हुई जिसके

जब हाज़ी मुहम्मद कामरान के निकट आया तो उसने उसे पहचानकर तुर्की भाषा में कहा, "क्या मैंने तुम्हारे पिता बाबा क़ुश्का की हत्या की है ?" हाज़ी मुहम्मद ख़ां उपेक्षा करके लौट आया। बायज़ीद, पृ. ८४; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. ११३-१४; मुन्तख़बुत्तवारीख़, पृ. ४५०।

[१०१] जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १२८।

[१०२] अकबरनामा, १, पृ. २६८-६९।

अनुसार पीर मुहम्मद ने कामरान को बदख्शां तथा काबुल विजय करने में पूर्ण सहायता देने का वचन दिया। इसके बदले में कामरान ने इन प्रदेशों पर अधिकार होने के पश्चात् बदख्शां ऊज़बेकों को देने का आश्वासन दिया।[१०३] इस तरह पीर मुहम्मद तथा बल्ख़ की सेना की सहायता से कामरान ने पुनः युद्ध आरम्भ किया।

काबुल पर अधिकार करने के पश्चात् हुमायूं ने कराचा ख़ां को कामरान के विरुद्ध भेजा। उसने हिन्दाल तथा सुलेमान मिर्ज़ा को इस अभियान में कराचा ख़ां को सहायता देने की आज्ञा दी। कराचा ख़ां ने मिर्ज़ाओं के साथ ग़ूरी के किले पर आक्रमण किया। शेर अली ने उसका डटकर सामना किया किन्तु वे किले पर अधिक दिन अधिकार न रख सके और भाग खड़े हुये। हुमायूं की सेना ने ग़ूरी पर अधिकार कर लिया।[१०४] यहां से सेना कामरान के विरुद्ध आगे बढ़ी।

ऊज़बेकों की सहायता से कामरान की शक्ति बढ़ गयी। उसने एक-एक करके क़िलां-ए-ज़फ़र, बगलान, किश्म, तालीकान इत्यादि पर अधिकार कर लिया। हुमायूं की सेना पराजित हुई। हिन्दाल को कुन्दुज के दुर्ग में शरण लेनी पड़ी और कराचा ख़ां को सहायता के लिए काबुल जाना पड़ा।

बदख्शां की इस दुरवस्था की सूचना पाकर हुमायूं काबुल से बदख्शां की तरफ रवाना हुआ (जनवरी १५४७)। कठोर जाड़ा पड़ रहा था। यात्रा कठिन थी, फिर भी हुमायूं ने साहस नहीं छोड़ा और ग़ूरबन्द[१०५] तक पहुँच गया। यहां उसकी मुलाकात कराचा ख़ां से हुई। मार्ग में कबायलियों ने उसका सामान लूट लिया था। काबुल जाकर वहां से आवश्यक वस्तुएं एकत्र कर पुनः वापस आने की अनुमति लेकर वह काबुल चला गया। हुमायूं ग़ूरबन्द से आगे बढ़कर गुलबहार में कराचा ख़ां की प्रतीक्षा करता रहा। इस बीच बरफ पड़ने लगी जिसके कारण हिन्दूकुश के मार्ग बन्द हो गये। आगे बढ़ना असम्भव देखकर हुमायूं को पुनः काबुल लौट आना पड़ा।[१०६]

काबुल लौटने के पश्चात् शुभ दिन तथा शुभ मुहुर्त में अकबर का विद्यारम्भ हुआ (७ शव्वाल ९५४ हि. अर्थात् २० नवम्बर १५४७)। हुमायूं ने उस समय के प्रख्यात विद्वान् मुल्लाज़ादा मुल्ला ईसामुद्दीन इबराहीम को अपने पुत्र

[१०३] बायज़ीद, पृ. ८४।
[१०४] अकबरनामा, १, पृ. २६९।
[१०५] काबुल से ४० मील उत्तर।
[१०६] अकबरनामा, १, पृ. २६९-७०।

का शिक्षक नियुक्त किया। ईसामुद्दीन को कबूतरबाज़ी का बहुत शौक था, इस कारण बालक की शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं हो सका। हुमायूं ने कुछ ही दिन बाद उसे बदलकर मौलाना बायज़ीद को इस कार्य के लिए नियुक्त किया।[१०७]

कामरान शान्त नहीं था। हुमायूं के सहयोगियों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न वह बराबर करता रहा। इसके परिणामस्वरूप लगभग ३,००० अश्वारोही तथा कुछ बहुत ही विश्वासपात्र अमीर, जैसे कराचा ख़ां,[१०८] बाबुस बेग, इस्माईल बेग दुल्दाई इत्यादि उसे छोड़कर बदख़्शां में कामरान से जा मिले। इतने आदमियों के पलायन से हुमायूं की शक्ति को धक्का लगा। उसने कराचा खां का पीछा करने का प्रयत्न किया किन्तु ये पकड़े न जा सके। हुमायूं काबुल में रुका रहा तथा जोरों से अभियान की तैयारी करने लगा।

१२ जून १५४८ को हुमायूं ने कामरान से युद्ध करने के लिए काबुल से कूच किया। इस बीच उसकी शक्ति बढ़ती जा रही थी। हुमायूं कराबाग से गुलबहार पहुँचा और यहां से उसने हमीदा बानो और अकबर को काबुल भेज

१०७ अकबरनामा, १, पृ. २७०-७१। अकबर साक्षर था या नहीं, इस प्रश्न की विवेचना के लिए देखिए, बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. २६६-७३। एम. एल. राय चौधरी, वाज़ अकबर इललिटरेट, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, १९४०, पृ. ७२७-३७।

१०८ कराचा ख़ां ने हुमायूं की अस्वस्थता में उसकी बड़ी सेवा की थी। उसकी शक्ति बढ़ गयी थी इससे वह घमंडी हो गया था। वह समझता था कि उसके बिना हुमायूं का कोई भी कार्य नहीं हो सकेगा। उससे तात्कालिक नाराज होने का कारण यह था कि उसने दीवान ख़्वाज़ा गाज़ी को १० तुमान सरकारी राजकोष से अपने नाम पर देने के लिए परवाना लिख दिया। नियमानुसार न होने के कारण दीवानने यह धन देने से इनकार कर दिया। कराचा बहुत अप्रसन्न हुआ। हुमायूं ने अकबर को कराचा ख़ां के पास उसे समझाने के लिए भेजना चाहा किन्तु एक सहयोगी के यह कहने पर कि राज्य के कर्मचारी के सम्मुख राजकुमार का जाना न्यायसंगत नहीं है, हुमायूं ने अकबर को नहीं भेजा, क्योंकि उसे यह भय हुआ कि कहीं वह अकबर को बंधक के रूप में न रख ले। एक दूसरे व्यक्ति को कराचा ख़ां के पास भेजा गया। इस बार कराचा ने यह शर्त रखी कि ख़्वाज़ा गाज़ी को उसे समर्पित कर दिया जाए। हुमायूं ने कराचा ख़ां के पास एक अन्य दूत भेजा और उसे सूचित किया कि वह एक वज़ीर है और ख़्वाज़ा गाज़ी एक न एक दिन उसके अधीन आ ही जायेगा, किन्तु कराचा ख़ां को इससे सन्तोष नहीं हुआ और वह कामरान के पास भाग गया। जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १२८-२९; बायज़ीद, पृ. ८५

दिया।[१०९] काबुल के दुर्ग की रक्षा के लिए उसने मुहम्मद क़ासिम ख़ां मौज़ी को नियुक्त किया। यहां से अमीरों के साथ हिन्दूकुश होता हुआ वह अन्दराब के दुर्ग के निकट पहुँचा। इस पर बिना कठिनाई के उसका अधिकार हो गया। यहां हिन्दाल कुन्दूज से वापस आकर हुमायूं से मिला और अपने साथ वह कामरान के प्रमुख सहयोगी शेर अली को बन्दी के रूप में लेता आया। शेर अली ने सदा एक सच्चे सैनिक की तरह कामरान का साथ दिया था। वह एक योग्य शासक था। इस कारण हुमायूं ने उसका सहर्ष स्वागत किया। उसने उसे क्षमा कर दिया, ख़िलअत प्रदान की तथा ग़ूरी की जागीर प्रदान की।[११०]

कामरान भी सतर्क था। उसने तालीक़ान दुर्ग को कराचा ख़ां की सहायता से अच्छी तरह मज़बूत बना लिया। वह स्वयं किश्म और क़िला-ए-ज़फ़र के निकट सेना के साथ डटा हुआ था। उसने यह नीति शत्रु को धोखा देने के लिए अपनायी थी, जिससे शत्रु की सेना को यह अन्दाज न हो कि कामरान के पास युद्ध करने की शक्ति है।

हुमायूं ने मिर्ज़ा हिन्दाल को बेगी नदी पार करने की आज्ञा दी। पूरी सेना ने अभी नदी को पार नहीं किया था जब कामरान की सेना ने उस पार आक्रमण कर दिया। यह एक बहुत ही उपयुक्त समय था, क्योंकि हिन्दाल नदी के एक तरफ और हुमायूं अपनी बाकी सेना के साथ दूसरी तरफ था। हिन्दाल की सेना पराजित हुई और उसका सामान लूट लिया गया। सौभाग्य से उसी समय हुमायूं पहुँच गया।[१११] यदि कामरान ने इस विजय से लाभ उठाकर हुमायूं की सेना का पीछा किया होता तो सम्भव था उसे हुमायूं को पराजित करने में सफलता मिलती, किन्तु कामरान युद्ध के पश्चात् तालीक़ान के दुर्ग में जा छिपा। जो सामान उसने भागते समय छोड़ दिया था उसे हुमायूं की सेना ने लूट लिया और तालीक़ान के दुर्ग के निकट की भूमि को रौंद डाला। जो बन्दी बनाये गये उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया गया। हुमायूं ने पूर्ण शक्ति के साथ

का वर्णन भिन्न है; अकबरनामा, १, पृ. २७२; तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ११५।

१०९ अकबरनामा, १, पृ. २७५।

११० वही, पृ. २७६।

१११ जौहर लिखता है कि पराजय की सूचना पाकर हुमायूं ने पूछा कि पुस्तकालय का क्या हुआ? यह सुनकर कि वह सुरक्षित है, उसे सन्तोष हुआ (जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १३२)।

तालीक़ान के दुर्ग पर आक्रमण किया। पुनः हुमायूं ने कामरान को पत्र लिखकर संघर्ष समाप्त करने के लिए कहा, किन्तु इस शान्ति-प्रस्ताव को कामरान ने स्वीकार नहीं किया।[112] उसे आशा थी कि उसे ऊज़बेकों से सहायता मिलेगी।

सन्धि तथा मिलन

निराश होकर हुमायूं ने दुर्ग का घेरा और भी कठोर कर दिया। इस घेरे का सामना करना कामरान के लिए कठिन हो गया। विवश होकर उसने मीर अरब मक्की को, जिसे हुमायूं का विश्वास प्राप्त था, सन्धि वार्ता के लिए भेजा और अन्त में निम्नलिखित शर्तों पर सन्धि निश्चित हुई :

१. विद्रोही अफसरों की गरदनें बांधकर उन्हें हुमायूं के दरबार में भेज दिया जाए।

२. हुमायूं के नाम से ख़ुत्बा पढ़ा जाए।

३. कामरान स्वयं गुप्त रूप से मक्का चला जाए।

सन्धि होने के पश्चात् १७ अगस्त १५४८[113] को सद्र मौलाना अब्दुल बाकी ने नगर में प्रवेश किया और हुमायूं के नाम से ख़ुत्बा पढ़ा गया। दुर्ग का घेरा हटा लिया गया जिससे वह मक्का चला जाए।

हुमायूं ने तालिक़ान के दुर्ग में प्रवेश किया। उसने सार्वजनिक क्षमा की घोषणा की। कराचा ख़ां भी उसके सामने लाया गया और उसे भी क्षमा कर दिया गया। मक्का की तरफ कुछ दूर यात्रा करने के पश्चात् हुमायूं द्वारा क्षमा किये जाने की सूचना पाकर कामरान ने स्वयं समर्पण करने का निश्चय किया और वह हुमायूं से मिलने के लिए वापस लौट आया।

कामरान की इच्छा को हुमायूं अस्वीकार न कर सका और उसने अस्करी

[112] अकबरनामा, १, पृ. २७८; बायज़ीद, पृ. ९१-९२; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १३२-३३; तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. ११७-१८। कामरान ने हुमायूं के सन्धि करने के प्रस्ताव में एक शेर पढ़ा जिसका अर्थ था कि राज्य रूपी नववधू का वही आलिंगन कर सकता है जो चमकती हुई तलवार के अधरों का चुम्बन कर सके अर्थात् युद्ध कर सके। शेर इस प्रकार था :

अरु से मुल्क क़से दर कनार गीरद चुस्त,
कि बोसा बर लबे शमशीरे, आबदार दिहद।

[113] अबुल फ़ज़ल के अनुसार १२ राजब ९५५ हि.; बेवरिज के अनुसार यह १२ अगस्त थी; अर्सकिन १७ अगस्त लिखते हैं जो सही है। डा. बनर्जी भी १२ अगस्त लिखते हैं। बनर्जी हुमायूं २, पृ. १७६; अकबरनामा, १, पृ. २७९-८०; अर्सकिन, २, पृ. ३५७।

को स्वतन्त्र कर दिया और उसे हिन्दाल तथा अन्य अमीरों के साथ कामरान का स्वागत करने के लिए भेजा। हुमायूं ने कामरान के स्वागत के लिए अपने अमीरों को तीन दलों में भेजा। प्रथम दल में मुनीम ख़ां, तरदी बेग तथा अन्य अमीर थे, दूसरे में राजवंश से सम्बन्धित व्यक्ति जैसे क़ासिम हुसेन, सुल्तान शैबानी, ख़िज्र ख्वाजा सुल्तान इत्यादि और तीसरे में हिन्दाल और अस्करी मिर्ज़ा थे।

हुमायूं ने एक दरबार किया जहां कामरान उपस्थित किया गया।[११४] दरबार में आते समय एक कर्मचारी से एक रूमाल लेकर कामरान ने अपने गले में बांध लिया और एक अपराधी की भांति हुमायूं के सामने उपस्थित हुआ। हुमायूं ने अपनी दाहिनी तरफ कामरान को बिठाया। दोनों भाइयों ने एक दूसरे को गले लगाया और पिछली बातें भूलने को कहा। दोनों की आंखों से आंसू बहने लगे जिसे देखकर बहुत से उपस्थित लोग भी द्रवित हो गये। शर्बत का एक प्याला लाया गया जिसका आधा हुमायूं ने पिया और बाकी कामरान को दिया। कामरान के स्वागत में एक दावत का प्रबन्ध हुआ जहां तरह-तरह के भोजन तैयार किये गये। गायकों ने सुन्दर गीत गाये और इस तरह दो दिन आनन्दोत्सव में बीते। गुलबदन लिखती है कि लोगों में आश्चर्यजनक रूप से प्रसन्नता थी। भाइयों के युद्ध के कारण अमीर अपने सम्बन्धियों के खून के प्यासे थे। अब सब मिलकर प्रसन्नतापूर्वक समय व्यतीत कर रहे थे।[११५] सभी भाइयों ने बल्ख के विरुद्ध अभियान की तैयारी की, किन्तु कोई निश्चय नहीं हो सका।

जश्न के बाद हुमायूं ने अपने भाइयों के बीच जागीरें वितरित कीं। कामरान को कुलाब या खातलान, अस्करी को कुरातिगीन, हिन्दाल को कुन्दूज़, गोरी, काहमर्द, बकलान, इश्कामिश, नारी या नारीन, और सुलेमान मिर्ज़ा तथा इबराहीम मिर्ज़ा को क़िला-ए-ज़फ़र, तालीक़ान तथा कुछ अन्य परगने दिये गये। अस्करी को हिन्दाल के साथ जाने की आज्ञा हुई, क्योंकि अस्करी ने हाल ही में स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। कामरान की सहायता के लिए हुमायूं ने

११४ इस मिलन की घटनाओं के लिए देखिए जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १३४-३५; अकबरनामा, १, पृ. २८१-८२; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १८७। अबुल फजल के अनुसार यह मिलन इश्किमीशारा में तथा गुलबदन के अनुसार किश्म में हुआ। अबुल फ़ज़ल द्वारा उल्लिखित स्थान अधिक सही मालूम होता है।

११५ हुमायूंनामा, बेवरिज पृ. १८८।

चकर बेग को उसका अमीरुल उमरा नियुक्त किया तथा हिन्दाल के साथ शेर अली उसका मन्त्री बनाकर भेजा गया।[११६]

कामरान अपनी जागीर से सन्तुष्ट नहीं हुआ और उसने फरमान प्राप्त होने पर कहा कि वह काबुल तथा बदख़्शां का मालिक रह चुका है। कुलाब तो बदख़्शां का एक परगना मात्र है। मैं इस जागीर को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? हुसेन कुली, जो वहां उपस्थित था, उसने इसका जवाब दिया कि यह आश्चर्य की बात है कि इतने अपराधों के बाद भी उसे जागीर दी गयी और वह उसे स्वीकार नहीं कर रहा था। कामरान ने इसका अर्थ समझ लिया। पुनः विद्रोह करने का उसमें तत्काल साहस नहीं था। किन्तु इससे स्पष्ट हो जाता है कि उसका हृदय साफ नहीं था। परिस्थिति को समझकर उसने प्राप्त जागीर स्वीकार कर ली।

जागीरों के विभाजन के पश्चात् सभी व्यक्ति अपनी-अपनी जागीरों पर अधिकार करने के लिए रवाना हो गये। हुमायूं स्वयं काबुल की तरफ रवाना हुआ। चारों भाइयों ने एक ही प्याले से शर्बत पिया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अब चारों भाइयों में मेल-मिलाप हो जाएगा। हुमायूं यहां से यात्रा कर ५ अक्तूबर १५४८ को काबुल पहुँचा[११७] जहां उसकी अपने पुत्र अकबर से भेंट हुई।

कामरान का हृदय अब भी कलुषित था। उसने चारों तरफ से निराश होकर हुमायूं को समर्पण किया था। हज्ज के लिए जाने का उसका विचार धार्मिक विश्वास के कारण नहीं, बल्कि परिस्थितियों के कारण था। हुमायूं ने जो जागीर दी थी उससे उसका असन्तोष इस बात का प्रमाण है कि वह इस जागीर को हुमायूं की दया न समझकर यह समझता था कि हुमायूं ने उसका अपमान किया है। हमें याद रखना चाहिए कि इस समय हुमायूं के पास काबुल, बदख़्शां तथा भारत का पुराना राज्य नहीं था बल्कि उसका राज्य सीमित था। कामरान को जागीर उसके भरण-पोषण के लिए दी गयी थी, जिसको उसे प्रसन्नता के साथ स्वीकार करना चाहिए था।

११६ बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. १७८; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २८६; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १३५; हुमायूंनामा, बेवरिज़, पृ. १८६-८७।

११७ अबुल फ़ज़ल के अनुसार काबुल प्रवेश की तिथि शुक्रवार, २ रमज़ान ९५५ हि. थी। बायजीद के अनुसार यह ९५५ का तीर का महीना था। डा. बनर्जी तथा डा. ईश्वरी प्रसाद ने ५ अक्तूबर १५४८ स्वीकार किया है। अकबरनामा, १, पृ. २८४; बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. १७९; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २८७।

लाहौर से अलग होने के पश्चात् चारों भाइयों का यह प्रथम स्नेहपूर्ण मिलन था। हुमायूं ने इसमें पूर्ण संयम, दया तथा क्षमा का प्रदर्शन किया और उसने उनके साथ इस तरह व्यवहार किया मानो कुछ हुआ ही न हो। उसकी इसी दया का लाभ उसके भाइयों ने उठाया।

हुमायूं के मन में अपने भाइयों के प्रति अपार स्नेह था, यह केवल बाबर की इच्छा के प्रति एक कर्तव्यनिष्ठा नहीं थी बल्कि हार्दिक स्नेह था। मिलते ही हुमायूं का कामरान को अपनी दाहिनी तरफ बैठाने, स्नेह से द्रवित होकर आंखों में आंसू आ जाने और अन्त में कामरान के भरण-पोषण की चिन्ता कर उसे जागीर देने से यह स्पष्ट है कि हुमायूं का हृदय और विचार कैसा था। इतनी शत्रुता करने के पश्चात् भी कामरान को क्षमा करने में उसे एक क्षण भी नहीं लगा। यह बादशाह हुमायूं की एक बहुत बड़ी कमज़ोरी और व्यक्ति हुमायूं की एक बहुत बड़ी शक्ति का प्रमाण है।

एकता का प्रभाव

हुमायूं के भाइयों में शान्ति और सुलह स्थापित हो जाने के परिणाम तत्काल प्रकट हुए। निकट के शासकों ने हुमायूं के पास बधाई देने के लिए दूत भेजे। हैदर मिर्ज़ा ने कश्मीर से हुमायूं को पत्र लिखकर उसे बधाई दी तथा कश्मीर आने के लिए आमन्त्रित किया। उसका विचार था कि वहां से हिन्दुस्तान पर सुविधा से आक्रमण किया जा सकता था। हुमायूं अभी भारतीय अभियान के लिए तैयार नहीं था। उसने हैदर मिर्ज़ा को उत्तर दिया कि सुविधा होते ही वह कश्मीर आएगा। काशगर के शासक अब्दुल रशीद खां ने बहुत से तोहफ़े हुमायूं के पास भेजे। हुमायूं ने ख्वाजा जलालुद्दीन महमूद को ईरान के शाह के पास अपना दूत बनाकर भेजा।[११८] इस तरह अपने भाइयों के संघर्ष से छुट्टी पाकर हुमायूं ने कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किया तथा शासन को एक नई दिशा में ले जाने के लिये उसने कदम बढ़ाया।

हुमायूं के निष्कासन काल की समस्याओं को उसके अमीरों के विश्वासघात ने और भी कठिन बना दिया था। वे कभी कामरान के साथ रहते और कभी उसका साथ छोड़कर हुमायूं के साथ हो जाते थे। इस तरह दोनों भाइयों में युद्ध कराने में इनका प्रमुख हाथ रहता था। इस बार हुमायूं ने इन अमीरों की समस्या पर भी ध्यान दिया। कराचा खां तथा मुसाहिब बेग ने अकसर हुमायूं को धोखा

११८ अकबरनामा, १, पृ. २८४।

दिया था। दण्ड के रूप में हुमायूं ने इन्हें मक्का चले जाने की आज्ञा दी। ये लोग रवाना हुए किन्तु हज़ारा प्रदेश में ही रुके रहे। हुमायूं अपनी आज्ञा पर स्थिर न रह सका और कुछ दिन बाद इन्हें पुनः क्षमा कर दिया गया। हुमायूं का प्रबल शत्रु मुहम्मद उलूग बेग मिर्ज़ा तथा उसका भाई मुहम्मद शाह मिर्ज़ा इस बीच मार डाले गये[११९] जिससे हुमायूं को शान्ति मिली।

बलख़ अभियान

भाइयों के संघर्ष से निश्चिन्त होकर हुमायूं ने बलख़ पर आक्रमण करने का निश्चय किया। इसके कई कारण थे। ऊज़बेक सरदार पीर मुहम्मद ख़ां ने कामरान की सहायता की थी जिसके कारण हुमायूं बहुत नाराज़ था तथा वह उसे दण्ड देना चाहता था। इसके अतिरिक्त बल्ख का भाग बहुत ही उपजाऊ था। कामरान अपनी प्राप्त जागीर से प्रसन्न नहीं था। हुमायूं बल्ख़ विजय कर उसे कामरान को दे देना चाहता था।[१२०] वास्तव में बल्ख़ अभियान का कारण साम्राज्य विस्तार, शक्ति संचय तथा अपने पूर्वजों के राज्य पर अधिकार करने की हुमायूं की आकांक्षा थी।

परिस्थितियां बल्ख़-आक्रमण के अनुकूल थीं। बदख़्शां पर हुमायूं का अधिकार हो गया था। कामरान ने समर्पण कर दिया था, भाइयों में कम से कम बाहर से मित्रता प्रकट हो रही थी, उसके दो शत्रुओं की मृत्यु हो चुकी थी। अनुकूल परिस्थिति देखकर हुमायूं ने पीर मुहम्मद पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसने कामरान, हिन्दाल, अस्करी, मिर्ज़ा इबराहीम तथा सुलेमान को बल्ख़ अभियान के लिए सेना लेकर आने का आदेश दिया।[१२१]

फरवरी १५४९ में हुमायूं काबुल से बलख़ अभियान के लिए रवाना हुआ।[१२२] यूरत चालाक[१२३] नामक स्थान पर वह एक महीना रुका रहा। यहां ग़ज़नी से मुहम्मद ख़ां तथा बदख़्शां से मिर्ज़ा इबराहीम अपनी सेनाओं के साथ उससे आ मिले। इस पड़ाव से ख़्वाज़ा दोस्त ख़ाबन्द को मिर्ज़ा कामरान को बुलाने के लिए कोलाब भेजा गया। यहां से अन्दराव, तालीक़ान, नारी होते

११९ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. २८८।

१२० जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १३६।

१२१ बायज़ीद, पृ. १०६-१०७, जौहर; स्टीवर्ट, पृ. १३६; अकबरनामा, १, पृ. २८५।

१२२ अबुल फ़ज़ल के अनुसार ९५६ हि. के प्रारम्भ में वह रवाना हुआ। यह वर्ष ३० जनवरी १५४९ से प्रारम्भ हुआ। अकबरनामा, १, पृ. २८५।

१२३ काबुल के उत्तर-पश्चिम दो मील पर।

हुए ये नीलबर घाटी में पहुँचे। यहां मिर्ज़ा हिन्दाल तथा सुलेमान भी आ मिले। अस्करी तथा कामरान जिनके पहुँचने की आशा थी, नहीं आये। हुमायूं ने यहां से इबराहीम को बदख़्शां भेज दिया जिससे यदि कामरान आक्रमण करे तो वह उसकी रक्षा कर सके।[१२४]

हुमायूं यहां से आगे बकलान होता हुआ ऐबक नामक स्थान पर पहुँचा, जो बल्ख़ के अधीन था। हुमायूं ने ऐबक के दुर्ग का घेरा डाला। दुर्गवासियों को आवश्यकता की वस्तुएं प्राप्त न होने के कारण दुर्ग के हाक़िम ख़्वाज़ा माक़ को दुर्ग समर्पित करना पड़ा।

यदि हुमायूं ने इस विजय से लाभ उठाया होता तो उसे बल्ख़ पर अधिकार करने में अधिक कठिनाई नहीं होती। युद्ध परिषद की बैठक में हुमायूं ने पीर मुहम्मद के अतालीक़ ख़्वाजा माक़ से ऊज़बेकों से युद्ध के विषय में उसका मत पूछा। उसने दो मत उपस्थित किये। उसने कहा कि हुमायूं बन्दी बनाये गये ऊज़बेकों को, जो उसके पड़ाव में हैं, मार डाले और उसके बाद तुरन्त बल्ख़ पर आक्रमण कर दे। यदि इसमें कठिनाइयां हों तो उसका दूसरा सुझाव यह था कि पीर मुहम्मद के साथ सन्धि कर ली जाए और ख़ुल्म के एक तरफ का भाग पीर मुहम्मद को दे दिया जाए तथा दूसरी तरफ का भाग हुमायूं रख ले। प्राप्त भाग पर हुमायूं के नाम से ख़ुत्बा पढ़ा जाए, सिक्का चलाया जाए तथा इस पर हुमायूं का पूर्ण अधिकार रहे। हुमायूं ने इन दो मतों में से किसी को स्वीकार नहीं किया।[१२५] उसने ऊज़बेक बन्दियों को काबुल भेज दिया तथा स्वयं बल्ख़ की तरफ रवाना हुआ।

ख़ुल्म, बाबा शामू होता हुआ हुमायूं बल्ख़ के निकट पहुँचा। ऊज़बेकों ने शाह मुहम्मद सुल्तान हिसारी तथा बक्कास सुल्तान के नेतृत्व में मुग़लों पर आक्रमण कर उनके एक दल को पराजित कर दिया। दूसरे दिन भीषण युद्ध हुआ। मुग़लों ने बहादुरी से युद्ध किया तथा ऊज़बेकों को बल्ख़ नदी के उस पार भगा दिया।[१२६] यदि उन्होंने तत्काल आक्रमण किया होता तो वे बल्ख़ पर अधिकार कर सकते थे किन्तु इसी समय यह समाचार प्राप्त हुआ कि कामरान ने काबुल पर अधिकार कर लिया है। हुमायूं के साथ के सैनिक तथा अमीर, जिन्होंने अपने परिवारों को काबुल में छोड़ दिया था, अपने परिवारों की रक्षा

[१२४] अकबरनामा, १, पृ. २८६।

[१२५] वही, पृ.२८७; बायज़ीद, पृ. १०९।

[१२६] अकबरनामा, १, पृ. २८९।

के लिए चिन्तित हो उठे। वे आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं थे। इसी समय यह सूचना भी मिली कि बुख़ारा से अब्दुल अज़ीज़ अपनी सेना लेकर पीर मुहम्मद की सहायता के लिए आ रहा है। इससे और भी आतंक छा गया। सफलता की आशा बहुत कम थी। इस परिस्थिति में हुमायूं ने लौटने का निश्चय किया।[१२७] ऐबक होते हुए उसने दरयेगज में आकर पड़ाव डाला। यहां कुछ दिन रुककर वह परिस्थिति का अवलोकन करना चाहता था। आवश्यक होने पर यहां से काबुल भी जाया जा सकता था तथा ऊज़बेकों से युद्ध भी किया जा सकता था।

बदख़्शा से वापसी

दुर्भाग्यवश हुमायूं की सेना को पीछे लौटते हुए देखकर ऊज़बेकों ने उसका पीछा किया तथा आक्रमण किया। हुमायूं की सेना के पिछले भाग में हिन्दाल, सुलेमान तथा हुसेन क़ुली थे। ऊज़बेकों के आक्रमण से हिन्दाल भाग्य से ही बच सका। हुमायूं पर भी हमला हुआ। एक ऊज़बेक के तीर से हुमायूं का तसर्रुन्ना ज़ेरीन नामक घोड़ा मारा गया। चारों तरफ भगदड़ मच गयी। सेना में शान्ति स्थापित रखना कठिन हो गया। मुग़ल सेना के बहुत-से सैनिक मारे गये। हुमायूं ने सैनिकों को एकत्र कर युद्ध करना चाहा, किन्तु यह असम्भव था। विवश होकर वह काहमर्द, ग़ूरबन्द होता हुआ २३ सितम्बर १५४६ (१ रमज़ान ९५६ हि.) को काबुल पहुँचा।[१२८] मिर्ज़ा सुलेमान बदख़्शां तथा हिन्दाल कुन्दूज़ अन्य अमीर काबुल वापस आये। इस तरह हुमायूं की विजय उसकी पराजय में परिवर्तित हो गयी। इसका प्रमुख कारण उसके सैनिकों तथा अमीरों में अफ़वाहों का आतंक था जो कामरान की गतिविधि तथा उसके अमानुषिक अत्याचारों के कारण था जिसे लोग अभी भूले नहीं थे। हुमायूं का बल्ख़ पर अधिकार करने का स्वप्न समाप्त हो गया और वह फिर कभी पूरा नहीं हो सका।

काबुल लौटकर हुमायूं ने ऐबक में बन्दी बनाये गये ऊज़बेकों को मुक्त कर दिया। उनके स्वदेश लौटने पर पीर मुहम्मद हुमायूं की उदारता सुनकर प्रसन्न हुआ और उसने भी बन्दी बनाये गये हुमायूं के सेवकों को स्वतन्त्र कर दिया।[१२९] हुमायूं ने ख़्वाज़ा ज़लालुद्दीन महमूद को दूत बनाकर ईरान भेजा था। कुछ कारण

[१२७] वही, पृ. २८९-९०; बायज़ीद, पृ. ११३, तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १२०-२१।

[१२८] अकबरनामा, १, पृ. २९०-९१।

[१२९] वही, पृ. २९१।

वश वह क़न्धार में ठहर गया था। उसे वापस बुला लिया गया। इसी समय प्रसिद्ध चित्रकार अब्दुस्समद एवं मीर सैयिद अली ने हुमायूं की सेवा स्वीकार की।[130] मुग़ल चित्रकला के इतिहास में यह महत्त्वपूर्ण घटना थी, क्योंकि इन्हीं चित्रकारों ने मुग़ल चित्रकला की नींव डाली।

कामरान का विद्रोह

जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है, मित्रता होने के पश्चात् कामरान अपनी जागीर कुलाब चला गया था। कुछ ही समय में चाकर बेग से असन्तुष्ट होकर उसने उसे वहां से निकाल दिया। हुमायूं के आदेश पर भी वह बल्ख़ अभियान में नहीं गया तथा जिस समय हुमायूं बल्ख़ अभियान की तरफ गया हुआ था वह काबुल पर आक्रमण करने का विचार कर रहा था। हुमायूं के बल्ख़ अभियान की असफलता तथा उसकी पराजय से उसने लाभ उठाने का निश्चय किया। स्वार्थ लिप्सा से कामरान की बुद्धि कितनी नष्ट हो गयी थी, इसका अनुमान हम इसी से लगा सकते हैं कि ऊज़बेकों को अपनी तरफ मिलाने के लिए उसने सुलेमान की स्त्री के पास प्रेम पत्र लिखा।[131]

जिस समय हुमायूं बल्ख़ की समस्या में व्यस्त था, अस्करी को कुलाब में छोड़कर कामरान ने बदख़्शां पर आक्रमण किया। सुलेमान को तालीक़ान छोड़कर क़िला-ए-ज़फर में शरण लेनी पड़ी। कामरान ने तालीक़ान पर अधिकार कर लिया और यहां से आगे बढ़कर उसने क़िला-ए-ज़फ़र को घेर लिया किन्तु वह उसे अपने अधिकार में न कर सका। उसे वैसे ही छोड़कर उसने कुन्दूज़ पर आक्रमण किया। यहां हिन्दाल ने उसका सामना किया। कामरान ने हिन्दाल को अपनी तरफ मिलाने का प्रयत्न किया, किन्तु हिन्दाल उसकी बातों में न आया। इससे निराश होकर कामरान ने ऊज़बेकों से सहायता मांगी। ऊज़बेक मुग़लों के पारस्परिक झगड़ों से सदा लाभ उठाना चाहते थे। उन लोगों ने उसकी सहायता के लिए

130 वही, पृ. २९२।

131 गुलबदन बेगम (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १९३) कामरान तथा सुलेमान मिर्ज़ा की शत्रुता का वर्णन करती हुई लिखती है कि तरख़ान बेगा नामक एक कुटनी के बहकाने से कामरान ने एक पत्र तथा एक रूमाल सुलेमान की स्त्री हरम बेगम के पास भेजा तथा अपने अत्यधिक प्रेम का उल्लेख किया। हरम बेगम इससे बहुत ही क्रोधित हुई। उसने अपने पति तथा पुत्र को बुलाकर ललकारा कि उनकी नामर्दी के ही कारण कामरान को ऐसा अपमानजनक पत्र लिखने का साहस हुआ है। पिता तथा पुत्र इससे कामरान के शत्रु हो गये।

एक शक्तिशाली सेना भेजी। इस परिस्थिति में हिन्दाल ने बुद्धिमानी से काम लिया। उसने कुछ जाली पत्र कामरान को लिखे जिससे ऐसा प्रकट होता था कि कामरान और हिन्दाल मिलकर ऊज़बेकों का नाश करना चाहते हैं। ऊज़बेक लोग इससे बहुत डरे। कामरान के समझाने पर भी उनका सन्देह नहीं गया तथा उन्होंने उसे त्याग दिया। कामरान को विवश होकर कुन्दुज का घेरा उठाना पड़ा।[१३२]

इसी समय यह भी सूचना मिली कि चाकर बेग ने कुलाब पर आक्रमण कर अस्करी को घेर लिया है और उसे भागकर दुर्ग में शरण लेने पर विवश कर दिया है। कामरान ने सहायक सेना भेजी। इस सहायता के पहुँचने के पश्चात् चाकर बेग ने घेरा उठा लिया। कुन्दूज़ से वापस लौटते समय कामरान के पड़ाव को ऊज़बेक़ों ने हिन्दाल का पड़ाव समझकर लूट लिया। इससे कामरान की बड़ी हानि हुई। विवश होकर उसे अपने साथियों तथा अस्करी के साथ तालीक़ान के दुर्ग में शरण लेनी पड़ी।[१३३] सुलेमान और हिन्दाल कामरान के विरुद्ध बढ़े। निराश होकर कामरान को बदख़्शां छोड़ना पड़ा। यहां से भागकर उसने हज़ारा प्रदेश में शरण ली।

क़िबचाक़ का युद्ध

इसी समय काबुल से कराचा ख़ां ने कामरान को काबुल पर अधिकार करने के लिए आमन्त्रित किया। कामरान ने इस निमन्त्रण से लाभ उठाना चाहा। हुमायूं को धोखा देने के लिए, जिससे वह तैयार न रहे, उसने एक पत्र लिखा तथा क्षमा याचना की।

हुमायूं कामरान की चाल समझ गया था। वह सतर्क था। उसने रक्षा की तैयारी कर ली तथा निकट के दर्रों की रक्षा का प्रबन्ध कर दिया। स्वयं काबुल को अकबर तथा क़ासिम बरलास के नेतृत्व में छोड़कर हुमायूं ग़ूरबन्द के दर्रे की तरफ रवाना हुआ। हुमायूं को अपने अमीरों के असन्तोष का पूर्ण ज्ञान नहीं था। उसने हाज़ी मुहम्मद के परामर्श पर अपनी सेना को दो भागों में बांट दिया। एक भाग हाज़ी मुहम्मद ख़ां के अधीन ज़ूहाक तथा बामियान की रक्षा हेतु भेजा और वह स्वयं एक छोटी टुकड़ी के साथ क़िबचाक़ दर्रे के निकट पड़ाव डाले हुए था। हुमायूं के कई प्रमुख अमीर कामरान से मिले हुए थे। कामरान ने बुद्धि

१३२ अकबरनामा, १, पृ. २६३।

१३३ वही। बाद में यह पता चलने पर कि उन्होंने कामरान को लूटा था ऊज़बेकों ने सामान वापस कर दिया।

से काम लिया। प्रारम्भ में वह जुहाक तथा बमियान के मार्ग से काबुल पर आक्रमण करना चाहता था, किन्तु इस मार्ग की रक्षा हाज़ी मुहम्मद ख़ां एक बड़ी सेना के साथ कर रहा था। कामरान ने किबचाक़ के दर्रे पर आक्रमण करने का निश्चय किया, जिसकी रक्षा हुमायूं एक छोटी कुमुक के साथ कर रहा था।

हुमायूं के कई प्रमुख अमीर कामरान से मिले हुए थे। कामरान के आक्रमण की सूचना मिलते ही हलचल मच गयी, फिर भी कराचा ख़ां यही कहता रहा कि कामरान क्षमा-याचना करने आ रहा है। कामरान के आक्रमण से हुमायूं की सेना छिन्न-भिन्न हो गयी। उसके कई प्रमुख अमीर मारे गये। हुमायूं ने शक्ति भर युद्ध किया किन्तु भागते हुए सैनिकों को रोकना असम्भव था। उसकी सेना पूर्णतया पराजित हो गयी। हुमायूं को युद्ध का मैदान छोड़कर भागना पड़ा। जिस समय वह भाग रहा था, कोलाब के बाबा बेग ने पीछे से उसके ताज पर तलवार से वार किया। वह दुबारा हुमायूं पर आक्रमण करना चाहता था किन्तु फरहत ख़ां[१३४] ने उसे भगा दिया। हुमायूं को किसी प्रकार से बचाकर उसके सैनिक युद्धक्षत्र से बाहर ले गये। हुमायूं को करारी चोट लगी थी। खून तेजी से निकल रहा था जिससे वह इतना कमजोर हो गया कि उसने अपना जीबा[१३५] निकाल कर सब्दल ख़ां नामक अपने नौकर को दे दिया। कामरान के सैनिकों द्वारा पीछा किये जाने के समय भार के कारण उसने हुमायूं का खून से लथपथ जीबा फेंक दिया।

हुमायूं केवल ११ व्यक्तियों के साथ बमियान तथा जुहाक की तरफ रवाना हुआ। बहुत-सा खून निकल जाने के कारण वह इतना कमज़ोर हो गया था कि कठिनाई से चल सकता था। कठोर शीत तथा कमज़ोरी के कारण वह एक स्थान पर बेहोश हो गया। उसे भेड़ के बाल के कपड़े में गरम होने के लिए लपेटा गया। बहुत कठिनाई से हुमायूं एक सुरक्षित स्थान में पहुँचा। सौभाग्य से यहां ३०० सैनिकों के साथ सुल्तान मुहम्मद उससे मिला। यहां आगे का कार्यक्रम निश्चित करने के लिए हुमायूं ने अपनी युद्ध परिषद की बैठक की। कुछ अमीर कन्धार पर, कुछ बदख़्शां पर और अन्य काबुल पर आक्रमण करने की राय दे रहे थे। अन्त में यह निश्चय हुआ कि बदख़्शां की तरफ चला जाए।

१३४ मेहतर सकाही या सकाई जो फरहत ख़ां के नाम से प्रसिद्ध था। क़िपचाक के युद्ध के लिए देखिए, जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १३८-३९; बायज़ीद, पृ. १२७-१३०; अकबरनामा, १, पृ. २६६-६८।

१३५ रेशम अथवा सूती लबादा जिसमें रुई भरी होती है। यह बहुत ही मजबूत होता है, इतना कि तलवार से भी कठिनता से कटता है। जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १३९, नोट।

यहां से हुमायूं ने शाह मुहम्मद को ग़ज़नी की रक्षा के लिए भेजा और अकबर के पास एक पत्र भेजकर उसे अपनी पराजय की सूचना दी। इसके पश्चात् हुमायूं कोहमर्द होता हुआ आगे बढ़ा। सौभाग्य से मार्ग में कुछ व्यापारियों से उसे २,००० घोड़े इस शर्त पर उधार मिल गये कि शत्रुओं पर विजय के पश्चात् उन्हें रुपये दिये जाएंगे।[१३६] इससे हुमायूं को बहुत बड़ी सहायता मिली। हुमायूं आगे बढ़ा। खंज़न नामक गांव के निकट उसकी हिन्दाल से मुलाकात हुई। यहां से उसका दल आगे बढ़ा और अन्दराब पहुँचा। इस तरह तीन महीने इधर-उधर भटकने में बीते।

कामरान का तीसरी बार काबुल पर अधिकार

क़िबचाक़ के युद्ध के पश्चात् कामरान की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी थी। विजय के पश्चात् घायल कराचा खां उसके सामने लाया गया। कामरान ने उसका आदर किया। इसी के पश्चात् कोलाब के बाबा बेग ने आकर हुमायूं के घायल होने की सूचना दी। कामरान इससे बहुत प्रसन्न हुआ। वह यहां से आगे बढ़ा। चारीकारान नामक स्थान पर एक व्यक्ति ने हुमायूं का खून से लथपथ जीबा कामरान को दिया। उससे कामरान को यह विश्वास हो गया कि हुमायूं की मृत्यु हो गयी है। बिना भय के वह आराम से काबुल की तरफ़ रवाना हुआ। उसने बहुत-से अफ़सरों को यह बताकर कि हुमायूं की मृत्यु हो गयी है, अपने पक्ष में कर लिया। काबुल के गवर्नर कासिम खां बरलास ने प्रारम्भ में इस पर विश्वास नहीं किया, किन्तु हुमायूं का खून से लथपथ जीबा देखकर उसे भी विश्वास हो गया कि हुमायूं की मृत्यु हो गयी है। अन्त में उसने दुर्ग कामरान को समर्पित कर दिया।[१३७]

कामरान ने काबुल में संचित हुमायूं के कोष पर अधिकार कर लिया तथा उसके प्रमुख अधिकारियों को बन्दी बना लिया। दीवान ख़्वाजा सुल्तान अली भी बन्दी बनाया गया तथा उसके घर पर भी कामरान ने अधिकार कर लिया। हुमायूं के सहायकों को दण्ड देकर उसने उन्हें डरा दिया। अकबर भी बन्दी बनाया गया। इस तरह कामरान ने काबुल पर पूर्ण रूप से अपना प्रभुत्व

१३६ अकबरनामा, १, पृ. २९९; बायज़ीद पृ. १३१ तथा जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १४२ में घोड़ों की संख्या के विषय में भिन्नता है। जौहर वहां उपस्थित था। वह लिखता है कि प्रारम्भ में ३०० तथा बाद में १७०० घोड़े अर्थात् २,००० घोड़े उनसे लिये गये। अबुल फ़ज़ल के अनुसार इन घोड़ों का मूल्य चौगुना-पांच गुना निश्चित किया गया।

१३७ अकबरनामा, १, पृ. ३०१; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १४५।

स्थापित कर लिया। इसके पश्चात् उसने अपने आदमियों को जागीरें प्रदान कीं। अस्करी को जूयेशाही, कराचा ख़ां को ग़ज़नी, और यासीन दौलत ख़ां को ग़ूरबन्द तथा उसके निकट के स्थान प्राप्त हुए।[१३८]

पारस्परिक सहयोग के लिए शपथ ग्रहण

भारत में निष्कासन के पश्चात् हुमायूं के सम्मुख किसी बाहरी शत्रु से नहीं बल्कि अपने भाइयों, विशेषतया कामरान के साथ संघर्ष करना पड़ा। कामरान उसके भाग्य का कलंक बन गया था। इस पारस्परिक संघर्ष में बहुत ही कम अमीरों पर विश्वास किया जा सकता था। अधिकांश अमीर अपने साथियों के साथ कभी कामरान की तरफ़ रहते और कभी हुमायूं से क्षमा मांगकर उसकी तरफ हो जाते थे। हुमायूं के साथी स्वामिभक्त अमीरों को यह देखकर बड़ा कष्ट होता था कि वे अनेक कठिनाइयों को सहन कर अपने प्राणों को खतरे में डालकर कामरान से युद्ध करते, किन्तु बन्दी बन जाने के पश्चात् कामरान क्षमा मांग लेता और पुनः दोनों भाइयों में सुलह हो जाती। कुछ दिनों के बाद पुनः कामरान विद्रोह करता और इस तरह संघर्ष चलता रहता था।

हुमायूं ने अमीरों को उनके विश्वासघात से रोकने के लिए उन्हें शपथ ग्रहण करने तथा प्रण करने के लिए कहा, जिससे वे उसे धोखा न दें। हाजी मुहम्मद ख़ां ने हुमायूं की बात सुनकर कहा कि हुमायूं तथा उसके सेवकों का सम्बन्ध स्थिर करने के लिए यह आवश्यक है कि बादशाह भी प्रतिज्ञा करे कि उसके शुभचिन्तक उसके लाभ के लिए यदि कोई कार्य करने को कहें तो वह उसे स्वीकार करेगा। हिन्दाल को यह सुझाव पसन्द नहीं आया और उसने कहा कि बादशाह के मान की दृष्टि से यह ठीक नहीं है, किन्तु हुमायूं ने इसे स्वीकार कर लिया। अमीरों तथा हुमायूं ने पारस्परिक सहयोग की शपथ ग्रहण की।[१३९]

हुमायूं तथा अमीरों के नाटकीय ढंग से शपथ ग्रहण करने की घटनाएं कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। हुमायूं तथा उसके अमीरों को एक दूसरे पर विश्वास न था। अमीरों के विश्वासघात से हुमायूं परेशान हो गया था। साथ ही अमीर भी उसकी दया की नीति से तंग आ गये थे। इसलिए दोनों एक दूसरे को शपथ द्वारा बांधना चाहते थे।[१४०] यह कहना कि हुमायूं ने केवल महत्त्वपूर्ण

१३८ अकबरनामा, १, पृ. ३०१।

१३९ वही, पृ. ३०२।

१४० "The great Amirs did not displace the monarch, but placed restraints upon his power. This led, necessarily, to

बातों में ही अपने को सीमित किया था,[१४१] सत्य नहीं है। वास्तव में इससे और भी कठिन परिस्थिति उपस्थित हो जाती है। मतभेद की अवस्था में अमीरों तथा हुमायूं के लिए यह निश्चय करना कि विषय महत्त्वपूर्ण था अथवा नहीं, सरल नहीं था। अमीरों ने भविष्य में इस शपथ को कोई महत्त्व नहीं दिया। इस तरह इसका केवल क्षणिक भावात्मक महत्त्व ही हुआ।

हुमायूं का काबुल पर तीसरी बार अधिकार

कामरान ने काबुल पर अधिकार कर लिया था। हुमायूं के लिए कामरान को पराजित कर काबुल तथा अन्य स्थानों पर अधिकार करना आवश्यक था। तीन महीने में हुमायूं ने अपनी तैयारी पूरी कर ली तथा अन्दराव से आगे बढ़कर वह उश्तुर कराम के समीप पहुँचा। कामरान अपनी सेना के साथ संघर्ष के लिए तैयार था। हुमायूं युद्ध नहीं करना चाहता था। उसने मीर शाह सुल्तान को शान्ति का सन्देश लेकर कामरान के पास भेजा। इस समय कामरान अच्छी स्थिति में था। उसने यह शर्त रखी कि काबुल पर उसका अधिकार रहे और क़न्धार पर हुमायूं का। हुमायूं ने पुनः यह प्रस्ताव रखा कि काबुल अकबर को दे दिया जाय और कामरान की लड़की से अकबर का विवाह कर दिया जाए। कामरान इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार था, किन्तु कामरान के अमीर दोनों भाइयों में सुलह नहीं चाहते थे। उन्होंने इस सन्धि का विरोध किया। कराचा खां ने तो और भी जोरदार शब्दों में कहा कि जब तक वह जीवित रहेगा काबुल पर हुमायूं का अधिकार नहीं होने देगा।[१४२] इस तरह यह सन्धि वार्ता भी टूट गयी। सन्धि वार्ता की विफलता के पश्चात् कामरान की सेना के कई अमीर भागकर हुमायूं की सेना में आ मिले। इनसे हुमायूं को कामरान की स्थिति का पता लगा। उश्तुर कराम[१४३] नामक स्थान पर दोनों

a standing council, which, had not everything else been adverse, might have proved the first step, one element of a better Government". (अर्सकिन २, पृ. ३९०)।

१४१ "The Emperor hence forth found himself in a position which was at once stronger and less independent, he could rely upon the support of his nobles, but he had bound himself to respect their opinion in matters of importance." (ईश्वरीप्रसाद, हुमायूं, पृ. ३०२)।

१४२ अकबरनामा, १, पृ. ३०३, कराचा खां ने कहा: "सरे मा ब काबुल"।

१४३ पंजशीर नदी के निकट एक दर्रा। इसे उश्तुर गिराय भी कहा गया है।

सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। इसमें कराचा ख़ां ने कामरान की तरफ से बहुत ही भीषण युद्ध किया, किन्तु वह गोली से घायल होकर गिर पड़ा। वह पकड़ा गया तथा वहीं मार डाला गया। कामरान के बहुत-से सैनिक मारे गये तथा उसकी सेना पूर्णतया पराजित हुई।[१४४] कामरान को भेष बदलकर कुछ सैनिकों के साथ भागना पड़ा। अस्करी हुमायूं के सैनिकों द्वारा बन्दी बनाया गया तथा कामरान की सेना का बहुत-सा सामान हुमायूं को प्राप्त हुआ।

हुमायूं ने काबुल में प्रवेश किया। यहां अकबर से उसकी मुलाकात हुई। उसे सुरक्षित देखकर हुमायूं को बहुत प्रसन्नता हुई। कामरान ने अकबर पर कोई अत्याचार नहीं किया था। इस खुशी में हुमायूं ने दरिद्रों और अपाहिजों को दान दिया। इसी समय हुमायूं को किताबों के वे बक्स प्राप्त हुए जो क़िबचाक़ के युद्ध में खो गये थे। इन्हें प्राप्त कर हुमायूं को बड़ी प्रसन्नता हुई जिससे उसके पुस्तक प्रेम का पता चलता है।

काबुल पर अधिकार करने के पश्चात् हुमायूं ने भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को जागीरें तथा इनाम दिये। अकबर को चीर्ख नामक गांव मिला जो लुहूगुर के तूमान में था। सुलेमान को बदख़्शां वापस जाने की आज्ञा हुई किन्तु उसका पुत्र इबराहीम रोक लिया गया तथा अकबर की सौतेली बहन बख़्शी बानो से उसकी मंगनी कर दी गयी।[१४५] हाजी मुहम्मद वक़ालते दरेख़ाना (महल का मुख्य अधिकारी) नियुक्त किया गया।

उश्तुर कराम की पराजय के पश्चात् कामरान केवल आठ साथियों के साथ भागा। अफ़ग़ानों ने मार्ग में उसका सामान लूट लिया। भागने में सुविधा के उद्देश्य से कामरान ने अपने बाल तथा दाढ़ी मुड़वा डाली और एक कलन्दर के वेश में मन्दरावर पहुँचा।[१४६] सौभाग्य से यहां उसे १५,००० सेना इकट्ठी करने में सफलता मिली। उसने पुनः अपनी पुरानी नीति के आधार पर हुमायूं के बहुत-से अमीरों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। सेना के साथ कामरान काबुल के आसपास के भागों का चक्कर लगा रहा था। हुमायूं ने बहादुर खां तथा मुहम्मद क़ुली बरलास के नेतृत्व में उसका पीछा करने के लिए एक सेना भेजी। सामना करना असम्भव जानकर कामरान भाग खड़ा हुआ।

१४४ हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १९६; अकबरनामा, १, पृ. ३०३-३०४; जौहर, स्टीवर्ट पृ. १४७।

१४५ अकबरनामा, १, पृ. ३०६।

१४६ ज़लालाबाद से १६ मील उत्तर-पश्चिम में। अकबरनामा, १, पृ. ३०७।

यहां से भागकर उसने अफ़ग़ानिस्तान में शरण ली। हुमायूं की सेना उसे भगाकर काबुल वापस आ गयी।

अस्करी का निर्वासन

कामरान से छुट्टी पाकर हुमायूं ने बदख़्शां के शासक मिर्ज़ा सुलेमान को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। उसने उसके पास उसकी पुत्री शाहज़ादी ख़ानम से विवाह करने का प्रस्ताव भेजा जिससे सम्बन्ध स्थापित हो जाने से बदख़्शां की ओर से उसका हृदय शान्त हो जाय। सुलेमान मिर्ज़ा की स्त्री हरम बेगम प्रारम्भ में साधारण दूत से प्रस्ताव भेजने से अप्रसन्न हुई किन्तु बाद में हुमायूं के यह आश्वासन देने पर कि उसके मान के अनुकूल उचित व्यक्ति भेजे जाएंगे तथा वह स्वयं आकर बहू को ले जाएगा, वह सन्तुष्ट हो गयी। लड़की अभी छोटी थी, इस कारण विवाह कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया।[१४७]

अस्करी बन्दी के रूप में हुमायूं के पास था, किन्तु कब तक उसे इस परिस्थिति में रखा जाएगा, यह एक कठिन प्रश्न था। उससे किसी भी तरह की स्वामिभक्ति की आशा करना व्यर्थ था। हुमायूं ने अस्करी को बदख़्शां भेज दिया (१५५१) तथा उसकी प्रार्थना पर उसे हज्ज करने की अनुमति दे दी। सुलेमान को यह आज्ञा दी गयी कि वह अस्करी को बल्ख़ के मार्ग से मक्का भेज दे। अस्करी मक्का मदीना चला गया और वहीं १५५७-५८ में उसकी मृत्यु हुई।[१४८]

कामरान की भांति अस्करी ने भी हुमायूं को बहुत कष्ट दिया था। गुजरात विजय के पश्चात् हुमायूं ने उसे वहां का शासक नियुक्त किया, किन्तु अपनी मूर्खता के कारण उसने उसे खो दिया। बंगाल अभियान से लौटते समय उसने हुमायूं की अच्छी सहायता की थी। चौसा तथा कन्नौज की पराजय के पश्चात् उसने हुमायूं का साथ पंजाब में ही छोड़ दिया। उसी के भय से हुमायूं को ईरान भागना पड़ा था। क़न्धार का दुर्ग हुमायूं ने उसी से छीना था तथा उसके बारबार विश्वासघात करने पर भी उसे क्षमा ही करता रहा। अन्त में विवश होकर उसे निष्कासित करना पड़ा। वह दयालु तथा सभ्य प्रकृति का

१४७ बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. १६६; अकबरनामा, १, पृ. ३०७; बायज़ीद, पृ. १४१-४४ ने इससे सम्बन्धित घटनाओं का वृहद उल्लेख किया है।

१४८ अकबरनामा, १, पृ. ३०८; फ़िरिश्ता के अनुसार अरब के मार्ग में (९६१ हि. सन् १५५३-५४) अस्करी की मृत्यु हो गयी। अबुल फज़ल की तिथि सही है। उसके एक पुत्री थी। जिसका विवाह अकबर ने यूसुफ़ ख़ां मशहदी से कर दिया। ब्रिग्स, २, पृ. १६८।

था। हुमायूं के साथ संघर्ष होने पर भी अकबर के प्रति उसका व्यवहार अच्छा रहा।

हिन्दाल की मृत्यु

कामरान ने जलालाबाद से बारह मील उत्तर-पश्चिम स्थित चारबाग दुर्ग का घेरा डाला। यह सूचना पाकर हुमायूं ने पुनः उसका पीछा किया। कामरान भागकर पेशावर चला गया। इस बीच हाजी मुहम्मद को कामरान ने अपनी तरफ मिलाने का प्रयत्न किया। सौभाग्य से बैराम खां क़न्धार से काबुल आते समय ग़ज़नी में हाजी मुहम्मद से मिला। उसने समझाकर उसे हुमायूं के पक्ष में कर लिया। इस बीच कामरान दूसरे मार्ग से काबुल के निकट पहुँच गया था, किन्तु यह सूचना पाकर कि दुर्ग के रक्षक सतर्क हैं उसने आक्रमण करने का विचार त्याग दिया और लमग़ान की तरफ भाग गया। हुमायूं ने लमग़ान तक कामरान का पीछा किया। वहां से उसने बैराम खां को कामरान का पीछा करने के लिए भेजा। कामरान को विवश होकर भागकर सिन्ध नदी के उस पार चले जाना पड़ा।

हुमायूं ने इस बीच अनुभव किया कि उसके अमीरों में हाजी मुहम्मद खां तथा शाह मुहम्मद अब भी विश्वासघात करने में लगे हुए हैं। ये दोनों भाई योग्य सैनिक थे, किन्तु इन पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। हुमायूं ने इन्हें दण्ड देने का निश्चय किया। इन पर १०२ अभियोग लगाये गये तथा इन्हें मृत्यु-दण्ड दे दिया गया।[१४६] इस दण्ड से स्पष्ट है कि हुमायूं ने पहले की दयालुता त्याग दी थी। काबुल के निवास के समय शाह अबुल माली के व्यक्तित्व से तथा उसके गुणों से प्रभावित होकर उसने उसे अपनी सेवा में नियुक्त किया। बाद में अबुल माली एक बहुत ही प्रसिद्ध अमीर हुआ। हुमायूं ने यहां शासनीय नियुक्तियां कीं तथा अपने आदमियों में जागीरें वितरित कीं। इस तरह बैराम खां को क़न्धार, हिन्दाल को ग़ज़नी, गिरदीज, बगंश तथा लुहूगुर प्रदान किया गया। कुन्दूज़ मीर बरका एवं मिर्ज़ा हसन को दिया गया। इसी तरह अन्य अमीरों को भी जागीरें दी गयीं। ख़्वाजा ग़ाज़ी को ईरान में दूत बनाकर भेजा गया।[१५०]

१५५१ के प्रारम्भ में एक सेना के साथ कामरान काबुल के निकट पुनः दिखायी

१४६ अकबरनामा, १, पृ. ३०६-११। जौहर इस घटना को कामरान के अन्धे बनाये जाने के बाद वर्णन करता है। जौहर, स्टीवर्ट,पृ. १५६।

१५० अकबरनामा, १, पृ. ३११।

दिया, किन्तु निकट के लोगों से किसी तरह की सहायता की आशा न पाकर उसे बहुत निराशा हुई। हुमायूं ने तत्काल उसका पीछा किया। हिन्दाल सियाह-आब नदी के तट पर अपने सैनिकों के साथ रुका हुआ था। कामरान ने उस पर रात को आक्रमण किया जिसमें उसके बहुत-से सैनिक मारे गये। हुमायूं आगे बढ़ता गया तथा ज़लालबाग़से आगे ज़िरयार[१५१] में पड़ाव डालकर, खाइयां खोदकर उसने अपनी स्थिति मज़बूत कर ली। २३ नवम्बर १५५१ को अफ़ग़ान सैनिकों के साथ कामरान ने हुमायूं के पड़ाव पर आक्रमण किया। अन्धेरी रात में शत्रु और मित्र को पहचानना कठिन था। इस युद्ध में हिन्दाल मिर्ज़ा लड़ता हुआ अफ़ग़ानों द्वारा मारा गया।[१५२] उस समय उसकी अवस्था केवल २३ वर्ष की थी।

युद्ध के उपरान्त हुमायूं ने हिन्दाल के विषय में पूछताछ की, किन्तु किसी व्यक्ति में इस दुःखद समाचार को देने का साहस नहीं था। हुमायूं ने जोर से हिन्दाल को पुकारा किन्तु उसे कोई उत्तर नहीं मिला। बाद में उसे अब्दुल हई ने एक दोहे द्वारा उसकी मृत्यु की सूचना दी। हुमायूं इस समाचार से बहुत ही दुःखी हुआ। बाद में हिन्दाल का अंगूठा हुमायूं के सामने लाया गया। उसे देखते ही हुमायूं ने दुःख से अपना साफा उतारकर जमीन पर फेंक दिया। हिन्दाल पहले जुयीशाही में दफ़नाया गया। बाद में उसकी लाश काबुल ले जायी गयी जहां बाबर की कब्र के निकट उसे दफ़नाया गया।[१५३] उसकी जागीर तथा उसके परिचारक अकबर को दे दिये गये। हिन्दाल की माता तथा बहनों के साथ संवेदना प्रकट करने के लिए हुमायूं ने अकबर को काबुल भेजा। उसे आज्ञा दी गई कि वह वहां से ग़ज़नी चला जाए। हुमायूं स्वयं १५५१-५२ ई. के जाड़े भर बेहसूद में रुका रहा।

हुमायूं के राज्यारोहण के पश्चात् हिन्दाल को अलवर की जागीर प्राप्त हुई थी। वह हुमायूं के साथ बंगाल अभियान में गया था, किन्तु हुमायूं को वहीं छोड़ कर वह आगरा आ गया और यहां उसने स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया। हुमायूं के निष्कासन के समय वह उसके साथ कुछ दिन सिन्ध में रहा। हमीदा बानो से हुमायूं के विवाह के पश्चात् वह हुमायूं को छोड़कर क़न्धार चला गया था।

१५१ काबुल नदी के दक्षिण एक छोटा-सा कस्बा।

१५२ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १४८-४९; अकबरनामा, १, पृ. ३१३; बायज़ीद, पृ. १४६-४७; गुलबदन बेगम ने (हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १९८-९९) अपने भाई की मृत्यु का बहुत ही हृदय विदारक वर्णन किया है।

१५३ अकबरनामा, १, पृ. ३१४; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. १९९; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३१३।

हुमायूं के ईरान से लौटने के पश्चात् वह पुनः हुमायूं से जा मिला तथा उसके साथ लगभग ६ वर्ष (१५४५-५१) रहा तथा उसके लिए लड़ता हुआ शहीद हुआ। तीनों भाइयों में हिन्दाल ने ही हुमायूं को सबसे कम कष्ट दिया था। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर काबुल में मातम छा गया। गुलबदन के शब्दों में वहां की दीवारें तथा दरवाज़े भी आंसू बहा रहे थे। उसकी बहन गुलचेहरा उसके दुःख में रोते-रोते पागल हो गयी।[१५४]

कामरान मिर्ज़ा इस युद्ध के पश्चात्, जिसमें हिन्दाल मारा गया था, भागकर अफ़ग़ानों की शरण में चला गया। यहां इन लोगों ने उसकी सहायता की। प्रत्येक कबीला या ज़मींदार एक हफ्ते तक कामरान को अपने पास रखता और फिर कामरान वहां से हटकर दूसरे स्थान को चला जाता था। इस तरह हुमायूं के लिए कामरान को पकड़ना सरल नहीं था। जब तक जाड़ा रहा, हुमायूं बेहसूद (हजारा प्रदेश) में पड़ा रहा। १५५२ के बसन्त में उसने कामरान पर आक्रमण करने की तैयारी की। कामरान के दो सैनिक पकड़े गये जिनसे हुमायूं को कामरान के निवास का पता चला। हुमायूं ने आक्रमण किया। अफ़ग़ान सैनिकों की संख्या १२,००० के लगभग थी। युद्ध में कामरान पराजित हुआ और अफ़ग़ान बहुत-से जानवर छोड़कर भाग गये जिन पर हुमायूं का अधिकार हो गया। यह जानकर कि अफ़ग़ान कबीले कामरान की मदद कर रहे हैं, उसने एक सेना भेजकर उनके गांवों को नष्ट करने की आज्ञा दी तथा उनकी स्त्रियों को बन्दी बनाया गया। हुमायूं के सैनिक कामरान के पड़ाव तक पहुँच गये, किन्तु अन्धेरा होने के कारण कामरान को न पकड़ सके। उसके स्थान पर उन लोगों ने बेग मुलूक को पकड़ लिया जो बराबर कामरान के साथ रहता था। अफग़ानों की बहुत हानि हुई और यह देखकर कि यह सब कामरान को शरण देने के कारण थी, उन्होंने कामरान को सहायता देनी बन्द कर दी।[१५५]

इस्लाम शाह के दरबार में कामरान

अफग़ानों से किसी भी तरह की सहायता की आशा न पाकर कामरान ने भारत के सूरवंश के शासक इस्लाम शाह के दरबार में जाने का निश्चय किया।

१५४ हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. २००।

१५५ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १५०; अकबरनामा, १, पृ. ३२०-२१; बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. २०२-२०३।

इस समय इस्लाम शाह चेनाब के तट पर बन नामक स्थान में रुका हुआ था। कामरान ने ख़ैबर दर्रे के समीप से शाह बूदाग़ ख़ां को इस्लाम शाह के पास भेजा। सूर शासक ने उसका स्वागत किया तथा कामरान को सूचित किया कि वह उसी क्षेत्र में उसकी प्रतीक्षा करे क्योंकि उसके पास कुमुक भेजने तथा उसके व्यय का प्रबन्ध किया जा रहा था। अभी दूत मिर्ज़ा के पास पहुँचा भी न था कि कामरान ने अली मुहम्मद अस्प को भी इस्लाम शाह के पास भेजा। जब वह बन के निकट पहुँचा तो इस्लाम शाह ने अपने लड़के आवाज़ ख़ां को कुछ अमीरों के साथ उसका स्वागत करने के लिए भेजा।[१५६] कामरान इस स्वागत से प्रसन्न नहीं हुआ तथा उसने शाह बूदाग़ को, जिसने उसे इस्लाम शाह से सहायता लेने के लिए प्रोत्साहित किया था, एकान्त में फटकारा।

जब कामरान इस्लाम शाह से मिला उस समय इस्लाम शाह अपने सिंहासन पर बैठा हुआ था। अभिवादन में देर करते देखकर एक अफ़ग़ान ने उसका गला पकड़कर कोर्निस करने पर विवश कर दिया। दरबार में उसके प्रवेश करने पर एक अधिकारी ने चिल्लाकर कहा, "बादशाह सलामत, एक नज़र काबुल के मुकद्दम के पुत्र कामरान के ऊपर डालें जो आशीर्वाद लेने आया है।" इस्लाम शाह ने प्रारम्भ में उस पर ध्यान नहीं दिया और जब तीन बार कामरान के आगमन के विषय में पुकार लगायी गयी तब उसने कृपा भाव से उसकी तरफ देखा। राजसी निवास के निकट ही कामरान को ख़ेमा दिया गया तथा उसे एक घोड़ा, वस्त्र, दास और एक हिजड़ा देने की आज्ञा दी गयी। इन वस्तुओं से कामरान को अत्यधिक निराशा हुई।[१५७]

बाद में भी कामरान के साथ राजसी व्यवहार नहीं हुआ। बहुत-से लोग उसका मज़ाक उड़ाते थे। कुछ लोग कामरान के दरबार में आने पर "मोर आया, मोर आया" कहकर ज़ोर से चिल्लाते थे। कामरान ने जब अपने सेवक से पूछा तो उसने कहा कि विशेष लोगों के लिए इस तरह का शब्द प्रयोग किया जाता है। कामरान को नाराज़ी तो थी ही; उसने क्रोध में कहा कि "फिर तो इस्लाम शाह प्रथम श्रेणी का मोर है और शेरशाह उससे बड़ा मोर।" कामरान का क्रोध देखकर इस्लाम शाह ने आज्ञा दी कि मिर्ज़ा के साथ मज़ाक

[१५६] अकबरनामा, १, पृ. ३२५, बदायूनी के अनुसार हेमू भी, जो हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय के लिए दिल्ली के तख़्त पर बैठा था, अफ़ग़ान सैनिकों के साथ भेजा गया। मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ३८९।

[१५७] अर्सकिन, २, पृ. ४०८-४०९; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३१६-१७; राय, सक्सेसर्स ऑफ शेरशाह पृ. ३७-३८।

न किया जाए। दोनों व्यक्तियों में कविता पर चर्चा भी होती थी और कभी-कभी इनमें बदमज़गी हो जाती थी। बदायूनी लिखता है कि इसी तरह एक शेर सुनकर इस्लाम शाह बहुत नाराज़ हुआ और उसने कामरान को बन्दी बनाने की आज्ञा दी।[१५८]

पंजाब की समस्याओं को सुलझाने के पश्चात् इस्लाम शाह दिल्ली वापस गया और अपने साथ कामरान को एक बन्दी की भांति लेता गया। कामरान ने ऐसी परिस्थिति में भागने का निश्चय किया। अपने एक विश्वासपात्र सेवक ज़ोगी ख़ां की सहायता से उसने माछीवारा के निकट के राजा बक्खू नामक ज़मींदार से सम्पर्क स्थापित किया। एक रात स्त्री के वेष में बुर्का पहनकर वह भाग गया। घोड़े के व्यापारियों के साथ वह गक्खर लोगों के देश में गया। गक्खर सरदार सुल्तान आदम अब भी हुमायूं के प्रति स्वामिभक्त था इसलिए वह मिर्ज़ा को सहायता देने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने कामरान पर पहरा बैठा दिया तथा हुमायूं को सूचित कर दिया।[१५९]

इस्लाम शाह ने कामरान के साथ सद्व्यवहार क्यों नहीं किया ? आवश्यकता पड़ने पर उसे अपने पक्ष में कर वह हुमायूं के विरुद्ध उसे लड़ा सकता था, किन्तु उसने कामरान के साथ ऐसा व्यवहार किया जिससे कामरान नाराज़ हो गया और उसके हाथ से निकल भागा। इस्लाम शाह का यह व्यवहार कुछ उसकी उद्दण्ड प्रकृति के कारण तथा कुछ इस कारण था कि उसने सिन्ध को अपनी तथा मुग़लों की सीमा मान लिया था। वह सिन्धु नदी के उस पार के राजनीतिक परिवर्तनों में तब तक दिलचस्पी नहीं लेना चाहता था जब तक उसके

१५८ बदायूनी, १, पृ. ३९०, शेर इस प्रकार था :

गर्दिशे गरदूने गरदान गरद ना रा गर्द कर्द
बर सरे अहले तमीज़ा व नाक़ि साँरा मर्द कर्द

अर्थात् आकाश के चक्कर ने महान लोगों को मिट्टी में मिला दिया और योग्य लोगों के सर पर अयोग्य लोगों को बैठा दिया।

कामरान के मुड़े हुए सिर को देखकर इस्लाम शाह ने मज़ाक में कहा, "क्या आपके यहां की स्त्रियां आपकी तरह ही सिर मुड़ाती हैं ?" कामरान ने तुरन्त जबाव दिया, "वे अफ़ग़ान शासकों की तरह मूंछें रखती हैं।" बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. २०४-२०५ नोट ४। दोनों की कविता के विषय में चर्चा के लिए देखिए तारीख़े दाऊदी, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ४९८।

१५९ अकबरनामा, १, पृ. ३२३।

साम्राज्य पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता। कामरान जैसे विश्वासघाती व्यक्ति को सहायता देकर वह व्यर्थ का संघर्ष नहीं चाहता था। गुलबदन के वर्णन का यदि विश्वास किया जाए तो वह कदाचित् कामरान जैसे व्यक्ति को, जो अपने भाई से युद्ध कर रहा हो और जिसने अपने एक भाई को मार डाला हो, घृणा की दृष्टि से देखता था और ऐसे व्यक्ति पर वह किसी भी तरह का विश्वास करने के लिए तैयार नहीं था।[१६०]

कामरान का अन्त

सुल्तान आदम गक्खर की सूचना पाकर हुमायूं ने सिन्ध नदी पार कर गक्खर भूमि में प्रवेश किया। हुमायूं के साथ बड़ी सेना देखकर प्रारम्भ में आदम को भय हुआ कि कहीं हुमायूं उसी से युद्ध न करे। किन्तु जब मुनीम खां ने उसे विश्वास दिलाया कि हुमायूं की नीयत किसी तरह बुरी नहीं है तो आदम ने परहाल नामक स्थान पर हुमायूं का स्वागत किया। कामरान ने हुमायूं के सामने उपस्थित होने में बहाना बनाना चाहा किन्तु उसको जबरदस्ती ले जाकर समर्पण कराया गया।[१६१]

इतना विरोध करने पर भी हुमायूं ने कामरान को अपनी दाहिनी तरफ़ बैठाया और अकबर को बायीं तरफ़। कुछ देर बाद तरबूज लाये गये। एक तरबूज में से हुमायूं तथा कामरान ने और दूसरे में से अकबर तथा अबुल माली ने खाया। अन्य लोगों को भी तरबूज वितरित किये गये। हुमायूं ने आदम गक्खर से पान मंगाकर वितरित किये। यहां से ये लोग पड़ाव में गये। वहां सभा आयोजित हुई। पूरी रात संगीत, वादन तथा आमोद-प्रमोद में व्यतीत हुई। दूसरी रात भी इसी तरह बीती। इस तरह इस शान से जश्न मनाया जा रहा था जैसे कामरान का स्वागत हो रहा हो, क्योंकि वह भी इन जश्नों में भाग ले रहा था।[१६२] तीसरे दिन सुल्तान आदम गक्खर की बधाई में दावत हुई। उसे पताका तथा नक्क़ारा, जो राजसी चिह्न समझे जाते थे, प्रदान किये गये और उसे विदा कर दिया गया। दावत के बाद कामरान का प्रश्न आया। जौहर को कामरान की पहरेदारी का भार सौंपा गया।

कामरान की गिरफ्तारी के पश्चात् हुमायूं के अमीरों में उसके भविष्य के विषय में परामर्श प्रारम्भ हुआ। अधिकतर व्यक्ति यह समझते थे कि ऐसे व्यक्ति

[१६०] हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. २०० ।
[१६१] तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १२८; अकबरनामा, १, पृ. ३२७ ।
[१६२] जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १५२-५३ ।

के लिए मृत्यु-दण्ड ही एकमात्र दण्ड है, किन्तु हुमायूं स्वयं उसे मृत्यु-दण्ड देने के लिए तैयार नहीं था। काज़ियों ने भी अपना मत कामरान को कठोर दण्ड देने के लिए ही प्रकट किया। जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, अमीरों ने हुमायूं से यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि वह ऐसी विशेष परिस्थितियों में उनके मत को स्वीकार करेगा। अमीरों का निश्चयात्मक मत था कि कामरान को मृत्यु-दण्ड दिया जाए। बहुत कठिनाई से हुमायूं ने अन्त में अपनी स्वीकृति दी कि कामरान को अन्धा कर दिया जाए।[१६३]

जौहर लिखता है कि कामरान ने उससे एक दिन दुख से कहा कि उसने रमज़ान का व्रत केवल ६ दिन ही किया है। जौहर से उसने प्रार्थना की कि वह उसके लिए बाकी दिन व्रत कर दे। कामरान को विश्वास था कि उसे मृत्यु-दण्ड दिया जाएगा। जौहर ने उसे आश्वासन दिया कि उसे निराश नहीं होना चाहिए और वह स्वयं रमज़ान के व्रत को पूरा करेगा किन्तु कामरान को विश्वास नहीं हुआ।

कामरान को अन्धा बनाने का काम अली दोस्त को सौंपा गया था। अनेक अपराध तथा अत्याचार करने पर भी कामरान मौत से डरता था। उसने जौहर से पूछा कि क्या उसकी हत्या की जाएगी। जौहर ने उत्तर दिया, "पादशाही के स्वभाव को पादशाह ही जानता है।" अबुल फ़ज़्ल लिखता है कि जब उसे अन्धा करने वाले उसके निकट पहुँचे तो कामरान ने समझा कि वे उसकी हत्या करने आये हैं तथा वह तत्काल मुक्का तानकर उनकी तरफ दौड़ा। अली दोस्त ने कहा, "मिर्ज़ा धैर्य धारण करो। हत्या का आदेश नहीं है। घबराहट किस कारण है? इस कारण कि तुमने इसके पूर्व सैयिद अली एवं अन्य निरपराध लोगों को अन्धा कर दिया था, अतः तुम्हें भी अन्धा बना दिया जाएगा।" कामरान ने यह सुनकर समर्पण कर दिया। वह लेट गया। उसके मुंह में कपड़ा ठूंस दिया गया। उसकी आंखों पर पचास बार नश्तर लगाये गये। किन्तु कामरान ने उफ़ तक नहीं किया। यहां तक कि उस आदमी से जो उसके घुटनों को दबाये हुए था, उसने कहा कि "तू घुटनों पर क्यों बैठा है? मेरे कष्टों को बढ़ाने से तुम्हारा क्या लाभ है?" उसके बाद उसकी खून से तर आंखों पर नमक छिड़का गया। वह इस दर्द को न सह सका तथा अल्लाह अल्लाह कहकर कराह उठा। उसने कहा कि उसने जो कुछ किया था उसका बदला उसको मिल गया।[१६४] जौहर, जो उस समय

[१६३] तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १२८; हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. २०१; बायज़ीद, पृ. १५६-५७; अकबरनामा, १, पृ. ३२७-२८।

[१६४] जौहर, स्टीवर्ट, १५४-५५; उसकी आंखों में नश्तर लगाने की तिथि

उपस्थित था, इस दृश्य को देखकर वहां खड़ा न रह सका और अनुमति के बिना ही अपने ख़ेमे में चला गया।

अन्धा बनाये जाने के पश्चात् कामरान काबुल, जहां उसने शान से राज्य किया था, जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने अपनी इच्छा प्रकट की कि उसे मक्का जाने की आज्ञा दी जाए। सिन्धु नदी के निकट कामरान ने हुमायूं से विदा होने के पहले मिलने की इच्छा प्रकट की। इस शर्त पर उसे मिलने की इजाज़त दी गयी कि कामरान ऐसी दुखमय भावना न प्रकट करेगा जिससे हुमायूं को कष्ट हो। कामरान की आंखों पर रूमाल बांध दिया गया और वह हुमायूं के सामने लाया गया। उसे देखते ही हुमायूं अपने आंसू न रोक सका, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कामरान ने अपने को जब्त रखा। कामरान ने हुमायूं के स्वागत में एक कविता पढ़ी[१६५] और उसने कहा कि जो कुछ उस पर गुजरी है वह उसी के बुरे कर्मों के कारण है। हुमायूं ने कामरान से दुःख से कहा कि जो कुछ हुआ वह उससे शर्मिन्दा है लेकिन वह स्वयं इसके लिए उत्तरदायी नहीं है। हुमायूं ने कामरान के साथ कुरान का पहला अध्याय पढ़ा। कामरान ने हुमायूं से प्रार्थना की कि उसके परिवार तथा आश्रितों की देखभाल हुमायूं करे। हुमायूं के चले जाने के पश्चात् कामरान फूट-फूटकर रोने लगा।[१६६]

कामरान की विदाई का दृश्य एक हृदय-विदारक दृश्य था। जिसने अपने जीवन में भाई को भाई न समझा और अपने स्वार्थ के लिए हत्याएं करने में नहीं चूका, आज वही अन्धा कामरान अपने भाग्य पर रो रहा था। उसके अनेक सेवकों में केवल एक चिलमा कोका[१६७] जाने के लिए तैयार हुआ। सबसे ऊंचा आदर्श उसकी पत्नी चोचक बेगम का था। उसने अपने अन्धे पति के साथ निष्कासन में जाने का निश्चय किया। मक्का जाते समय वे लोग थट्टा से गुज़रे।

अबुल फ़ज़ल के अनुसार ९६० हि. का अन्त (नवम्बर, १५५३) था। अर्सकिन जौहर के इस वाक्य के आधार पर कि रमज़ान महीने के ६ दिन बीत गये थे, 'रमज़ान ९६० हि. (१७ अगस्त १५५३), निश्चित करते हैं। अकबरनामा, १, पृ. ३२८-३१; अर्सकिन २, पृ. ४१३।

१६५ बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. २०८।

१६६ बायज़ीद, पृ. १५९; अकबरनामा, १, पृ. ३३०-३१।

१६७ यह मिर्ज़ा कामरान के कोका हमदम का पुत्र था। कामरान की मृत्यु के बाद यह हिन्दुस्तान लौट आया। अकबर के समय में इसे खाने-आलम की उपाधि दी गयी। मार्च १५७५ में अफ़ग़ानों से युद्ध करता हुआ यह मारा गया।

वहां बेगम के पिता शाह हुसेन ने उसे रुकने के लिए कहा, किन्तु वह तैयार नहीं हुई। उसने उत्तर दिया कि "आपने मुझे मिर्ज़ा के सुपुर्द उस समय किया था जब मिर्ज़ा अन्धे न थे। इस समय यदि मैं साथ छोड़ दूं तो दुनिया यही कहेगी कि शाह की लड़की ने दुख में अपने पति का साथ छोड़ दिया और मेरे नाम को बुरा कलंक लगेगा।"[१६८] यह कहकर वह कामरान के साथ जाकर उसकी नाव में बैठ गयी।

कामरान यहां से मक्का चला गया और वहीं ५ अक्तूबर १५५७ को अपने जीवन के ४९वें वर्ष में उसकी मृत्यु हो गयी।[१६९]

कामरान के चरित्र का सिंहावलोकन

कामरान हुमायूं के दुख का एक बहुत बड़ा कारण था। लगभग २० वर्ष तक उसने हुमायूं के साथ संघर्ष किया। निष्कासन काल में तो हुमायूं का सारा समय वास्तव में कामरान के साथ युद्ध करने में ही बीता।

कामरान को बाबर का स्नेह प्राप्त था और उसने उसे हर तरह से शिक्षित और योग्य बनाने का प्रयत्न किया था। कामरान में कुछ गुण थे जिनका उचित प्रयोग करने पर वह एक सफल शासक बन सकता था तथा जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता था। वह एक बहादुर व्यक्ति था और युद्ध में अपने प्राणों की बाज़ी लगा देने में कभी भयभीत नहीं होता था। उसने बाबर के समय युद्धों में भाग लिया था और बाद में भी अफ़ग़ानों, ईरानियों तथा मध्य एशिया की अनेक जातियों के साथ उसका संघर्ष हुआ। १५३५ में उसने साम मिर्ज़ा तथा ईरानी सेना को भी पराजित किया था। उसके युद्ध के समय की घटनाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कामरान में व्यक्तियों तथा भिन्न-भिन्न जातियों को अपने पक्ष में करने की अद्‌भुत क्षमता थी। इसी कारण अफ़ग़ानों ने उसे जीजान से सहायता दी तथा काबुल पर उसने बारबार अधिकार किया। कामरान कवि भी था और इस्लाम शाह के दरबार में दोनों के बीच कविता पर वादविवाद भी हुआ। तारीख़े दाऊदी का लेखक अब्दुल्ला लिखता है कि कामरान मिर्ज़ा एक उच्च कोटि का कवि था तथा इस्लाम शाह से उसकी इस विषय पर वार्ता होती रहती थी। प्रथम मुलाकात में कामरान की योग्यता की परीक्षा लेने के लिए इस्लाम शाह ने तीन दोहे कहे तथा कामरान से उनकी

[१६८] तारीख़े मासूसी, पृ. १८३।

[१६९] तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १२९ नोट २; अर्सकिन, २, पृ. ४१९; अकबरनामा, १, पृ. ३३१।

समीक्षा करने को कहा। कामरान ने उत्तर दिया कि उसका एक दोहा इराक के कवि का, दूसरा हिन्दुस्तान के कवि का तथा तीसरा अफ़ग़ान कवि का रचा हुआ है। इस्लाम शाह ने सबके सामने कामरान की योग्यता की प्रशंसा की।[१७०] इससे कामरान की साहित्यिक अभिरुचि का पता चलता है।

कामरान के चरित्र के एक बहुत बड़े गुण का पता हमें उसके अकबर के प्रति व्यवहार से चलता है। अकबर कई वर्षों तक उसके पास रहा और ऐसी परिस्थिति में जब अकबर के पिता के साथ उसका भयंकर युद्ध चल रहा था, उसने कभी भी अकबर की हत्या करने का प्रयत्न नहीं किया। यदि वह चाहता तो किसी भी समय अकबर की हत्या कर सकता था। केवल एक बार अपनी रक्षा के हेतु उसने अकबर को काबुल के किले की दीवार पर रख दिया था जिसका वर्णन किया जा चुका है। वह हुमायूं से लड़ने के लिए तैयार था किन्तु उसके पुत्र के प्रति उसकी कोई दुर्भावना नहीं थी।

कामरान के चरित्र के कुछ विशेष दोष स्पष्ट रूप से हमारे सम्मुख आते हैं। वह बहुत ही स्वार्थी व्यक्ति था और अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए नीच से नीच कार्य करने के लिए तत्पर रहता था। वह अपनी बातों पर अटल नहीं रहता था और अधिकतर उसकी बातें धोखे से भरी होती थीं। हुमायूं के प्रति बारबार क्षमा-याचनाएं इस बात की स्पष्ट उदाहरण हैं। कामरान क्रूर भी था। उसने काबुल के निवासियों के प्रति जिस तरह का व्यवहार किया वह उसकी क्रूरता का स्पष्ट प्रमाण है। प्रारम्भ में वह शराब से घृणा करता था किन्तु बाद में उसने शराब पीना प्रारम्भ किया और इसमें उसने अति कर दी। कामरान में राजनीतिक दूरदृष्टि का अभाव था। यदि उसने बुद्धिमानी से काम लिया होता और अपने भाई से सहयोग कर सूर वंश के शासकों से युद्ध किया होता तो इस सम्मिलित शक्ति का सामना कदाचित् शेरशाह भी नहीं कर पाता। दोनों भाइयों के संघर्ष में हज़ारों व्यक्ति मारे गये। यदि कामरान को हुमायूं का दुर्दैव एवं उसके दुर्भाग्य का प्रतीक कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।

इन सब त्रुटियों के होते हुए भी कामरान के चरित्र का एक आन्तरिक भाग है, जिससे उसकी सहृदयता प्रकट होती है। हुमायूं के सामने आने पर वह ऐसा

१७० इलियट तथा डासन, ४, पृ. ४९८; कामरान की कविताओं का एक संग्रह एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के पुस्तकालय में है। देखिए, मौलवी अब्दुल वली का लेख, इण्डियन ऐन्टीक्वेरी, (१९१४),पृ. २१९-२४।

व्यवहार करता था कि वह हर तरह से उससे सहयोग करने के लिए तैयार है, किन्तु परोक्ष में यह शुभ भावना दुर्भावना में परिणत हो जाती थी।

कामरान का दण्ड तथा हुमायूं

कामरान की विदाई की घटनाओं ने हुमायूं को उद्वेलित तथा दुखी कर दिया था। उसे बराबर यही अनुभव होता था कि अपने भाई को अन्धा बनाकर उसने बहुत बड़ा पाप किया। इसी कारण काबुल पहुँचने पर जब स्त्रियों ने कामरान के दण्ड तथा निष्कासन पर उसे बधाइयां दीं तो उसने दुखी होकर कहा कि यह बधाई का अवसर नहीं है, क्योंकि कामरान की आंखों पर सलाई फेरना उसकी अपनी आंखों पर सलाई फेरने जैसा था।[१७१] यह सोचकर कि कोई उसे दोषी न ठहराये उसने काश्ग़र के शासक अब्दुर रशीद को भी पत्र लिखकर इन घटनाओं की सूचना दी।[१७२]

कामरान का निष्कासन हुमायूं के जीवन का एक युग समाप्त करता है। १५ वर्षों से जो संघर्ष चलता आ रहा था उसका अन्त हो गया। हुमायूं के भविष्य निर्माण की आन्तरिक बाधा समाप्त हो गयी।

कश्मीर विजय का विचार तथा काबुल वापसी

हुमायूं ने इसी समय जनजूहा क़बीले के जमींदार बीराना पर आक्रमण किया, जिसने किसी भी शासक को समर्पण नहीं किया था। वह वीरता से लड़ा, किन्तु पराजित हुआ। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि इस युद्ध में मुग़लों की तरफ से ख़्वाजा क़ासिम महदी तथा कुछ अन्य लोग शहीद हुए। आदम गक्खर के कहने पर हुमायूं ने उसे क्षमा कर दिया तथा उसकी भूमि उसे लौटा दी गयी।[१७३] यहां से आगे बढ़कर हुमायूं ने निकट के जमींदार राजा शंकर के पचास गांवों को लूटा तथा बहुत-से आदमियों को बन्दी बनाया। उनका धन तथा सम्पत्ति प्राप्त कर इन बन्दियों को पुनः स्वतन्त्र कर दिया गया। इससे सेना को काफी धन मिला।[१७४]

कश्मीर विजय के पश्चात् हैदर मिर्ज़ा ने हुमायूं को वहां आने के लिए निमन्त्रित किया था जिसका वर्णन किया जा चुका है। उस समय हुमायूं वहां

१७१ अकबरनामा, १, पृ. ३३२।
१७२ वही।
१७३ तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १२९; अकबरनामा, १, पृ. ३२९; जौहर, स्टीवर्ट पृ. १५६।
१७४ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १५६।

जाने की परिस्थिति में न था, जिससे वह वहां न जा सका। उसने अब कश्मीर विजय करने का निश्चय किया, किन्तु उसके सहायक अमीर इसके लिए तैयार नहीं थे। हैदर मिर्ज़ा की मृत्यु हो चुकी थी। भय था कि हुमायूं के कश्मीर में प्रवेश करने के पश्चात् अफ़ग़ान पहाड़ी दर्रों को बन्द कर हुमायूं की आक्रमणकारी सेना तथा काबुल का सम्बन्ध तोड़ देंगे जिससे कठिन परिस्थिति उपस्थित हो जाएगी। मुग़ल सेना की संख्या कम थी तथा अफ़ग़ान बड़ी संख्या में रोहतास के दुर्ग में एकत्र हो रहे थे। हुमायूं के कश्मीर प्रवेश करने पर वे सरलता से उसकी पिछली रक्षा पंक्ति तोड़ देते। इन कारणों का हवाला देकर आदम गक्खर ने भी कश्मीर पर आक्रमण न करने को परामर्श दिया। अमीरों ने भी कश्मीर को कूप तथा बन्दीगृह बताकर उसकी निंदा की और कश्मीर अभियान का विरोध किया। हुमायूं का आक्रमण करने का निश्चय सुनकर अधिकांश सैनिक भागकर काबुल चले गये।[१७५] हुमायूं को विवश होकर काबुल लौटने की आज्ञा देनी पड़ी। कुछ दूर चलकर कामरान से अन्तिम बार उसकी मुलाकात हुई जिसका वर्णन किया जा चुका है। यहां से उसने सिन्धु नदी पार की तथा बिकराम के दुर्ग (पेशावर) का, जिसे अफ़ग़ानों ने नष्ट कर दिया था, पुनः निर्माण करने की आज्ञा दी। काम बड़ी शीघ्रता से हुआ। दुर्ग में सिकन्दर ख़ां ऊज़बेक को नियुक्त कर[१७६] हुमायूं काबुल की तरफ रवाना हुआ तथा ९६१ हि. के प्रारम्भ (दिसम्बर १५५३ ई.) में वहां पहुँचा।

[१७५] अकबरनामा, १, पृ. ३२९-३०; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १५७; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १२९।

[१७६] तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १२९-३०; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १५८; अकबरनामा, १, पृ. ३३१-३२।

१०. द्वितीय राजत्व तथा मृत्यु

हुमायूं के प्रति शेरशाह की नीति

एक तरफ़ मुग़ल साम्राज्य का पतन हुआ तथा हुमायूं का निर्वासन और दूसरी तरफ़ मुग़ल साम्राज्य की नींव पर सूर अफ़ग़ानों ने एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। चौसा तथा कन्नौज के युद्धों में हुमायूं को पराजित करने के पश्चात् शेरशाह पूर्णरूप से भारत का शासक बन गया। उसने अपने राज्यकाल में मालवा, मुल्तान, सिन्ध इत्यादि भागों को जीतकर, उत्तरी भारत को एक सूत्र में बांध दिया और एक संगठित, सुव्यवस्थित शासन प्रणाली की भी स्थापना की।[1] शासनकर्ता के रूप में शेरशाह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह कथन कि मुग़ल साम्राज्य की नींव हुमायूं के निष्कासन काल में पड़ी, इस अर्थ में सत्य प्रतीत होता है, कि जो शासन प्रणाली तथा शेरशाह ने हुमायूं के निष्कासन काल में स्थापित की वही मुग़ल साम्राज्य के संगठन की आधारशिला भी बनी तथा बाद में भी उसी आधार पर देश का संगठन हुआ।

हुमायूं तथा शेरशाह के सम्बन्धों का उल्लेख हम पिछले अध्यायों में कर चुके हैं। हुमायूं की पराजय के पश्चात् शेरशाह मुग़ल सम्राट के प्रति तीन तरह की नीति वरत सकता था :

(१) आक्रमणकारी नीति, अर्थात् वह काबुल, क़न्धार तथा अन्य प्रदेश जो मुग़लों के अधिकार में थे, उन्हें युद्ध द्वारा अपने अधिकार में कर लेता।

(२) कूटनीतिक नीति, अर्थात् शान्ति की नीति बरतते हुए कामरान या अन्य किसी व्यक्ति को सहायता देकर हुमायूं को युद्ध में व्यस्त रखता।

(३) रक्षात्मक नीति, अर्थात् हुमायूं को सिन्धु नदी के पश्चिम भगाकर

[1] शेरशाह के शासन प्रबन्ध के लिए देखिए कानूनगो, शेरशाह, पृ. ३४७-४१५; शरन, दि प्राविन्सियल गवर्नमेन्ट ऑफ दि मुग़ल्स, पृ. ४९-६०, तथा १६१-६४; ए. एल. श्रीवास्तव, शेरशाह एण्ड हिज़ सक्सेसर्स, पृ. ५६-९१।

अपने साम्राज्य की सीमा को पूर्णतया सुरक्षित कर देता, जिससे इन भागों पर हुमायूं के आक्रमण का भय नहीं रहता।

शेरशाह बुद्धिमान शासक था। उसने विचार किया कि सिन्धु नदी के पश्चिमी भागों पर आक्रमण करने तथा उन्हें अपने साम्राज्य में मिलाने का प्रयत्न खतरे से खाली नहीं था। इस आक्रमण के परिणामस्वरूप उसका अपना साम्राज्य भी खतरे में पड़ जाता। इसके अतिरिक्त जब हुमायूं को ईरान के शाह से सहायता मिल गयी, उस परिस्थिति में हुमायूं से युद्ध करने का अर्थ ईरान के शाह के साथ युद्ध करना होता। इस कारण शेरशाह ने हुमायूं को काबुल या सिन्धु नदी के पश्चिमी भागों से निकालने का प्रयत्न नहीं किया। शेरशाह हुमायूं के शत्रुओं, विशेषतः उसके भाइयों को सहायता देकर उसे आन्तरिक समस्याओं में ही व्यस्त रख सकता था। उसने कश्मीर में यही नीति अपनायी थी तथा वह काज़ी चक को हैदर मिर्ज़ा के विरुद्ध बराबर लड़ाता रहा। हुमायूं के साथ उसे इस तरह की नीति की आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि कामरान तथा उसके भाई स्वयं ही आपस में लड़ रहे थे। यदि शेरशाह के दरबार में कामरान उसी तरह सहायता के लिए उपस्थित हुआ होता, जैसे इस्लाम शाह के दरबार में गया था, तो कदाचित् शेरशाह को इस नीति पर अमल करने का अवसर मिलता। तीसरी नीति अपनी सीमा को सुरक्षित रखने तथा हुमायूं पर सतर्क दृष्टि रखने की थी, जिससे वह पुनः अपना साम्राज्य वापस करने के प्रयास में सफल न हो सके। शेरशाह ने इसी नीति को अपनाना ठीक समझा तथा वह इसमें सफल हुआ।

हुमायूं की पराजय के पश्चात् शेरशाह उसे सिन्ध नदी के उस पार भगा देना चाहता था और हुमायूं की इस प्रार्थना को, कि पंजाब उसे दे दिया जाय, उसने अस्वीकार कर दिया। जब तक हुमायूं सिन्ध तथा राजपूताने में रहा, शेरशाह सदा सतर्क रहा। मालदेव से हुमायूं के मिलन की सम्भावना देखते ही उसने तत्काल मालदेव पर आक्रमण करने की तैयारी कर ली। इससे यह स्पष्ट है कि शेरशाह हुमायूं को किसी भी तरह ऐसी परिस्थिति में नहीं देखना चाहता था जिससे उसके राज्य को भय हो। हुमायूं तथा मुग़लों से अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए उसने गक्खर के भागों को जीतकर अपने राज्य में मिलाने का प्रयत्न किया। रोहतास का प्रसिद्ध दुर्ग उसने कश्मीर से हैदर मिर्ज़ा तथा अफ़ग़ानिस्तान की तरफ से मुग़लों के आक्रमण से बचाव के लिए बनाया। शेरशाह ने मुल्तान और सिन्ध को जीतकर अपने राज्य की सीमा को और भी शक्तिशाली बना दिया। इस तरह शेरशाह को अपने साम्राज्य को संगठित करने

का अवसर मिला। जब तक शेरशाह जीवित रहा हुमायूं अपनी ही समस्याओं में व्यस्त रहा तथा सूर साम्राज्य पर आक्रमण करने का उसे न अवसर मिला, न सुविधा।

हुमायूं तथा इस्लामशाह

दुर्भाग्यवश शेरशाह अधिक दिनों तक जीवित न रह सका। कालिंजर के दुर्ग के निकट अत्यन्त आकस्मिक परिस्थितियों में उसकी मृत्यु हो गयी (२२ मई १५४५)। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका दूसरा पुत्र जलाल ख़ां इस्लाम शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। इस्लाम शाह एक योग्य शासक था और उसने शेरशाह के साम्राज्य को और भी शक्तिशाली बनाया। वह योग्य पिता का योग्य उत्तराधिकारी था। उसे साहित्य में रुचि थी। साहित्यिक गोष्ठी में वह वाक्चातुर्य तथा रसिकता के साथ अरबी तथा फ़ारसी की कविताओं पर दाद देता था। वह स्वयं भी आशु कवि था। धार्मिक ग्रन्थों का भी उसने अध्ययन किया था तथा इन विषयों पर वह विचार-विमर्श करता रहता था। मध्य युग के उच्च वर्ग में मद्यपान तथा अन्य व्यसनों का विशेष प्रचार था। किन्तु इस्लाम शाह का जीवन संयमित था। वह अच्छा सैनिक था तथा अपने सैनिक गुणों के लिए प्रसिद्ध था। इन गुणों के होते हुए भी वह अभिमानी, अविश्वासी, प्रतिहिंसक तथा निर्दयी था। कभी-कभी उसका व्यवहार इतना पाशविक होता कि देखने वालों को कंपा देता था।

इस्लाम शाह एक अच्छा शासक था। उसने शरियत के आधार पर ८० पृष्ठों का एक कानून का कोड तैयार कराया। यह कोड राज्य के प्रत्येक जिले में भेज दिया गया जिससे राजसी कर्मचारियों को न्याय करने में सुविधा हो। शेरशाह ने दो-दो मील पर सरायों (विश्राम गृहों) की स्थापना की थी। इस्लाम शाह ने इनके बीच एक-एक और सराय बनवायी। सेना में सुधार कर उसने उसे गति तथा शक्ति प्रदान की। अफ़ग़ान अमीरों की शक्ति को उसने नष्ट करने का प्रयत्न किया। उनके सभी हाथी छीन लिये और उनके पास केवल हथनियां रहने दीं। बहुत-से अमीर अपने अखाड़े में नर्तकियां रखते थे। उसने इन्हें भी छीन लिया जिससे अमीरों का सामाजिक मनोरंजन भी समाप्त हो गया। उसके शासन काल में साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में प्रत्येक शुक्रवार को दरबार होता था। वहां एक शामियाने में तख़्त पर इस्लाम शाह का जूता तथा तूणीर रखा जाता तथा अमीरों को उसके सामने झुककर वैसा ही अभिवादन करना पड़ता जैसे वहां इस्लाम शाह ही बैठा हो। वहां राजसी नियम तथा आज्ञाएं सुनायी जाती थीं।[२]

[२] इस्लाम शाह के नियमों के लिए देखिए इलियट तथा डासन, ५, पृ. ४८६-

अफ़ग़ान, जो अपनी उद्दण्डता, घमंड, तथा लड़ाकू आदतों के लिए प्रसिद्ध थे, ऐसी आज्ञाओं से बहुत ही नाराज हुए। परिणामस्वरूप उन्होंने विद्रोह कर दिया। इन विद्रोहों को दबाने में इस्लाम शाह का बहुत समय लगा। उसने शक्ति, क्रूरता तथा बुद्धिमानी से इन विद्रोहियों को दबा दिया। इनमें नियाज़ियों का विद्रोह सबसे कठोर था। इसी समय महदवी आन्दोलन ने भी उसके साम्राज्य में जोर पकड़ा। इस्लाम शाह ने इसके नेता के प्रति भी ऐसा ही कठोर व्यवहार किया।[3] नियाज़ियों के प्रति निर्दयता और अफ़ग़ान सैनिकों के प्रति रूखे व्यवहार के कारण उसे मार डालने के दो बार प्रयत्न हुए, किन्तु दोनों बार वह बच गया।

हुमायूं के प्रति इस्लाम शाह ने भी शेर शाह की ही तरह आक्रमणकारी नीति नहीं अपनायी। कामरान के सहायता मांगने के लिए आने पर भी उसने उसे सहायता देना उचित नहीं समझा। उसकी नीति सतर्कता और सीमा रक्षा की थी। पश्चिमी पंजाब की रक्षा के सम्बन्ध में उसे नियाज़ी अफ़ग़ानों से युद्ध करना पड़ा और उन्हें नष्ट करने में उसे सफलता प्राप्त हुई। गक्खर लोगों पर आक्रमण कर उसने उनकी भूमि को रौंद डाला। उसने शेरशाह द्वारा प्रारम्भ किया गया रोहतास का दुर्ग पूरा किया। इसके अतिरिक्त उसने मानकोट के दुर्ग का निर्माण किया। इस्लाम शाह हुमायूं की गतिविधि के प्रति इतना सतर्क था कि अपनी सीमा पर वह उसका विरोध करने के लिए प्रत्येक दृष्टि से तैयार रहता था। १५५३ ई. में जब हुमायूं सिन्धु नदी पार कर कामरान को बन्दी बनाने के लिए नीलाभ पहुँचा उस समय इस्लाम शाह बीमार था और उसके गले में दवा के लिए जोंकें लगायी गयी थीं। उसने जोंकों की पट्टी उतार कर फेंक दी और अपनी सेना को तुरन्त सीमा की तरफ बढ़ने की आज्ञा दी। यह जानकर कि बहुत बड़ी तोपों को सीमा तक पहुँचाने के लिए हाथी उपलब्ध नहीं हैं, उसने अफग़ान सैनिकों का जानवरों की तरह प्रयोग किया। उसकी ६० तोपों के तोपख़ाने को घसीटने के लिए ६०,००० अफ़ग़ान सैनिकों का प्रयोग हुआ और १२ मील प्रतिदिन की गति से उसकी सेना सीमा की तरफ बढ़ी। हुमायूं के वापस लौटने की सूचना पाकर इस्लाम शाह वहां लुधियाने से ग्वालियर वापस चला गया।

उसकी गति ने हुमायूं को भी आश्चर्यचकित कर दिया। इस घटना से

८८; ए. एल. श्रीवास्तव, शेरशाह एण्ड हिज़ सक्सेसर्स, पृ. ११५-१८; राय, सक्सेसर्स ऑफ शेरशाह, पृ. ५४-६०।

इस्लाम शाह की सतर्कता स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है ।[3] जब तक इस्लाम शाह जीवित रहा, हुमायूं को भारत पर आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ ।

सूर साम्राज्य का विघटन

लगभग ९ वर्ष शासन करने के पश्चात् ३० अक्टूबर १५५३ को भगन्दर की बीमारी से इस्लाम शाह की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका १२ वर्षीय पुत्र फीरोज़ गद्दी पर बैठा, किन्तु उसका शासन अधिक दिन नहीं रहा। उसके मामा और चचा मुबारिज़ ख़ां ने उसे मार डाला और स्वयं मुहम्मद आदिल शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। मुहम्मद आदिल शाह के राजत्व काल (१५५३-५७) में सूर साम्राज्य का विघटन हो गया।

शेरशाह ने जिस राष्ट्रीय भावना को जागृत किया था वह समाप्त हो गयी। अफ़ग़ान अमीरों की दबी वासनाएं तथा महत्वाकांक्षाएं पुनः जागृत हो गयीं। मुबारिज़ ख़ां व्यभिचारी और मूर्ख था। एक अच्छे गायक के अतिरिक्त उसमें अन्य कोई भी गुण नहीं थे। क्षणिक प्रसिद्धि के लिए वह अपव्यय करता। उदाहरणतया, उसने ५०० रुपये मूल्य का सोना लगाकर तीर बनवाये थे। वह ये तीर चलाता और जो ये तीर प्राप्त कर उसके सामने उपस्थित होता उसे ५०० रुपये दिये जाते। उसकी इन मूर्खताओं के कारण लोग उसे आदिल शाह के स्थान पर अंधली (अन्धा) या अदिली (मूर्ख) कहते थे। सौभाग्य से उसके एक हिन्दू अधिकारी हेमू ने उसकी बड़ी सहायता की। हेमू प्रारम्भ में रिवाड़ी में शोरे का सौदागर था, इस्लाम शाह ने उसे बाज़ारों का निरीक्षक नियुक्त कर दिया था। अपनी योग्यता से धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते वह अत्यन्त शक्तिशाली तथा वास्तविक शासन कर्ता बन गया।

आदिल शाह ने अफ़ग़ान नेताओं के विरुद्ध इस्लाम शाह की नीति का अनुसरण किया। उसने नये अमीरों को प्रोत्साहित किया तथा पुराने अमीरों को, जिनसे उसे भय था, दबाने का प्रयत्न किया। ग्वालियर में जागीर वितरण के समय दरबार ही में तलवारें चल गयीं। आदिल शाह ने कन्नौज की जागीर शाह मुहम्मद फ़रमूली से लेकर सरमस्त ख़ां सरवानी को दे दी। इससे फ़रमूली बहुत नाराज़ हुआ। शाह मुहम्मद फरमूली के पुत्र सिकन्दर ने दरबार ही में सरमस्त को मार डाला। वह स्वयं मारा गया और आदिल शाह को जनानखाने में भागकर अपने प्राण बचाने पड़े।[4] इस घटना के पश्चात् हालत तेज़ी से बिगड़ने लगी।

[3] इस्लाम शाह के विद्रोह दमन तथा महदवी आन्दोलन के लिए देखिए राय, सक्सेसर्स ऑफ़ शेरशाह, पृ. १०-३६; त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फॉल,

ताज़ खां कर्रानी ने विद्रोह किया । आदिल शाह ने छिबरामऊ में उसे पराजित किया । वहां से भागकर ताज खां चुनार गया जहां हेमू ने उसे पुनः पराजित किया तथा बंगाल की सीमा तक भगा दिया ।

आदिल शाह ने इबराहीम खां सूर को बन्दी बनाना चाहा । यह गाज़ी खां का पुत्र तथा आदिल शाह का बहनोई था । आदिल की बहन को इसका पता चल गया। उसने अपने पति को चुनार के दुर्ग से भागने में सहायता दी । वह भागकर बयाना गया । आदिल शाह ने ईसा खां नियाज़ी को उसके विरुद्ध भेजा, किन्तु इबराहीम ने उसे कालपी में पराजित कर दिया । इस विजय ने उसे उत्साहित किया । आगे बढ़कर उसने दिल्ली पर अधिकार कर लिया । उसने इबराहीम शाह की उपाधि धारण की तथा अपने को सुल्तान घोषित किया । उसने आगरे पर भी अधिकार कर लिया । कई अमीर भी उससे आ मिले । इस तरह वह शक्तिशाली हो गया । आदिल शाह उसके विरुद्ध दिल्ली की तरफ बढ़ा । यमुना के निकट इबराहीम सूर ने आदिल को इस शर्त पर समर्पण का वचन दिया कि उसका साथ देने वाले अमीरों को हानि नहीं पहुँचायी जाएगी । आदिल ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया तथा उसने अपने अमीरों को इबराहीम को विश्वास दिलाने के लिए भेजा । इबराहीम ने इन्हें अपने पक्ष में कर लिया, जिससे आदिल को विवश होकर चुनार वापस लौट जाना पड़ा । इस तरह दिल्ली तथा आगरा उसके हाथ से निकल गये ।

इबराहीम के विद्रोह से उत्साहित होकर पंजाब के गवर्नर अहमद खां सूर ने भी विद्रोह कर दिया । वह १०,००० सेना के साथ दिल्ली पर अधिकार करने के लिए रवाना हुआ । इबराहीम ८०,००० सैनिकों के साथ युद्ध के लिए आगे बढ़ा । इतनी बड़ी सेना देखकर अहमद ने सन्धि करनी चाही । उसने इबराहीम का इस शर्त पर समर्थन करने का वचन दिया, कि वह उसे पंजाब प्रदेश देने का वचन दे । इबराहीम ने इसे अस्वीकार कर दिया । आगरे से पश्चिम १८ माल दूर फरह[५] नामक स्थान पर युद्ध हुआ (सन् १५५५) जिसमें इबराहीम पराजित हुआ तथा सम्भल भाग गया । अहमद ने सिकन्दर की उपाधि धारण की तथा अपने को सुल्तान घोषित कर दिया ।

बंगाल के गवर्नर मुहम्मद खां सूर ने भी इस अराजकता से लाभ उठाया ।

पृ. १४३-५२; तारीखे दाऊदी, इलियट तथा डासन, ४, पृ. ५०१-५०३ ।

४ राय, सक्सेसर्स ऑफ शेरशाह, पृ. ६५-६६ ।

५ २७°१६′ उत्तर तथा ७७° ४६′ पूर्व स्थित ।

उसने शमसुद्दीन मुहम्मद शाह गाज़ी की उपाधि धारण की तथा दिल्ली सल्तनत से अलग अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित किया ।

मालवा में शुजात ख़ां गवर्नर था । इस्लाम शाह की मृत्यु के पश्चात् जो गड़बड़ी हुई उससे लाभ उठाकर वह भी स्वतन्त्र हो गया । १५५५ में उसकी मृत्यु हो गयी और उसके पश्चात् उसका लड़का बाज बहादुर मालवा का स्वतन्त्र शासक बन बैठा ।

१५५५ ई. में उत्तरी भारत की राजनैतिक अवस्था

सूर साम्राज्य के विघटन के परिणामस्वरूप शेरशाह का साम्राज्य पांच सल्तनतों में विभाजित हो गया था । पंजाब में सिकन्दर सूर, सम्भल और दोआब में इबराहीम सूर, चुनार से विहार तक के भाग में आदिल शाह, मालवा में बाज़ बहादुर तथा बंगाल में मुहम्मद ख़ां सूर अलग-अलग सुल्तान बने हुए थे । प्रत्येक शासक पूरे साम्राज्य पर अधिकार करना चाहता था तथा अन्य चार उत्तराधिकारियों को पराजित करने के अवसर की प्रतीक्षा करता रहता था ।

बहादुर शाह की मृत्यु के पश्चात् गुजरात की शान्ति का अन्त हो गया । सुल्तान शक्तिहीन थे जिससे अमीरों की शक्ति बहुत बढ़ गयी । आन्तरिक विद्रोह ने शासन शक्ति को जर्जर कर दिया । बहादुर की मृत्यु के पश्चात् महमूद तृतीय गद्दी पर बैठा (१५३८-५४) । उसका शासन वास्तव में अमीरों के संघर्ष का काल था । उसकी मृत्यु के पश्चात् सुल्तान अहमद शाह तृतीय (१५५४-६१) गुजरात का सुल्तान हुआ । वह बालक था, इस कारण शासन का कार्य इतिमाद ख़ां के अधिकार में था ।[६] गुजरात अन्य राज्यों की कमजोरी से लाभ उठाने की परिस्थिति में नहीं था ।

सिन्ध की स्थिति भी अच्छी नहीं थी । हुमायूं के सिन्ध से विदा होने के कुछ दिन पश्चात् शाह हुसेन अरग़ून ज्वर से पीड़ित हो गया, जिससे वह अशक्त हो गया । उसकी इस स्थिति में उसके अमीरों ने मिर्ज़ा मुहम्मद ईसा तरख़ान को अपना शासक चुन लिया । शाह हुसेन तथा भक्कर के गवर्नर सुल्तान महमूद ने ईसा तरख़ान का बराबर विरोध किया था किन्तु उन्हें विवश होकर सिन्ध का बहुत-सा भाग उसे देकर उससे सन्धि करनी पड़ी । १५५६ में शाह हुसेन की मृत्यु हो गयी जिससे पूरा सिन्ध ईसा तरख़ान के हाथ में आ गया । मुहम्मद ईसा तरख़ान की

६ कामिस्सारियट, हिस्ट्री ऑफ गुज़रात, पृ. ४१४ ।

भी मृत्यु १५६७ में हो गयी। उसके पश्चात् उसका पुत्र मिर्ज़ा मुहम्मद बाक़ी तरख़ान गद्दी पर बैठा।[७]

राणा सांगा की मृत्यु (३० जनवरी १५२८) के पश्चात् मेवाड़ में आन्तरिक संघर्ष प्रारम्भ हुआ जिससे गुजरात तथा अन्य राज्यों ने लाभ उठाया। अनेक कठिनाइयों के पश्चात् उदयसिंह मेवाड़ के राणा हुए, किन्तु उनमें राणा सांगा का वह तेज न था। ये दिन मेवाड़ के पतन के दिन थे। शेरशाह ने मालदेव को पराजित कर जोधपुर का उत्कर्ष भी समाप्त कर दिया था। राजस्थान में न अन्य कोई राज्य था न कोई नेता जो किसी बाहरी शत्रु से लोहा ले सकता।

इस तरह सम्पूर्ण उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया था, जो परस्पर युद्ध करते रहते थे। कोई ऐसा नेता नहीं था जो इन शक्तियों को एकत्र करता। पंजाब अरक्षित हो गया था। हुमायूं के निष्कासन में उसके भाइयों तथा अफ़ग़ानों का विशेष हाथ था। उसके भाइयों की मृत्यु हो चुकी थी। अफ़ग़ान साम्राज्य टूट चुका था। हुमायूं के लिए अपने खोये हुए साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने का इससे अधिक उपयुक्त अन्य अवसर न था।

भारतीय अभियान

हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के पूर्व, १५५३ के अन्त तथा १५५४ के प्रारम्भ तक, हुमायूं काबुल में रहकर भारतीय अभियान के उद्देश्य से आवश्यक वस्तुओं को एकत्र करने में व्यस्त रहा। इसी बीच कुछ अमीरों ने हुमायूं से क़न्धार के हाकिम बैराम ख़ां के विषय में "झूठी सच्ची बातें" कहीं तथा उसे यह सन्देह दिलाया कि वह ईरान के शाह से मिलकर षड्यन्त्र रच रहा है। क़न्धार को अरक्षित छोड़कर हिन्दुस्तान के अभियान में जाना उचित नहीं था। हुमायूं ने काबुल में अली क़ुली ख़ां को नियुक्त किया तथा शीत ऋतु के प्रारम्भ में क़न्धार की ओर प्रस्थान किया (९६१ हि., दिसम्बर १५५३)। उसका विचार था कि क़न्धार में मुनीम ख़ां या अन्य किसी को नियुक्त कर वह बैराम को अपने साथ काबुल वापस लाएगा।[८]

हुमायूं के आगमन की सूचना प्राप्त कर बैराम ख़ां ने क़न्धार से सात मील[९]

७ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ३, पृ. ५०२।

८ अकबरनामा, १, पृ. ३३२-३३; बायज़ीद, पृ. १७०-७१; तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १३०; मुन्तखबुत्तवारीख़, पृ. ४५५।

९ अकबरनामा के अनुसार दस फ़रसख़। एक फरसख़ १८,००० फुट लम्बा होता है। अकबरनामा की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में दो फ़रसख़ लिखा

आगे बढ़कर अन्दाम नामक स्थान में उसका स्वागत किया। हुमायूं के स्वागत करने में उसने इतनी भक्ति तथा जोश दिखलाया कि यह स्पष्ट हो गया कि उसके विरुद्ध जो बातें कही गयी थीं वे सत्य नहीं थीं। बैराम ख़ां ने आनन्दोत्सव का प्रबन्ध किया जिसमें विद्वान्, धार्मिक व्यक्ति तथा सैनिक भी उपस्थित थे। इस स्वागत समारोह में उसने अपने निजी कोष से भी खर्च किया।

अबुल फ़ज़ल लिखता है कि बैराम ख़ां ने सेवा एवं स्वामिभक्ति प्रदर्शित करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। प्रत्येक प्रबन्ध की वह स्वयं देख-रेख करता था तथा जिस किसी वस्तु की आवश्यकता होती हुमायूं के सामने उपस्थित की जाती। इस तरह शीत ऋतु आमोद-प्रमोद में व्यतीत हुई।[१०] ख़्वाजा गाज़ी, जिसे हुमायूं ने दूत बनाकर ईरान भेजा था, वहां से वापस आया। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर हुमायूं ने उसे वित्त विभाग में इशराफ़े दीवान के पद पर नियुक्त किया।

इस आमोद-प्रमोद में एक दुखदायी घटना हुई जो हुमायूं के कमजोर चरित्र, समकालीन धर्मान्धिता तथा अकबर के राज्यारोहण के प्रारम्भिक काल में अमीरों के पारस्परिक संघर्ष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अबुल माली हुमायूं का एक प्रिय सेवक था। सम्राट की विशेष कृपा के कारण उसका दिमाग बहुत चढ़ गया था। वह कट्टर सुन्नी था। धर्मान्धिता में उसने मीरे शिकार कराबेग के पिता शेर अली बेग की, शिआ होने के नाते, हत्या कर दी। अबुल माली ने खुले दरबार में घोषणा की थी कि वह "इस दुष्ट शिआ की हत्या कर देगा"[११] फिर भी हुमायूं ने उसे दण्ड नहीं दिया। अबुल माली हुमायूं की कृपा के कारण छूट गया किन्तु अनुशासन की दृष्टि से यह ठीक नहीं था। शिआ अमीरों में इससे असन्तोष फैलना स्वाभाविक था। इस घटना से हुमायूं की कमजोरी स्पष्ट रूप से प्रमाणित होती है।

हुमायूं क़न्धार में तीन महीने रहा। इस बीच १८ अप्रैल १५५४ को चोचक बेगम (जूजूक बेगम) के गर्भ से हुमायूं के पुत्र मिर्ज़ा हक़ीम का जन्म हुआ।[१२]

है। दो फरसख लगभग सात मील के बराबर हुआ। यह अधिक न्यायसंगत प्रतीत होता है। डा. ईश्वरी प्रसाद ने ४० मील या दस फरसख़ स्वीकार किया है (हुमायूं पृ. ३३९)।

१० अकबरनामा, १, पृ. ३३३।

११ वही, पृ. ३३४।

१२ अकबरनामा, १, पृ. ३३२; बायज़ीद, पृ. १७५-७६ की तिथि सही नहीं है।

हुमायूं अपनी यात्राओं में सन्त तथा विद्वानों के दर्शन करने तथा उनसे वार्तालाप करने के अवसर से नहीं चूकता था। यहां भी उसने मौलाना ज़ैनुद्दीन महमूद कमानगर से भेंट की। ये उस समय के प्रमुख सूफ़ी थे तथा बैराम ख़ां उनका शिष्य हो गया था। हुमायूं उनसे कई बार मिला तथा दोनों में अनेक विषयों पर विचार-विनिमय हुआ।[१३] हुमायूं क़न्धार में बैरम ख़ां की जगह मुनीम ख़ां को नियुक्त करना चाहता था और उसने मुनीम ख़ां से इस तरह का प्रस्ताव भी किया किन्तु उसने हुमायूं को परामर्श दिया कि उन परिस्थितियों में जब कुछ शिआ अमीरों में असन्तोष था, एक विश्वसनीय शिआ अमीर के पद में परिवर्तन के लिए समय उपयुक्त न था। हुमायूं ने इस परामर्श को स्वीकार कर लिया।[१४]

क़न्धार को बैराम ख़ां के अधिकार में रहने देकर हुमायूं ने बुद्धिमानी का कार्य किया। शिआ अमीरों तथा सैनिकों में असन्तोष फैल रहा था। इस परिस्थिति में यह आज्ञा विश्वासघात को प्रश्रय देती। इसके अतिरिक्त क़न्धार पर अधिकार करने के पश्चात् हुमायूं ने वहां बैराम ख़ां को नियुक्त किया था तथा ईरान के शाह को इस तरह का पत्र लिखा था जिससे ऐसा आभास मिलता था कि उसी के सेवक को क़न्धार का हाक़िम नियुक्त किया गया हो। परिवर्तन के फलस्वरूप उधर से भी भय की आशंका हो सकती थी।

क़न्धार से प्रस्थान करने के पूर्व हुमायूं ने क़न्धार के दुर्ग पर बैराम की नियुक्ति की पुनः स्वीकृति दे दी, जिससे किसी के मन में शाह तथा हुमायूं के बीच वैमनस्य फैलाने का अवसर न मिले। हुमायूं ने जागीरों में परिवर्तन भी किया। इस तरह जमीनदावर ख़्वाज़ा मुअज्जम से लेकर अली कुली के भाई बहादुर ख़ां को दे दिया गया। उसने बैराम ख़ां को आज्ञा दी कि क़न्धार का उचित प्रबन्ध करने के उपरान्त वह हुमायूं से काबुल में मिले, जिससे हिन्दुस्तान पर आक्रमण के पूर्व वह उसकी सहायता कर सके।[१५] यह सब निश्चित कर हुमायूं क़न्धार की तरफ़ रवाना हुआ। बैराम ख़ां की तत्परता तथा स्वामिभक्ति का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि शीघ्र प्रबन्ध कर वह हुमायूं के अग्रसर होने के कुछ दिन बाद ही रवाना हो गया तथा हुमायूं से ग़ज़नी में

१३ अकबरनामा, १, पृ. ३३३, मुन्तख़बुत्तवारीख, १, पृ. ४५५-५६।

१४ अकबरनामा, १, पृ. ३३४, तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ.१३०; बायज़ीद, पृ. १७०-७१, मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४५८।

१५ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १५८-५९; अकबरनामा, १, पृ. ३३४; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १३०।

जा मिला (३१ जुलाई १५५४)। सम्राट को बैराम के पहुँचने से बड़ी प्रसन्नता हुई तथा उसके आगमन के उपलक्ष में उसने दावत दी तथा जश्न मनाया। बैराम के आगमन में जश्न तथा खुशियां क्यों मनायी गयीं ? क्या बैराम का चरित्र सचमुच सन्देहजनक था ? ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूं को बैराम ख़ां से बहुत अधिक भय था और उसके आ जाने से उसने एकता तथा शक्ति का अनुभव किया।

ग़ज़नी से पूरा दल काबुल गया (अक्टूबर-नवम्बर १५५४, ९६१ हि.)[१६] काबुल में हुमायूं सेना तथा युद्ध सामग्री एकत्र करने में व्यस्त हो गया। सैनिकों को भर्ती करने के लिए मध्य एशिया के अन्य भागों से लोगों को आमन्त्रित किया गया। हिन्दुस्तान में इस्लाम शाह की मृत्यु हो चुकी थी जिसके पश्चात् उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। भारतीय अभियान का यही सबसे उपयुक्त समय था। इसी समय दिल्ली तथा आगरा के कुछ नागरिकों ने इस्लाम शाह सूर की मृत्यु तथा अफ़ग़ानों के पारस्परिक संघर्ष की सूचना दी तथा उसे इस अवसर से लाभ उठाकर अपने साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए आमन्त्रित किया।[१७]

हुमायूं का काबुल से प्रस्थान

आक्रमण के पूर्व काबुल, क़न्धार तथा अन्य भागों का प्रबन्ध आवश्यक था। हुमायूं ने अपने पुत्र मिर्ज़ा हक़ीम को काबुल का गवर्नर नियुक्त किया। वह अभी बच्चा था। इस कारण वास्तविक शासन के लिए मुनीम ख़ां को उसका संरक्षक नियुक्त किया गया। अस्त्र-शस्त्रों का प्रबन्ध करने के लिए बैराम ख़ां को काबुल में छोड़ दिया गया। उसे आज्ञा दी गयी कि वह प्रबन्ध कर शीघ्र प्रमुख सेना से आ मिले। इसी प्रकार अन्य प्रबन्ध कर एक शुभ नक्षत्र में (ज़िल हिज्जा ९६१ हि., १२ नवम्बर १५५४) केवल तीन हज़ार सैनिकों के साथ हुमायूं भारतीय अभियान के लिए काबुल से रवाना हुआ।[१८] अपने पिता की भांति हुमायूं ने

[१६] अकबरनामा, १, पृ. ३३४।

[१७] फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १७२।

[१८] बायज़ीद पृ. १७६-८७; अकबरनामा, १, पृ. ३४०-४१। इतने कम सैनिकों के साथ रवाना होने से प्रकट होता है कि हुमायूं के प्रयत्न बहुत जनप्रिय न हुए। बायज़ीद ने सेना के साथ के २०२ प्रमुख व्यक्तियों, २९ गायक एवं वादकों के नाम दिये हैं, इसके अतिरिक्त उसने अकबर के साथ के ५६ व्यक्तियों तथा बैराम ख़ां के साथ के ५४ व्यक्तियों के नाम

अभियान के पूर्व दो प्रतिज्ञाएं कीं। प्रथम, वह युद्ध के समय बन्दी नहीं बनाएगा तथा दूसरी, अभियान के काल तक मांस नहीं खाएगा।

सुरखाब, लमगानात, जलालाबाद होता हुआ हुमायूं बिकराम (पेशावर) पहुँचा (२५ दिसम्बर १५५४)। बैराम ख़ां भी ५००० सैनिकों के साथ सिन्धु नदी के निकट हुमायूं की सेना से आ मिला। हुमायूं की सेना में सैनिकों के अतिरिक्त बहुत-से गायक एवं वादक भी थे। अकबर, जिसकी अवस्था बारह वर्ष से कुछ अधिक थी, उसके साथ था।

सिन्धु नदी पार कर सेना ने पंजाब में प्रवेश किया। पंजाब में अधिक रुकावट नहीं हुई। जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है, इस समय पंजाब सिकन्दर शाह सूर के अधिकार में था। हुमायूं के आक्रमण ने उसे कठिन परिस्थिति में डाल दिया। पश्चिम से हुमायूं तथा दक्षिण-पूर्व से मुहम्मद आदिल शाह सूर उसके प्रदेश को अधिकृत करना चाहते थे। दो तरफ़ा युद्ध से रक्षा के लिए सिकन्दर शाह सूर ने अपना केन्द्र लाहौर से दिल्ली हटा लिया। पंजाब की रक्षा हेतु रोहतास दुर्ग की मोर्चाबन्दी कर उसने वहां तातार ख़ां काशी को नियुक्त कर दिया।[१९] सिकन्दर ने आदम ख़ां गक्खर से भी सन्धि कर ली थी तथा उसकी स्वामिभक्ति की गारण्टी के लिए उसने उसके पुत्र को बन्धक के रूप में अपने पास रख लिया था।[२०] इस तरह सिकन्दर को आशा थी कि हुमायूं को पंजाब में सफलता नहीं मिलेगी।

सिन्धु नदी पार करने के पश्चात् हुमायूं ने आदम ख़ां गक्खर को सहायता देने के लिए आमन्त्रित किया किन्तु उसने हुमायूं का साथ देने से इनकार कर दिया। उसने हुमायूं को सूचित किया कि उसने सिकन्दर सूर से सन्धि कर ली है और उसका पुत्र लश्करी, सिकन्दर सूर के पास बन्धक है। इस स्थिति में वह हुमायूं की सहायता नहीं कर सकेगा। इस उत्तर से कुछ मुग़ल अफसरों की यह राय हुई कि आदम पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया जाए, किन्तु उसकी पिछली सेवाओं को ध्यान में रखकर हुमायूं ने उस पर आक्रमण नहीं किया।[२१]

आदम ने हुमायूं की सहायता क्यों नहीं की? वास्तव में उसके चरित्र तथा उसकी पिछली घटनाओं के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह बहादुर

भी दिये हैं। अबुल फ़ज़ल ने ५७ प्रमुख सहायकों तथा विश्वास पात्रों के नाम दिये हैं।

१९ अकबरनामा, १, पृ. ३४१; मुन्तख़बुत्तवारीख़; १, पृ. ४५९।

२० जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १६०; अकबरनामा, १, पृ. ३४१।

२१ अकबरनामा, १, पृ. ३४१।

तथा वचन का पक्का व्यक्ति था। एक बार सन्धि हो जाने पर जहां तक सम्भव हो उसे निभाना चाहता था। इसके अतिरिक्त उसे यह भी भय था कि यदि वह मुग़लों को सहायता देगा तो उसका पुत्र इसके लिए दण्डित होगा। यदि वह विश्वासघाती तथा सरलता से प्रतिज्ञा तोड़ने वाला व्यक्ति होता तो उसने हुमायूं के निष्कासन के पश्चात् तत्काल ही शेरशाह से सन्धि कर ली होती। इस कारण यह कहना कि उसने हुमायूं की सफलता प्राप्त की आशा न देखकर सहायता देने से इनकार किया, सत्य नहीं है।[२२]

हुमायूं के आक्रमण की सूचना पाकर रोहतास का दुर्गपति तातार ख़ां दुर्ग छोड़कर भाग खड़ा हुआ। बिना युद्ध के हुमायूं ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उसकी सेना झेलम, चेनाब तथा रावी नदी को पारकर कलानूर पहुँची। यहां उसने अपनी सेना को तीन भागों में विभाजित किया। एक भाग बैराम ख़ां, तरदी बेग इत्यादि के नेतृत्व में हरियाना की तरफ भेजा गया, जहां अफ़ग़ान सरदार नसीब ख़ां पड़ाव डाले हुए था। दूसरा दल शिहाबुद्दीन ख़ां, फ़रहत ख़ां इत्यादि के नेतृत्व में लाहौर की तरफ रवाना हुआ तथा तीसरा दल हुमायूं के साथ कलानूर रुका रहा। शिहाबुद्दीन ने बिना विरोध या कठिनाई के लाहौर पर अधिकार कर लिया। उसने सुरक्षा का आश्वासन देकर नागरिकों को अपने पक्ष में कर लिया। इसकी सूचना पाकर कलानूर से आगे बढ़कर हुमायूं ने लाहौर में प्रवेश किया (२ रबीउल आख़िर ९६२ हि., २४ फरवरी १५५५)।[२३] यहां नगर के प्रमुख व्यक्तियों ने उसका स्वागत किया।[२४] हुमायूं ने अपने अमीरों तथा सेवकों में जागीर वितरित की तथा लगान वसूल करने का प्रबन्ध किया। निष्कासन काल में जौहर ने उसकी बड़ी सेवा की थी। उसे उपहार देने का समय आ गया था। उसे हैबतपुर का परगना दिया गया।

२२ "In reality Adam was under the impression that Humayun was not likely to succeed in his struggle with the Afghans and he judged it impolitic to help the Mughals to win a victory over their opponents." (ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३४२)

२३ अकबरनामा, १, पृ. ३४२-४३ ; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १७४।

२४ जौहर (स्टीवर्ट, पृ. १६४) लिखता है कि सैयिद तथा नगर के प्रमुख लोग सैयिद अब्दुल्ला के नेतृत्व में उसका स्वागत करने आये। वहां भी उनमें दो दल थे—एक मख़दूमुलमुल्क के नेतृत्व में तथा दूसरा मियां हाजी मेहदी के नेतृत्व में। हुमायूं ने कठिनाई से दोनों दलों में सुलह करायी।

उसके बुद्धिमत्तापूर्ण प्रबन्ध से प्रसन्न होकर हुमायूं ने उसे तातार ख़ां लोदी का कोष एवं जागीर भी प्रदान किये।

इसी समय सूचना मिली कि अफ़ग़ान नेता शाह बाज़ ख़ां १२,००० अफ़ग़ान सैनिकों के साथ[२५] दीपालपुर के निकट मुग़लों से युद्ध के लिए तैयार है। हुमायूं ने शाह अबुल माली, अली कुली शैबानी, इत्यादि को उसके विरुद्ध भेजा। अफ़ग़ानों ने बड़ी शक्ति से मुग़लों पर आक्रमण किया। अबुल माली शत्रु के आक्रमण से अपने घोड़े से गिरते-गिरते बचा। मुग़ल बड़ी बहादुरी से लड़े। अफ़ग़ान पराजित हुए तथा मैदान छोड़कर भाग गये। बहुत-से हाथी, घोड़े तथा अन्य सामान मुग़लों के हाथ लगा।

हरियाना में बैराम ख़ां ने नसीब ख़ां अफ़ग़ान को पराजित किया। यहां भी मुग़लों को बहुत-सा सामान, प्राप्त हुआ। हुमायूं ने प्रतिज्ञा की थी कि वह इस अभियान में बन्दी नहीं बनाएगा। इस कारण युद्ध में प्राप्त स्त्रियों तथा बच्चों को उसने नसीब ख़ां के पास भेज दिया।[२६] इस तरह हरियाना पर भी मुग़लों का अधिकार हो गया। मुग़ल सेना यहां से जालंधर पहुँची। अफ़ग़ान यहां से भी भाग गये और मुग़लों ने जालन्धर पर अधिकार कर लिया।

पंजाब में एक के बाद एक स्थान पर मुग़लों का अधिकार होते देखकर आश्चर्य होता है। वास्तव में अफ़ग़ानों का साहस समाप्त हो गया था तथा कुशल नेतृत्व के अभाव में उनमें भगदड़ मच गयी थी। आतंक यहां तक फैल गया था कि किसी भी अश्वारोही को मुग़ल वेश में देखकर अफ़ग़ान भाग खड़े होते तथा मुड़कर पीछे देखते तक न थे।[२७] अफ़ग़ान सैनिक तथा अमीर अपने स्वार्थ में रहते थे और अपने-अपने परिवार की रक्षा का प्रबन्ध करने में व्यस्त थे। शेरशाह के समय की सामूहिक एकता तथा जोश समाप्त हो गया था। मुग़ल अमीरों में भी केवल बाह्य एकता थी। इस समय भी बैराम ख़ां तथा तरदी बेग में नीति के विषय में मतभेद हो गया। तरदी बेग चाहता था कि वह भागे हुए अफ़ग़ानों का पीछा करे। बैराम ख़ां ने इसकी अनुमति न दी। तरदी बेग के सेवक बात्तू ख़ां तथा ख़्वाजा मुअज्जम में तू-तू मैं-मैं हो गयी तथा तलवार चल गयी। यह स्थिति इतनी गम्भीर हो गयी कि हुमायूं को हस्तक्षेप

२५ जौहर (स्टीवर्ट, पृ. १६६) के अनुसार अफ़ग़ान सैनिकों की संख्या १२,००० तथा मुग़ल सैनिकों की संख्या ८०० थी; बायजीद (पृ. १९०) अफ़ग़ान सैनिकों की संख्या २०,००० लिखता है।

२६ अकबरनामा, १, पृ. ३४३।

२७ मुन्तखबुत्तवारीख, १, पृ. ४५९।

करना पड़ा। उसने फरमान तथा मौखिक सन्देश द्वारा दोनों दलों को समझाया। बैराम ख़ां जालन्धर में ठहर गया। हुमायूं ने प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग परगने देकर उन्हें सन्तुष्ट किया।[२८]

माछीवारा का युद्ध

बैराम ख़ां ने सिकन्दर ऊज़बेक को माछीवारा में नियुक्त किया। वहां पहुँचकर सिकन्दर ऊज़बेक ने देखा कि मुग़ल सेना शक्तिशाली है इस कारण आगे बढ़कर उसने सरहिन्द पर भी अधिकार कर लिया। सरहिन्द पर मुग़ल आधिपत्य की सूचना पाकर सिकन्दर सूर को भय हुआ कि मुग़ल अब दिल्ली पर भी आक्रमण कर देंगे। वह स्वयं आदिल शाह सूर से युद्ध करने में व्यस्त था, इस कारण उसने मुग़लों को सरहिन्द से भगाने के लिए तातार ख़ां काशी के नेतृत्व में अफ़ग़ान सेना भेजी। सिकन्दर ऊज़बेक ने देखा कि अफ़ग़ानों का सामना करना कठिन है। इस कारण सरहिन्द छोड़कर वह बैराम ख़ां के पास जालन्धर लौट आया। उसके इस पलायन से बैराम ख़ां बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने उसकी अनुशासनहीनता तथा कायरता के लिए उसकी भर्त्सना की।[२९]

बैराम ख़ां के नेतृत्व में मुग़ल सेना जालन्धर से माछीवारा[३०] पहुँची। तरदी बेग ने यह मत रखा कि वर्षा ऋतु के अन्त तक वहीं रुके रहना चाहिए, सभी पुलों पर अधिकार कर शत्रु को सतलज पार करने से रोक दिया जाए और वर्षा ऋतु की समाप्ति के पश्चात् अफ़ग़ान सेना पर आक्रमण किया जाए। बैराम ख़ां इस मत से सहमत नहीं था, उसका विचार था कि इससे समय नष्ट होगा, सेना में शिथिलता आ जाएगी जिससे हानि की सम्भावना है। वह तत्काल नदी के उस पार चला जाना चाहता था। उसके इस मत का समर्थन कई प्रमुख अमीरों ने भी किया तथा उसकी आज्ञा से सेना ने नदी पार की। विवश होकर तरदी बेग तथा उसके समर्थकों को भी नदी पार करनी पड़ी। उनके सामने अफ़ग़ान सेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी थी।

२८ अकबरनामा, १, पृ. ३४४।

२९ वही।

३० इसे माचीवारा, माछीवारा या माछीवाड़ा भी लिखा गया है। यह लुधियाना, ज़िला पंजाब में ३०°५५′ उत्तर तथा ७५°१२′ पूर्व में समराला तहसील में, समराला कस्बे से ६ मील तथा लुधियाना से २७ मील पर स्थित है।

बैराम ने मुग़ल सेना को चार दस्तों में विभाजित किया। दाहिनी ओर का दस्ता खिज्र ख़ां हज़ारा, बायीं तरफ का तरदी बेग मध्य का बैराम ख़ां तथा अग्रणी दल सिकन्दर ख़ां ऊज़बेक के नेतृत्व में था।

इस तरह मुग़ल सेना भी युद्ध के लिए तैयार हो गयी। अफ़ग़ान सेना में ३०,००० अश्वारोही थे। मुग़ल सेना की ठीक संख्या बताना कठिन है, किन्तु मुग़लों की सेना अफ़ग़ान सेना से बहुत कम थी।[31] अफ़ग़ान तत्काल युद्ध के लिए आगे बढ़े। इनके तत्काल अग्रसर होने के कई कारण थे। प्रथम, मुग़ल सेना की संख्या कम थी, अधिक प्रतीक्षा करने पर इसकी संख्या बढ़ सकती थी। दूसरे, नदी पार करने के पश्चात् मुग़ल सेना अभी पूर्णतया संगठित नहीं हो पायी थी। इस कारण अफ़ग़ानों के लिए तुरन्त आक्रमण करना अधिक लाभप्रद था।

मुग़लों ने दिन के तीसरे पहर में नदी पार की (१२ मई १५५५)। सायंकाल के निकट दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई। भीषण युद्ध होने लगा। अफ़ग़ान सैनिकों के निकट एक गांव था। यह गांव उनकी रक्षा के लिए उपयुक्त था। गांव के मकान छप्पर के बने थे। अन्धकार के बीच गांव में आग लग गयी।[32] छप्पर के मकान धू-धूकर जलने लगे। अफ़ग़ान सेना गांव के निकट होने के कारण प्रकाश में थी। मुग़ल सेना अन्धेरे में होने के कारण सुरक्षित थी तथा अफ़ग़ान उन्हें नहीं देख सकते थे। तेज़ हवा चलने लगी, जिससे आग तथा उसके साथ प्रकाश और तेज़ हो गया। बैराम ख़ां तथा अन्य मुग़ल सरदारों ने चारों तरफ से अफ़ग़ानों को घेर लिया। अफ़ग़ान बुरी तरह मारे गये। इस तरह तीन पहर रात्रि तक युद्ध चलता रहा। लगभग १० घंटे में ही युद्ध का निर्णय हो गया। अफ़ग़ान पराजित हुए तथा भाग गये। अफग़ान सैनिकों

[31] फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १७४; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १६७; अकबरनामा, १, पृ. ३४५; बायज़ीद, पृ. १६१; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १३२।

[32] फ़िरिश्ता के अनुसार शीत ऋतु होने के कारण अफ़ग़ान लोग आग जलाये हुए जाग रहे थे। वह लिखता है कि "अफ़ग़ानों ने, जो अपनी बुद्धिहीनता के लिए प्रसिद्ध हैं, आग बुझाने की जगह प्रकाश बढ़ाने के लिए जितनी लकड़ी या चारा लश्कर में था सबका सब एकबारगी आग में डाल दिया (फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, पृ. १७४-७५)। बदायूनी के अनुसार अफग़ान लोगों ने उजड़े हुए गांव में शरण ली। जैसे ही मुग़ल सेना दृष्टिगत हुई उन्होंने छप्परों में आग लगा दी। (मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६०)। निज़ामुद्दीन अहमद लिखता है कि मुग़लों के आक्रमण से घबड़ाकर अफ़ग़ानों ने समीप के गांव में आग लगा दी (तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १३३)। अकबरनामा (भाग १, पृ. ३४५) में स्पष्ट नहीं है कि आग कैसे लगी।

द्वारा छोड़ा हुआ बहुत-सा सामान, हाथी, घोड़े तथा कोष, मुग़लों के हाथ लगा।

माछीवारा के युद्ध का परिणाम

इस युद्ध में अफ़ग़ान अधिक संख्या में मारे गये। इसके विपरीत मुग़ल सेना के अधिक सैनिक हत नहीं हुए। मुग़लों ने अफ़ग़ानों के सामान, हाथी, घोड़े, कोष इत्यादि पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध के दूसरे दिन बैराम ख़ां ने आगे बढ़कर सरहिन्द पर बिना किसी विशेष संघर्ष के अधिकार कर लिया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप पूरा पंजाब, सरहिन्द, हिसार फिरोज़ा तथा दिल्ली प्रदेश के भी कुछ भाग मुग़लों के अधिकार में आ गये।[३३] इस विजय ने एक तरफ मुग़लों को उत्साहित किया और दूसरी तरफ अफ़ग़ानों की घबराहट तथा निराशा को और भी बढ़ा दिया।

युद्ध के पूर्व बैराम ख़ां ने अपनी सेना की कमी की ओर हुमायूं का ध्यान आकर्षित किया था, किन्तु हुमायूं ने यह कहकर उसकी बात को टाल दिया कि अबुल माली ने केवल ७०० घुड़सवारों के साथ अफ़ग़ानों को इसके पूर्व पराजित किया था। जो भी हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुग़लों ने इतनी थोड़ी सेना के साथ युद्ध कर एक बहुत बड़ा साहस दिखाया।

हुमायूं इस युद्ध में उपस्थित नहीं था और विजय का श्रेय वास्तव में बैराम ख़ां को मिलना चाहिए था। यदि उसने तरदी बेग की बात मान ली होती तो युद्ध इतना शीघ्र न होता और इसका परिणाम क्या होता, यह बताना कठिन है। अफ़ग़ानों की पराजय का एक प्रमुख कारण परिस्थितियां थीं। गांव में आग लगने से स्थिति बिलकुल बदल गयी। यदि प्रकाश न होता तो मुग़ल अफ़ग़ानों को इतनी सुविधा से पराजित कर सकते यह सन्देहजनक है। इसके अतिरिक्त मुग़लों के अस्त्र-शस्त्र अफ़ग़ानों के मुकाबले में उत्तम थे।[३४]

सरहिन्द का युद्ध

माछीवारा के युद्ध में अपनी सेना की पराजय की सूचना से सिकन्दर शाह सूर स्तब्ध हो गया। कुछ ही समय पूर्व उसने इबराहीम सूर को अपनी छोटी सेना की सहायता से पराजित किया था। मुग़लों के सरहिन्द पर अधिकार करने की सूचना पाकर उसने स्वयं मुग़लों से युद्ध करने का निश्चय किया। उसने

३३ तबकाते अकबरी डे, २, पृ. १३३।
३४ मुन्तख़बुत्तवारीख, १, पृ. ४५९-६०।

अपने अफसरों से निष्ठा की प्रतिज्ञा करायी तथा ८०,००० अश्वारोही सेना, युद्ध के हाथी तथा तोपखाने के साथ वह सरहिन्द की तरफ रवाना हुआ। वहां पहुँचकर उसने सरहिन्द के दुर्ग का घेरा डाला। बैराम ख़ां ने अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध तो किया ही, साथ ही उसने हुमायूं के पास परिस्थिति की सूचना देते हुए उससे सहायता भेजने तथा पधारने की प्रार्थना की।[३५]

मुहब्बत ख़ां द्वारा माछीवारा के विजय की सूचना तथा लूट में प्राप्त सामग्री पाकर हुमायूं को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने बैराम ख़ां को 'ख़ान ख़ानन' तथा 'यार बफादार' की उपाधि दी।[३६] बैराम ख़ां के छोटे-बड़े सभी सेवकों के नाम राजसी दफ्तर में लिख लिये गये और उन्हें उन्नति प्राप्त हुई। हुमायूं को जिस समय सरहिन्द पर अफ़ग़ान सेना के आक्रमण की सूचना मिली उस समय वह पेट के दर्द (कोलंज) से ग्रस्त था जिसके कारण वह स्वयं तत्काल अग्रसर होने में विवश था। उसने अकबर को सरहिन्द की तरफ रवाना किया तथा बैराम को सूचित किया कि स्वस्थ होते ही वह यात्रा के लिए रवाना हो जाएगा।

स्वस्थ होते ही हुमायूं सरहिन्द की तरफ रवाना हुआ। लाहौर के निकट अकबर की सेना से उसकी मुलाकात हो गयी। निष्कासन के पश्चात् हुमायूं बुद्धिमान हो गया था। लाहौर से आगे बढ़ने के पूर्व उसने वहां का प्रबन्ध करना आवश्यक समझा। फरहत ख़ां को लाहौर का शिक़दार, बाबूस बेग को पंजाब का फौज़दार, मिर्ज़ा शाह सुल्तान को अमीन तथा मेहतर जौहर को खजानादार नियुक्त किया गया।[३७] यहां से हुमायूं अपनी सेना के साथ सरहिन्द की तरफ रवाना हुआ। २८ मई १५५५ (७ रजब ९६२ हि.) को अपनी सेना के साथ वह सरहिन्द पहुँच गया।

अफ़ग़ान सेना ने अपना पड़ाव सरहिन्द-दिल्ली मार्ग पर स्थापित किया जिससे यदि मुग़ल दिल्ली की तरफ बढ़ें तो उन्हें रोका जा सके। उन्होंने शेरशाह की तरह अपने पड़ाव के चारों तरफ खाइयां खुदवाकर पूर्ण रूप से मोर्चाबन्दी कर ली थी। इसके विपरीत मुग़ल सेना सरहिन्द में डटी हुई थी। इस तरह अफ़ग़ान

[३५] अकबरनामा, १, पृ. ३४६।

[३६] फ़िरिश्ता के अनुसार हुमायूं ने उसे यारे वफ़ादार के अतिरिक्त हमदम गमगुसार (दुख-दर्द का साथी) की उपाधि दी (फ़िरिश्ता फा. पृ. २४२)। मासिरिउल उमरा के अनुसार उसे 'यार वफ़ादार', 'बिरादर नेकूसियार' तथा 'फ़रज़न्द सआदतमन्द' की उपाधि भी दी गयी। ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३४७ द्वारा उद्धृत।

[३७] अकबरनामा, १, पृ. ३४६।

तथा मुग़ल युद्ध की प्रतीक्षा करने लगे।

दोनों दलों की संख्या निश्चयात्मक रूप से बताना कठिन है किन्तु साधारण अनुमान से प्रतीत होता है कि अफ़ग़ान सेना मुग़ल सेना की चौगुनी थी अर्थात् मुग़ल सेना १०,००० तथा अफ़ग़ान सेना ४०,००० से कम नहीं थी।[३८]

पच्चीस दिन तक[३९] दोनों सेनाएं एक दूसरे के आक्रमण की प्रतीक्षा करती रहीं। इस बीच छोटी-मोटी लड़ाइयां होती रहीं। हुमायूं ने गुजरात अभियान में जिस तरह मन्दसौर में बहादुर शाह के उपभोग की वस्तुओं के लिए नाकेबन्दी की थी, उसी नीति को उसने यहां भी अपनाया। हुमायूं अपने अश्वारोहियों को भेजकर अफ़ग़ान सेना की उपभोग की आवश्यक वस्तुएं, रसद इत्यादि के पहुँचने को अव्यवस्थित करता रहता था। बारबार की इस तरह की घटनाओं से अफ़ग़ान सेना परेशान होती रहती थी। एक दिन तरदी बेग ने अफ़ग़ानों की एक सेना पर, जो सिकन्दर के भाई काला पहाड़ के नेतृत्व में थी, आक्रमण किया। काला पहाड़ मारा गया तथा मुग़लों को बहुत-सा लूट का सामान प्राप्त हुआ।[४०] अफ़ग़ान इस पराजय से क्रोधित हुए तथा तत्काल युद्ध के लिए आगे बढ़े।

हुमायूं ने अपनी सेना को चार भागों में विभाजित किया। एक हुमायूं दूसरी अकबर तीसरी शाह अबुल माली तथा तरदी बेग और चौथी बैराम खां के नेतृत्व में थी।[४१] हुमायूं का यह विभाजन मुग़लों की युद्ध

३८ बायज़ीद के अनुसार अफ़ग़ान सेना की संख्या १,००,०००, जौहर तथा फ़िरिश्ता के अनुसार ८०,००० थी। निज़ामुद्दीन अहमद के अनुसार अफ़ग़ान सेना मुग़ल सेना से चौगुनी थी। मुग़ल सेना की संख्या जौहर के अनुसार ५,००० तथा बायज़ीद के अनुसार १०,००० थी। बायज़ीद (पृ. १९२-९३) ने मुग़ल अफसरों की लम्बी सूची दी है। तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १३३-३४; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १७५; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १६८; बायज़ीद पृ. १८०।

३९ अबुल फ़ज़ल ४० दिन लिखता है (अकबरनामा १, पृ. ३४८) तथा जौहर एक महीना (स्टीवर्ट, पृ. १६९)। डा. ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं कि दोनों सेनाएं डेढ़ महीने एक दूसरे के सामने डटी रहीं (हुमायूं, पृ. ३४९)। हुमायूं ७ राजब (२८ मई) को सरहिन्द पहुँचा। सरहिन्द की लड़ाई २ शाबान (२२ जून) को हुई। इस तरह पच्चीस दिन हुए।

४० अकबरनामा, १, पृ. ३४८-४९।

४१ अकबरनामा, १, पृ. ३४६। जौहर (स्टीवर्ट, पृ. १७०) के अनुसार एक दल सिकन्दर खां ऊज़बेक के नेतृत्व में था। उसने अकबर का नाम नहीं दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर को, जिसकी अवस्था १३ वर्ष

प्रणाली के आधार पर था तथा सेना दायें, बायें, मध्य तथा अग्रगामी दल के रूप में विभाजित थी। २२ जून १५५५ को अकबर के पहरे की बारी थी।[४२] अफ़ग़ानों ने उसी दिन युद्ध प्रारम्भ किया। उन्होंने बैराम ख़ां के दल पर आक्रमण किया। अफ़ग़ानों के भीषण आक्रमण, विशेषतया उनके हाथियों के आतंक से बैराम के सिपाही भयभीत हो गये। सेना में अफवाह फैल गयी कि बैराम ख़ां मारा गया। हुमायूं ने इसका पता लगाने के लिए आदमी भेजे, तथा यह जानकर कि यह समाचार निराधार है उसे सन्तोष हुआ।[४३] बैराम ख़ां ने अपनी सेना को पीछे हटाकर पहले से तैयार रक्षा-पंक्ति में शरण लेने की आज्ञा दी। अफ़ग़ानों ने रक्षा-पंक्ति पर बारबार आक्रमण किया किन्तु वे उसे तोड़ने में असफल रहे। इसी समय हुमायूं की आज्ञा से तरदी बेग तथा शाह अबुल माली ने सिकन्दर सूर की सेना पर, जो आगे बढ़ आयी थी, तत्काल सामने से चक्कर लगाकर उसके पिछले भाग पर आक्रमण किया। अफ़ग़ान चारों तरफ से मुग़ल सैनिकों द्वारा घिर गये। भीषण मारकाट प्रारम्भ हो गयी। अफ़ग़ान पराजित हुए तथा मारे गये। जो बचे वे लड़ाई के मैदान से भाग खड़े हुए। सिकन्दर सूर ने भागकर शिवालिक की पहाड़ियों में शरण ली। समकालीन धारणाओं के अनुसार बैराम ख़ां ने मृत अफ़ग़ानों की खोपड़ियों का एक विजय स्तम्भ (पिरामिड) बनाया तथा उसका नाम 'सिरे मंज़िल' रखा।[४४]

युद्ध के पश्चात् एक मनोरंजक प्रश्न उपस्थित हुआ। विजय की घोषणा

से कम थी, नाममात्र के लिए इस दल का नेतृत्व दिया गया था। उसकी सहायता के लिए सिकन्दर ख़ां ऊज़बेक, अब्दुल्ला ख़ां ऊज़बेक इत्यादि भी थे।

४२ अकबरनामा (भाग १, पृ. ३४८-४९) के अनुसार जिस दिन युद्ध हुआ उस दिन अकबर के सेवकों के نوبت تردد (नौबते तरद्दु) की बारी थी। निज़ामुद्दीन तथा फ़िरिश्ता इसे نوبت کراولی (नौबते करावली) तथा बदायूनी (मुन्तखबुत्तवारीख, १, पृ. ४६०) نوبت یزک (नौबते यज़्क) लिखते हैं। श्री डे ने इसका अनुवाद "Turn of the command of the advance guard" किया है। तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १३४, नोट २। ब्रिग्स ने इसका अनुवाद : "While the prince Akbar was visiting the pickets of the camp" किया है (फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १७५)।

४३ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १७०।

४४ मुन्तखबुत्तवारीख, १, पृ. ४६१।

किसके नाम से की जाए? वास्तव में विजय का श्रेय बैराम ख़ां को मिलना चाहिए था। इसी के नाम से युद्ध की घोषणा होनी चाहिए थी, किन्तु हुमायूं के प्रिय अबुल माली ने अपना दावा भी उपस्थित किया। उसके अनुसार माछीवारा के युद्ध के पूर्व उसने अफ़ग़ानों को पराजित किया था और इस तरह उनकी पराजय की पृष्ठभूमि तैयार की थी। इस दृष्टि से उसका विचार था कि उसी को युद्ध का विजेता घोषित करना चाहिए। इस कठिन परिस्थिति में हुमायूं ने यह निर्णय दिया कि युद्ध की घोषणा अकबर के नाम से की जाय।[४५] इस तरह उसने इस आन्तरिक संघर्ष को समाप्त करने का प्रयत्न किया। इस घटना से बैराम ख़ां तथा अबुल माली में मुग़ल साम्राज्य में प्रमुख अमीर बनने के संघर्ष का बीजारोपण हुआ। किन्तु बैराम ख़ां की योग्यता तथा हुमायूं द्वारा दी गयी उपाधियों से स्पष्ट था कि दोनों अमीरों में किसका स्थान ऊंचा था।

अफ़ग़ानों के पराजय के कारण

सरहिन्द की पराजय ने अफग़ानों के प्रतिरोध का अन्त कर दिया तथा वे इस तरह छिन्न-भिन्न हो गये कि मुग़लों को दिल्ली तथा अन्य भागों पर अधिकार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। अफ़ग़ानों की पराजय तथा पतन के क्या कारण थे?

शेरशाह तथा इस्लाम शाह की मृत्यु के पश्चात् सूर अफ़ग़ानों की एकता समाप्त हो गयी थी। पारस्परिक संघर्ष ने उनकी शक्ति को क्षीण कर दिया था तथा उनके साम्राज्य और उनके सरदारों को कई भागों में विभाजित कर दिया था। उनके संगठित साम्राज्य में अराजकता व्याप्त हो गयी थी। इस तरह शत्रु से युद्ध करने के आवश्यक साधनों का अन्त हो चुका था। सिकन्दर शाह सूर पर ही मुग़लों के आक्रमण को रोकने का उत्तरदायित्व पड़ा। उसमें सैनिक योग्यता नहीं थी। शत्रु को सिन्धु नदी पर या उसके उत्तरी दर्रों पर ही रोकना चाहिए था। सिकन्दर ने लाहौर तथा पंजाब के अन्य भागों को अरक्षित छोड़ दिया। रोहतास के दुर्गपति ने कायरता दिखायी तथा आदम गक्खर तटस्थ बन गया। इस तरह पंजाब में माछीवारा तक का भाग बिना संघर्ष के मुग़लों के आधीन आ गया। माछीवारा के युद्ध में अफ़ग़ानों की पराजय बहुत-कुछ परिस्थितियों के कारण थी।

अफ़ग़ानों के विपरीत मुग़लों के सेनानायक योग्य तथा अनुभवी थे। बैराम ख़ां जैसा अनुभवी, सूझबूझवाला, साहसी तथा युद्धकला प्रवीण अफ़ग़ानों में कोई नहीं था। तरदी बेग, अबुल माली, सिकन्दर ख़ां ऊज़बेक, अब्दुल्ला ख़ां ऊज़बेक

४५ अकबरनामा, १, पृ. ३५०।

इत्यादि उच्च कोटि के सेनानायक थे। उनके अस्त्र-शस्त्र भी अफ़ग़ानों से अच्छे थे। मुग़लों की सबसे बड़ी शक्ति उनके आक्रमण की गति थी। बैराम ख़ां की बुद्धि ने सबसे अधिक सहायता दी। अफ़ग़ानों की सफलता सम्भव थी यदि सूर उत्तराधिकारियों ने शत्रु से लड़ने का सम्मिलित प्रयत्न किया होता, किन्तु यह असम्भव था।

दिल्ली पर अधिकार

सरहिन्द की विजय ने अफ़ग़ानों का प्रतिरोध प्रायः समाप्त कर दिया। इस विजय के पश्चात् सबसे प्रमुख तथा महत्त्वपूर्ण कार्य दिल्ली पर अधिकार करना था। हुमायूं ने सिकन्दर ऊज़बेक को दिल्ली पर अधिकार करने के लिए भेजा और वह स्वयं उसके पीछे-पीछे रवाना हुआ। वर्षा के कारण कुछ दिन उसे समाना में रुकना पड़ा। यहां की जलवायु भी उसके स्वास्थ्य के लिए अधिक लाभप्रद थी। दिल्ली पर अधिकार कर सिकन्दर ऊज़बेक ने हुमायूं को वहां तुरन्त आने के लिए आमन्त्रित किया। हुमायूं ने अबुल माली को पंजाब का हाक़िम नियुक्त किया। उसे आज्ञा दी गयी कि वह अपना केन्द्र जालन्धर में रखे और इस बात का ध्यान रखे कि काबुल और दिल्ली के बीच यातायात में गड़बड़ी न हो। समाना से रवाना होकर हुमायूं २० जुलाई १५५५ को सलीमगढ़ पहुँचा। यहां से २३ जुलाई १५५५ को उसने दिल्ली में प्रवेश किया[४६] तथा दूसरी बार मुग़ल तख़्त पर बैठा।

द्वितीय राजत्व

दिल्ली पर अधिकार हो जाने के पश्चात् हुमायूं ने अपने को हिन्दुस्तान का बादशाह अवश्य घोषित किया किन्तु उसकी वास्तविक शक्ति तथा अधिकार नाममात्र को थे। सूर वंश के उत्तराधिकारी अभी जीवित थे। सिकन्दर सूर सरहिन्द के युद्ध से भागकर शिवालिक पहाड़ियों में चला गया था तथा वहां से वह मुग़लों को पंजाब से भगाने की तैयारी कर रहा था। दिल्ली से दक्षिण बयाना में इबराहीम सूर दिल्ली हाथ से निकल जाने से दुखी था। चुनार, आगरा तथा उसके निकट के भागों पर मुहम्मद शाह आदिल शाह सूर का अधिकार था। इसका सेनापति हेमू योग्य तथा वीर था। मुहम्मद शाह सूर बंगाल में शक्ति संचय कर रहा था। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न भागों में स्थानीय अमीरों का प्रभुत्व था तथा मुग़लों के लिए इन्हें पराजित कर उनसे अधीनता स्वीकार कराना

४६ वही, पृ. ३५१ ; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १७६-७७ ; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १३५।

सरल नहीं था। हिसार में रुस्तम ख़ां अनेक अफ़ग़ान अमीरों को एकत्र कर मुग़लों का विरोध करने की तैयारी कर रहा था। बदायूं में राय हुसेन ज़लवानी, मालवा में बाज़ बहादुर तथा अन्य भागों में भी अफ़ग़ान सरदार अपना अधिकार जमाये हुए थे।

नियुक्तियां तथा जागीर वितरण

गद्दी पर बैठने के पश्चात् हुमायूं ने अपने अमीरों में जागीरों का वितरण किया तथा शासन के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपने आदमियों को नियुक्त किया। अकबर को हिसार तथा उस क्षेत्र की सरकार प्रदान की गयी तथा उसे गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित किया गया। बैराम ख़ां को सरहिन्द की सरकार एवं अन्य परग़ने, तरदी बेग को मेवात, सिकन्दर ख़ां ऊज़बेक को आगरा, अली कुली ख़ां को सम्भल तथा हैदर मुहम्मद ख़ां आख़्ता बेगी को बयाना में नियुक्त किया गया। अबुल माली पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया जा चुका था। तरदी बेग को दिल्ली की गवर्नरी प्राप्त हुई।[४७] मुस्तफ़ाबाद के परग़ने का राजस्व मुहम्मद साहब की आत्मा की शान्ति के हेतु दान-पुण्य के लिए वक़्फ़ कर दिया गया।[४८]

इन नियुक्तियों में अबुल माली को सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। यह कुछ तो हुमायूं के पक्षपात के कारण था और कुछ उसे सन्तुष्ट करने के लिए था। हुमायूं अबुल माली को ठीक न समझ सका और, जैसा आगे वर्णन किया गया है, उसने अपने पद का दुरुपयोग किया।

हिसार पर अधिकार

नियुक्त अमीर भिन्न-भिन्न स्थानों पर अधिकार करने के लिए रवाना हो गये। शमसुद्दीन अतका खां अकबर के प्रतिनिधि के रूप में हिसार पर अधिकार करने के लिए रवाना हुआ। रुस्तम खां ने २००० सैनिकों के साथ मुग़लों का विरोध किया, किन्तु अतका ख़ां के ४०० सैनिकों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया तथा अफ़ग़ान सेना को पीछे हटा दिया। रुस्तम ख़ां ने हिसार के दुर्ग में शरण ली। तेईस दिन के घेरे के पश्चात् हिसार ने समर्पण कर दिया।

[४७] अकबरनामा, १, पृ. ३५१। फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १७७।

[४८] मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६२ में बदायूनी लिखता है कि इस परग़ने की आय ३०-४० लाख टनका थी। आईने अकबरी २, पृ. ३०१ में इस परग़ने की आय ७,४९६,६९१ दाम दी गयी है।

रुस्तम ख़ां पराजित हुआ तथा ७०० बन्दियों के साथ दिल्ली भेज दिया गया। उसकी वीरता के कारण हुमायूं उसे क्षमा करने तथा उसे जागीर देने के लिए तैयार था किन्तु उसकी शर्त यह थी कि वह अपने लड़के को बन्धक के रूप में बिकराम (पेशावर) के दुर्ग में रहने दे। रुस्तम ने इस शर्त को स्वीकार नहीं किया। विवश होकर उसे बन्दी बनाकर बेग मुहम्मद इशक आका के सुपुर्द कर दिया गया।[४९]

कम्बर दीवाना की हत्या

बदायूं राय हुसेन ज़लवानी नामक अफ़ग़ान के अधिकार में था। सरहिन्द के युद्ध के पश्चात् जिस समय हुमायूं दिल्ली रवाना हुआ, कम्बर अली दीवाना नामक एक मुग़ल, सेना एकत्र कर बिना राजसी आज्ञा के सम्भल पहुँच गया। वह लूटपाट करता रहता था तथा लूट का धन लोगों में बाँट देता था। वह लोगों को अत्यधिक भोजन कराया करता था तथा कहता था, "खाओ, धन ईश्वर का दिया है और प्राण भी ईश्वर के दिये हुए हैं। कम्बर दीवाना ईश्वर का बकावल (भोजन का प्रबन्धक) है।"[५०] उसके पुत्र अरिफ़ुल्लाह ने बदायूं पर अधिकार कर लिया। कम्बर ने आगे बढ़कर कान्त गोला[५१] पर रुक्न ख़ां नामक अफ़ग़ान को पराजित किया और मल्लावा[५२] तक के भागों पर अधिकार कर लिया। दीवाना एक स्वतन्त्र व्यक्ति की तरह कार्य कर रहा था, किन्तु वह हुमायूं को स्वामिभक्ति के पत्र भी लिखता रहता था। शक्ति बढ़ने के साथ उसका मन भी बढ़ने लगा और वह सुल्तान तथा ख़ां की उपाधियां, पताका एवं नक्कारा भी लोगों को प्रदान करने लगा। ये अधिकार स्वतन्त्र शासकों को ही प्राप्त थे। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक था कि इस व्यक्ति की रोकथाम की जाए। हुमायूं ने अली कुली ख़ां शैबानी[५३] को दीवाना के विरुद्ध भेजा। उसे आज्ञा दी गयी कि यदि दीवाना दरबार में आना स्वीकार

४९ अकबरनामा, १, पृ. ३५२।

५० मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६५।

५१ ज़िला शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश।

५२ मुन्तख़बुत्तवारीख़ के अंग्रेजी अनुवादक रेंकिंग ने इसे पंजाब का पहाड़ी किला मलाऊं बताया है। मल्लावां हरदोई ज़िले में है। अधिक सम्भव है कि वही स्थान हो क्योंकि शाहजहांपुर तथा हरदोई ज़िले पास-पास हैं।

५३ अकबरनामा, १, पृ. ३५३ में इसे शैबानी तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में इसके स्थान पर सीस्तानी लिखा है। तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १३६, फ़ुटनोट १; इलियट तथा डासन, ५, पृ.।

न करे तो उसे दण्ड दिया जाय। अली कुली के बुलाने पर दीवाना ने दरबार में आना अस्वीकार कर दिया तथा कहला भेजा कि "जिस प्रकार बादशाह का तू दास है, मैं भी हूँ। मैंने यह प्रदेश अपनी तलवार के बल से विजय किया है।[५४] फलतः युद्ध हुआ। दीवाना पराजित हुआ तथा भागकर बदायूं के दुर्ग में छिप गया। यहाँ से उसने हुमायूं को प्रार्थना-पत्र लिखा। अली कुली इस बहादुर आदमी को क्षमा दिलाना चाहता था। उसने मुहम्मद बेग तुर्कमान एवं मुल्ला ग़यासुद्दीन को उससे वार्ता के लिए दुर्ग में भेजा किन्तु दीवाना ने उन्हें बन्दी बना लिया। इन दोनों दूतों ने किले के लोगों को अपने पक्ष में करके दीवाना को बन्दी बना लिया। दीवाना फिर भी समर्पण करने के लिए राज़ी नहीं हुआ। विवश होकर अली कुली ने दीवाना की हत्या करा दी (१८ जनवरी १५५६) तथा उसका कटा सिर हुमायूं के पास भेज दिया। इसी बीच हुमायूं ने कासिम मुख़लिस को दीवाना के सम्भल, बदायूं तथा कान्तगोला जीतने के उपलक्ष्य में उसे क्षमा करने और यदि सम्भव हो तो पारितोषिक देने के लिए आज्ञापत्र भेजा। मुख़लिस के पहुँचने के पूर्व ही दीवाना मर चुका था। हुमायूं अली कुली पर बहुत नाराज़ हुआ और उसकी इस जल्दबाजी के लिए बुरा-भला कहा। उसने लिखा "जब वह (कम्बर) स्वामिभक्ति प्रदर्शित करता था और सेवा में उपस्थित होना चाहता था तो तुमने युद्ध क्यों होने दिया और वह जब बन्दी बना लिया गया था तो मेरी आज्ञा के बिना क्यों मरवा डाला ?"[५५]

अली कुली का दीवाना को मरवा डालना गलत नहीं था। दीवाना का व्यवहार, अनुमति के बिना स्थानों पर अधिकार करना, उपाधियों का वितरण करना, बन्दी होने के बाद भी अली कुली के साथ अच्छा व्यवहार न करना, ये बातें उसका उग्र व्यवहार प्रदर्शित करती थीं। ऐसे व्यक्ति के साथ कड़ाई करना आवश्यक था। फिर भी हुमायूं उसे क्षमा करना चाहता था। यह कुछ तो इस कारण था कि मुग़ल अभी अपना प्रभुत्व स्थापित नहीं कर पाये थे और अफ़ग़ानों का विरोध करने के लिए ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी तथा कुछ हुमायूं के स्वभाव के कारण था।

५४ अकबरनामा, १, पृ. ३५३ ; बदायूनी के अनुसार, (मुन्तख़बुत्तवारीख़ १, पृ. ५६४) वह कहा करता था "मैं बादशाह का तुझसे अधिक विश्वासपात्र हूँ। मेरा यह सिर तथा बादशाही मुकुट जुड़वां बालक के समान है।"

५५ अकबरनामा, १, पृ. ३५४।

गाज़ी ख़ां की हत्या

अफ़ग़ान सरदार गाज़ी ख़ां बयाना का गवर्नर था। मुग़ल अमीर हैदर मुहम्मद आख़्ता बेगी ने बयाना पर अधिकार कर उसे पराजित कर दिया। गाज़ी ख़ां दुर्ग में छिप गया। बाद में उसने इस शर्त पर समर्पण किया कि उसे क्षमा कर दिया जाएगा। हैदर मुहम्मद ने अपना वचन न रखा तथा उसकी सम्पत्ति के लोभ में उसकी हत्या कर दी। बदायूनी के अनुसार दूसरे दिन गड़े धन की पूछ-ताछ हुई। हैदर मुहम्मद ने दूध पीते बच्चों से बड़ों तक की हत्या करा दी।[५६] उसके इस व्यवहार से हुमायूं बहुत नाराज़ हुआ। उसने शिहाबुद्दीन अहमद ख़ां को जो मीर ब्यूतात था, इस घटना की छानबीन तथा गाज़ी ख़ां की सम्पत्ति का पता लगाने के लिए भेजा। जो धन गाज़ी ख़ां से प्राप्त हुआ था हैदर मुहम्मद ने उसे छीन लिया। बदायूनी के अनुसार हैदर मुहम्मद ने बहुमूल्य रत्नों को छिपा लिया तथा अन्य वस्तुएं समर्पित कर दीं।[५७] हुमायूं उसे दण्ड देना चाहता था, किन्तु वह हिन्दुस्तान में हाल ही में आया था इस कारण उसने ऐसा करना उचित नहीं समझा।[५८]

मिर्ज़ा सुलेमान द्वारा अन्दराब पर अधिकार

अन्दराब तथा इश्किमीश तरदी बेग की जागीर थी। हिन्दुस्तान में हुमायूं के साथ आने के समय उसने मुकीम ख़ां को इन भागों की देखभाल के लिए नियुक्त कर दिया था। सुलेमान इन भागों पर अधिकार करना चाहता था। प्रारम्भ में उसने मुकीम ख़ां को अपनी तरफ मिलाने का प्रयत्न किया किन्तु इसमें सफल न होने से उसने अन्दराब पर आक्रमण कर उस पर घेरा डाला। युद्ध करना कठिन समझकर मुकीम ख़ां अपने परिवार के साथ दुर्ग से बाहर आया और युद्ध करते हुए बहुत कठिनता से उसने काबुल के दुर्ग में शरण ली।[५९] इस तरह हुमायूं तथा उसके अमीरों की अनुपस्थिति के परिणाम स्वरूप ये भाग उसके हाथ से निकल गये।

सिकन्दर सूर तथा पंजाब की समस्या

सिकन्दर सूर पंजाब के भागों में छिपा हुआ था। हुमायूं ने मीर शाह

५६ मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६३-६४।
५७ वही।
५८ अकबरनामा, १, पृ. ३५४।
५९ वही।

अबुल मालीको पंजाब का गवर्नर बनाया था तथा आज्ञा दी थी कि वह सिकन्दर सूर से उस प्रदेश की रक्षा करे। उससे कहा गया कि वह जालन्धर को अपना केन्द्र बनाये। इस आज्ञा की परवाह न कर वह जालन्धर से लाहौर पहुँच गया। अबुल माली घमंडी था। वह जनता को कष्ट पहुँचाता था तथा शाही आदेश की परवाह नहीं करता था। अपने अधीन अफसरों के प्रति भी वह दुर्व्यवहार करता तथा लाहौर में बहुत ठाटबाट से रहता था।[६०] उसने लाहौर के शिकदार फरहात खां को हटाकर उसकी जगह अपना आदमी नियुक्त किया तथा शाही कोष का दुरुपयोग करने लगा। वह अमीरों को परेशान करता था तथा उनके कोष को भी हड़प लेता था। हुमायूं को उसके इन कार्यों की सूचना मिली, किन्तु उसके प्रति अत्यधिक स्नेह होने के कारण उसने इन बातों पर विश्वास नहीं किया। पंजाब की इस अव्यवस्था के परिणामस्वरूप सिकन्दर सूर अपने स्थान से निकलकर बाहर आया। उसने हैबत खां सुल्तानी का लगभग ५ करोड़ का कोष लूट लिया तथा उसे उसके अफसरों के साथ मार डाला और मानकोट के निकट के परगनों से कर वसूल करने लगा। इस धन की सहायता से उसने अपनी सेना संगठित की तथा पंजाब की तरफ बढ़ा।[६१]

अबुल माली को सिकन्दर के अभियान की सूचना मिली। अपनी निद्रा त्यागकर उसने अपने अमीरों से परामर्श किया। सभी ने सिकन्दर के विरुद्ध आक्रमण करने की राय दी। किन्तु मुग़लों के पास आवश्यक युद्ध सामग्री नहीं थी। जौहर, जो उस समय वहां उपस्थित था, लिखता है कि उसकी राय पर दुर्ग की मरम्मत के लिए आयी हुई लकड़ी, जंजीर के कुड़े इत्यादि की सहायता से 'अराबे,' तैयार हुए। जौहर ने भी अस्त्र-शस्त्र तथा बारूद दिया।[६२] इसी समय ५०० मुग़ल सिपाही मध्य एशिया से आये थे; उन्हें भी सेना में भर्ती किया गया। इस तरह अबुल माली ने युद्ध की तैयारी की। स्पष्ट है कि उसने अपने पद तथा उत्तरदायित्व का ध्यान नहीं रखा था। किसी प्रकार तैयारी कर वह सिकन्दर सूर के विरुद्ध बढ़ा। सिकन्दर पुनः पहाड़ों में भाग गया।

अबुल माली के कार्यों की सूचना पाकर हुमायूं के परामर्शदाताओं ने उसके सम्मुख यह राय दी कि अबुल माली को बुलाकर किसी दूसरे को उसके स्थान पर नियुक्त करना चाहिए। हुमायूं के लिए निश्चय करना बड़ा कठिन था।

६० मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६२ ; अकबरनामा, १, पृ. ३५५।
६१ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३५६।
६२ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १७१-७२।

परिस्थिति के अनुसार बैराम ख़ां सबसे उपयुक्त व्यक्ति था किन्तु उसे नियुक्त करने से दोनों की ईर्ष्या और बढ़ जाती। अन्त में हुमायूं ने अकबर को पंजाब का गवर्नर और बैराम ख़ां को शाहज़ादे का अतालीक नियुक्त किया तथा अबुल माली की बदली हिसार फिरोज़ा को कर दी। इस तरह हुमायूं ने इस समस्या को हल किया।

अकबर अपने अतालीक़ बैराम ख़ां के साथ पंजाब के लिए रवाना हुआ। (नवम्बर १५५५)। सरहिन्द के निकट अबुल माली की सेना के कई प्रमुख अमीर उससे आ मिले। राजसी नियम के अनुसार बैराम ख़ां को इन व्यक्तियों का स्वागत नहीं करना चाहिए था। किन्तु बैराम ख़ां को इससे आन्तरिक प्रसन्नता ही हुई क्योंकि इससे अबुल माली की शक्ति कम हो गयी। अबुल माली ने हुमायूं से इसकी शिकायत की तथा बैराम ख़ां और अकबर को लिखा कि यदि वे फौरन लाहौर आ जाएं तो सिकन्दर को पराजित किया जा सकता है। बैराम ख़ां ने उसे लिखा, "तुम इधर चले आओ और फिर सम्राट से मिलो।" बैराम ख़ां ने हुमायूं को भी पत्र लिखकर सूचित किया तथा उससे अबुल माली को बुलाने के लिए प्रार्थना की।[६३] हुमायूं ने बैराम ख़ां के पत्र के उत्तर में अबुल माली का पत्र प्राप्त होने की सूचना दी तथा उसे लाहौर की तरफ तेजी से बढ़ने के लिए लिखा। अबुल माली को हुमायूं ने लिखा कि वह फौरन दरबार में आये, उसकी शिकायत की जांच की जाएगी। जिस दिन अबुल माली को बैराम ख़ां का पत्र प्राप्त हुआ उसी दिन बैराम ख़ां का दूत भी उसे लाहौर से रवाना होने का परामर्श देने तथा उसकी गतिविधि का अवलोकन करने वहां पहुँचा। अबुल माली को विवश होकर हुमायूं की आज्ञा माननी पड़ी।

सिकन्दर सूर अपने छिपे स्थान से बाहर आ गया था किन्तु अकबर की सेना के आगमन की सूचना पाकर वह पुनः पहाड़ियों में वापस चला गया। अबुल माली सुल्तानपुर में अकबर से मिला। अकबर ने उसे अपने दरबार में बैठने का स्वयं आदेश दिया तथा उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। भोजन के समय उसके लिए अलग दस्तरख़्वान बिछाया गया। इससे अबुल माली बहुत नाराज़ हुआ। अपने पड़ाव में वापस जाकर उसने अकबर को सन्देश भेजा कि हुमायूं उसका विशेष आदर करता था। उसने अकबर को याद दिलाया कि जूयेशाही में उसने हुमायूं के ही बर्तन में भोजन किया था, और अकबर वहां उपस्थित होने पर भी यह सम्मान न प्राप्त कर सका था। उसने आपत्ति की कि "उसके लिए अलग कालीन क्यों बिछाया गया और उसके लिए पृथक

[६३] इस पत्र-व्यवहार के लिए देखिए जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १७३-७४।

दस्तरख्वान क्यों लगवाया गया ? अकबर ने हाज़ी मुहम्मद सीस्तानी से कहा कि वह जाकर अबुल माली से कह दे कि "सल्तनत के कानून और होते हैं, तथा प्रेम के कानून और होते हैं। तुम्हारा बादशाह से जो सम्बन्ध था वह मुझसे नहीं। बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम दोनों सम्बन्धों में भेदभाव न करके शिकायत करने लगे।"[६४] अबुल माली समझ गया कि उसकी शिकायत का कोई प्रभाव नहीं होगा।

पंजाब में प्रवेश करने के पश्चात् अकबर सिकन्दर सूर के विरुद्ध हरियाना[६५] पहुँचा। यहां उसे हुमायूं की दुर्घटना की सूचना मिली। यहां से वह कलानूर में आकर अन्य सूचना की प्रतीक्षा करने लगा।

हुमायूं की मृत्यु

गद्दी पर दुबारा अधिकार करने के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूं के मन में जीवन से निराशा आती जा रही थी। अकबर के पंजाब चले जाने के पश्चात् वह अकसर परलोक की बात करता था[६६] और दिल्ली के मकबरों और कब्रों को देखकर उसे इसकी और भी याद आती थी।

बायज़ीद लिखता है कि हुमायूं अकसर सोचा करता था कि वह इस कमीने संसार को त्याग दे तथा उसने शपथ ली थी कि हिन्दुस्तान पर, जो उसके भाइयों के पारस्परिक विरोध के कारण हाथ से निकल गया था, पुनः अधिकार करने के पश्चात् वह उसे अकबर को दे देगा तथा स्वयं अपना समय दरवेशों, विद्वानों इत्यादि के सत्संग में व्यतीत करेगा।[६७] अफीम की खुराक भी उसने कम करनी प्रारम्भ कर दी थी। सात दिन की खुराक कागज में लपेटकर उसने कहा कि वह सात दिनों में उतनी ही अफ़ीम खाएगा। २४ जनवरी १५५६ को उसके पास अफ़ीम की चार गोलियां थीं। उसने उन्हें गुलाब जल में मिलाकर सेवन किया।[६८] उसी दिन सन्ध्या को उसके कुछ अफसर, जो मक्का गये थे,

६४ अकबरनामा, १, पृ. ३६६-६७ ; बिगो तोरये सल्तनत दीगर अस्त व कानूने इश्क दीगर। आं निस्बते की हज़रते जहांबानी रा ब शुमा बूंद, मूरा नीस्त। अजब कि दरमियाने ईं दो निस्बत तफ़रक़ा न कर्दा गिला कर्दा यद।

६५ होशियारपुर, (पंजाब जिले में) ३१°३८′ उत्तर तथा ७२°५२′ पूर्व।

६६ अकबरनामा, १, पृ. २६२।

६७ बायज़ीद, पृ. १६४।

६८ अकबरनामा, १, पृ. ३६३। अकबरनामा से यह स्पष्ट नहीं प्रतीत होता

उसके सामने पेश किये गये। तुर्की एडमिरल सीदी अली रेईस, जो गुजरात से आया था, उसी दिन हुमायूं से मिला। काबुल से भी उसे वहां की परिस्थितियों की सूचना मिली। यहां से हुमायूं अपने पुस्तकालय की छत पर गया और यहां से मस्जिद में जो लोग एकत्र हुए थे उनका अभिवादन (कोरनिश) उसने स्वीकार किया। बड़ी देर तक वह मक्का, गुजरात तथा काबुल की बातें करता रहा। इसके पश्चात् उसने कुछ गणितज्ञों को शुक्र ग्रह के उदय का समय देखने के लिए बुलाया। वह उसी समय एक दरबार कर अपने अफसरों की पदोन्नति करना चाहता था। इसी समय जब वह नीचे उतर रहा था तथा दूसरी सीढ़ी तक पहुँचा था कि मिस्कीन नामक मुकरी (मस्जिद में दुआ प्रार्थनाओं का पाठ कराने वाला) ने अज़ान दी। हुमायूं का यह नियम था कि जब कभी वह अजान की आवाज़ सुनता था तुरन्त घुटने के बल श्रद्धा से झुक जाता था। उस दिन भी अजान सुनकर वह वहीं बैठ जाना चाहता था।[६९] जाड़े का दिन होने के कारण वह लम्बा लबादा (पोस्तीन)[७०] पहने हुए था। बैठते समय उसके पैर के नीचे उसका पोस्तीन दब गया। जो छड़ी वह लिये हुए था वह फिसल गयी और वह सीढ़ी से फिसलकर सिर के बल गिर पड़ा। उ[illegible]ी दाहिनी कनपटी में तेज़ चोट लगी जिससे उसके दाहिने कान से रक्त की कुछ [illegible] निकल आयीं। बेहोशी की अवस्था में वह राजमहल में ले जाया गया। कुछ [illegible] के बाद उसे होश आया किन्तु वह पुनः बेहोश हो गया। दू[illegible]रे दिन उसकी कमज़ोरी बढ़ गयी और ऐसा मालूम होने लगा कि उसका बचना असम्भव है। हक़ीमों ने हर तरह की दवाओं का प्रयोग किया लेकिन उसका कोई लाभ नहीं हुआ। एक द्रुतगामी दूत फौरन इसकी सूचना देने के लिए अकबर के पास पंजाब भेजा गया[७१] तथा शेख़ नज़र जूली[७२] के द्वारा अकबर के पास एक फ़रमान

है कि उसने चार गोलियां एक साथ खा लीं या एक गोली। अधिक सम्भव है कि उसने ए[illegible] दिन की खुराक ही खायी

६९ अकबरनामा, १, पृ. ६६३; ए. बमबेरी, दि ट्रैवेल्स एण्ड एडवेंचर्स ऑफ दि टर्किश एडमिरल सीदी अली रेईस, पृ. ५५।

७० यह एक तरह का लबादा था जो बालदार जानवरों की खाल से बनता था। इसके [illegible] भीतर तथा खाल ऊपर होती थी।

७१ अकबरनामा के अनुसार जब अकबर हरियाना में था तो एक द्रुतगामी दूत पहुँचा जिसने उसे हुमायूं की दुर्घटना की सूचना दी। शेख नज़र जूली कलानूर उसके बाद में पहुँचा (अकबरनामा, १, पृ. ३६७)

७२ मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६६; तबक़ाते अकबरी, (२, डे, प्र. १३७)
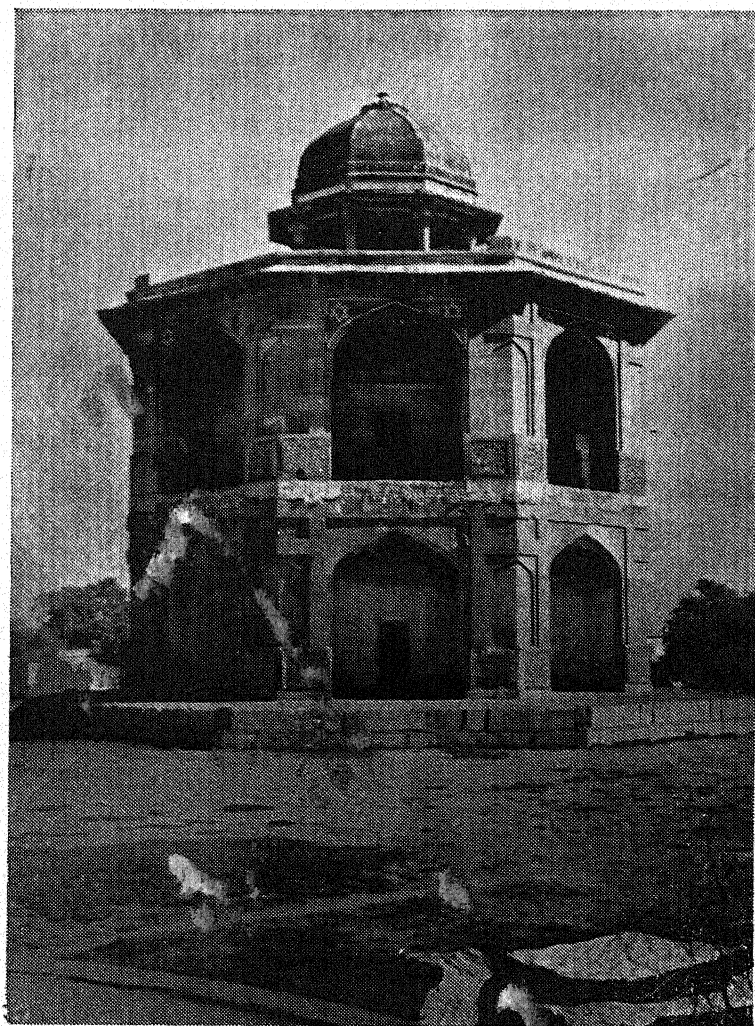
हुमायूं का पुस्तकालय

भेजा गया। इस फ़रमान में केवल यह सूचित किया गया था कि हुमायूं सीढ़ी से गिर पड़ा है और उसे थोड़ी चोट आयी है, पर चिन्ता की कोई बात नहीं है। अब सब ठीक है। यह फ़रमान कूटनीतिक दृष्टि से लिखा गया था जिससे लोगों में गड़बड़ी न हो। हुमायूं तो बेहोश था, इस कारण उसके निकट के अमीरों ने ही इसकी भाषा निश्चित की थी। वास्तव में उसकी अवस्था शोचनीय थी और २६ जनवरी १५५६, रविवार के दिन हुमायूं की मृत्यु हो गयी।[७३]

मुग़ल साम्राज्य अव्यवस्थित था। गद्दी का उत्तराधिकारी दिल्ली से दूर था तथा चारों तरफ शत्रु थे। इस स्थिति में हुमायूं की मृत्यु की सूचना से विद्रोह होना स्वाभाविक था। जनता को विश्वास दिलाने के लिए कि हुमायूं जीवित है, तरह-तरह के प्रयत्न किये गये। प्रारम्भ में यह घोषणा प्रसारित की गयी कि बादशाह घोड़े पर अपने प्रदेश की यात्रा करेंगे। उसी के बाद पुनः दूसरी घोषणा की गयी कि मौसम की खराबी के कारण यह यात्रा स्थगित कर दी गयी है। दूसरे दिन सार्वजनिक दरबार की घोषणा की गयी, किन्तु उसे भी यह कहकर स्थगित कर दिया गया कि ज्योतिषियों ने शुभ मुहूर्त न होने से इसकी स्वीकृति नहीं दी है। इन परिवर्तनों से सेना में और भी भय छा गया तथा उन्हें संदेह हुआ कि हुमायूं की मृत्यु हो चुकी है। अब यह आवश्यक हो गया कि लोगों को सम्राट का दर्शन कराया जाए। मुल्ला बेकसी नामक व्यक्ति की शकल हुमायूं से मिलती-जुलती थी। उसे राजसी वस्त्र पहनाये गये, किन्तु उसका चेहरा तथा आँखें बुर्के से ढक दी गयीं। उसे ले

में इसे नज़र शेख जोली या जूली तथा अकबरनामा (१, पृ. ३६४) में नज़र शेख चोली लिखा है। होदीवाला, स्टडीज इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री, १, पृ. ५१४।

७३ समकालीन इतिहासकारों में हुमायूं की मृत्यु की तिथि के विषय में भिन्नता है। तबकाते अकबरी, मुन्तखबुत्तवारीख़, फ़िरिश्ता, दुर्घटना की तिथि तो शुक्रवार ७ रबीउल अव्वल ९६३ लिखते हैं, किन्तु मृत्यु तिथि के विषय में कुछ दिनों का अन्तर है। यह स्वाभाविक है क्योंकि उसकी मृत्यु छिपायी गयी थी। इसकी विवेचना के लिए देखिए अकबरनामा, १, पृ. ३६३-६४; तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १३९; जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १७५; मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६५-६६; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३६५; बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. २५८; त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फॉल, पृ. १६९; ए. एल. श्रीवास्तव, अकबर दि ग्रेट, १, पृ. १७-१८; होदीवाला, स्टडीफ़ इन मुग़ल न्यूमिसमैटिक्स, पृ. २६४-६५।

जाकर कर उस स्थान पर बैठाया गया जहाँ हुमायूं बैठा करता था। राजसी परम्परा तथा नियम के अनुसार उसके अन्य कर्मचारी भी उसके आगे-पीछे खड़े हो गये। उसने नदी की ओर मुँह करके लोगों को दर्शन दिये। लोगों ने कोरनिश की तथा उन्हें विश्वास हो गया कि हुमायूं जीवित है।[७४]

सत्रह दिन तक हुमायूं की मृत्यु छिपायी गयी।[७५] उसके पश्चात् तरदी बेग तथा अन्य अमीरों ने दिल्ली की जुमा मस्ज़िद में अकबर के नाम से ख़ुत्बा पढ़ा तथा उसे हुमायूं का उत्तराधिकारी घोषित किया। अकबर इस समय कलानूर में था। मृत्यु की विश्वस्त सूचना पाकर बैराम ख़ां ने तत्काल उसके राजतिलक का प्रबन्ध किया। अकबर इस आकस्मिक वज्रपात से शोक तथा दुख से विलाप करने लगा। अतका ख़ां तथा माहम अनगा ने उसे सांत्वना दी। वृहत् प्रबन्ध का न समय था न साधन वहीं एक ईंटों के चबूतरे पर शुक्रवार १४ फरवरी १५५६ (२ रबि उल आख़िर ९६३ हि.) को अकबर का राजतिलक हुआ तथा उसको मुग़ल सम्राट घोषित किया गया।[७६]

मृत्यु के पश्चात् हुमायूं की लाश कपड़े में लपेटकर दिल्ली में दफ़ना दी गयी। हेमू के दिल्ली पर अधिकार करने के समय उसकी लाश वहां से निकाल कर सरहिन्द ले जाकर अस्थायी रूप से पुनः दफ़नायी गयी। पानीपत के द्वितीय युद्ध के पश्चात् मुग़लों के दिल्ली पर अधिकार करने के उपरान्त हुमायूं का शव पुनः दीनपनाह लाया गया। यहां वह कई वर्ष तक पड़ा रहा। इसी बीच हुमायूं की रानी बेगा बेगम या हाज़ी बेगम ने अपने निर्देशन में हुमायूं का मकबरा बनवाया जहां उसका शव दफ़नाया गया। भाग्य की कैसी विडम्बना थी कि हुमायूं को जीवन भर शान्ति नहीं मिली और उसकी लाश भी बारबार दफ़नायी गयी।

७४ बमबेरी, ट्रैवेल्स एण्ड एडवेंचर्स ऑफ दि टर्किश एडमीरल सीदी अली रेइस, पृ. ५६-५७ ; अकबरनामा, १, पृ. ३६४।

७५ अकबरनामा, १, पृ. ३६४।

७६ ए. एल. श्रीवास्तव, अकबर दी ग्रेट, भाग, १, पृ. १९।

११. सिंहावलोकन

संसार में हुमायूं की तरह भाग्यवान तथा उसकी तरह अभागे सम्राट बहुत कम होंगे। उसे अपने पिता से एक बृहद साम्राज्य प्राप्त हुआ था, किन्तु उसने अपनी मूर्खताओं तथा परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उसे खो दिया। निर्वासन काल में उसे तथा उसके परिवार को जो कष्ट उठाने पड़े वे किसी भी व्यक्ति को जर्जर कर देते। उसके भाइयों तथा सम्बन्धियों ने उसे सदा कष्ट दिया। जीवन भर प्रयत्न करने पर भी उसे अन्त में अपने पिता की आज्ञा के विरुद्ध अपने भाइयों को दण्ड देना पड़ा, जिसके लिए उसे सदा पछतावा तथा दुःख होता रहा। अपने ४८ वर्ष के जीवन में केवल दस वर्ष ही वह हिन्दुस्तान के सिंहासन पर शासन कर सका।[1] इस उथल-पुथल में वह कोई स्थायी शासन, महत्त्वपूर्ण इमारत अथवा संस्था नहीं छोड़ सका, जिससे उसके यश का सितारा सदा चमकता रहता। इस दृष्टिकोण से वह बहुत ही अभागा था। दूसरी तरफ उसका सबसे बड़ा सौभाग्य यह था कि उसने अपना खोया हुआ साम्राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। इस तरह अन्त में विजय उसी की हुई। उसके सम्पूर्ण कष्टों तथा मानहानि को इस विजय ने समाप्त कर दिया। उसका इससे भी बड़ा सौभाग्य यह था कि वह अकबर महान का पिता था, जो भारत ही का नहीं वरंच विश्व का एक महान शासक हुआ।

साम्राज्य तथा शासन

सम्राट

हुमायूं एक सम्राट था तथा उसकी राज्य प्रणाली एकतन्त्रात्मक थी। वह सम्राट को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था। उसका मत था कि जिस तरह ईश्वर

१ हुमायूं का जन्म ६ मार्च १५०८ तथा मृत्यु २६ जनवरी १५५५ को हुई। वह ३० दिसम्बर १५३० को गद्दी पर बैठा। कन्नौज के युद्ध (१७ मई १५४०) के पश्चात् उसका प्रथम साम्राज्य समाप्त हो गया। २४ जुलाई १५५५ को उसने पुनः दिल्ली में प्रवेश किया तथा सिंहासन पर बैठा। इस तरह प्रथम साम्राज्य के समय ९४$\frac{1}{2}$ वर्ष

प्राणियों की रक्षा करने के लिए होता है उसी तरह सम्राट अपने साम्राज्य की जनता के लिए होता है। हुमायूं आध्यात्मिक तथा रहस्यवादी प्रवृत्ति का व्यक्ति था। वह संसार को वास्तविक सत्य की छाया मात्र समझता था। कदाचित् इसी कारण अवसाद की अवस्था में वह बारबार संसार त्यागने की बात करता था। हुमायूं ज्योतिष शास्त्र में विश्वास करता था। उसके आविष्कारों तथा योजनाओं से स्पष्ट प्रकट होता है कि वह सूर्य की शक्ति पर विश्वास करता था। बंगाल निवास के समय वह अपने राज मुकट पर पर्दा (नकाब्र) डाले रहता। जब नकाब्र हटाता तो लोग "प्रकाश प्रकट हो गया" कहकर उसका अभिवादन करते थे। उसके इस व्यवहार से कुछ लोग यह समझने लगे कि वह खुदाई का दावा करता था। ईरान में लोगों ने इस बात पर उसका मजाक उड़ाया।[२] ख़्वन्दमीर उसे "हज़रत पादशाह ख़िलाफ़त पनाह, हक़ीक़ी मजाज़ी एवं सल्तनत का योग"[३] मानता है तथा उसे ईश्वर का प्रतिरूप (हजरत पादशाह जिल्लइल्लाह) कहकर सम्बोधित करता है। इससे स्पष्ट होता है कि हुमायूं अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था तथा दैवी सिद्धान्त में विश्वास करता था।

हुमायूं के राजत्व के इतिहास में दो-एक घटनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। चौसा के युद्ध के पश्चात् उसने भिश्ती निज़ाम को, कामरान के विरोध पर भी, सिंहासन पर बैठाया। यह दैवी सिद्धान्त के विरुद्ध था। इसका अर्थ हुआ कि सम्राट जिसे भी चाहे राजत्व प्रदान कर सकता था। राजत्व के सम्मान को इससे बहुत बड़ा धक्का लगा। उसके भाइयों ने भी राजत्व शक्ति को बारबार चुनौती दी तथा उसे न्याय के सिद्धान्त पर भावना के आधार पर चलने को विवश किया।

हुमायूं के शासनकाल में उसके अमीरों को कभी-कभी बहुत महत्त्व प्राप्त हो जाता था। भाइयों के बारबार विद्रोह करने पर भी हुमायूं उन्हें क्षमा कर देता था। अन्त में अमीरों ने उसे शपथ लेने पर विवश किया कि वे जो भी निश्चय करेंगे उसे सम्राट को मानना पड़ेगा। इस तरह उसके राजत्व को अमीरों ने सीमित कर दिया। यह अमीरों की बहुत बड़ी विजय थी। हुमायूं अपने शासन काल में राजत्व को वह शक्ति तथा बल न प्रदान कर सका जो उसके पुत्र के शासन काल में प्राप्त हुआ। फिर भी हुमायूं अपने को अन्य समकालीन शासकों से ऊँचा समझता था और ईरान में शाह की दया पर निर्भर रहने पर

महीने तथा दूसरी बार ६ महीने अर्थात् लगभग दस वर्ष वह दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य का शासक रहा।

२ मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४४६।

भी उसने इस बात को नहीं छिपाया। अपने को उच्च समझने पर भी उसने अपने को न ख़लीफ़ा घोषित किया और न सम्पूर्ण मुस्लिम संसार का नेता ही।

साम्राज्य

राज्यारोहण के समय हुमायूं को अपने पिता से एक बहुत बड़ा साम्राज्य प्राप्त हुआ था जो आक्सस नदी से गंगा नदी तक फैला हुआ था। इस साम्राज्य का वर्णन तीसरे अध्याय में किया जा चुका है। इस साम्राज्य को हुमायूं ने बढ़ाने का प्रयत्न अवश्य किया किन्तु वह सफल न हो सका। १५३६ में उसने मालवा तथा गुजरात को विजय कर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। इस समय उसका साम्राज्य अपने विकास की अन्तिम सीमा पर पहुँच गया था। इसी के पश्चात् उसका पतन प्रारम्भ हुआ। पहले मालवा तथा गुजरात उसके हाथ से निकल गये, फिर बंगाल, बिहार, दिल्ली प्रदेश तथा सम्पूर्ण साम्राज्य ही से वह निष्कासित हो गया। कुछ दिनों तो उसके अधीन एक इंच भूमि भी नहीं थी। अपने बाहुबल से उसने खोये हुए अधिकतर भागों पर पुनः अधिकार कर लिया। मृत्यु के समय वह भारत का शासक अवश्य हो गया था, किन्तु अभी पंजाब, दिल्ली, बिहार तथा दोआब के बहुत से भाग अफ़ग़ानों के अधीन थे जिसका वर्णन किया जा चुका है। इस तरह उसकी मृत्यु के समय बाबर से प्राप्त मग़ल साम्राज्य छोटा हो गया था।

साम्राज्य का राजनैतिक विभाजन

बाबर तथा हुमायूं के साम्राज्य के राजनीतिक विभाजन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं है। बाबर ने अपनी आत्मकथा में भीरा तथा बिहार के बीच तीस सरकारों तथा जमींदारियों का उल्लेख किया है। हुमायूं के शासन के प्रथम काल में कदाचित् बाबर के काल ही का विभाजन चलता रहा।[४] साम्राज्य की भूमि चार श्रेणियों में विभाजित थी : (१) खालसा भूमि जो सम्राट के निजी अधिकार में थी; (२) जागीर अर्थात् वह भूमि जो अमीरों को दी गयी थी; (३) सयूरगाल अर्थात् माफी भूमि जो विद्वानों या धार्मिक व्यक्तियों को दी जाती थी; (४) जमींदारों के अधिकार की भूमि। ये भाग अपनी सुव्यवस्था, शान्ति तथा आन्तरिक शासन के लिए स्वतन्त्र थे।

३ ख्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनीप्रसाद, पृ. १७।

४ परमात्माशरण, प्राविन्शियल गवर्नमेण्ट ऑफ दि मुग़ल्स, पृ. ४६-४७; त्रिपाठी, सम एस्पेक्ट्स, पृ. २९६-९७; मोरलैण्ड, एगरेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, पृ. ७९।

हुमायूं के द्वितीय राजत्व काल में उसे शेरशाह द्वारा संगठित साम्राज्य प्राप्त हुआ। उसके उत्तराधिकारियों के पारस्परिक वैमनस्य के कारण इसका संगठन हिल गया था किन्तु उसका ढांचा मौजूद था जिस पर अकबर ने एक सुसंगठित शासन की नींव डाली।

द्वितीय राजत्व के पश्चात् हुमायूं अपने साम्राज्य को सुव्यवस्थित करना चाहता था तथा उसके मस्तिष्क में इसके लिए एक योजना भी थी। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि हुमायूं कई स्थानों पर शासन का केन्द्र स्थापित करना चाहता था। वह दिल्ली, आगरा, जौनपुर, मांडू, लाहौर, कन्नौज एवं अन्य स्थानों में योग्य तथा अनुभवी अमीरों को नियुक्त कर उनके अधीन उन स्थानों पर एक सेना भी रखना चाहता था। वह स्वयं अपने साथ १२,००० अश्वारोहियों से अधिक नहीं रखना चाहता था।[५] उसका स्वप्न उसकी असामयिक मृत्यु के कारण पूरा न हो सका।

वज़ीर

हुमायूं में न प्रशासकीय संगठन की योग्यता थी और न इसके लिए उसे समय प्राप्त हुआ। इस कारण शासन संगठन की संस्थाओं में वह कोई परिवर्तन न कर सका।[६] मुग़लों के आने के पश्चात् वज़ीर (प्रधान मन्त्री) का महत्त्व बढ़ गया। बाबर के समय में निज़ामुद्दीन ख़लीफ़ा उसका शक्तिशाली वज़ीर था। यह परम्परा हुमायूं के समय में भी बनी रही। उसके राज्य के प्रारम्भिक काल में अमीर उवैस मुहम्मद वज़ीर था। वह सैनिक तथा राज्य के अन्य सभी विभागों पर नियन्त्रण रखता था। उसके पश्चात् हिन्दू बेग को हुमायूं का विशेष विश्वास प्राप्त हुआ। उसे अमीरुल उमरा की उपाधि तथा सोने की कुर्सी दी गयी। हुमायूं ने शेर ख़ां के विषय में उसकी रिपोर्ट को पूर्णतया स्वीकार कर लिया। ये वज़ीर केवल शासन के लिए उत्तरदायी नहीं थे वरंच ये सेनानायक भी थे तथा युद्ध में भी भाग लेते थे इस तरह सैनिक तथा नागरिक शासन का विभाजन नहीं था।[७] इनके पश्चात् अन्य किसी अमीर को यह स्थान नहीं प्राप्त हुआ। हुमायूं के

५ अकबरनामा, १, पृ. ३५६।

६ "He left no traces of any constructive achievement in the political institutions of the country." परमात्माशरण, प्राविन्शियल गवर्नमेण्ट ऑफ दि मुग़ल्स, पृ. ४७।

७ इब्न हसन, दी सेन्ट्रल स्ट्रक्चर ऑफ दि मुग़ल एम्पायर, पृ. १२०।

निष्कासन काल में जब वज़ीर कराचा बेग का ख़ज़ानादार से झगड़ा हुआ तो हुमायूं ने वज़ीर का पक्ष नहीं लिया।[८]

उसके भारतीय अभियान के समय बैराम ख़ां तथा अबुल माली में शक्ति के लिए संघर्ष हो रहा था किन्तु हुमायूं ने दोनों को इस तरह सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया कि एक की शक्ति अधिक न बढ़े। मृत्यु के पूर्व उसने अबुल माली को दिल्ली बुलाया तथा बैराम ख़ां को अकबर के साथ पंजाब भेजा। इसी समय उसकी मृत्यु हो गयी, जिससे इस शक्ति संघर्ष का स्पष्टीकरण न हो सका। किन्तु आग सुलग रही थी और वह कभी भी भयंकर रूप में प्रज्ज्वलित हो सकती थी।

लगान सम्बन्धी सुधार

हुमायूं ने लगान सम्बन्धी कुछ साधारण सुधार भी किये। सुल्तान सिकन्दर लोदी का गज़ ४१$\frac{१}{२}$ इस्कन्दरी के बराबर था। हुमायूं ने इसे बढ़ाकर ४२ इस्कन्दरी कर दिया, जिससे यह पूरा ३२ संख्या (digit) का हो गया।[९] हुमायूं के समय में कदाचित् अकबर के समय से कम लगान लिया जाता था।[१०]

दरबार के नये नियम तथा उत्सव

हुमायूं ने सम्राट के अभिवादन के लिए कोरनिश तथा तस्लीम का नियम निर्धारित किया। कोरनिश में दाहिने हाथ की हथेली ललाट पर रखकर सिर नीचे झुकाया जाता था। तस्लीम में हथेली का पिछला भाग जमीन पर रखकर उसे धीरे-धीरे ऊपर उठाया जाता था तथा खड़े हो जाने पर हथेली को ललाट पर रखा जाता था।[११] सम्राट के दरबार में प्रवेश करते समय नक्कारे की ध्वनि द्वारा लोगों को उसके आगमन की सूचना दी जाती थी। इसी तरह दरबार के समाप्त होने पर जब सम्राट उठकर जाता तो तोप दागकर इसकी सूचना दी जाती थी।[१२] हुमायूं दरबार में शाहज़ादों तथा अन्य विश्वासपात्रों के लिए सोने एवं

[८] इस घटना के लिए देखिये इस पुस्तक के नवें अध्याय का १०८ फुट नोट।

[९] बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. ३४३।

[१०] डा. बनर्जी के अनुसार, (हुमायूं २, पृ. ३४३) हुमायूं एक खरबार (आठ मन से कुछ अधिक) वजन के अनाज पर दो बाबरी तथा चार टनका कर लेता था। अकबर के समय में इसी वजन का चार बाबरी देना पड़ता था। बाबरी एक चांदी का सिक्का था। २$\frac{१}{२}$ बाबरी अकबर के एक रुपये के बराबर था। टनका दो तांबे के सिक्के के बराबर था।

[११] आईने अकबरी, १, पृ. १६६-६७।

[१२] अकबरनामा, १, पृ. ३५८।

चांदी की कुर्सियों[१३] (सदंलियों) का प्रबन्ध करना चाहता था। उसका विचार था कि इस सम्मान से वह उन्हें अपने वश में करने में सफल होगा।[१३] इसी उद्देश्य से उसने हिन्दू बेग को एक कुर्सी प्रदान की थी।

पुराने नवरोज़ का उत्सव जिसे ईरानी मनाते थे,[१४] बन्द कर दिया गया। इसके स्थान पर हुमायूं ने नये नवरोज का उत्सव प्रारम्भ किया जो वसन्त ऋतु में उस समय पड़ता था जब दिन-रात बराबर होते हैं।[१५] हुमायूं के सिंहासनारोहण का दिन भी बड़े उत्साह से मनाया जाता था। इस अवसर पर लोगों को इनाम तथा दान दिये जाते, जश्न होते और भांति-भांति के आनन्दोत्सव मनाये जाते थे।[१६] सम्राट का जन्मोत्सव भी बड़े उत्साह से मनाया जाता था। हुमायूं अस्त्र-शस्त्रों समेत सोने से तोला जाता, सर्वसाधारण तथा विशेष लोगों को भोजन दिया जाता और अन्य प्रकार के मनोरंजन का प्रबन्ध होता था।[१७]

आविष्कार तथा नई योजनाएँ

हुमायूं ने कुछ नये प्रशासकीय नियम चलाये तथा मनोरंजन की नई वस्तुओं का निर्माण कराया। ये योजनाएँ शासनीय दृष्टि से किसी विशेष महत्त्व की नहीं थीं किन्तु इनसे हुमायूं के चरित्र, उसके उर्वर मस्तिष्क तथा सूझ बूझ का परिचय प्राप्त होता है।

अमीरों तथा राजसी कर्मचारियों का तीन श्रेणियों में विभाजन

हुमायूं ने अपने अमीरों तथा राज्य से सम्बन्धित व्यक्तियों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया[१८] (१) अहले दौलत, (१) अहले सआदत, (३) अहले मुराद।[१९]

अहले दौलत में वे लोग सम्मिलित थे जो अपनी बुद्धि, बहादुरी तथा कुशलता

१३ वही, ३५६-५७।

१४ नौरोज़ का त्यौहार ईरान में उस दिन मनाया जाता था जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता था।

१५ ख़्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. ६९। यह दिन २१ मार्च के लगभग पड़ता है।

१६ वही, पृ. ६३।

१७ वही, पृ. ७४-७५।

१८ इस विभाजन के लिए देखिए, ख़्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. २३-३१ ; अकबरनामा, १, पृ. ३५७-५९।

१९ अहले दौलत अर्थात् राज्य के समूह, अहले सआदत अर्थात् सौभाग्य के

से शासन में योगदान करते थे तथा साम्राज्य के विकास में सहायक होते थे। सम्राट के सम्बन्धियों, भाइयों, अमीरों, वज़ीरों तथा सैनिकों को इस श्रेणी में रखा गया था। इसमें ऐसे व्यक्ति थे जिनकी सहायता के बिना राज्य कार्य नहीं चल सकता था।

अहले सआदत में प्रमुख शेख़ सैयिद, काज़ियों, दार्शनिकों, कवियों तथा विद्वानों को रखा गया था। ये लोग अपने ज्ञान तथा आदर्शों से राज्य की शक्ति बढ़ाते थे।

अहले मुराद में ऐसे लोग सम्मिलित थे जो अपनी सुन्दरता, संगीत, नृत्य इत्यादि से मनोरंजन करते थे। इनमें गायक, वादक, सुन्दर स्त्रियां, सुन्दर युवक इत्यादि आते थे।

प्रत्येक प्रमुख श्रेणी का एक प्रमुख अधिकारी होता था जिसका कर्तव्य था कि वह अपने श्रेणी के लोगों को संगठित कर सके। अहले दौलत का प्रमुख अधिकारी शुजाउद्दीन अमीर हिन्दू बेग था।[२०] इसे अपनी श्रेणी के अमीरों पर नियन्त्रण रखना पड़ता तथा सेना के वेतन, प्रहरियों की नियुक्ति इत्यादि भी करनी पड़ती थी। सआदत विभाग मौलाना मुहीउद्दीन मुहम्मद फरगरी के अधीन था। इस श्रेणी के लोगों की समस्याओं का समाधान, जन सामान्य में से छोटे-बड़ों के हकों की पूछताछ, धार्मिक अधिकारियों की नियुक्ति, वज़ीफ़ा इत्यादि के निश्चय करने का उत्तरदायित्व उस पर था। अहले मुराद श्रेणी का अधिकारी अमीर उवैस मुहम्मद था। यह मनोरंजन तथा इससे सम्बन्धित कार्यों के लिए उत्तरदायी था। तीनों अधिकारियों को एक-एक सोने का बाण दिया गया था जिससे ये अन्य लोगों में पहचाने जा सकते थे। ये बाण 'अहले सआदत के बाण', 'अहले दौलत के बाण' तथा 'अहले मुराद के बाण' कहलाते थे।

प्रत्येक श्रेणी के लिए सप्ताह के दो-दो दिन निश्चित किये गये थे। इन निश्चित दिनों पर दरबार होता तथा सम्राट उस श्रेणी के लोगों से मिलता था। ये दिन ग्रह तथा नक्षत्रों के आधार पर निश्चित किये गये थे। इस तरह शनिवार तथा बृहस्पतिवार अहले सआदत के लिए, रविवार एवं मंगलवार अहले दौलत के लिए तथा सोमवार और बुधवार अहले मुराद के लिए निश्चित हुए थे।

समूह, अहले मुराद अर्थात् अभिलाषाओं तथा इच्छा पूरी करने वालों का समूह।

२० हिन्दू बेग बाबर तथा हुमायूं के समय का प्रमुख अमीर था। हुमायूं के काल में वह जौनपुर का गवर्नर था। उसे अमीरुल उमरा की उपाधि दी गयी थी।

यह विभाजन किसी निश्चित आधार पर नहीं था। यह आवश्यक नहीं था कि एक श्रेणी का प्रमुख उसी श्रेणी का व्यक्ति हो, जैसे मुराद श्रेणी का प्रमुख उवैस मुहम्मद न गायक था न सुन्दर युवक। मध्य युग के अमीर सैनिक तो होते ही थे, साथ ही उनमें बहुत-से ऐसे थे जो साहित्यिक तथा अन्य गुणों से भी सम्पन्न होते थे। यदि विभाजन निश्चित गुणों पर अधारित होता तो बहुत-से व्यक्ति दो या तीन श्रेणियों में आते।

इस विभाजन से हुमायूं को राजसी कार्य के लिए केवल दो दिन, रविवार तथा मंगलवार प्राप्त हुए। बाकी दिन आमोद-प्रमोद तथा मनोरंजन के लिए निश्चित हुए थे। शासन की दृष्टि से यह विभाजन हानिकारक था। सौभाग्य यही था कि इस विभाजन का कदाचित् कठोरता से पालन नहीं किया गया।

इस विभाजन का एक मनोरंजक इतिहास है। बाबर के जीवन काल में एक दिन हुमायूं काबुल में था। वह अपने गुरू मौलाना मसीहुद्दीन रुहुल्लाह के साथ सैर को निकला। मार्ग में उसने शकुन (फाल)[२१] निकालने का विचार किया। उसने अपने शिक्षक से कहा जो तीन व्यक्ति पहले मिलें उनसे उनका नाम पूछकर उससे शकुन निकाला जाए। कुछ दूर चलने पर एक व्यक्ति मिला जिसका नाम मुराद ख़्वाजा था। उसके बाद एक अन्य व्यक्ति गधे पर लकड़ी लादे जा रहा था। इसका नाम पूछने पर दौलत ख़्वाजा निकला। हुमायूं ने कहा कि यदि तीसरे व्यक्ति का नाम सआदत ख़्वाफ़ा हो तो यह बहुत ही उत्तम शकुन होगा। उसी समय एक व्यक्ति दिखायी पड़ा जिसने अपना नाम सआदत ख़्वाज़ा बताया।[२२] हुमायूं इससे बड़ा प्रसन्न तथा प्रभावित हुआ। शासन प्राप्त करने पर उसने इसी आधार पर अपने कर्मचारियों इत्यादि का विभाजन किया।

२१ फ़ाल या शकुन की प्रथा इस्लाम धर्म में स्वीकृत है। कुछ वस्तुएं अच्छी तथा कुछ बुरी समझी जाती हैं। शकुन कुरान से भी निकालने की प्रथा है। आंख बन्द कर कुरान को खोलते हैं, फिर पीछे सात पृष्ठ गिनते हैं उसके पश्चात् जिस वाक्य या लाइन पर दृष्टि जाती है उससे फ़ाल निकालते हैं। हाफ़िज़ के दीवान से भी फ़ाल निकाला जाता है। ख़ुदा-बख़्श लाइब्रेरी पटना में हाफिज़ का दीवान है जिस पर हुमायूं तथा जहांगीर के हाथ की टिप्पणियां हैं जिससे पता चलता है कि ये लोग इससे फाल निकालते थे। फाल के लिए देखिए एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम, २, पृ. ४६-४७।

२२ ख़्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. २४-२५ ; अकबरनामा, १, पृ. ३५७ ; अबुल फ़ज़ल ने मिलने वाले तीसरे व्यक्ति को मर्द तथा ख़्वन्दमीर ने लड़का लिखा है।

बाणों के बारह वर्ग

सम्राट तथा उसके कर्मचारी बारह श्रेणियों में विभाजित किये गये।[२३] प्रत्येक श्रेणी के लिए एक विशेष तरह का बाण निश्चित था। बारहवीं श्रेणी का बाण सबसे उच्च था तथा वह सम्राट को प्राप्त था। सबसे निम्न श्रेणी का बाण पहला था जो दरबानों, ऊंटवानों इत्यादि को प्राप्त था। इसी तरह दूसरा बाण निम्न कोटि के सेवकों, तीसरा साधारण सैनिकों, चौथा खजांचियों, पांचवां नौज़वान सैनिकों (यक्काज़वानों), छठवां अफ़ग़ान कबीलों के सरदारों तथा ऊज़बेकों, सातवां राज्य के छोटे अफसरों, आठवां दरबारी तथा विशेष कर्मचारियों, नवां प्रतिष्ठित अमीरों, दसवां उत्कृष्ट शेख़ सैयिदों, विद्वानों एंव धार्मिक लोगों तथा ग्यारहवां बाण सम्राट के सम्बन्धियों, भाइयों इत्यादि को प्राप्त था। प्रत्येक श्रेणी में तीन-तीन श्रेणी के बाण थे—प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय—जो उच्चता के आधार पर प्रदान किये जाते थे।

ये श्रेणियाँ बारह ही क्यों हुईं? ख़्वन्दमीर के अनुसार वर्ष में बारह महीने होते हैं, रात तथा दिन बारह-बारह घंटे के माने जाते हैं। इसी तरह इतिहास तथा धर्म में भी बारह के उदाहरण मिलते हैं।[२४]

यह विभाजन भी किसी तर्क या सिद्धान्त पर आधारित नहीं था। कुछ ऐसे भी लोग थे जिनकी श्रेणी स्पष्ट नहीं थी, जैसे राजमहल की स्त्रियां। कदाचित् वे दूसरी श्रेणी के बाण में आ सकती थीं। इस विभाजन में विद्वानों को राज्य के अन्य कर्मचारियों से उच्च स्थान दिया गया है।

शासन के चार विभाग

हुमायूं ने राज्य के सम्पूर्ण कार्यों को चार तत्त्वों के आधार पर चार विभागों में विभाजित किया।[२५] प्रथम आतशी (अग्नि), दूसरा हवाई (हवा), तीसरा आबी (जल) तथा चौथा ख़ाकी (मिट्टी)। प्रत्येक विभाग का एक वज़ीर नियुक्त किया गया। आतशी विभाग का वज़ीर अमीदुल मुल्क था। यह तोपख़ाना, अस्त्र-शस्त्र तथा युद्ध से सम्बन्धित सामग्रियों इत्यादि का प्रबन्धक था। लुत्फ़ुल्लाह हवाई विभाग का वज़ीर था। सम्राट के वस्त्र, भोजनालय,

२३ ख़्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद पृ. ३१-३३; अकबरनामा, १, पृ. ३५९।

२४ अन्य उदाहरणों के लिए देखिए ख़्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद पृ. ३२-३३।

२५ वही, पृ. ३५-३६; अकबरनामा, १, पृ. ३५९-६०।

पशुशाला तथा ऊंट इत्यादि इस विभाग में आते थे। आबी विभाग शराब, शरबत, नहरों इत्यादि की देखभाल करता था। यह विभाग ख्वाजा हुसेन के अधीन था। खाकी विभाग ख्वाजा जलालुद्दीन मिर्जा बेग की देखभाल में था। यह विभाग कृषि, भवन, खालसा भूमि, कोष इत्यादि की देखभाल करता था।

प्रारम्भ में प्रत्येक विभाग के लिए एक-एक प्रमुख अमीर नियुक्त किया जाता था। अमीर नासिर क़ुली आतिशी विभाग का अध्यक्ष था। वह हमेशा लाल वस्त्र पहनता था। उसकी मृत्यु के पश्चात् अमीर निहाल इस पद पर नियुक्त हुआ। बाद में अमीर उवैस मुहम्मद चारों विभागों का सुपरिन्टेण्डेन्ट नियुक्त किया गया।

शासन का यह विभाजन पूर्णतया अवैज्ञानिक था। नहर विभाग कृषि के अन्तर्गत होना चाहिए था किन्तु वह शराब के विभाग में लगा हुआ था। उवैस मुहम्मद को बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया था, क्योंकि इन चार विभागों के अतिरिक्त उस पर अहले मुराद का भी उत्तरदायित्व था। आश्चर्य है कि मनोरंजन से सम्बन्धित व्यक्ति शासन, उत्पादन, कृषि, निर्माण, तोपखाना इत्यादि की भी देख-रेख करता था।

सात मजलिसों का आयोजन

हुमायूं ने सात तरह की मजलिसें सात श्रेणियों के लोगों के लिए आयोजित कीं। ये मजलिसें भी नक्षत्रों पर आधारित थीं। पहली मजलिस चन्द्रमा से सम्बन्धित थी (कमर की मजलिस)। इस सभा में राजदूत, यात्री एवं सन्देशवाहक रखे जाते थे। दूसरी मजलिस बुद्ध ग्रह से सम्बन्धित थी (अतारिद की मजलिस)। इसमें गैर सैनिक कर्मचारी तथा अन्य लोग आते थे। इसी तरह अन्य व्यक्ति भी बाकी पांच मजलिसों में विभाजित किये गये। प्रत्येक मजलिस की सजावट तथा लोगों के वस्त्र भी विशेष नक्षत्रों के आधार पर थे। सम्राट सप्ताह का एक-एक दिन प्रत्येक मजलिस में व्यतीत करता था।[२६]

नक़्क़ारे बजाने का नियम

दिन में तीन बार नक्कारे बजाने का आदेश था। प्रथम, प्रातःकाल का नक़्क़ारा जो नमाज़ एवं प्रार्थना के समय बजाया जाता था, 'नौबते सआदत'

[२६] फ़िरिश्ता, फा. पृ. २१३; ब्रिग्स, २, पृ. ७१। फ़ारसी में मजलिस शब्द का प्रयोग किया गया है, ब्रिग्स ने इसका अनुवाद 'हाल ऑफ ऑडियन्स' किया है। इसी तरह पहली मजलिस को 'पैलेस ऑफ मून' तथा दूसरी

कहलाता था। दूसरा, सूर्योदय के बाद, सल्तनत के विभागों का कार्य प्रारम्भ होने के समय बजाया जाता था, जो 'नौबते दौलत' कहलाता था। तीसरा, सायंकाल का नक्कारा, लोगों के विश्राम करने एवं आनन्द-मंगल मनाने के समय बजाया जाता था जिसे 'नौबते मुराद' कहते थे। प्रत्येक महीने की प्रथम तथा चौहदवीं तिथि को प्रसन्नता के नक्कारे बजाने का आदेश था। यह 'नक्कारा-ए-शादीयाना' कहलाता था।[२७] कदाचित् इसी के आधार पर बाद में मुग़ल सम्राटों ने नौबतखाना की प्रणाली प्रारम्भ की।

न्याय का तबला (तबलये आदिल)

हुमायूं ने 'गरजनेवाले बादल के समान' एक तबला (ढोल, दौंसा) दीवानखाने के निकट रखवा दिया। जो लोग न्याय चाहते थे वे इसे बजाते थे। इसके बजाने का नियम इस प्रकार निश्चित किया गया कि सुनने वाले को अपराध के विषय में पता चल जाए। साधारण झगड़े में छड़ी (चोब) से एक बार, वेतन न मिलने पर दो बार, सम्पत्ति के अपहरण होने पर तीन बार तथा किसी की हत्या होने पर चार बार ढोल बजाने का आदेश था।[२८]

न्याय से सम्बन्धित होने के कारण यह न्याय का तबला (तबल-ए-आदिल) कहलाता था।

हुमायूं का यह आदेश नया नहीं था। ईरान के शासकों ने इस तरह की प्रणाली चलायी थी। बाद में जहांगीर ने कदाचित् इसी से प्रभावित होकर अपने न्याय की जंजीर प्रारम्भ की।

आनन्द मंगल का कालीन (बिसाते निसात)

हुमायूं ने एक 'आनन्द-मंगल का कालीन' बनवाया।[२९] यह कालीन गोल था और तात्त्विक ग्रहों तथा नक्षत्रों के ग्रहपथों के तदनुरूप वृत्तों में विभाजित था। प्रथम वृत्त अतलस रूपी आकाश के अनुरूप, सदाचारियों के कर्मों के अनुसार श्वेत रंग का; दूसरा नीला; तीसरा शनि ग्रह से सम्बन्धित होने के कारण काला; चौथा

को 'पैलेस ऑफ अतारिद' किया है। इस आविष्कार का जिक्र केवल फ़िरिश्ता करता है।

२७ ख्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. ८१-८२।

२८ वही, पृ. ८२; अकबरनामा, १, पृ. ३६१-६२; अर्सकिन, २, पृ. ५३३-३४।

२९ ख्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. ८०-८१; अकबरनामा, १, पृ. ३६१।

भाग्यशाली वृहस्पति से सम्बन्धित होने के कारण हलके भूरे रंग का; पांचवां मंगल ग्रह से सम्बन्धित लाल रंग का; छठा सूर्य से सम्बन्धित सुनहले रंग का, सोने चांदी के तारों से बुने हुए कपड़े का ; सातवां शुक्र ग्रह के अनुरूप चमकता हरा; आठवां बुध ग्रह से सम्बन्धित बैंगनी रंग[३०] का तथा नवां चन्द्रमा के अनुरूप चौहदवीं के चांद की तरह सफेद था। चन्द्र वृत्त के उपरान्त अग्नि एवं वायु के वृत्त क्रम से रखे गये, तदुपरान्त मिट्टी एवं जल के। पृथ्वी के आबाद भाग सात प्रदेशों में विभाजित किये गये थे। सातों ग्रहों के वृत्त दो सौ श्रेणियों में विभाजित थे, इस तरह इस कालीन पर १,४०० आदमी बैठ सकते थे। इस कालीन के बराबर एक लकड़ी की चौकी थी, जिस पर इसे फैला दिया जाता था। हुमायूं स्वयं सूर्य से सम्बन्धित छठे ग्रह में बैठता था। अन्य लोगों को सात ग्रहों के आधार पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर बैठाया जाता था। उदाहरणतया, भारतीय वंश के अमीर एवं शेख़ काले रंग के वृत्त में बैठते थे, जो शनि से सम्बन्धित था। सैयिद तथा विद्वान लोग हलके भूरे रंग के वृत्त में बैठते थे, क्योंकि यह वृत्त वृहस्पति से प्रभावित था। उपर्युक्त वृत्तों में बैठकर कभी-कभी लोग भिन्न-भिन्न भागों में पासा फेंकते थे। पासे के हर तरफ भिन्न-भिन्न मुद्राओं में मनुष्यों की आकृतियाँ बनी होती थीं। जिसके पास में जो मुद्रा निकलती उस व्यक्ति को उसी तरह बैठना या खड़ा होना पड़ता था। इस तरह यह आनन्दमय खेल बन जाता जिसमें सम्राट तथा अमीर आनन्द लेते थे।

शीशे के विशेष चषक

मक्खियों, धूल तथा गन्दगी से बचने के लिए हुमायूं ने विशेष तरह के शीशे के बर्तनों का प्रबन्ध किया। उसने भोजन एवं पीने की वस्तुओं के प्रबन्ध करने वालों को आज्ञा दी कि दरबार में शरबत इत्यादि इन्हीं में दिया जाए।[३१]

ताजे इज्ज़त

हुमायूं ने (१५३२-३३ ९३९ हि. में) एक मुकुट बनवाया[३२] जो नवीनता तथा सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध था। इसमें अनेक बहुमूल्य वस्तुएं जैसे यूरोपीय

३० इस ग्रह के इस रंग के चुनने की विवेचना के लिए देखिए ख़्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. ८०; एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इसलाम, ४, पृ. १०५८-५९।

३१ ख़्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी बेनी प्रसाद, पृ. ८०-८१; अकबरनामा, १, पृ. ३६१।

३२ ख़्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. ८१।

मख़मल, सोने-चांदी के तारों से बना हुआ साटन, 'सतरगें ताज़ा' (एक तरह का रेशमी कपड़ा), उरमूक (एक तरह का बारीक ऊनी कपड़ा), किमख़ाब इत्यादि उत्तम तरीके से लगायी गयी थीं। प्रत्येक टोप में फ़ारसी के सात के अंक (V) की तरह का एक कटा हुआ भाग होता था, दोनों कटे हुए भागों को मिलाने से सतहत्तर (VV) का रूप बन जाता था। इस ताज़ को 'ताजे इज़्ज़त' कहा जाता था। अब्ज़द के आधार पर इज़्ज़ का जोड़ भी ७७ होता था। इस्लाम धर्म में सात संख्या का विशेष महत्त्व होने के कारण इस मुकुट के निर्माण में सात को अधिक महत्त्व दिया गया था।[३३] यह ताज भी ज्योतिष के आधार पर बना था, जिससे पहनने वाला भाग्यशाली हो।

विशेष कोट तथा प्रत्येक दिन के लिये विशेष रंग के वस्त्र

हुमायूं ने उल्वाकचा नामक एक विशेष प्रकार का कोट तैयार कराया था। यह आगे खुला हुआ तथा कमर तक लम्बा होता था। यह अंगरख़ा के ऊपर पहना जाता था।[३४]

ग्रहों तथा नक्षत्रों के आधार पर हुमायूं प्रत्येक दिन विशेष रंग का वस्त्र तथा उसी रंग का मुकुट धारण करता था। इस तरह वह शनिवार को काला, रविवार को पीला, सोमवार को सफेद, मंगलवार को लाल, बुधवार को राख, नीले या रेशमी (उलचा) रंग का तथा शुक्रवार को सफेद वस्त्र धारण करता था।[३५]

नौकाओं का चमत्कार

विशेष प्रकार की प्रमोद तरणी—कुशल बढ़इयों से हुमायूं ने यमुना नदी में चार बजरे (हाउस बोट) तैयार कराये। प्रत्येक बजरे में एक दो-मंजिला चौकोर सुन्दर कमरा था। नौकाओं को आमने-सामने एक विशेष तरह से मिला देने से बीच में एक अष्टभुजाकार हौज़ बन जाता था। ये कमरे इतने सुन्दर ढंग से बहुमूल्य वस्तुओं से सजाये जाते थे कि देखने वाले आश्चर्यचकित हो जाते। मौलाना यूसूफ़ी तबीब, जलालुद्दीन उवैस मुहम्मद इत्यादि ने इसकी प्रशंसा में कविताओं की रचना की।[३६]

३३ ह्यू्स, ए डिक्शनरी ऑफ इस्लाम, पृ. ५५०, ५६९-५७०।
३४ ख्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. ५०।
३५ वही, पृ. ५०-५२ ; अकबरनामा, १, पृ. ३६१।
३६ वही, पृ. ३६-४०; वही पृ. ३६०।

नौकाओं पर बाज़ार—नौकाओं पर बाज़ार लगाने की भी प्रणाली हुमायूं ने प्रारम्भ की। इसके लिए विशेष तरह की लम्बी-चौड़ी नौकाओं का निर्माण हुआ। इन पर दोनों तरफ़ दूकानें तैयार करायी गयीं। प्रत्येक पेशे एवं कला के जानने वाले लोगों को आदेश हुआ कि वे इनमें अपनी दूकानें खोलें तथा व्यापार करें। नौकाओं पर सजे बाज़ार के साथ अपने राज्य के प्रारम्भिक वर्षों में हुमायूं ने दिल्ली से आगरे की तरफ प्रस्थान किया था। मार्ग में प्रत्येक व्यक्ति को भोजन, पेय, वस्त्र, कपड़े, युद्ध के अस्त्र-शस्त्र इत्यादि जिस वस्तु की आवश्यकता होती, इस नौकाओं के बाज़ार में मिल जाती थी।[३७] इस तरह यह एक चलता-फिरता बाज़ार था। मुग़ल सम्राट की यात्राओं में इससे आनन्द तथा आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति होती थी।

नौकाओं का उद्यान—इसी प्रकार सम्राट की आज्ञा से नौकाओं पर तख्ते बिछाकर मिट्टी डालकर उसे कृषि योग्य बना दिया गया। इस तरह कृषि योग्य भूमि तैयार हो गयी जिस पर तरह-तरह के फल-फूल तथा तरकारियां लगायी गयीं।[३८] इस तरह नदी में हरियाली से भरा उद्यान भी सम्राट के साथ घूमता रहता था।

चलता-फिरता पुल—बहुत-सी नौकाओं को एक दूसरे से मिलाकर उन्हें जंजीरों तथा कुलाबों से बांध दिया जाता था। उन पर तख्ते बिछा दिये जाते तथा उन्हें कीलों से इस तरह जकड़ दिया जाता कि घुड़सवारों के चलने पर भी वह नहीं हिलता था। इस तरह इससे हाथियों, ऊंटों इत्यादि को नदी के पार ले जाने में बड़ी सुविधा होती थी।[३९] पुल की आवश्यकता न रहने पर नौकाएं अलग कर दी जाती थीं तथा उनसे अन्य कार्य लिया जाता था।

चलता फिरता महल कस्रेर वां—यह महल लकड़ी का बना था तथा जहां भी चाहें ले जाया जा सकता था। बढ़इयों ने इसे सुन्दर ढंग से बनाया था तथा लकड़ी के टुकड़ों को जोड़ने में इतनी सफाई दिखायी थी कि देखने पर यह एक ही लकड़ी का बना हुआ मालूम होता था। इसमें तीन मंजिलें थीं। सबसे ऊंची मंजिल पर पहुंचने के लिए सीढ़ी तैयार करायी गयी थी जो सुविधा से लपेटी तथा खोली जा सकती थी। इस महल को चित्रकारों ने भांति-भांति के सुन्दर रंगों से सजाया था। इस महल पर एक सोने का गुम्बज था जो सूर्य की तरह

३७ वही, पृ. ४३-४४।
३८ वही, पृ. ४४-४५; अकबरनामा, १, पृ. ३६०।
३९ वही, पृ. ४५; वही, पृ. ३६०।

चमकता था। महल के दरवाजों पर खोतान, तुर्की तथा यूरोप से मंगाये गये कपड़ों के पर्दे शोभायमान थे।[४०]

विचित्र खेमे

हुमायूं ने एक बड़ा खेमा भी निर्मित कराया। यह आकाश के बारह राशि-चक्रों के आधार पर बारह कक्षों में विभाजित था। इन कक्षों में झंझरियां बनी थीं। इनसे प्रकाश आता तथा ये अत्यन्त ही सुन्दर प्रतीत होती थीं।[४१]

इसके अतिरिक्त हुमायूं ने एक अन्य खेमे का भी निर्माण कराया जो बहुत बड़ा था तथा सभी खेमों को ढक लेता था। इसमें झंझरियां तथा कनातें नहीं थीं। लकड़ी के सुन्दर टुकड़ों को जोड़कर खम्भा बना लिया जाता था जिस पर यह खड़ा किया जाता था। इस खेमे में भी कई प्रकार के रंग थे। खड़ा करने पर यह बहुत ऊंचा उठ जाता था।[४२]

हुमायूं से सम्बन्धित स्मारक

हुमायूं को भवन-निर्माण तथा स्थापत्यकला से रुचि थी। ख्वन्दमीर लिखता है कि हुमायूं की भव्य भवनों एवं शक्तिशाली दुर्गों के निर्माण में अत्यधिक रुचि थी।[४३] यदि उसे समय तथा सुविधा प्राप्त हुई होती तो निश्चय ही सुन्दर भवनों के रूप में उसने अपने सृजनात्मक गुण को प्रदर्शित किया होता, किन्तु जीवन की उथल-पुथल तथा उलट-फेर के कारण ऐसा सम्भव न हो सका।[४४] फिर भी हुमायूं से सम्बन्धित अथवा उसके द्वारा निर्मित कुछ भवनों का ज्ञान हमें प्राप्त है।

अपने राज्य के प्रारम्भिक काल में हुमायूं ने दीन पनाह में अपनी राजधानी स्थापित कर वहां भवनों का निर्माण कराया।[४५] दीन पनाह के भग्नावशेष आजकल दिल्ली के पुराने किले में हैं। नगर तो लुप्त हो गया किन्तु दुर्ग की बाहरी दीवार तथा एक दरवाजा (खूनी दरवाजा) अभी मौजूद है जिससे गढ़ का स्थान निश्चित किया जा सकता है। यह तीन फरलांग लम्बा तथा डेढ़

४० वही, पृ. ४६-४७; वही पृ. ३६०।
४१ वही, पृ. ४८-४९; वही पृ. ३६१।
४२ वही।
४३ ख्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. ५५।
४४ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ४, पृ. ५२४।
४५ दीन पनाह की स्थापना के लिए देखिए इस पुस्तक का पृ. ११९।

फरलांग चौड़ा है। दीवारें चालीस फुट ऊंची हैं। यमुना उन दिनों उस स्थान पर बहती थी जहां अब निज़ामुद्दीन का स्टेशन है। ग्रीष्म ऋतु में दुर्ग से यमुना के जल की छवि का आनन्द लिया जा सकता था। दुर्ग यमुना के पानी से घिरा रहता था। यदि यह इमारत पूरी हो गयी होती तथा नष्ट न हुई होती तो वास्तुकला के इतिहास में इसका विशेष स्थान होता।

पुराने किले में ही हुमायूं का पुस्तकालय है।[४६] यह ग्रेनाइट तथा लाल पत्थर का बना एक दुमंजिला भवन है। इसकी सीढ़ियां पतली हैं। इसमें अब भी कुछ खाने हैं जहां पुस्तकें रखी जाती थीं। इसी भवन की सीढ़ी से गिरकर हुमायूं की मृत्यु हुई। पुराने किले के मध्य में एक बड़ा गहरा कुआं है। इसे हुमायूं ने बनवाया था, जिससे दुर्ग में पानी की कमी न हो।[४७]

सलीमगढ़ दुर्ग के निकट यमुना के किनारे नीली छतरी नामक इमारत है। इसके गुम्बज पर नीली खपरैल है। यह १५३२ में हुमायूं द्वारा निर्मित हुई।[४८]

हुमायूं को साहित्य तथा साहित्यकारों से विशेष प्रेम था। अमीर खुसरो सल्तनत काल का सबसे बड़ा फ़ारसी का कवि था। इसके मकबरे पर हुमायूं ने एक अभिलेख अंकित कराया जो अब भी मौजूद है। उसने ९३८ हिज़री (१५३१-३२) में इसकी भीतर की चहारदीवारी का निर्माण कराया, उस पर संगमरमर लगवाया तथा उसकी कब्र पर एक संगमरमर का समाधि-प्रस्तर भी रखवाया।[४९] अभिलेख में खुसरो को 'शब्दों के साम्राज्य के सम्राट के' अतिरिक्त प्रमुख सन्त भी कहा गया है। अमीर खुसरो के प्रति हुमायूं का आदर केवल एक कवि के नाते ही नहीं वरंच एक सूफी सन्त के नाते भी था।

४६ इस इमारत के लिए देखिए—जरनल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, १८७१, पृ. १३५; कार स्टीफेन—आरकियोलाजिकल एण्ड मानूमेन्टल रिमेन्स ऑफ डेल्ही, पृ. १९३-९४।

४७ स्पीअर, देहली : उसके स्मारक और इतिहास पृ. ३०।

४८ जहांगीर अपनी आत्मकथा में लिखता है; इस इमारत के नीचे पानी के पास एक चौकोर चौखण्डी बादशाह हुमायूं के आदेश से बनी थी, जिस पर चमकते हुए खपरैल लगे थे और ऐसे हवादर स्थान बहुत कम हैं। जब स्वर्गीय सम्राट हुमायूं दिल्ली में रहते थे तो इस स्थान पर बहुधा अपने मित्रों के साथ बैठते तथा अपने दरबारियों से बातचीत करते।" जहांगीर की आत्मकथा, व्रजरत्न दास द्वारा हिन्दी में अनुवादित, पृ. २०८।

४९ मिर्जा वाहिद, लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ अमीर खुसरो, पृ. १३८-३९।

आगरे में हुमायूं के किसी भवन के निर्माण का निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। एक मस्जिद जो गिरी हुई अवस्था में है हुमायूं द्वारा निर्मित बतायी जाती है।[५०] इसी तरह की एक मस्जिद फतेहाबाद (जिला हिसार) में है। यह एक बड़ी तथा संतुलित इमारत है। इसकी खपरैल एनेमल की है। कदाचित् हुमायूं ने उसका निर्माण १५४० में कराया।[५१] सारनाथ में चौखंडी स्तूप पर एक अष्टाकार मीनार या बुर्ज है जो हुमायूं के यहां आने की स्मृति में राजा टोडरमल के पुत्र गोवर्धन द्वारा अकबर के समय में निर्मित हुआ।[५२] सहारनपुर जिले के नकुर तहसील के गंगोह कस्बे में शेख अब्दुल कद्दूस का मकबरा है। यह १५३७ में हुमायूं द्वारा बनवाया गया था, यद्यपि सन्त की मृत्यु ६ वर्ष बाद हुई। हुमायूं ने सन्त की कुटी में उससे धार्मिक विषयों पर वार्ता भी की थी।[५३] आजमगढ़ जिले में तहसील महाल के निगून कस्बे में एक मस्जिद है जो हुमायूं के काल में १५३३ में निर्मित हुई थी।[५४] इसी तरह कालिंजर के एक जलाशय का निर्माण भी उसके समय में ९३६ हि. में हुआ।[५५]

उपर्युक्त भवनों के अतिरिक्त कुछ अन्य भवनों के विषय में केवल साहित्यिक प्रमाण मिलते हैं। ख्वन्दमीर लिखता है कि आगरे में हुमायूं ने एक 'इमारते तिलिस्म' का निर्माण कराया था, जिसका वर्णन किया जा चुका है।[५६] हुमायूं ने आगरे के दुर्ग के अन्दर उस स्थान पर जहां हिन्दू राजाओं के समय में कोषागार था, एक महल का निर्माण कराया। इस महल में बहुत-से कमरे तथा दालानें थीं और यह इतना ऊंचा था कि ऊपर बैठने वालों को ऐसा मालूम होता था जैसे वे आकाश में हो। यहां से यमुना सात-आठ मील तक दिखायी देती थी[५७] जिससे

५० पर्सी ब्राउन, इण्डियन आरकीटेक्चर, इस्लामिक पीरियड, पृ. ९६।

५१ वही; स्मिथ, ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट्स इन इण्डिया एण्ड सीलोन, पृ. १५८।

५२ मजूमदार, बी., ए गाइड टु सारनाथ, पृ. २६-२७; जरनल यू. पी. हिस्टारिकल सोसाइटी, जिल्द १५, पृ. ५५-६४।

५३ आईने अकबरी, ३, पृ. ४१७; बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. ३४९। गंगोह सहारनपुर से २३ मील दक्षिण-पश्चिम स्थित है।

५४ बनर्जी, हुमायूं २, पृ. ३४९-५०।

५५ वही, पृ ३५०।

५६ इस पुस्तक का पृ. १२०-२१।

५७ ख्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. ५८-५९; ख्वन्दमीर तीन-चार कुरोह लिखता है। कुरोह (संस्कृत का क्रोश) दो मील के बराबर

बड़ा आनन्द आता था। ग्वालियर में हुमायूं ने तराशे हुए पत्थरों से एक किले का निर्माण कराया तथा उसे बहुत ही सुन्दर ढंग से सजाया गया था। ख़्वन्दमीर इस भवन को 'सृष्टि का आश्चर्य' कहता है।[५८]

हुमायूं द्वारा निर्मित भवन वास्तुकला के विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, फिर भी इनसे प्रकट होता है कि हुमायूं को भवन निर्माण से रुचि थी तथा समय और सुविधा प्राप्त होने पर उसने महत्त्वपूर्ण भवनों का निर्माण कराया होता। उसका ईरान निवास भी व्यर्थ नहीं गया। वह वहां से अपने साथ वहां के कला-सिद्धान्त लाया जो भविष्य में भारतीय कला से मिलकर मुग़ल कला के अंग बन गये।

हुमायूं का मकबरा

हुमायूं से सम्बन्धित स्मारकों में सबसे महत्त्वपूर्ण उसका अपना मकबरा है जो हुमायूं के मकबरे के नाम से प्रसिद्ध है। इसका निर्माण अकबर के समय में हुआ। साधारणतया शासक अपने मकबरों का निर्माण अपने जीवन काल में करा लेते थे। दुर्भाग्यवश हुमायूं को इसका समय नहीं मिल सका। उसकी मृत्यु के पश्चात् यह कार्य उसकी विधवा हाजी बेगम (बेगा बेगम) ने अपने हाथ में लिया। सम्राट की मृत्यु के आठ वर्ष पश्चात् (१५६४ में) बेगम ने इस मकबरे का निर्माण कार्य प्रारम्भ कराया। वह स्वयं दिल्ली जाकर बस गयी तथा उसी की देखरेख में यह मकबरा बनकर तैयार हुआ।

यह मकबरा दिल्ली में दीन पनाह के निकट बना हुआ है। इसी के निकट निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह है जहां उस समय भी बहुत-से लोग जाया करते थे, जैसे आजकल जाते हैं। जिस समय इसका निर्माण प्रारम्भ हुआ, अकबर की राजधानी आगरा थी। इसका प्रमुख वास्तुकार मीराक मिर्ज़ा गियास था, जो कदाचित् इरानी था। मकबरे के पास ही एक अरब सराय है। यह नाम कदाचित् उन कारीगरों के परिवारों के बसने से पड़ गया, जिन्होंने इस मकबरे का निर्माण किया। भवन पर विदेशी प्रभाव होने पर भी अधिकतर कारीगर भारतीय थे।[५९]

इस मकबरे के चारों तरफ एक पार्क है और उसके चारों तरफ एक चहार-

था। प्राचीन समय में मगध का क्रोश $1\frac{1}{4}$ मील के ही बराबर था।

५८ वही, पृ. ५९।

५९ "There is little doubt that the masonry of the building was done by Indian craftsmen." हैवेल, इण्डियन आरकीटेक्चर फ्राम दि फर्स्ट मुहमडन इनवेज़न टु दि प्रेसेन्ट डे, पृ. १६३।

दीवारी है। चहारदीवारी की चारों दीवारों में से प्रत्येक के मध्य में एक-एक द्वार है। मुख्य द्वार पश्चिम का है, अन्य द्वार केवल सामंजस्य स्थापित करने के लिए बनाये गये। द्वार से प्रवेश करने पर पार्क मिलता है जो मुग़ल काल में भांति-भांति के पेड़-पौधों से सजा रहता था। लोदी काल में मकबरों के चारों तरफ दीवार बनाने की प्रणाली तो प्रारम्भ हो गयी थी, किन्तु इस तरह मकबरों के साथ चौकोर उद्यानों की प्रणाली की यह प्रथम प्रमुख इमारत है।[६०] इसके निर्माण में लाल तथा श्वेत पत्थरों का प्रयोग किया गया है। सम्पूर्ण भवन लाल पत्थर का तथा गुम्बद सफेद पत्थर का है। बीच-बीच में सजावट के लिए भी सफेद पत्थर का प्रयोग हुआ है। मकबरा २२ फुट ऊंचे चौकोर चबूतरे पर बना हुआ है। इसका निर्माण इस तरह हुआ है कि छत पर इसमें कई कमरे निकल आये हैं। यहां कदाचित् विद्यार्थी पढ़ते थे।

हुमायूं के मकबरे से मुग़ल काल की वास्तुकला का वास्तविक इतिहास प्रारम्भ होता है। इसके पहले की मुग़ल इमारतें नगण्य हैं तथा इनका कलात्मक मूल्य भी बहुत कम है। इसकी विशेषता के कई कारण हैं। इसका गुम्बद पूर्ण गुम्बद कहलाता है अर्थात् यह पूर्ण अर्द्धवृत्त है। गुम्बद की चोटी पर चन्द्रकार है, कमल नहीं। इसका कारण ईरानी प्रभाव है। इसके बाद के गुम्बदों (जैसे ताजमहल) की चोटी पर कमल है। इस गुम्बद के बनाने में भी विशेषता है। इसके मेहराबों पर भी ईरानी प्रभाव है। मकबरे के साथ के उद्यान से इसकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है।[६१] ताजमहल के निर्माण के समय शाहजहां तथा उसके वास्तुकार हुमायूं के मकबरे से प्रभावित थे तथा दोनों भवनों में कई बातों में समानता है। ईरानी प्रभाव होने पर भी यह पूर्णतया भारतीय इमारत है।[६२]

हुमायूं के मकबरे के नीचे भूमि-गृह में मुग़ल परिवार से सम्बन्धित बहुत-सी कब्रें हैं। इन पर लेख नहीं खुदे हैं जिससे इनका पता लगाना सम्भव नहीं।

६० ब्राउन, इण्डियन आरकीटेक्चर, इस्लामिक पीरियड, पृ. ९७।

६१ "The innovation here seems to have been more the association of a garden with a tomb than the style of the garden itself." हैवेल, इण्डियन आरकीटेक्चर, पृ. १६३। हुमायूं के मकबरे के उद्यान के लिए देखिए, विलियर्स स्टुअर्ट, गार्डेन ऑफ दि ग्रेट मुग़ल्स, पृ. ९५-९७।

६२ "With all the Persian elements in the details, the plan of the whole building is characteristically Indian." हैवेल, इण्डियन आरकीटेक्चर, पृ. १६४।

शाहजहां का पुत्र दारा शिकोह हत्या के पश्चात् इसी मकबरे में बिना किसी संस्कार के दफना दिया गया था।[६३] औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् भी कई राजकुमार तथा मृत सम्राट यहां दफनाये गये।[६४] यहां इतनी कब्रें हैं कि हुमायूं का मकबरा तैमूर वंश का श्मशान-गृह कहलाता है। मुग़ल वंश के अन्तिम सम्राट बहादुर शाह तथा उसके पुत्रों ने १८५७ में भागकर हुमायूं के मकबरे में शरण ली थी। यहीं वे बन्दी बनाये गये[६५] तथा बहादुरशाह के दो पुत्र इसी के निकट गोली से मार डाले गये। विधि की यह कितनी विषम विडम्बना थी कि मुग़ल साम्राज्य का अन्त भी इसी मकबरे में हुआ।

मुग़ल चित्रकला तथा हुमायूं

फारसी तथा तुर्की भाषा में चित्रकार को मुसव्विर कहते हैं। कुरान में परमेश्वर के लिए इसी शब्द का प्रयोग किया गया है। कुरान के अनुसार द्यूत, प्रतिमा-विधान तथा भविष्य-कथन शैतानों की कार्यवाइयां हैं, इस कारण मुसलमानों को इनसे बचना चाहिए। हदीस में कहा गया है कि क़यामत के दिन चित्रकार को घोर नरक में स्थान प्राप्त होगा, क्योंकि वह अपनी बनायी हुई तस्वीरों में प्राण संचार न कर सकेगा। कुरान तथा हदीस की इस व्याख्या के कारण कट्टर मुसलमानों ने चित्रकला का विरोध किया, फिर भी इस्लामी देशों में भी इसका अन्त न हो सका।

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में उत्तरी भारत में चित्रकला की प्राचीन परम्पराएं धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही थीं। इसके विपरीत राजसी प्रश्रय के कारण ईरान में चित्रकला की उन्नति हो रही थी। विख्यात चित्रकार बिहज़ाद की मृत्यु हो गयी थी, किन्तु इसकी कला पर आधारित उसका स्कूल जीवित था। उसके शिष्य आग़ा मीराक, सुल्तान मुहम्मद तथा मुजफ़्फ़र अली अपनी प्रसिद्धि के शिखर पर थे।[६६] ईरान में पुस्तकों को चित्रित करने की कला ने बड़ी उन्नति की थी।

हुमायूं में कलात्मक भावना की कमी नहीं थी। ईरान में वह इन चित्रों से प्रभावित हुआ तथा उसने प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्रों को देखा। तबरेज़ में हुमायूं का परिचय मीर सैयिद अली नामक एक युवक चित्रकार से हुआ। मीर सैयिद

६३ सरकार हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, १-२, पृ. ५४९-५०।

६४ इरविन, लेटर मुग़ल्स, १, पृ. ३४, २५६।

६५ सुरेन्द्रनाथ सेन, एटीन-फ़िफ़्टी-सेवन, पृ. १०९-११; मजूमदार आर. सी.; दि सिपाय म्यूटिनी एण्ड रिवोल्ट ऑफ १८५७, पृ. ७४-७५।

६६ ब्राउन, पर्सी इण्डियन पेंटिंग अण्डर दि मुग़ल्स, पृ. ५२।

अली का पिता मीर मन्सूर बदख्शां का निवासी था। वह कुशल चित्रकार था। तबरेज में बिहजाद के निर्देशन में चित्रकला की सूचना पाकर वह भी अपने पुत्र के साथ बदख्शां से तबरेज आ गया। यहां मीर सैयिद अली ने चित्रकला में विशेषता प्राप्त की। यह कवि भी था तथा 'जुदाई' के उपनाम से कविता लिखता था।[६७] तबरेज में हुमायूं की मुलाकात ख्वाजा अब्दस्समद नामक एक अन्य चित्रकार से हुई। यह शिराज के गवर्नर शाहशुजा के वजीर ख्वाजा निजामुल्मुल्क का पुत्र था। अब्दुस्समद उस समय चित्रकला तथा सुलेख के लिए प्रसिद्ध हो चुका था। हुमायूं ने उसे अपनी सेवा स्वीकार करने के लिए आमन्त्रित किया। उस समय हुमायूं के पास कोई प्रदेश नहीं था तथा वह स्वयं ईरान के शाह पर निर्भर था। इसी कारण अब्दुस्समद ने उस समय हूमायूं का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया।

कुछ दिन बाद जब हुमायूं ने काबुल पर अधिकार कर लिया तो अब्दुस्समद तथा मीर सैयिद अली ने सन् १५५० में हुमायूं की सेवा स्वीकार कर ली।[६८] इन दोनों चित्रकारों द्वारा हुमायूं की सेवा स्वीकार करना मुग़ल काल के चित्रकला के इतिहास का स्वर्ण दिवस था। मुग़ल चित्रकला का इतिहास उसी दिन से प्रारंभ होता है।

हुमायूं तथा उसके पुत्र अकबर ने इन कलाकारों से चित्रकारी सीखना भी प्रारम्भ किया।[६९] मुग़ल सम्राटों की चित्रकला में दिलचस्पी का यह स्पष्ट प्रमाण है। हुमायूं ने इन चित्रकारों को फ़ारसी की प्रसिद्ध पुस्तक 'दास्ताने अमीर हमजा' को चित्रित करने की आज्ञा दी। प्रारम्भिक योजना के अनुसार सौ-सौ चित्रों की बारह जिल्दों में पुस्तक को चित्रित करना था। अर्थात् कुल १२,०० चित्र बनाने थे। सात वर्ष के परिश्रम के पश्चात् इन लोगों ने चार जिल्दें तैयार कीं।[७०] ये चित्र कपड़े पर बने हैं। चित्र बड़े आकार (२२"×२८½") के हैं। इन चित्रों में ईरानी, विशेषतया बिहज़ाद की शैली का स्पष्ट प्रभाव है। फिर भी इसमें भारतीयता की झलक स्पष्ट है।[७१] इन चित्रों

६७ वही, पृ. ५३।

६८ अकबरनामा, १, पृ. २६२।

६९ ब्राउन, इण्डियन पेंटिंग अण्डर दि मुग़ल्स, पृ. ५४।

७० वही; आईने अकबरी, १, पृ. ११५।

७१ "It is interesting to find even in this early school—called the school of Humayun by Clarke—an unmistakable Indian feeling. The manner of the Tumuride styles is

को दोनों चित्रकारों ने अन्य सहयोगियों की सहायता से बनाया। इस कार्य के प्रारम्भ होने के कुछ ही दिनों बाद हुमायूं ने भारतीय अभियान की तैयारी प्रारम्भ की जिससे वह इस कार्य की निगरानी न कर सका। फिर भी इसका कार्य चलता रहा। हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् अकबर ने इस कार्य को पूरा किया। दोनों चित्रकारों ने अकबर के समय में प्रसिद्धि प्राप्त की तथा मुग़ल चित्रकला के प्रारम्भकर्ता बने।

अकबर ने अब्दुस्समद को 'शीरी कलम' (मधुर कलम) की उपाधि दी तथा अपने राजत्व के बाईसवें वर्ष में इसे फतेहपुर सीकरी की शाही टकसाल का अधिकारी भी नियुक्त किया और बाद में राजत्व के ३१वें वर्ष में उसे दीवान बनाकर मुल्तान भेजा। अब्दुस्समद को चार सौ का मनसब प्राप्त था, किन्तु प्रभाव तथा सम्मान की दृष्टि से इसका विशेष स्थान था। यह सुलेख लिखने में अद्वितीय था। पोस्ते के बीज पर इसने कुरान का पूरा ११२वां सुरा लिख दिया था।[७२] अकबर के समय के सिक्कों पर भी अब्दुस्समद का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी देता है।

इस तरह हुमायूं ने मुग़ल चित्रकला के विकास का बीजारोपण किया। उसने चित्रकला के विकास की परिस्थिति उपस्थित कर दी थी। अकबर का आश्रय तथा प्रोत्साहन पाकर यह बीज एक छायादार वृक्ष के रूप में विकसित हुआ।

विद्या प्रेम तथा साहित्यिक रुचि

हुमायूं विद्वान् था। वह अरबी, फ़ारसी तथा तुर्की भाषा में बातचीत कर सकता था। मुग़ल सम्राटों की मातृभाषा चग़ताई तुर्की थी, किन्तु अपना देश

dominant in the delineation of landscape and architecture in the rendering of clouds, rocks, water, trees and animals, but in the selection of racial types, drapery and attitudes there is greater freedom and in grouping still more." ताराचन्द इन्फ्लूऐन्स ऑफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, पृ. २७०।

"There is something in this work which is not safavid, in some way it is reminiscent of the Rajput style, vaguely suggestive of an Indian environment". ब्राउन, इण्डियन पेंटिंग अण्डर दि मुग़ल्स, पृ. ५६।

७२ आईने अकबरी, ब्लाखमैन, पृ. ५५५।

त्यागने के पश्चात् उन्होंने धीरे-धीरे यह भाषा त्यागकर फ़ारसी भाषा अपना ली थी। फ़ारसी उस समय दक्षिण-पश्चिम एशिया के प्रदेशों में सभ्य लोगों की भाषा समझी जाती थी। सल्तनत काल में राजसी भाषा फ़ारसी थी। मुग़लों को यह वसीयत के रूप में प्राप्त हुई थी। इस तरह फारसी भाषा मुग़ल अमीरों तथा दरबार की प्रमुख भाषा बन गयी थी। फिर भी मुग़लों ने इस समय तक अपनी मातृभाषा का त्याग नहीं किया था। अवसर मिलने पर वे तुर्की भाषा में बातचीत करते थे। विशेषतया जब वे चाहते थे कि कोई अन्य उनकी बात न समझे तो वे तुर्की भाषा में बोलते थे। हुमायूं भी ऐसे अवसरों पर इस भाषा का प्रयोग करता था। सन् १५४८ में जब कराचा खां समर्पण करने के लिए गले में तलवार बांधकर उसके सामने उपस्थित किया गया तो हुमायूं ने तुर्की भाषा में कहा कि "सैनिक अपने जीवन काल में इस प्रकार की भूलें करते ही रहते हैं" तथा उसे क्षमा करने का आदेश दिया।[७३] इसी तरह कामरान के समर्पण करने पर (२२ अगस्त १५४८) जब वह दरबार में उपस्थित किया गया तो वह सम्राट से हठ कर बैठा। हुमायूं ने तुर्की भाषा में कहा "और निकट बैठो।"[७४] इस तरह हुमायूं ने तुर्की भाषा के ज्ञान का सदुपयोग अन्य अवसरों पर भी किया।[७५]

हुमायूं अरबी भाषा भी जानता था। जौहर तथा नफायसुल मआसिर के लेखक अलाउद्दौला बिन यह्या कज़वीनी उसके कुरान पढ़ने तथा स्मृति से कुरान के वाक्यों का भिन्न-भिन्न अवसरों पर उद्धरण करने का उल्लेख करते हैं।[७६] वह नक्षत्र तथा ज्योतिष शास्त्र का विद्वान् था। सम्भव है उसे अरबी भाषा से इसमें सहायता मिली हो।

हुमायूं को फ़ारसी भाषा का बहुत ही अच्छा ज्ञान था। वह इस भाषा में सरलता से बातचीत करता था। ईरान में उसको इस ज्ञान से बड़ी सुविधा हुई।

वह फ़ारसी में कविता भी लिखता था। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि उसे कविता एवं कवियों से भी रुचि थी। उसमें कविता करने की बड़ी योग्यता थी। समय-समय पर वह आध्यात्मिक तथा सांसारिक विषयों पर कविता किया करता था। उसका दीवान अकबर के पुस्तकालय में था,[७६] जो अब प्राप्त है। इसके

७३ अकबरनामा, १, पृ. २८०।

७४ वही, पृ. २८१।

७५ अन्य उदाहरणों के लिए देखिए ग़नी-ए हिस्ट्री ऑफ पर्सियन लैंगवेज़ एण्ड लिटरेचर एट दि मुग़ल कोर्ट, २, हुमायूं, पृ. ७-९।

अतिरिक्त उसकी कुछ कविताओं को अबुल फ़ज़ल तथा अन्य लेखकों ने अपनी पुस्तकों में उद्धृत किया है। इन कविताओं में प्रेम तथा रहस्यवाद की कविताएं भी हैं। उसकी कविताएँ स्पष्ट, संक्षिप्त तथा सुगठित हैं। उसकी कविताओं में उसकी गज़लें तथा रूबाइयां सबसे अच्छी समझी जाती हैं।[७७] उसमें अन्य कवियों की कविताओं को सुधारने की भी योग्यता थी। बदायूनी ने इस तरह के उदाहरण दिये हैं,[७८] जिनसे उसकी योग्यता तथा बुद्धि का पता चलता है। कुछ कविताओं में उसने अपना उपनाम 'हुमायूं' दिया है। हुमायूं की लगभग सभी रचनाएं फ़ारसी भाषा में हैं। उसके कुछ पत्र तथा केवल एक कविता तुर्की भाषा में बतायी जाती है।[७९]

हुमायूं केवल कवि ही नहीं वरंच कवियों तथा विद्वानों का पोषक तथा आश्रयदाता भी था। उसकी रुचि तथा प्रोत्साहन से प्रभावित होकर ईरान, तुर्किस्तान, बुख़ारा तथा समरकन्द के कवि अपना देश छोड़कर उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। बुखारा के ज़ाही यजमान तथा मावराउन्नहर के हैराती काबुल में ही उसके दरबार में आ गये थे। मौलाना अब्दुल बाकी सद्र तुर्किस्तानी, मीर अब्दुल हई बुख़ारी, ख्वाज़ा हिज़री ज़ामी, मौलाना बज़्मी, मुल्ला मुहम्मद सालीह तथा मुल्ला ज़ान मुहम्मद उसके दूसरे भारतीय अभियान में उसके साथ आये। मीर अब्दुल लतीफ कज़वीनी, मौलाना इलियास, मौलाना अब्दुल क़ासिम अस्तराबादी, ख्वाज़ा अयूब, शेख़ अबुल वाहिद फ़ारिगी शिराज़ी तथा शौकी तबरीज़ी ईरान के सफ़वी दरबार तथा वहां के नगरों से आये थे।[८०]

सीदी अली रेईस हुमायूं के कविता-प्रेम की प्रशंसा करता है। वह लिखता है कि हुमायूं का शाही तीरन्दाज़ खुशहाल भी इन कवि गोष्ठियों में भाग लेता था।[८१] शेख़ अमानुल्ला पानीपती हुमायूं का प्रमुख कवि था। वह सूफ़ी तथा धर्मशास्त्री भी था। इसने हुमायूं की प्रशंसा में अनेक कसीदों की रचना की।

७६ अकबरनामा, १, पृ. ३६८; हादी हसन, दि यूनिक दीवान ऑफ हुमायूं। देखिए जरनल बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, १९३९ पृ. ७१; ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३७१, टिप्पणी २।

७७ ग़नी, हिस्ट्री ऑफ पर्सियन लैंगवेज, २, पृ. १०-२३।

७८ मुन्तखबुत्तवारीख, १, पृ. ४७८-७१।

७९ ग़नी, हिस्ट्री ऑफ पर्सियन लैंगवेज, पृ. ६।

८० वही, पृ. १४९-५०।

८१ बम्ब्रे, दि ट्रैवेल एण्ड एडवेंचर्स ऑफ दि टरकिश एडमिरल सीदी अली रेइस, पृ. ४९-५३।

उसकी कविताएँ मधुरता, दर्द तथा सरलता के लिए प्रसिद्ध थीं। मौलाना क़ासिम शाही विद्वान् तथा कवि था। हुमायूं की प्रशंसा में उसने भी कसीदे, मसनवी तथा ग़ज़लों की रचना की। वह कामरान के साथ हज्ज को भी गया था। वहां से वह पुनः लौट आया। हुमायूं तथा क़ामरान की मृत्यु पर उसने बड़े ही सुन्दर तिथिबन्धों (chronograms) की रचना की। मौलाना जुनूनी बदख़्शां का प्रसिद्ध कवि था। हुमायूं की बदख़्शां विजय के पश्चात् उसने उसकी सेवा स्वीकार की। हुमायूं की प्रशंसा में इसमें ३८ शेरों के एक सुन्दर कसीदे की रचना की। शेख़ ज़ैनुद्दीन ख़ाफ़ी 'बफ़ाई' के उपनाम से कविता करता था। यह बाबर का सद्र रह चुका था। इसने आगरे में यमुना के पार एक मस्जिद तथा एक मदरसा बनवाया था। यह आशु कवि था। इसकी मृत्यु १५३३-३४ में चुनार के निकट हुई और वह अपने ही बनवाये हुए मदरसे में दफनाया गया। बफ़ाई का मित्र शेख़ अबुल वाहिद फ़ारिगी अपनी मीठी वाणी के लिए प्रसिद्ध था। उसकी मृत्यु भी १५३३-३४ में हुई। वह आगरा में शेख़ ज़ैन की ख़ानकाह में दफनाया गया। अन्य प्रमुख कवियों में ख़्वाज़ा अयूब, शाह ताहिर हैदर तुनियाई, जाही यतमान तथा मौलाना नादिरी समरकन्दी प्रमुख हैं।[८२]

साहित्य के अतिरिक्त हुमायूं को गणित, नक्षत्र शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र तथा इतिहास का भी ज्ञान था। ज्योतिष तथा नक्षत्र शास्त्र में तो वह दक्ष था। उसके आविष्कार, जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है, ज्योतिष तथा नक्षत्र शास्त्रों से प्रभावित थे। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि हुमायूं एक वेधशाला का निर्माण करना चाहता था। इसके लिए उसने बहुत-से यन्त्रों की व्यवस्था भी कर ली थी तथा कई स्थानों को वेधशाला के लिए चुना भी था।[८३] मृत्यु से सम्बन्धित दुर्घटना के पूर्व उसने गणितज्ञों तथा नक्षत्र शास्त्रियों को शुक्र ग्रह का निरीक्षण करने के लिए आमन्त्रित किया था। हुमायूं का विश्वास था कि मनुष्य जीवन नक्षत्रों द्वारा प्रभावित होता है। इस तरह वह भाग्यवादी था। जब शाह तहमास्प ने उससे कहा कि उसकी दयनीय अवस्था का कारण उसका घमंड था तो उसने उत्तर दिया कि यह सब भाग्य का फल है।

ताजे इज्ज़त, बिसाते निशात, विभागों का विभाजन, बाणों के बारह वर्ग, प्रत्येक दिन के लिए विशेष वस्त्रों का निर्णय इत्यादि नक्षत्रों से बचने के लिए

८२ इन कवियों के लिए देखिए ग़नी, हिस्ट्री ऑफ पर्सियन लैंगवेज, २, पृ. ५५-६२ तथा पृ. १४९-६०; बायज़ीद, पृ. १७६-८७; मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६९-९२ ; ला, प्रोमोशन ऑफ़ लर्निंग, पृ. १३४।

८३ अकबरनामा, १, पृ. ३६८।

ही थे। फिरिश्ता लिखता है कि हुमायूं ने एक ऐसा ग्लोब तैयार कराया था जिस पर पंचभूत एवं आकाश का वर्गीकरण अंकित था तथा उन्हें भिन्न-भिन्न रंगों में रंगा गया था।[८४] उसके दरबार में नक्षत्र शास्त्र के भी कई विद्वान् थे। इन विद्वानों में शाह ताहिर दक्खिनी, मौलाना इलियास उल्लेखनीय हैं। मौलाना इलियास ने हुमायूं को नक्षत्र शास्त्र की शिक्षा दी थी। वह अपने विषय का ज्ञाता था तथा वेधशाला स्थापित करने का भी विशेषज्ञ था।[८५]

कवियों तथा नक्षत्र शास्त्रियों के अतिरिक्त अन्य विषयों के विद्वान् भी उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। मीर अब्दुल लतीफ़ कज़वीनी, जिसे काबुल में अकबर का शिक्षक नियुक्त किया गया था, बहुत ही उच्चकोटि का विद्वान् था। अपने पिता काज़ी दह्या की भांति वह भी उच्चकोटि का इतिहासकार था। हुमायूं ने इसे भारत आने के लिए आमन्त्रित किया, किन्तु वह सम्राट की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली पहुँचा। इतिहासकार बायज़ीद, जौहर तथा ख़्वन्दमीर उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे।[८६] मौलाना मुहम्मद ने 'ज़वाहिरुल उलूम' (विज्ञानों का मणि) की रचना फ़ारसी भाषा में इसी समय में की। इसमें इतिहास, नक्षत्र शास्त्र, गणित, वैद्यक शास्त्र, दर्शन शास्त्र, न्याय शास्त्र, इत्यादि १२० विषयों पर चर्चा है। यह हुमायूं के समय का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उस युग में इस तरह के विश्वकोष (इनसाइक्लोपीडिया) की रचना करना बड़े साहस का काम था।[८७]

हुमायूं को पुस्तकों से भी प्रेम था। अबुल फ़ज़ल लिखता है कि ये उसके आध्यात्मिक साथी थे। अभियान तथा यात्राओं में भी पुस्तकालय उसके साथ रहता था।[८८] मिराते सिकन्दरी का लेखक लिखता है कि पुस्तकें बराबर हुमायूं के साथ रहती थीं तथा लेखक के पिता को व उसकी सेवा में उपस्थित रहकर सदा पुस्तकें पढ़ना पड़ता था। सन् १५४८ में तालिक़ान के युद्ध के पश्चात् जब

८४ फिरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ७१।
८५ ग़नी, हिस्ट्री ऑफ पर्सियन लैंगवेज, २, पृ. ५३।
८६ इन इतिहासकारों के लिए इस पुस्तक की भूमिका देखिए।
८७ ग़नी, हिस्ट्री ऑफ पर्सियन लैंगवेज, २, पृ. ७८-१००।
८८ अकबरनामा, १, पृ. १३६; काउण्ट ऑफ नोअर, दि एम्परर अकबर, अंग्रेजी अनुवाद, पृ. १३६; जहांगीर अपनी आत्मकथा में (रोजर्स द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, पृ. १७) हुमायूं के लाइब्रेरियन निज़ाम का उल्लेख करता है। इसका पुत्र जहांगीर द्वारा सम्मानित हुआ। ला, प्रोमोशन ऑफ लर्निंग पृ. १३२; सूफी, अलमिनहाज, पृ. ५१।

उसे अपनी सेना की पराजय की सूचना मिली तो उसने पूछा कि उसकी पुस्तकों का क्या हुआ। यह जानकर कि वे सुरक्षित हैं, उसे प्रसन्नता तथा सन्तोष हुआ।[८९] कुछ दिन बाद जब किवचाक़ के युद्ध में खोई हुई पुस्तकों के बक्स प्राप्त हुए, तो उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं थी।[९०] दिल्ली पर पुनः अधिकार करने के पश्चात् उसने शेरशाह के विनोद-गृह, शेरमंडल, को पुस्तकालय में परिवर्तित कर दिया जहां से गिरकर उसकी मृत्यु हुई।

हुमायूं के प्रोत्साहन से शिक्षा की भी उन्नति हुई। उसने दिल्ली में एक मदरसा भी स्थापित किया। इस मदरसे का मुख्य शिक्षक शेख़ हुसेन था।[९१] इसके अतिरिक्त लोगों ने व्यक्तिगत मदरसे भी खोले थे।

हुमायूं के धार्मिक बिचार

हुमायूं ईश्वरवादी, मुसलमान तथा सुन्नी मत का अनुयायी था। अपने व्यवहार में वह धार्मिक आस्था प्रकट भी करता था। क्षण भर के लिए भी वह बिना वजू किये नहीं रहता था तथा बिना पवित्रता के ईश्वर अथवा मुहम्मद साहब का नाम नहीं लेता था। यदि विवश होकर किसी ऐसे व्यक्ति का नाम लेना पड़ता जिसमें ईश्वर के नाम का कोई भाग भी सम्मिलित हो, तो वह, ईश्वर का नाम छोड़कर बाकी नाम से उसे पुकारता था। जैसे अब्दुल्लाह के स्थान पर केवल अब्दुल कहकर बुलाता था। एक बार उसने अब्दुल हई सद्र को अब्दुल कहकर पुकारा। वजू करने के बाद उसने मीर से कहा, "क्षमा करना, मैं वजू न किये था। हई ईश्वर का नाम है, अतः तुम्हारा पूरा नाम मैंने न लिया।"[९२] इसी प्रकार पत्रों पर 'हुवा' लिखने के स्थान पर दो अलिफ़ लिखता, जिससे ११ बन जाता। अब्जद से हुवा का जोड़ भी ११ होता है।[९३]

धार्मिक होते हुए भी हुमायूं में कट्टरता नहीं थी। ईरान में उसके शिआ मत स्वीकार करने की हम विवेचना कर आये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस्लाम धर्म तो स्वीकार करता था, किन्तु शिआ तथा सुन्नी सम्प्रदायों के भेद

८९ जौहर, स्टीवर्ट, पृ. १३२।

९० अकबरनामा, १, पृ. ३०५।

९१ ला, प्रोमोशन ऑफ लर्निंग, १३४।

९२ मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६७; फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १७८।

९३ मुन्तख़बुत्तवारीख़, ४६७-६८, 'हुवा' का अर्थ वह या ईश्वर है। अब्जद के अनुसार 'हे' पांच तथा 'वाव' ६ के बराबर है अर्थात् दोनों का जोड़ ११ हुआ।

स्वीकार नहीं करता था। यह उदारता उसकी माता माहम बेगम, स्त्री हमीदा बानो तथा उसके स्वयं के स्वभाव के कारण थी। शिआ विद्वानों तथा शिआ अमीरों का एक साथ स्वागत करने में उसे कोई असम्भव बात नहीं प्रतीत होती थी। एक तरफ जहां उसके साथ अबुल माली जैसे कट्टर सुन्नी थे, वहां बैराम खां जैसे शिआ उसके प्रमुख अमीरों में से थे। उसके भाई तथा मित्र उसकी उदारता के कारण उसे शिआ समझते थे। कन्नौज के युद्ध के पश्चात् सब भाई लाहौर में एकत्र थे। एक दिन हुमायूं तथा कामरान कहीं जा रहे थे। मार्ग में एक कुत्ता पांव उठाकर एक कब्र पर पेशाब कर रहा था। कामरान ने कहा, "ऐसा मालूम होता है कि यह कब्रवाला राफ़ज़ी (शिआ) है।" हुमायूं ने इसका उत्तर दिया, "हां, ज्ञात होता है कि यह कुत्ता भी सुन्नी है।"[६४] सम्भव है यह उत्तर कामरान को चिढ़ाने तथा शिआ अमीरों को प्रसन्न करने के लिए दिया गया हो फिर भी इससे यह प्रकट होता है कि वह शिआ-सुन्नी मतभेद को पसन्द नहीं करता था।

ज्योतिष तथा नक्षत्र शास्त्रों के अध्ययन तथा धार्मिक विश्वास ने उसे धर्मभीरु बना दिया था। बदायूनी लिखता है कि घर एवं मस्जिद में भूलकर भी वह कभी बायां पांव आगे नहीं रखता था। यदि कोई बायां पांव रख देता तो वह उससे बायां पांव वापस करा कर दाहिना पांव आगे करने को कहता था।[६५] हैदर मिर्ज़ा के अनुसार वह मन्त्रों तथा जादू में भी विश्वास करता था।[६६] बिना शकुन निकाले तथा शुभ नक्षत्र का निश्चय हुए वह शुभ कार्य नहीं प्रारम्भ करता था।

हुमायूं के युग में सूफ़ी सन्तों का प्रभाव बढ़ रहा था। अवसर मिलने पर वह फकीरों तथा उनसे धार्मिक विषयों पर वार्ता करता था। ईरान में जिस नगर या स्थान में वह पहुँचता था वहां के प्रमुख दरगाहों, मकबरों इत्यादि का दर्शन करता था। उसकी कविताओं पर भी सूफ़ी प्रभाव प्रकट होता है। भारतीय अभियान के पूर्व उसने सूफियों की तरह मांस न खाने की प्रतिज्ञा की थी। वह मौलवियों तथा सन्तों के साथ वार्ता करने में आनन्द लेता था। साधारणतया रात्रि का अन्तिम पहर तथा कभी-कभी पूरी रात उनके साथ धार्मिक विचार-विमर्श करने में व्यतीत कर देता था।[६७]

६४ फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. १७९।
६५ मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६८।
६६ तारीख़े रशीदी, तथा रास, पृ. ३९९।
६७ मुन्तख़बुत्तवारीख़ १, पृ. ४६७; तबक़ाते अकबरी, डे, २, पृ. १३८।

समकालीन सूफ़ी सन्तों में कुछ के साथ हुमायूं का निकट सम्बन्ध था। वह शेख़ मुहम्मद गौस तथा उनके बड़े भाई शेख़ बहलूल का आदर तथा सम्मान करता था। शेख़ गौस अपने समय के प्रमुख सन्त थे। ये सूफ़ियों के शत्तारी सिल्सीला के सूफ़ी सन्त थे। इन्होंने बारह वर्ष तक चुनार की पहाड़ियों में तपस्या की थी।[९८] बाद में इन्होंने ग्वालियर में अपनी कुटी बनायी। हिन्दाल के विद्रोह के समय हुमायूं ने इनके बड़े भाई बहलूल को हिन्दाल को समझाने के लिए बंगाल से आगरा भेजा। दुर्भाग्यवश शेख़ बहलूल हिन्दाल द्वारा मार डाला गया। हुमायूं के निष्कासन के पश्चात् शेख गौस गुजरात चले गये। इससे हुमायूं को बड़ा सन्तोष हुआ। दोनों में पत्र-व्यवहार होता रहता था।[९९]

अपनी उदारता के कारण ही हुमायूं ने हिन्दुओं के प्रति कट्टरता की नीति नहीं अपनायी। हिन्दुओं के विरुद्ध उसने धर्मयुद्ध की घोषणा नहीं की। धर्म के नाम पर मन्दिरों के ध्वंस करने अथवा धर्म-परिवर्तन की आज्ञाएं भी उसने नहीं दीं। इसके विपरीत कुछ राजपूत शासकों ने कठिन परिस्थिति में उसकी सहायता की। चौसा के युद्ध के पश्चात् राजा बीरभान ने उसकी बड़ी सहायता की। मालदेव उसे सहायता देना चाहता था किन्तु वह इसका उपयोग न कर सका। जोधपुर से लौटकर उसे कहीं शरण नहीं मिल रही थी। उस समय उमरकोट के राजा ने उसे तथा उसके परिवार को शरण दी। इस तरह हुमायूं का हिन्दुओं के साथ अच्छा सम्बन्ध रहा। राजनीति पर धार्मिक प्रभाव डालने का उसने कोई सक्रिय कदम नहीं उठाया।[१००]

सैनिक योग्यता

मध्य युग के सम्राट के लिए सैनिक निपुणता आवश्यक थी। हुमायूं की कठिनाइयों तथा समस्याओं में एक उच्चकोटि के सैनिक की आवश्यकता थी। हुमायूं ने अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में पानीपत तथा खानवा की लड़ाइयों में युद्ध का अनुभव प्राप्त किया था। आशा थी कि वह अपने को उच्चकोटि का सैनिक प्रदर्शित करेगा, किन्तु दुर्भाग्यवश वह इस दिशा में प्रसिद्धि न प्राप्त कर सका। हिन्दुस्तान में बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसने एक भी ऐसा युद्ध

९८ बील, ओरिएण्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी, पृ. १८७।

९९ निज़ामी, दि शत्तारी सेण्ट्स एण्ड देयर एटीट्यूड टुवर्ड्स दि स्टेट, मेडिवल इण्डिया क्वार्टरली, जिल्द १, नम्बर २, अक्तूबर, १९५० पृ. ६२-६५।

१०० राय चौधरी, दि स्टेट एण्ड रिलीजन इन मुग़ल इण्डिया, पृ. १८८।

नहीं जीता जो उसकी सैनिक योग्यता का लोहा जमा देता। बहादुर शाह से उसकी एक भी खुलकर लड़ाई नहीं हुई। शेर ख़ां से जो दो लड़ाइयां हुईं वह उनमें पराजित हुआ। माछीवारा की लड़ाई में वह उपस्थित नहीं था तथा सरहिन्द के युद्ध की विजय का श्रेय बैराम ख़ां को है।

उसकी सैनिक कमजोरी के कई कारण थे। वास्तव में हुमायूं शान्ति का सम्राट था। युद्ध में वह शत्रु की शक्ति का मूल्यांकन नहीं कर पाता था। बंगाल अभियान में चुनार के दुर्ग को विजय करने में उसे ६ महीने लग गये। वहां से लौटते समय चौसा तथा कन्नौज के युद्धों में उसने कुछ सामरिक भूलें कीं जिनका उल्लेख किया जा चुका है। इसी तरह बहादुर शाह के विरुद्ध मन्दसौर में भी उसने सैनिक चतुरता नहीं दिखायी। युद्ध में शत्रु पर तत्काल आक्रमण करने की जो आवश्यकता पड़ती है, हुमायूं में उस गुण का नितान्त अभाव था। जिस समय बहादुर शाह मन्दसौर से भाग रहा था वह अपने सैनिकों के साथ उसे देखता रहा। चौसा के युद्ध में भी तत्काल आक्रमण करने के बजाय उसने समय नष्ट किया। युद्ध में उत्साह के साथ सम्पूर्ण नेतृत्व ग्रहण करने में भी वह हिचकता था, कन्नौज के युद्ध का उत्तरदायित्व हैदर मिर्ज़ा के और माछीवारा तथा सरहिन्द का बैराम के हाथ में था। आनन्दप्रिय व्यक्ति होने के कारण युद्ध की कठिनाइयों से वह भागता था। युद्धकाल में भी आमोद-प्रमोद का अवसर मिलने पर वह युद्ध को भूलकर मनोरंजन में समय व्यतीत करने लगता।

निष्कासन के पश्चात् हुमायूं में कुछ सक्रियता तथा बुद्धि आयी। अफ़ग़ानिस्तान तथा बदख़्शां के सैनिक कार्यों से उसके इस परिवर्तन की हमें स्पष्ट झलक मिलती है किन्तु अधेड़ अवस्था में प्रारम्भिक जीवन के दुर्व्यसनों को उखाड़ फेंकना असम्भव था। यदि वह कुछ दिन जीवित रहता तो सम्भव है उसकी परिवर्तित योग्यता का उदाहरण मिलता।

शेरशाह द्वारा उसकी पराजय से उसकी सैनिक अयोग्यता का ढिंढोरा पीटना हमारी भूल होगी। शेरशाह चतुर, धूर्त तथा बुद्धिमान सेनानायक था। जैसा डा. कानूनगो लिखते हैं, उसमें शेर तथा लोमड़ी के सम्मिलित गुण थे।[१०१] वह अपनी बराबरी के शत्रुओं से लोमड़ी की चतुरता तथा कमजोरों पर शेर का दंभ तथा गरज प्रदर्शित करता था। वह साधारण परिवार का था तथा उसका उत्कर्ष उसकी अपनी बुद्धि तथा कार्यशीलता का परिणाम था। उसे साधारण सैनिक से सम्राट बनना था। इसलिए वह सैनिकों के साथ धूप में खाइयां भी खोद सकता

[१०१] डा. कानूनगो, शेरशाह, पृ. ४०८।

था तथा उनके कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ सकता था। तारीख़े दाऊदी का लेखक लिखता है कि शेरशाह स्वयं अपने सामने घोड़ों पर दाग लगवाता था। दाग के समय घोड़ों के बालों तथा चमड़े के जलने से बू उठती थी जिससे बचने के लिए उसकी नाक के पास गुलाब जल से भींगा रूमाल रखा जाता था। जब उससे कहा गया कि बू से बचने के लिए घोड़ों को कुछ दूरी पर दाग लगाया जाय तो उसने इनकार कर दिया। जब हुमायूं को इसकी सूचना दी गयी तो उसने उत्तर दिया कि "शेर खां ऐसा व्यवहार कर रहा है जैसा अन्य किसी सम्राट ने नहीं किया है। वह अब भी साधारण सिपाही की तरह व्यवहार कर रहा है।" इस घटना तथा हुमायूं के उत्तर से दोनों व्यक्तियों का भेद समझने में हमें सहायता मिलती है। हुमायूं सम्राट का पुत्र तथा स्वयं सम्राट था। वह इस बात को कभी नहीं भूलना चाहता था। शेरशाह जैसे व्यक्ति से युद्ध में सफलता पाना, विशेषतया जब मुग़ल अमीरों का जोश ठण्डा हो गया था तथा अफ़ग़ानों में राष्ट्रीय जागरण प्रारम्भ हो गया था, सरल नहीं था।

हुमायूं का सबसे बड़ा सैनिक गुण उसका साहस था। चौसा के युद्ध के पश्चात् उसने शेरशाह से युद्ध करने में भय नहीं प्रदर्शित किया। साथियों, सम्बन्धियों सभी ने उसका साथ छोड़ दिया, रेगिस्तान तथा बरफ से ढंके पर्वतों में उसे अनेक कष्ट सहने पड़े, किन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी। अपनी सैनिक शक्ति से ही उसने काबुल, कन्धार तथा हिन्दुस्तान के अपने खोये राज्य को पुनः प्राप्त किया। इस सफलता ने उसकी पिछली सभी सैनिक भूलों तथा त्रुटियों को धो दिया।

हुमायूं की पत्नियां

हुमायूं की आठ पत्नियों का उल्लेख मिलता है। सम्भव है उसकी अन्य पत्नियाँ भी रही हों। इनमें तीन—बेगा बेगम, हमीदा बानो तथा माह चूचक बेगम—महत्त्वपूर्ण हैं। बेगा बेगम से हुमायूं का विवाह उसकी युवावस्था में बाबर के जीवन काल में हुआ था। उसके पुत्र अलअमान के जन्म तथा उसके नामकरण के सम्बन्ध में बाबर के पत्र का उल्लेख किया जा चुका है। वह मुंहफट थी और सबके सामने हुमायूं से शिकायत करने में भयभीत नहीं हुई। बंगाल अभियान में वह हुमायूं के साथ थी। उसकी बहन का विवाह ज़ाहिद बेग से हुआ था। ज़ाहिद बेग ने हुमायूं को नाराज कर दिया। बेगा बेगम की प्रार्थना पर भी वह क्षमा नहीं किया गया। चौसा के युद्ध में बेगा बेगम अफ़ग़ानों द्वारा बन्दी बनायी गयी तथा हुमायूं के पास वापस भेज दी गयी। हमीदा बानो से हुमायूं के विवाह

के पश्चात् बेगा बेगम का महत्त्व कम हो गया। हुमायूं द्वारा हिन्दुस्तान पर आक्रमण के समय वह काबुल में थी। हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् अन्य स्त्रियों के साथ वह भी १५५७ में भारत आयी। १५६४-६५ में वह हज्ज़ के लिए गयी और वहाँ से तीन वर्ष बाद लौटी। वह हाज़ी बेगम भी कहलाती है। उसने ही हुमायूं के मकबरे का निर्माण कराया। १५८१ में उसकी मृत्यु हुई। अकबर हाज़ी बेगम का अपनी मां की भांति आदर करता था।[१०२]

हुमायूं की दूसरी पत्नी हमीदा बानो थी। उसके वंश तथा विवाह का वर्णन किया जा चुका है। यह अकबर की माता थी। यह पढ़ी-लिखी विदुषी तथा बुद्धिमती थी। ईरान में हुमायूं को हमीदा बानो से बड़ी सहायता मिली। हुमायूं के भारतीय अभियान के समय वह भी काबुल में थी। हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् १५५७ में अकबर के शासन काल में वह भारत आयी। लगभग ३० वर्ष की अवस्था में ही वह विधवा हो गयी। इसका अधिकतर जीवन अपने पुत्र अकबर के राजत्व काल में व्यतीत हुआ। अपने विवाह के ६३ वर्ष बाद १६०४ में सतहत्तर वर्ष की अवस्था में इसकी मृत्यु हुई।[१०३]

माह चूचक बेगम से हुमायूं ने १५४६ में विवाह किया। इसके चार पुत्रियाँ तथा दो पुत्र—मुहम्मद हक़ीम और फ़र्रुख़फ़ाल—थे। शाख़दान में हुमायूं की बीमारी में इसने हुमायूं की बड़ी सेवा की। अकबर के सिंहासनारूढ़ होने पर यह अपने पुत्र मिर्ज़ा हक़ीम के साथ काबुल में ही रही। उसके नाबालिग होने के कारण वह उसकी संरक्षिका थी। वहां के शासन में उसे बड़ी कठिनाइयां हुईं। १५६४ में अबुल माली द्वारा वह मार डाली गयी।[१०४]

हुमायूं की एक अन्य पत्नी गुनवार बीबी के बख़्शी बानो बेगम नामक एक लड़की थी। इसका विवाह सुलेमान मिर्ज़ा के पुत्र इबराहीम मिर्ज़ा से हुआ और १५६० में उसकी मृत्यु के पश्चात् मिर्ज़ा शर्फ़ुद्दीन हुसेन अहरारी से इसका पुनः विवाह हुआ।[१०५] चांद बीबी तथा शाद बीबी नामक हुमायूं की दो स्त्रियां चौसा के युद्ध में खो गयीं, मारी गयीं या डूब गयीं। निज़ामुद्दीन

१०२ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज पृ. २१८-२०।

१०३ वही, पृ. २३७-४०; हमीदा बानो अपने विवाह के समय (२९ अगस्त १५४१) चौदह वर्ष की थी। इससे कदाचित् उसका जन्म १५२७ में हुआ होगा।

१०४ वही, पृ. २६०; आईने अकबरी, १, पृ. ३३३, ३३९।

१०५ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज पृ. २३५; बनर्जी, हुमायूं, २, पृ. ३९।

ख़लीफ़ा की पुत्री गुलबर्ग बेगम बरलास से हुमायूं का विवाह चौसा की लड़ाई के पूर्व हुआ। हुमायूं से विवाह करने के पूर्व १५२४ में उसका विवाह मीर शाह हुसेन अरगून से हुआ था, किन्तु बाद में दोनों अलग हो गये। गुलबर्ग बेगम सिन्ध में हुमायूं के साथ थी।[१०६] ख़ाजंग यसावल की पुत्री, मेवा जान, गुलबदन की सेविका थी। यह देखने में अच्छी थी। माहम बेगम के कहने से हुमायूं ने इससे विवाह किया।[१०७]

विलासी प्रकृति का होने पर भी हुमायूं अपने राजनीतिक कार्यों में किसी भी स्त्री से प्रभावित नहीं था। ये स्त्रियां केवल उसके मनोरंजन का साधन थीं।

व्यक्तित्व तथा स्वभाव

हुमायूं अच्छे डीलडौल तथा गेंहुए रंग का आकर्षक व्यक्ति था।[१०८] साधारणतया उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता था। उसका बालपन उसके पिता के सुयोग्य संरक्षण में व्यतीत हुआ था। प्रारम्भ से ही उसे शिक्षित तथा शासक के सम्पूर्ण गुणों से पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया। उसका प्रारम्भिक जीवन सुख तथा आनन्द में व्यतीत हुआ था। एक बड़े पिता का पुत्र होने के कारण कठिनाइयों का अनुभव, जो मनुष्य को प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार करता है, उसे प्राप्त न हो सका। वह स्वभाव से आनन्दप्रिय तथा विनोदी था। प्रकृति से वह नेक था। जहां तक सम्भव होता वह अपशब्द का प्रयोग नहीं करता था। किसी व्यक्ति से रुष्ट होने पर वह उस व्यक्ति को केवल 'मूर्ख' कहता था।[१०९] वह स्नेही था तथा अपने भाइयों, बहनों तथा अन्य सम्बन्धियों के प्रति अपार दया तथा प्रेम प्रदर्शित करता था। भाइयों तथा सम्बन्धियों के नीच कार्य करने पर भी वह उन्हें सदा क्षमा करने को तैयार रहता था। कामरान की अक्षम्य क्रूरता, दुष्टता तथा नीचता पर भी वह उसे मृत्यु-दण्ड देने को तैयार नहीं था। उसे अन्धा बनाये जाने के पश्चात् उससे मिलने पर वह फूटफूटकर रो पड़ा। अपने पिता के प्रति उसकी अपार श्रद्धा थी और अनेक कष्ट सहकर भी उसने, अपने भाइयों के प्रति सद्व्यवहार करने की, उसकी आज्ञा का पालन किया।

गुलबदन बेगम उसकी दयालुता तथा प्रेम की सराहना करती हुई लिखती है कि माहम की मृत्यु के पश्चात् हुमायूं के प्रेम के कारण ही वह अपने को अनाथ

१०६ गुलबदन, हुमायूंनामा, बेवरिज, पृ. २३०।
१०७ वही, पृ. ११२।
१०८ फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. २४३।
१०९ मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६८।

नहीं समझती थी। हुमायूं अपनी सभी स्त्रियों का आदर करता था। दीन पनाह के उत्सव के समय बेगा बेगम की शिकायत तथा हुमायूं के उत्तर से यह प्रतीत होता है कि हुमायूं को जनानखाने की बड़ी तथा बूढ़ी स्त्रियों का भी ध्यान रहता था।

हुमायूं को धन का लोभ नहीं था तथा उसने धन संचय करने का प्रयत्न नहीं किया। बदायूनी लिखता है कि वह इतना बड़ा दानी था कि सम्पूर्ण भारत का राजस्व भी उसके दान के लिए पूरा नहीं था।[११०] दावतों तथा जश्नों में वह बहुत धन बरबाद करता था। ख़्वन्दमीर लिखता है कि अपने २८वें जन्म दिन पर वह सोने से तौला गया तथा सम्पूर्ण धन, जो लगभग १५,००० सिक्कों के बराबर था, लोगों में वितरित कर दिया गया।[१११] उसकी इन आदतों का परिणाम यह हुआ कि उसके पास अपने व्यय के लिए भी धन न रह गया। निष्कासन के अवसर पर तो उसके पास धन की इतनी कमी हो गयी कि उसे यादगार नासिर तथा अन्य अमीरों से ब्याज पर धन उधार लेना पड़ा। ऐसे व्यक्ति ने बाबर के जीवन काल में दिल्ली का राजसी कोष क्यों लूटा? यह धन के लोभ के कारण नहीं बल्कि अन्य कारणों से था।

चरित्र के दोष

प्रत्येक व्यक्ति का उत्कर्ष तथा पतन उसके गुण, दोष तथा परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। हुमायूं के जीवन की घटनाओं तथा उसके गुणों का वर्णन किया जा चुका है। अब हम उसके चरित्र के दोषों की तरफ दृष्टि डालें जो उसकी असफलताओं के लिए उत्तरदायी थे। स्वभाव से हुमायूं आलसी था तथा साथ ही उसमें उत्तरदायित्वहीनता भी थी। इन दोनों दुर्गुणों ने मिलकर कई बार कठिन परिस्थितियां उपस्थित कीं। हुमायूं का मन कठिन कार्य से मानो दूर भागता था। जहां तक सम्भव होता वह कठिनाइयों को टालता रहता था। बाबर अपनी आत्मकथा में शिकायत करता है कि भारत के अन्तिम आक्रमण के समय हुमायूं समय से नहीं पहुँचा। गुजरात अभियान में उसका सारंगपुर रुकना, गुजरात के विद्रोह के समय निकट रहने पर भी सहायता न करना, गुजरात अभियान से लौटकर आगरे में व्यर्थ समय नष्ट करना, बंगाल अभियान में राज्य कार्य भूलकर रुके रहना, चौसा तथा कन्नौज के युद्ध में युद्ध की प्रतीक्षा करना,

११० वही,
१११ ख़्वन्दमीर, कानूने हुमायूंनी, बेनी प्रसाद, पृ. ७६।

इत्यादि उसके इस दोष के ज्वलन्त उदाहरण हैं। सबसे अधिक शर्म की बात तो तब हुई जब ईरान के शाह से बिदा के पश्चात् भी वह कज़वीन में पड़ा रहा तथा शाह को उसे जबरदस्ती ईरान से भगाना पड़ा। आलसी स्वभाव ही के कारण हुमायूं युद्ध में तथा अन्य अवसरों पर तत्काल निश्चय नहीं कर पाता था। जिससे शत्रु लाभ उठाते थे।

कठिन परिस्थितियों में तत्काल सही निर्णय करना शासक या नेता का प्रमुख गुण है। हुमायूं तत्काल निर्णय नहीं कर पाता था। शेरशाह से सन्धि तथा युद्ध की समस्याओं में तत्काल निर्णय कर गुजरात अभियान के पूर्व उसने शेरशाह से चुनार के लिए युद्ध किया और पुनः सन्धि कर ली। गुजरात से लौटकर शेरशाह से युद्ध करने का निश्चय करने में उसे कई महीने लग गये। बंगाल अभियान के समय मनेर में, चौसा के युद्ध के पूर्व तथा कन्नौज के युद्ध के बाद लाहौर में भी सन्धि-वार्ता चलती रही। सन्धि करके उसने उसे तोड़ भी दिया, जैसे शेरशाह से मनेर में तथा बहादुर शाह से मांडू में। कूटनीतिक क्षेत्र में इसका बुरा प्रभाव पड़ा।

एक तरफ जहां हुमायूं दयालु था दूसरी तरफ वह कभी-कभी ऐसी बर्बर क्रूरता प्रदर्शित करता था कि देखने वाले आश्चर्यचकित रह जाते। माण्डू का हत्याकांड तथा चम्पानीर में इमाम की हत्या इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। अपने प्रियजनों के विरुद्ध दण्ड देने में वह पक्षपात करता था। इसके परिणामस्वरूप अन्य अमीरों में वैमनस्य फैल जाता था। धर्म के नाम पर हत्या करने पर भी उसने अबुल माली को दण्ड नहीं दिया।

अन्धविश्वास हुमायूं के जीवन का अंग बन गया था। बिना फ़ाल (शकुन) निकाले वह कोई शुभ कार्य नहीं करता था। कभी-कभी आवश्यक कार्य भी अच्छे नक्षत्र के लिए रोक देना पड़ता था। वह मन्त्रों तथा जादू में भी विश्वास करता था। ये भावनाएँ उसे आत्म निर्भर नहीं होने देती थीं तथा सक्रिय कार्य करने में रुकावट बन जाती थीं।

हुमायूं का उर्वर मस्तिष्क योजनाएँ बनाने में बड़ा ही निपुण था। उसकी योजनाएं तथा आष्विकार हमें आश्चर्यचकित कर देते हैं। किन्तु उसकी अधिकतर योजनाएं काल्पनिक तथा मनोरंजन के लिए थीं। उनका प्रशासकीय महत्त्व नहीं था। यदि हुमायूं ने वास्तविक शासन से सम्बन्धित नियम इस लगन से प्रतिपादित किये होते तो उसकी गणना विश्व के प्रमुख शासकों में होती।

हुमायूं अपने निकट के लोगों तथा शत्रुओं का ठीक मूल्यांकन नहीं कर पाता था। वह बहादुर शाह तथा शेरशाह की शक्ति का अनुमान न लगा सका।

उसके निकट के मनुष्य उसे धोखा देते रहते थे फिर भी वह उनकी बातों पर विश्वास कर उन्हें क्षमा कर देता था। कितनी दुःखद तथा आश्चर्यजनक बात थी जब जोधपुर से लौटते समय तरदी बेग ने गर्भवती हमीदा बानो के लिए अपना घोड़ा देने से इनकार कर दिया। उसकी दयालुता गुण होने पर भी राजसी कार्यों में उसकी अनेक कठिनाइयों के लिए उत्तरदायी बनी।[११२]

हुमायूं में समकालीन विलासी तथा विषयी दुर्गुण भी थे। कुछ बुरे व्यक्तियों जैसे मौलाना मुहम्मद फ़रग़ली आदि की संगति ने उसे और भी पतनोन्मुख कर दिया। उसकी अफ़ीम खाने की आदत भी बढ़ती गयी। अपने जीवन के अन्त में उसने इस व्यसन को त्यागने का प्रयत्न किया, किन्तु इसके पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी।

डा. रामप्रसाद त्रिपाठी उसके चरित्र की विवेचना करते हुए लिखते हैं: "जान पड़ता है कि हुमायूं की बुद्धि एकांगी ही थी, जिस कारण मौलिक योजना के विफल होने पर परिवर्तित परिस्थिति से निपटना उसके लिए असम्भव हो जाता। वह नई समस्याओं और स्थितियों में उनकी बहुमुखी लपटें समझे बिना फंस जाता था, क्योंकि सम्भवतः उसे अपनी सीमित योग्यता का ज्ञान न था। उदाहरणतः गुजरात और बंगाल के सुदूर प्रान्तों पर सैनिक आक्रमण करना उसके लिए नितान्त अनावश्यक था। मालवा और बिहार में अपनी स्थिति पुष्ट करके ही उनकी विजय का कार्य उसे हाथ में लेना चाहिए था। परन्तु वह एकदम सब भार ओढ़ने के लालच में आ गया जो क्रमशः ही उठाने योग्य थे। उसके राजनीतिक अनुमान भ्रमात्मक होते थे, जिससे यह जान पड़ता है कि न तो मानव तथा मानव प्रकृति का और न राजनीतिक स्थितियों तथा शासनिक समस्याओं का ही वह सच्चा पारखी था। कूटनीति और राजनीति में वह न बाबर की बराबरी कर सका न शेरशाह की ही। जो प्रदेश सरलतापूर्वक और सोचे-समझे बिना उसने शीघ्र ही जीत लिये, उन्हें एक सूत्र में सम्बद्ध करने की योग्यता का उसमें अभाव था। वह उन पर अपना अधिकार न बनाये रख सका और उनके निकल जाने की उसके भाग्य तथा राज्य पर घातक प्रतिक्रिया हुई।"[११३]

इतिहास में स्थान

भारतीय इतिहास विशेषतया मुग़लकाल के इतिहास में हुमायूं का क्या स्थान

११२ ईश्वरी प्रसाद, हुमायूं, पृ. ३७९।

११३ त्रिपाठी, राइज़ एण्ड फॉल, पृ. १११-१२।

है ? कुछ इतिहासकारों ने उसकी प्रशंसा की है तथा कुछ ने उसकी निन्दा। निज़ामुद्दीन अहमद के अनुसार "उसके देवतुल्य व्यक्तित्व में सम्पूर्ण मानवीय गुण पूर्ण रूप से सुशोभित थे। वीरता एवं पौरुष में वह संसार के सुल्तानों में सर्व-श्रेष्ठ था। दान-पुण्य में पूरे हिन्दुस्तान की आय भी उसके लिए पूरी नहीं होती।" वह उसकी विद्वत्ता, सौजन्य, कलाकारों एवं गुणवानों के आश्रय देने तथा धार्मिकता की सराहना करता है।[११४] अबुल फ़ज़ल लिखता है कि सम्राट की बुद्धिमत्ता तथा निपुणता के इतने अधिक प्रमाण हैं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती। वह उसके 'नकली' एवं 'अकली' ज्ञान, कविता करने की योग्यता इत्यादि की प्रशंसा करता है।[११५] फ़िरिश्ता उसके ज्ञान, लालित्य एवं सहृदयतापूर्ण स्वभाव, धार्मिकता तथा कविता-प्रेम की सराहना करता है।[११६] मुल्ला बदायूनी लिखता है : "सम्राट फ़िरिश्ता सरीखे गुणों वाला था। वह समस्त बाह्य एवं आध्यात्मिक गुणों से सुशोभित था। ज्योतिष, नक्षत्र शास्त्र एवं समस्त रहस्यमय विद्याओं में अद्वितीय था।" वह उसकी धार्मिकता, कविता-प्रेम इत्यादि की भी सराहना करता है।[११७] हुमायूं का चचा हैदर मिर्ज़ा लिखता है : "हुमायूं बादशाह बाबर के पुत्रों में ज्येष्ठ, सबसे अधिक योग्य तथा सबसे अधिक प्रतिष्ठित थे। मैंने उनकी जैसी प्रतिभा एवं योग्यता बिरले ही मनुष्यों में देखी है। किन्तु कुछ दुष्ट तथा विलासप्रिय लोगों की संगत के कारण, जिसमें मुल्ला मुहम्मद परगरी एवं उसी के समान अन्य लोग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, उनमें कुछ बुरी आदतें उत्पन्न हो गयी थीं जिनमें एक अफ़ीम का सेवन भी था। पादशाह में जितने भी दोष उत्पन्न हुए, और जो साधारण लोगों की चर्चा का विषय बने हुए हैं, इसी बुरी आदत के कारण हैं। इसके बावजूद उनमें उत्कृष्ट कोटि के गुण थे। वे युद्ध में बहादुर, जश्नों में मस्त तथा बहुत ही दयालु थे। संक्षेप में वे प्रतिष्ठित सम्राट थे और अपूर्व वैभव तथा ऐश्वर्य का पालन करते थे।"[११८]

आधुनिक पाश्चात्य इतिहासकारों में कुछ ने हुमायूं की कटु आलोचना की है। अर्सकिन लिखता है कि यद्यपि हुमायूं वीर, अच्छे स्वभाव वाला, उदार तथा

११४ तबकाते अकबरी, डे, २, पृ. १३८।

११५ अकबरनामा, १, पृ. ३६८।

११६ फ़िरिश्ता, ब्रिग्स, २, पृ. ७०-७१ तथा १७८-८०।

११७ मुन्तख़बुत्तवारीख़, १, पृ. ४६८।

११८ तारीखे रशीदी, ए. तथा रास, पृ. ४६९।

विद्या से प्रेम करने वाला व्यक्ति था, फिर भी उसके सभी गुण उसके दोष की सीमा पर आ जाते थे, जिसके कारण उनका कोई फल नहीं निकला। उसके मस्तिष्क में ऐसा ओछापन (असारता) था कि उसके सभी गुणों को समाप्त कर देता था। अर्सकिन का विचार है कि यदि वह कुछ दिन और अपने पिता के सिंहासन पर आसीन रहता तो वह अपने वंश का भारत में अन्तिम सम्राट होता।[११९] लेनपूल ने तो अपनी ओजमयी भाषा से उसके पतन की कहानी को और भी मनोरंजक बना दिया है। वह लिखता है कि हुमायूं का चरित्र आकर्षक था, किन्तु उसमें अपना आधिपत्य स्थापित करने की क्षमता न थी। निजी जीवन में वह एक अच्छा साथी और पक्का मित्र साबित होता था। उसका सम्पूर्ण जीवन एक शरीफ आदमी का जीवन था, लेकिन राजा के रूप में वह असफल रहा। हुमायूं का अर्थ है 'भाग्यशाली,' लेकिन हुमायूं जैसा अभागा अन्य राजा न हुआ। उसका अन्त उसके चरित्र के अनुकूल ही था। अगर कहीं भी फिसलकर गिरने की गुंजाइश होती थी तो हुमायूं कभी न चूकता था। वह सारी जिन्दगी फिसलता रहा और आखिर फिसलकर वह दुनिया से विदा हुआ।[१२०] मैलिसन का कथन है : "हुमायूं वीर, प्रसन्नचित्त, हास्यप्रिय, मन-मोहक साथी, अत्यधिक शिक्षित, उदार और दयालु होने के कारण स्थायी सिद्धान्तों पर एक राजवंश की स्थापना करने के लिए अपने पिता बाबर से भी कम योग्य था। इन अनेक गुणों के साथ उसमें कई कट्टर दोष भी थे। वह चंचल, विचारहीन तथा अस्थिर था। उसे कर्तव्य की कोई बलवती भावना अनुप्रेरित नहीं करती थी। उसकी उदारता अपव्ययिता में तथा अनुराग दुर्बलता में परिवर्तित हो जाता था। उसमें किसी एक दिशा में कुछ समय के लिए पूर्ण रूप से अपनी शक्तियों को केन्द्रित करने की क्षमता नहीं थी, और इसी प्रकार के विस्तार से कानून बनाने की न उसमें प्रतिभा थी, न रुचि ही। इसलिए जो साम्राज्य उसका पिता विरासत में छोड़ गया था, उसको सुसंगठित तथा सुदृढ़ करने के वह सर्वथा अयोग्य था।"[१२१]

हैवेल हुमायूं के प्रति सहृदय होने पर भी लिखता है कि हुमायूं तैमूर या बाबर की तरह व्यक्तिवादी या कर्मशील नहीं था। वह दुर्बल तथा दुर्विदग्ध था और राज्य के सभी विषयों में दरबारी ज्योतिषियों की सलाह लिया करता था।

११९ अर्सकिन, २, पृ. ५३४-३५।
१२० लेनपूल, मेडिवल इण्डिया, पृ. २१९।
१२१ मैलिसन, अकबर, पृ. ५०।

इतना सावधान होने पर भी ग्रहों ने हुमायूं के विरुद्ध ही कार्य किया। व्यक्तिगत साहस का उसमें अभाव नहीं था, किन्तु मुग़ल वंश की पुनः स्थापना का श्रेय उसकी योग्यता को नहीं, बल्कि उसके साथियों की अडिग भक्ति तथा शेरशाह के उत्तराधिकारियों की दुर्बलता को था।[१२२] एलफिनस्टन लिखता है : "हुमायूं में बुद्धि का अभाव नहीं था, किन्तु शक्ति की कमी थी और यद्यपि वह दुर्व्यसनों तथा उग्र आवेशों से मुक्त था, लेकिन साथ ही साथ सिद्धान्तहीन तथा स्नेहशून्य भी था। स्वभाव से वह जितना आरामप्रिय था उतना महत्त्वाकांक्षी नहीं, फिर भी बाबर के संरक्षण में उसका पालन-पोषण हुआ था। इसलिए उसे शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम का अभ्यास था। संकटमय परिस्थितियों में उसने कभी शक्ति की कमी नहीं दिखलायी और न जन्म तथा पद के लाभों से पूर्णतया अपने को वंचित किया, यद्यपि उसने उनका अधिक से अधिक प्रयोग नहीं किया···· स्वभाव से न वह क्रूर था और न चालाक और यदि वह यूरोप का एक संवैधानिक राजा हुआ होता तो चार्ल्स द्वितीय से अधिक विश्वासघाती तथा रक्तपिपासु न सिद्ध होता।"[१२३]

उपर्युक्त विद्वानों के विचारों से पूर्णतया सहमत होना कठिन है। हुमायूं के चरित्र को पूर्णतया समझने के लिए कुछ मूलभूत बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। किसी भी व्यक्ति के कार्यों के मूल्यांकन के लिए उसकी समकालीन परिस्थितियों, कठिनाइयों, चरित्र तथा उसके विरोधी व्यक्तियों का अध्ययन आवश्यक है। महापुरुषों की सफलता में बहुत-कुछ सौभाग्य तथा परिस्थितियां उत्तरदायी होती हैं। किसी भी व्यक्ति की असफलताओं के आधार पर ही उसका मूल्यांकन करना एकांगी होगा। नैपोलियन की सैनिक तथा शासकीय योग्यता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, किन्तु उसकी पराजय तथा उसका हृदय-विदारक अन्त हमारे सम्मुख एक दूसरी ही तस्वीर उपस्थित करता है। यदि हम केवल उसकी भूलों पर ही दृष्टि रखें तो क्या हम नैपोलियन का वास्तविक व्यक्तित्व समझ सकेंगे? अशोक तथा औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उनका साम्राज्य विघटित हो गया, अकबर की मृत्यु के कुछ दिनों के पश्चात् ही उसका भारतीय एकता का स्वप्न समाप्त हो गया, गांधीजी अपने जीवन भर हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्नशील रहे, किन्तु उनके जीवन में ही धर्म के आधार पर देश का विभाजन तथा उनका दुःखद अन्त उनके कार्यों की एक असफल कहानी उपस्थित करता

[१२२] हैवेल, आर्यन रूल इन इण्डिया, पृ. ४२८-२९ तथा ४४८-४९।

[१२३] एलफिनस्टन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. ४५१-७१।

तसेब६यहै । इन क्या हम यह कहेंगे कि अकबर, अशोक या गांधीजी का आदर्श व्यर्थ तथा मूर्खतापूर्ण था ?

हुमायूं शान्ति युग का सम्राट था। यदि उसे अपने पिता द्वारा संगठित साम्राज्य प्राप्त हुआ होता तो उसने अपनी सृजनात्मक शक्ति द्वारा मुग़ल साम्राज्य का एक ऐसा चित्र निर्मित किया होता जो आदर्श होता। उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य उसकी अपार कठिनाइयां थीं। उसके शत्रु उससे चतुर थे। उसका बहुत-सा समय आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं से संघर्ष में ही बीत गया। उसकी असफलता का बहुत-कुछ उत्तरदायित्व परिस्थितियों, बाबर द्वारा छोड़ी गयी समस्याओं, उसके शत्रुओं की चतुरता तथा प्रबलता, भाइयों तथा सम्बन्धियों का असहयोग तथा विद्रोह, अफ़ग़ान जागरण तथा उसके कुछ व्यक्तिगत दोषों पर है। अर्सकिन का यह कथन कि यदि हुमायूं कुछ दिन और जीवित रह गया होता तो मुग़ल साम्राज्य का अन्त हो गया होता, हुमायूं के प्रति अन्याय है।

हुमायूं का जीवन चार कालों में विभाजित हो सकता है—१५०८ से १५३० तक प्रारम्भिक काल; १५३० से १५४० तक संघर्ष काल; १५४० से १५५३ तक (अन्धा बनाये जाने तक) कामरान के निष्कासन तथा संकट का काल; और १५५३ से १५५५ तक विजय का काल। राज्यारोहण से लेकर चौसा के युद्ध तक कठिनाइयां होने पर भी उसके भाग्य ने उसका साथ दिया। उसी के पश्चात् उसके बुरे दिन प्रारम्भ होते हैं। ईरान से सहायता प्राप्त कर पुनः कन्धार पर अधिकार करने के पश्चात् (१५४५) उसका भाग्योदय होता है, एक के बाद एक उसके शत्रुओं का अन्त होता जाता है और उसका खोया यश तथा साम्राज्य पुनः लौट आता है।

वास्तव में शेर खां तथा अकबर के दिव्य प्रकाश से हमारी आंखें इतनी चकाचौंध हो जाती हैं कि हुमायूं का प्रकाश धुंधला पड़ जाता है। यदि हम इसे हटा सकें तो हम स्वीकार करेंगे कि मुग़ल सम्राटों में हुमायूं का एक सम्मानित स्थान है।

मुग़ल काल का महत्त्व केवल उसकी विजयों या शासन व्यवस्था के कारण नहीं, वरंच संस्कृति के प्रोत्साहन, विकास और उपयोगी नीतियों पर है। मुग़ल काल साहित्य तथा कला का स्वर्ण युग था। इस समय फ़तेहपुर सीकरी, आगरा तथा दिल्ली में ऐसे भवनों का निर्माण हुआ जो आज भी विश्व की आंखों को चकाचौंध कर देते हैं। यह काल साहित्य के भिन्न-भिन्न अंगों के विकास का युग था। मुग़ल चित्रकला ने भारतीय चित्रकला की परम्परा को पुनः जीवन-दान दिया। धार्मिक सहिष्णुता तथा शान्ति की नीतियों का विकास हुआ। हुमायूं ने

मुग़ल काल के इन सभी अंगों में अपना योगदान दिया। वह चित्रकला का जन्मदाता, साहित्य का उत्तम कोटि का प्रोत्साहक तथा धार्मिक सहिष्णुता का पथ-प्रदर्शक था। ये मुग़ल साम्राज्य के स्थायित्व के स्तम्भ थे। मृत्यु के पूर्व उसने सांस्कृतिक, साहित्यिक तथा धार्मिक सहिष्णुता का ऐसा बीजारोपण कर दिया था जिसे अकबर ने अपने बुद्धिबल से विकसित कर शक्तिशाली बनाया। हुमायूं का योगदान औरंगजेब की भांति मुग़ल साम्राज्य के विघटन का नहीं वरंच स्थायित्व की आधारशिला है। जब तक धार्मिक सहिष्णुता तथा सांस्कृतिक, कलात्मक तथा साहित्यिक विकास मुग़ल सामाज्य का आधार स्वीकृत रहेगा तब तक हुमायूं का नाम मुग़ल इतिहास में सदा श्रद्धा से लिया जायगा।

प्रमुख समकालीन सहायक ग्रन्थ

सम्राट हुमायूं से संबंधित अधिकतर ग्रन्थ फ़ारसी भाषा में हैं। इन प्रमुख ग्रन्थों में केवल ख्वन्दमीर का 'कानूने हुमायूंनी' उसके जीवनकाल में उसकी आज्ञा से लिखी गयी। अन्य ग्रन्थ अकबर या जहांगीर के समय में लिखे गये। इन सबकी वृहद् आलोचना देना यहाँ सम्भव नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ में भिन्न-भिन्न स्थानों में इनके प्रसंग दिए गये हैं, जिससे इनका मूल्यांकन हो सकता है। प्रमुख समकालीन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है, जिससे उनके महत्त्व को समझने में सुविधा होगी। इसके अन्त में प्रमुख समकालीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थों की, जिनसे इस पुस्तक में सहायता ली गयी है, सूची दी गयी है।

तुज़ुके बाबरी (वाक़ियाते बाबरी) अर्थात बाबर की आत्मकथा—बाबर ने अपनी आत्मकथा अपनी मातृभाषा चग़ताई तुर्की में लिखी। इसमें अरबी तथा फ़ारसी भाषा से बहुत से शब्द लिए गए हैं। अकबर के काल में अब्दुर्रहीम ख़ानखाना ने इसका फ़ारसी भाषा में अनुवाद तैयार किया। अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में भी इसके अनुवाद हुए हैं। श्रीमती बेवरिज ने, कई पाण्डुलिपियों के आधार पर, टिप्पणियों के साथ मूल पुस्तक का बड़ा ही उपयोगी अनुवाद किया है। बाबर की आत्मकथा डायरी की भांति लिखी गयी है। पूर्ण ग्रन्थ अप्राप्य है। बाबर के जीवन के ४७ वर्ष १० महीने के इतिहास में केवल अठारह वर्ष का ही वृात्तन्त हमें मिलता है। बाबर ने भिन्न भिन्न अवसरों पर हुमायूं से संबंधित घटनाओं का वर्णन किया है, जो हुमायूं के प्रारम्भिक जीवन तथा चरित्र को समझने के लिए अत्यन्त ही उपयोगी हैं। हुमायूं के जन्म, बाबर का अपने पुत्रों के प्रति प्रेम, भारतीय अभियान में हुमायूं के भाग, उसकी बदख़्शां यात्रा तथा वापसी, अपने भाईयों के प्रति हुमायूं के व्यवहार का आदेश इत्यादि अनेक घटनाओं के लिए बाबरनामा अत्यन्त ही उपयोगी है। बहुत-सी घटनाओं से हुमायूं के चरित्र के दुर्गुण भी प्रकट होते हैं। दुर्भाग्यवश हुमायूं के प्रारम्भिक जीवन से संबंधित घटनायें बाबरनामे में इतनी संक्षिप्त हैं कि बहुत-सी बातें, जैसे हुमायूं की शिक्षा, उसकी माता का वंश परिचय, हुमायूं के बदख़्शां से वापस आने के कारण, चार पुत्रों में से केवल हुमायूं तथा कामरान के भाग के निश्चय किए जाने के कारण इत्यादि अनेक बातें स्पष्ट नहीं हैं, जिससे ऐतिहासिक कठिनाई

उत्पन्न हो जाती है। हुमायूं के प्रारम्भिक जीवन के लिए अन्य कोई ग्रन्थ न होने के कारण यह कमी और खलती है।

कानूने हुमायूनी—इस ग्रन्थ के लेखक गयासुद्दीन मुहम्मद ख्वन्दमीर का जन्म १४७४-७५ ई. में ईरान में हुआ था। प्रसिद्ध इतिहासकार मीर ख्वन्दमीर (१४३३–१४९८) इसका नाना था। इसकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने नाना की देख-रेख में हुई। १५२७ ई. में वह हिरात से कन्धार आया। वहाँ से १९ सितम्बर १५२८ को वह आगरे पहुँचा। यहाँ मुगल सम्राट बाबर द्वारा वह सम्मानित हुआ। गद्दी पर बैठने के पश्चात् हुमायूं ने उसे 'अमीरुल अखबार' की उपाधि दी। गुजरात अभियान में (१५३४ ई.) यह हुमायूं के साथ था। वहाँ से लौटते समय १५३५ में इसकी मृत्यु हो गयी।

ख्वन्दमीर ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें हबिबुस्सियार (१५२३ तक का विश्व इतिहास) बहुत ही प्रसिद्ध है। हुमायूं से संबंधित कानूने हुमायूनी के लिखने की आज्ञा सम्राट ने उसे १५३० में ग्वालियर में दी। इस ग्रन्थ को ख्वन्दमीर ने मार्च १५३३ में प्रारम्भ किया तथा मई १५३४ ई. में इसे समाप्त किया। इस ग्रन्थ में लेखक ने आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है। कानूने हुमायूंनी में हुमायूं के शासन के प्रारम्भिक तीन वर्षों का ही वर्णन है। इसमें हुमायूं के सिंहासनारोहण, दीनपनाह की स्थापना, उसके द्वारा चलाये गये राजसी नियम, आविष्कार, जश्न इत्यादि का वर्णन है। हुमायूं से संबंधित ग्रन्थों में यही एक ग्रन्थ है जो उसकी आज्ञा से लिखा गया था। यह ग्रन्थ ऐशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित हुआ है तथा डा. बेनी प्रसाद ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया है, जो अत्यन्त ही उपयोगी है।

अकबरनामे के लिए सामग्री एकत्र करने के लिए अकबर ने, ऐसे लोगों को जो उसके पिता तथा पितामह के समकालीन थे, आज्ञा दी कि उसके बारे में वे जो कुछ भी जानते हों उसे लिपिवद्ध कर प्रस्तुत करें। इस आदेश पर रचे गये तीन ग्रन्थ—गुलबदन बेगम का 'हुमायूंनामा', जौहर का 'तज़किरतुल वाक़ेयात' एवं बायज़ीद का 'तज़किरए हुमायूं व अकबर' हुमायूं के जीवन के लिए अत्यन्त ही उपयोगी हैं।

गुलबदन बेगम का हुमायूंनामा—बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम का जन्म १५२३ ई. में हुआ था। इसकी माता दिलदार बेगम थी। इस तरह बाबर के भारतीय आक्रमण के समय यह केवल दो वर्ष की थी। १५२९ ई. के मध्य में अन्य महिलाओं के साथ यह भी भारत आयी। बाबर की मृत्यु के समय गुल-बदन आठ वर्ष की थी। इसका विवाह खिज्र ख्वाजा खां मुग़ल से हुआ था।

शेर ख़ां से हुमायूं की पराजय के पश्चात् गुलबदन आगरे से लाहौर और वहां से कामरान के साथ काबुल गयी। निष्कासन काल में हुमायूं तथा उसके भाइयों के संघर्ष के समय गुलबदन वहीं थी। हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् १५५७ ई. में वह पुन: भारत आयी। १५७५ ई. में वह हज्ज करने गयी और वहां से १५८२ में वापस लौटी। १६०३ में उसकी मृत्यु हुई।

हिन्दाल, गुलबदन का सगा भाई था। गुलबदन जब दो वर्ष की थी तभी हुमायूं की माता माहम बेगम ने उसे गोद ले लिया। वे बराबर उसके सम्पर्क में रहीं तथा हुमायूं से संबंधित बहुत-सी बातों का पता उन्हें माहम से प्राप्त हुआ होगा। गुलबदन ने यह संस्मरण फ़ारसी भाषा में अकबरनामे के लिए अकबर की आज्ञा से लिखा। मुग़लों की मातृभाषा चग़ताई तुर्की थी। गुलबदन ने इन शब्दों का भी प्रयोग किया है। हुमायूंनामा दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में बाबर तथा दूसरे में हुमायूं के काल की घटनाओं का वर्णन है। बाबर के काल की घटनाएं बहुत ही संक्षिप्त हैं। पुस्तक का अधिक भाग हुमायूं से संबंधित है।

हुमायूं के काल की घटनाएं उसकी आंखों के सामने ही घटीं। मुग़ल परिवार की होने के कारण इन घटनाओं से संबंधित अधिकतर लोगों से इसका व्यक्तिगत परिचय था। हुमायूं की बेगम हमीदा बानो से भी इसकी घनिष्टता थी। इस तरह बहुत-सी बातों की जानकारी जो इसको हो सकती थी, वह अन्य के लिए सम्भव नहीं थी। स्त्री होने के कारण अन्य लेखकों से इसका दृष्टिकोण भिन्न है तथा इसने मुग़ल स्त्रियों के विषय में मनोरंजक बातों का वर्णन किया है। मुग़ल काल की बेगमों की दशा की जानकारी के लिए यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। राजनैतिक घटनाओं के अतिरिक्त इसमें समकालीन रीति-रिवाज़, सामाजिक मान्यताओं इत्यादि का भी वर्णन है। माहम बेगम द्वारा जश्नों का आयोजन, आइनबन्दी, तिलिस्म का जश्न, हिन्दाल मिर्ज़ा के विवाह का जश्न, माहम की हुमायूं के पुत्र-जन्म की आकांक्षा तथा सुन्दर लड़कियों से हुमायूं के विवाह के लिए उनका प्रयत्न, मुग़ल स्त्रियों की पारस्परिक स्पर्द्धा तथा ऐसी अनेक घटनाएं गुलबदन के वर्णन के बिना अप्राप्य रहतीं। बाबर की मृत्यु से संबंधित घटनाएं, हुमायूं के प्रति बाबर का प्रेम, माहम की हुमायूं के राज्यकार्य में दिलचस्पी, चौसा के युद्ध में खोई गयी स्त्रियां, चौसा तथा कन्नौज की पराजय के पश्चात् मुग़ल परि-वार तथा अमीरों की दयनीय दशा, हमीदा बानो के विवाह से संबंधित घटनाएं, हुमायूं का उसके भाईयों से संबंध, काबुल के कामरान के अत्याचार इत्यादि घटनाओं का वर्णन महत्त्वपूर्ण है। गुलबदन बेगम इतिहासकार नहीं थी। हुमायूं-

नामा उसका संस्मरण है। वह इसमें वर्णित घटनाओं से संबंधित थी। इससे कहीं-कहीं वह भावनाओं से प्रभावित हो जाती है तथा निष्पक्ष नहीं रह जाती। उदाहरणतया, अपने सगे भाई हिन्दाल के प्रति वह कहीं-कहीं पक्षपात करती है, उसकी मृत्यु की घटनाएं तो अत्यन्त ही मार्मिक शब्दों में वर्णित हैं। गुलबदन ने घटनाओं की सत्यता की खोज भी नहीं की। बहुत-सी घटनाएं बहुत ही संक्षिप्त हैं, जैसे कन्नौज तथा चौसा के युद्ध। उनकी तिथियां भी सदा सही नहीं हैं।

श्रीमती बेवरिज ने गुलबदन के मूल ग्रन्थ का संस्करण सम्पादित किया है तथा टिप्पणियों के साथ उसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है। यह ग्रन्थ ऐशियाटिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित हुआ है।

तज़किरतुल वाक़ेयात—इस ग्रन्थ के लेखक जौहर आफ़ताबची के जन्म तथा जीवन की प्रारंभिक घटनाओं का ज्ञान हमें नहीं है। उसके संस्मरण से इतना स्पष्ट है कि हुमायूं के निर्वाचन काल में, उच्च तथा भक्कर की यात्रा के पश्चात् वह बराबर उसके साथ रहा। पंजाब विजय के पश्चात् हुमायूं ने जौहर को हैबतपुर परगने का राजस्व वसूल करने के लिए नियुक्त किया। उसके काम से प्रसन्न होकर उसे तातार खां लोदी का खजाना एवं उसके अधीनस्थ प्रदेश भी प्रदान कर दिये गये। तदुपरान्त वह कुछ अन्य अधिकारियों के साथ पंजाब एवं मुल्तान का खजांची नियुक्त हुआ। हुमायूं के दिल्ली पर अधिकार करने के पश्चात् सिकन्दर सूर के विरुद्ध पंजाब में उसने अबुल माली की सहायता की। अकबर के समय उसके कार्यों तथा पद का ज्ञान हमें नहीं है। यद्यपि वह उसके राज्यकाल में बहुत दिनों तक जीवित रहा। उसने अपने संस्मरण की रचना १५८७ ई. में प्रारम्भ की।

जौहर के संस्मरण में हुमायूं के जीवन से संबंधित अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन है। उसने जो कुछ लिखा है वह अपनी स्मृति से लिखा है तथा ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है जो उसकी आंखों के सामने हुईं। वह हुमायूं के साथ लगभग पच्चीस वर्ष रहा, जिससे उसे हुमायूं को निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ। हुमायूं के निष्कासन काल की घटनाओं के लिए जौहर बहुत ही उपयोगी है। उसने घटनाओं का सीधी-सादी भाषा में वर्णन किया है। जौहर के पास संस्मरण लिखते समय कोई डायरी नहीं थी। इस कारण घटनाएं सिल-सिलेवार न हो सकीं और जैसा वह स्वयं लिखता है, घटनाओं की तिथियां देना सम्भव न हो सका। उसकी कुछ तिथियां तो इतनी भ्रामक हैं कि उनसे विवाद खड़ा हो गया है, जैसे अकबर की जन्म तिथि। जौहर के लिए हुमायूं ऐसे उच्च स्थान पर था कि उसके कार्यों की आलोचना करना अथवा उसमें दोष देखना उसके लिए असम्भव था। एक इतिहासकार के गुण न होने पर भी कई स्थलों

पर जौहर अपने विचारों से हमें चकित कर देता है। गुजरात अभियान के पश्चात् जौहर का यह सुझाव कि हुमायूं को, बहादुरशाह को गुजरात का डिप्टी नियुक्त करना चाहिये था, महत्त्वपूर्ण है।

मेजर स्टीवर्ट ने जौहर के तज़किरतुल वाक़ेयात का अंग्रेजी अनुवाद किया है। इसके विषय में अर्सकिन का विचार था कि यह अनुवाद ठीक नहीं है। मेजर स्टीवर्ट का अनुवाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के जौहर के पुस्तक की पाण्डु-लिपि से मिलता है। सम्भव है यह अनुवाद उसी पाण्डुलिपि से किया गया हो। डा. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार स्टीवर्ट के अनुवाद में कुछ त्रुटियां अवश्य हैं, किन्तु अर्सकिन के मत से सहमत नहीं हुआ जा सकता।

तज़किरए हुमायूं व अकबर—इस ग्रन्थ का लेखक वायज़ीद ब्यात एक तुर्क कबीले से संबंधित था, किन्तु वह ईरान निवासी था तथा उसका बालपन तबरेज़ में व्यतीत हुआ था। ईरान में वह हुमायूं से मिला तथा उसकी सेवा में भर्ती हो गया। १५४५ ई. में जिस समय हुमायूं ने बैराम को दूत बनाकर काबुल भेजा, उस समय बायज़ीद भी उसके साथ था। बैराम तो लौट आया किन्तु बायज़ीद अपने भाई बहराम सक्का के पास गिरदीज़ चला गया। वह कुछ दिन हुमायूं के एक प्रतिष्ठित अमीर का सेवक रहा तथा हुमायूं द्वारा भी उसे सम्मान प्राप्त होते रहे। उस समय की कई घटनाओं में उसने भाग लिया। १५५४ ई. में जब हुमायूं कन्धार से वापस आ रहा था तो बायज़ीद हुमायूं के लिए अकबर की तरफ से उपहारस्वरूप फल लेकर वहाँ पहुँचा। हुमायूं के भारतीय अभियान के समय वह मुनइम खां के पास काबुल रह गया। १५६० ई. में वह लाहौर आया तथा बैराम ख़ां के पतन के समय उसने सन्देशवाहक का कार्य किया। तत्पश्चात् उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में रहने का उसे अवसर मिला। अकबर के राज्यकाल में उसे अन्य सम्मानित कार्यों पर नियुक्त किया गया। १५९०-९१ ई. में वह लाहौर में शाही ख़ज़ाने का अमीन एवं दारोगा था। १५९०-९१ में जिस समय उसने अपने ग्रन्थ की रचना की, उस समय वह वृद्ध हो चुका था तथा लकवे के कारण उसका बायां हाथ बेक़ार हो गया था। अब्रुल फ़ज़ल ने एक लिपिक नियुक्त किया। बायज़ीद बोलता जाता था तथा लिपिक लिखता जाता था। पुस्तक पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि शरीर कमजोर होने पर भी बायज़ीद की स्मृति अद्‌भुत थी।

अपने ग्रन्थ में बायज़ीद ने १५४२ से १५९० तक का मुग़लकालीन इतिहास लिखा है। इस तरह हुमायूं का पूरा इतिहास इस पुस्तक में नहीं है। हुमायूं से मिलने के पश्चात् बहुत-सी घटनाएं जिनका उसने वर्णन किया है,

उसकी आंखों के आगे घटित हुईं तथा इनमें से उसने स्वयं कुछ में भाग लिया था। बायज़ीद ने कुछ ऐसी सूचनाएं प्रस्तुत की हैं जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरणतया उसने उन प्रमुख लोगों के नाम दिये हैं जो हुमायूं के साथ भक्कर से ईरान की तरफ रवाना हुए थे। इसी तरह भारतीय आक्रमण के समय उन लोगों की सूची है जो हुमायूं, अकबर तथा बैराम के साथ थे। शाह तहमास्प का पत्र जिसमें हुमायूं के सत्कार का व्यौरा है तथा काशगर के शासक को लिखे गये हुमायूं के पत्र को भी उसने दिया है। बायज़ीद ने राजनैतिक घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया है। बायज़ीद की मूल पुस्तक को ऐसियाटिक सोसाइटी, बंगाल ने प्रकाशित किया है। हुमायूं से संबंधित भाग का अंग्रेजी अनुवाद डा. बनारसीप्रसाद सक्सेना द्वारा इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़ में प्रकाशित हुआ है (जिल्द ६, भाग १, पृ. ७१-१४८)।

तारीख़े रशीदी—इस ग्रन्थ का लेखक मिर्ज़ा हैदर बाबर का चचेरा भाई था। इसका जन्म १४९९-१५०० में, ताशकन्द में हुआ था। १५०६-७ ई. में हैदर मिर्ज़ा के पिता मुहम्मद हुसेन गुरग़ान ने बाबर के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा किन्तु बाबर ने उसे क्षमा कर दिया। कुछ दिन पश्चात् शैबानी ख़ां ने इसे मरवा डाला। हैदर मिर्ज़ा बच्चा था। इसकी देखरेख बाबर ने की। हुमायूं के राज्यकाल में यह भारत आया। कन्नौज के युद्ध में यह उपस्थित था तथा मुग़ल सेना का नेतृत्व उसी के अधीन था। कन्नौज की पराजय के पश्चात् लाहौर तक वह हुमायूं के साथ आया। पंजाब से वह काश्मीर चला गया तथा वहां का शासक बन बैठा। १५५१ ई. में कुछ स्थानीय लोगों द्वारा वह मार डाला गया।

मिर्ज़ा हैदर ने हुमायूं से सम्बन्धित घटनाओं का विस्तृत वर्णन नहीं किया है। फिर भी हुमायूं से संबंधित जिन घटनाओं का उसने वर्णन किया है, वे उसकी आंखों के सामने हुईं। १५२९ ई. में हुमायूं के बदख़्शां से भारत आने के कारण, चौसायुद्ध के पश्चात् मुग़ल अमीरों, हुमायूं तथा उसके भाईयों की दयनीय स्थिति, कन्नौज का युद्ध, मुग़लों का पलायन, लाहौर में विचारविमर्श इत्यादि घटनाओं के लिए उसका वर्णन अत्यन्त ही उपयोगी है।

एलियस तथा रास ने, 'ए हिस्ट्री ऑफ दि मुगल्स ऑफ सेन्ट्रल एशिया' के नाम से तारीख़े रशीदी का अंग्रेजी में अनुवाद किया है, जिससे प्रस्तुत ग्रन्थ में सहायता ली गयी है।

नफ़ायसुल मआसिर—इस ग्रन्थ का लेखक मीर अलाउद्दौला बिन यहया सैफ़ी हुसैनी कज़वीनी है। लेखक ने यह ग्रन्थ १५६५-६६ ई. में लिखना प्रारम्भ किया और १५८९-९० तक यह समाप्त हुआ। इसमें समकालीन कवियों की जीवनियां तथा

उनकी कविताओं के उदाहरण दिए गये हैं। हुमायूं के समय की कुछ महत्त्वपूर्ण कविताएं इसमें संग्रहीत हैं। बहुत-सी घटनाओं की तिथियां भी कविता में दी गयी हैं। मूल पुस्तक का प्रकाशन नहीं हुआ है।

तारीखे इबराहीमी—इस ग्रन्थ के लेखक इबराहीम बिन जरीर (हरीर) के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं है। इस ग्रन्थ की रचना १५५० ई. में हुई। इसमें आदम से लेकर १५४९ तक का संक्षिप्त विश्व इतिहास है। हुमायूं के काल की १५४५-४६ ई. तक की घटनाओं का उल्लेख है। मूल पुस्तक अप्रकाशित है।

तारीखे एलचीए नीज़ाम शाह—इस ग्रन्थ का लेखक ख्वरशाह बिन कुबाद अल हुसैनी, बुरहान निज़ामशाह प्रथम (१५०८-५३) का सेवक था। यह राजदूत बनाकर ईरान भेजा गया। वहाँ कई वर्ष तक रहा तथा उसने शाह तहमास्प से मुलाकात भी की। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है। हुमायूं द्वारा कामरान को लिखे गये पत्र तथा बहादुरशाह को लिखे गये अन्य पत्र के लिए यह उपयोगी है।

मिरातुल ममालिक—सीदी अली रैइस नामक एक तुर्की एडमिरल १५५६ ई. में भारत आया। लेखक ऐसे परिवार का था जो समुद्र यात्रा के लिए प्रसिद्ध था। वह स्वयं गणित, ज्योतिष, भूगोल, साहित्य, धर्मशास्त्र का ज्ञाता तथा कवि था। हुमायूं इससे मिलकर प्रसन्न हुआ तथा उसने एडमिरल के ग़ज़लों की सराहना की तथा अमीर अलीशीर से उसकी तुलना की। आगरा विजय के सम्बन्ध में सीदी अली ने हुमायूं को एक तिथिबन्ध प्रस्तुत किया। इसने हुमायूं से हुई वार्ता का वर्णन किया है जिससे सम्राट के विद्या-प्रेम का पता चलता है। हुमायूं की मृत्यु से संबंधित घटनाओं के लिए यह पुस्तक अत्यन्त ही उपयोगी है तथा ए. बमबेरी द्वारा 'दि ट्रवेल्स एन्ड एडवेन्चर्स ऑफ दी टर्किश एडमिरल सीदी अली रेइस' के नाम से अंग्रेजी में प्रकाशित है। यह यात्रावर्णन सूक्ष्म है तथा इब्नवतूता तथा अन्य यात्रिओं से इसकी तुलना नहीं हो सकती।

तारीखे अलफ़ी—अकबर के काल में इस्लाम के एक हज़ार वर्ष पूरे हो रहे थे। तारीख़े अलफ़ी की रचना अकबर की आज्ञा से हुई जिसमें कई लेखकों ने सहयोग दिया। हुमायूं के संबंध में इसमें नवीनता नहीं है, यद्यपि यह अन्य लेखकों का समर्थन करता है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन नहीं हुआ है।

तारीख़े खान्दाने तिमूरिया—इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि खुदाबक्श लाइब्रेरी पटना में है। इसमें भारत के तैमूरवंशयों का इतिहास, अकबर के बाइसवें वर्ष तक, दिया गया है। यह पुस्तक चित्रित है तथा अपने चित्रों के कारण इसे बड़ी प्रसिद्धि मिली है।

अहसानत् तवारीख़—इस ग्रन्थ के लेखक हसन ऐ रूमलू ने इस ग्रन्थ की रचना

१५८२-८३ ई. में की। गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़ में इसका प्रकाशन हुआ है तथा श्री सेडन ने इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है। लेखक शाह तह्मास्प के दरबार से संबंधित था। इसमें हुमायूं के ईरान निवास की घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है।

तबक़ाते अकबरी—इस ग्रन्थ के लेखक ख्वाज़ा निज़ामुद्दीन अहमद का जन्म कदाचित नवम्बर १५५१ ई. में हुआ था। इसका पिता ख्वाज़ा मुहम्मद मुकीम हरवी बाबर का बड़ा विश्वासपात्र था तथा दीवाने ब्यूतात के पद पर नियुक्त था। हुमायूं के गुजरात विजय के पश्चात् १५३५ ई. में जिस समय अस्करी को वहाँ नियुक्त किया गया, उस समय मुकीम उसका वज़ीर था। १५३९ ई. में जब हुमायूं चौसा के युद्ध में शेरशाह से पराजित होकर आगरे पहुँचा तो मुकीम हरवी भी उसके साथ था। अकबर के प्रारम्भिक काल में भी वह राजसी कार्य से संबंधित था। निज़ामुद्दीन अहमद अकबर के राजसी सेवा में था। वह उच्चकोटि का सैनिक था और उसने विभिन्न राजसी अभियानों में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। कई वर्ष तक वह गुजरात का बख्शी रहा। १५८९ ई. में वह दरबार में बुला लिया गया। पैंतालिस वर्ष की अवस्था में, नवम्बर १५९४ ई. में, लाहौर के निकट उसकी मृत्यु हो गयी।

निज़ामुद्दीन ने तबक़ाते अकबरी में गज़नी वंश से प्रारम्भ कर १५९३-९४ तक के भारतीय इतिहास का वर्णन किया है। अपने ग्रन्थ की रचना में उसने २९ ग्रन्थों से सहायता ली है। इनमें से कुछ अब उपलब्ध नहीं हैं। इससे इसकी पुस्तक का मूल्य और बढ़ जाता है। उसका पिता बाबर तथा हुमायूं के शासन से संबंधित था। बहुत-सी बातों का ज्ञान उसे अपने पिता से प्राप्त हुआ। तबक़ाते अकबरी की भाषा सरल है। निज़ामुद्दीन में अपने बहुत से समकालीन इतिहासकारों की भांति कट्टरता एवं पक्षपात नहीं है, वरन् उसने उदारता का परिचय दिया है। वह कवियों का पोषक भी था। हुमायूं के जीवन की कुछ घटनाओं के लिए निज़ामुद्दीन का वर्णन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ख़लीफ़ा के षड्यन्त्र के लिए तो वह हमारा प्रमुख साधन है, क्योंकि उसके पिता ही की सहायता से उस षड्यन्त्र का अन्त हुआ। इसके अतिरिक्त मुहम्मद ज़मान मिर्ज़ा तथा मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा, हुमायूं का बंगाल अभियान इत्यादि अनेक घटनाओं के लिए यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। उसका पिता अस्करी का वज़ीर था। गुजरात में मुग़लों की विजय तथा पलायन की घटनाओं का ज्ञान कदाचित उसने अपने पिता से प्राप्त किया होगा। कई स्थलों पर निज़ामुद्दीन का वर्णन बहुत ही संक्षिप्त है तथा कुछ घटनाएं ऐसी हैं जो विवादग्रस्त हैं। श्री वृजेन्द्रनाथ डे ने अंग्रेजी

में इसका अनुवाद किया है जो एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित हुआ है।

मुन्तख़बुत्तवारीख़—इस ग्रन्थ के लेखक अब्दुल क़ादिर बदायूनी का जन्म अगस्त १५४० ई. को टोडा भीम, जयपुर, में हुआ था। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा बसावर तथा तत्पश्चात् शेख़ मुबारक नागौरी से, अबुल फ़ज़ल तथा फ़ैज़ी के साथ, आगरे में हुई। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् वह बदायूं चला आया। यहां वह पटियाली के जागीरदार हुसेन खां की सेवा में ९ वर्ष रहा। १५७४ ई. में वह अकबर के दरबार में पहुँचा। उसे एक हज़ार बीघे की भूमि मद्दे मआश के रूप में दी गयी। अब्दुल क़ादिर विद्वान था। वह संस्कृत भी जानता था। इससे रामायण, महाभारत के फ़ारसी अनुवाद में भी सहायता ली गयी। उसने कई अन्य ग्रन्थों की रचना की जिनमें मुन्तख़बुत्तवारीख़ सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसमें ग़ज़नी वंश से प्रारम्भ कर अकबर के राज्य के चालीसवें वर्ष तक की घटनाओं का वर्णन है। अब्दुल क़ादिर लिखता है कि उसका ग्रन्थ तबक़ाते अकबरी पर आधारित है, किन्तु उसके ग्रन्थ में बहुत-सी नयी बातें हैं जो तबक़ाते अकबरी में नहीं हैं। बदायूनी का दृष्टिकोण एक कट्टर सुन्नी मुल्ला का है। हिन्दुओं तथा अन्य गैर सुन्नी मुसलमानों का वह कटु आलोचक है। अकबर के प्रति उसका दृष्टिकोण अत्यन्त संकुचित, पक्षपातपूर्ण तथा कटु है। इसी कारण यद्यपि यह पुस्तक १५९६ ई. में लिखी गयी थी, फिर भी यह बहुत दिनों तक गुप्त रखी गयी तथा जहांगीर के काल में प्रकाश में आयी। हुमायूं के इतिहास के प्रसंग में बदायूनी ने उस समय के शिआ-सुन्नी मतभेदों एवं अन्य समकालीन लोगों के धार्मिक विचारों, कवियों इत्यादि का सुन्दर वर्णन किया है। इस दृष्टि से उसकी पुस्तक अत्यन्त ही उपयोगी है। रेंकिंग तथा लो ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया है जो ऐशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित हुआ है। मूलग्रन्थ भी वहीं से प्रकाशित हुआ है।

गुलशने इबराहीमी अथवा तारीख़े फ़िरिश्ता—इतिहासकार फ़िरिश्ता का पूरा नाम मुहम्मद क़ासिम हिन्दुशाह फ़िरिश्ता अस्तराबादी था। फ़िरिश्ता का अधिकतर समय दक्षिण में व्यतीत हुआ था। इसने अपना इतिहास इबराहीम आदिलशाह (१६०६-७) को समर्पित किया। इस ग्रन्थ की रचना जहांगीर के काल में हुई। फ़िरिश्ता ने अपना इतिहास ३५ ऐतिहासिक ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् लिखा। इसमें बहुत से ग्रन्थ अप्राप्य हैं। मध्य युग के इतिहासकारों में फ़िरिश्ता का विशेष स्थान है। ब्रिग्स ने चार भागों में इसका अनुवाद अंग्रेजी में किया है। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से इसका फ़ारसी संस्करण प्रकाशित हुआ है।

फ़िरिश्ता ने हुमायूं से संबंधित कई ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है जो अन्य ग्रन्थों में प्राप्य नहीं है। कई स्थानों पर फ़िरिश्ता अन्य इतिहासकारों से अधिक स्पष्ट है। इसकी भाषा भी सरल तथा स्पष्ट है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ समकालीन **प्रान्तीय इतिहास** भी हैं जो हुमायूं के इतिहास के लिए उपयोगी हैं। इन ग्रन्थों में मीर अबु तुराब वली का तारीखे गुजरात, सिकन्दर बिन मुहम्मद मंभू का मिरआते सिकन्दरी, अब्दुलाह मुहम्मद बिन उमर अलमक्की का जफ़रूल बालेह बे मुजफ़्फ़र व आलेह तथा मीर मुहम्मद मासूमी का तारीखे सिन्ध महत्त्वपूर्ण हैं।

तारीखे गुजरात—इस ग्रन्थ का लेखक, मीर अबू तुराब वली, शीराज के सैयिदों के वंश से संबंधित था। उसके पिता तथा चाचा को गुजरात में बड़ा आदर प्राप्त था। अबु तुराब कुछ दिनों बाद अकबर की सेवा में उपस्थित किया गया। अकबर का उस पर इतना विश्वास था कि १५७७ ई. में उसे मीरे हज्ज नियुक्त किया गया तथा दरबारियों एवं बेगमों के एक समूह को लेकर वह मक्का गया। १५८० ई. में वह गुजरात लौट आया। १५८३ ई. में उसे गुजरात का अमीने सूबा नियुक्त किया गया। जनवरी १५९५ ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। तारीखे गुजरात में १५२५ ई. से १५८४ ई. तक की घटनाओं का वर्णन है। बहादुरशाह के दरबार में मुग़ल शरणार्थियों की गतिविधि, बहादुरशाह तथा हुमायूं की वैमनस्यता के कारण उनके पत्र व्यवहार तथा हुमायूं के गुजरात अभियान के अध्ययन के लिए यह पुस्तक अत्यन्त ही उपयोगी है। लेखक ने अपने संक्षिप्त इतिहास में उन्हीं घटनाओं का वर्णन किया है जिनका उसे स्वयं ज्ञान था। हुमायूं से संबंधित अनेक घटनाओं में उसके पिता, चाचा तथा उसने स्वयं भाग लिया था।

मीरआते सिकन्दरी—इस ग्रन्थ के लेखक सिकन्दर बिन मुहम्मद उर्फ 'मन्भू' ने अपना इतिहास १६११ अथवा १६१३ में लिखा। इसमें मुजफ्फ़रशाह प्रथम से लेकर मुजफ्फ़र शाह तृतीय की मृत्यु (१५९१) तक की घटनाओं का वर्णन है। लेखक का दृष्टिकोण मुस्लिम है। इसने अपने ग्रन्थ में बहुत-सी किम्वदन्तियों तथा कहानियों का वर्णन किया है। ऐतिहासिक घटनाओं के अतिरिक्त इसमें बहादुरशाह से संबंधित अनेक किंवदंतियां तथा कहानियां दी गयी हैं। जैसे बहादुर शाह के तोते तथा कलावन्त मंभू के बन्दी बनाये जाने तथा उसकी स्वतन्त्रता का वर्णन किया जा चुका है। दोनों शासकों में हुए पत्र व्यवहार में इसने बहादुरशाह का अन्तिम पत्र दिया है जिसका उल्लेख किया जा चुका है। वेले ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया है।

जफ़रुवालेह बे मुज़फ्फ़र व आलेह—इस ग्रन्थ के लेखक अब्दुलाह मुहम्मद बिन उमर अलमक्की उर्फ़ 'हाज़ी उददबीर' का जन्म १५४० ई. में हुआ। १५५५ ई. में वह भारत आया और अपने पिता के साथ अहमदाबाद में रहने लगा। गुजरात विजय के पश्चात् लेखक के पिता को अकबर ने गुजरात के वक्फ़ों का प्रबन्ध सौंपा। अपने पिता की मृत्यु (१५७६ ई.) के पश्चात् वह एक अन्य अमीर की सेवा में प्रविष्ट हो गया। तत्पश्चात् खानदेश के अमीर फ़ौलाद खां की सेवा में पहुँचा। हाज़ी उददबीर ने अपने इतिहास की रचना १६०५ ई. में, अरबी भाषा में की। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने बाद में भी इसमें संशोधन किया। इस ग्रन्थ में गुजरात के सुल्तानों के इतिहास के साथ-साथ अन्य ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। इसमें हुमायूं तथा बहादुरशाह में हुए पत्र व्यवहार के पत्र प्राप्त हैं। हुमायूं तथा बहादुरशाह से संबंधित उपयोगी सामग्री उपलब्ध है। डेनीसन रास ने इसका अनुवाद 'एन अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात' के नाम से किया है। इसी नाम से यह अधिक प्रसिद्ध है।

तारीखे सिंध—इस ग्रन्थ का लेखक मीर मुहम्मद मासूम 'नामी' भक्कर के एक शेखुल इस्लाम का पुत्र था। १५८३ ई. में यह गुजरात आया तथा निज़ामुद्दीन अहमद का मित्र बन गया। १५९५–९६ ई. में उसे अकबर ने २५० का मन्सब प्रदान किया। १६०३–४ ई. में वह राजदूत बनाकर ईरान भेजा गया। १६०६–७ में वह भक्कर लौट गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। तारीख़े सिंध में मुसलमानों की विजय से लेकर अकबर के शासनकाल तक सिंध का इतिहास है। हुमायूं के सिंध निवास के लिए यह उपयोगी इतिहासकार है। भंडारकर इन्सटीट्यूट पूना ने 'तारीख़े सिंध' के नाम से इसे प्रकाशित किया है।

हुमायूं का संघर्ष अफ़गानों से भी हुआ था। **अफ़ग़ान इतिहासकारों** से भी हुमायूं संबंधी सामग्री मिलती है। ये इतिहासकार समकालीन नहीं हैं। फिर भी इन्होंने अनेक परम्पराओं के आधार पर इन ग्रन्थों की रचना की है। इन ग्रन्थों में वाक़ेयाते मुश्ताक़ी, तारीख़े शेरशाही, मखज़ाने अफ़ाग़ेना तथा सलातीने अफ़ग़ाने प्रमुख हैं।

वाक़ेआते मुश्ताकी—इस ग्रन्थ के लेखक शेखरिज़्कुल्लाह मुश्ताकी का जन्म १४९१-९२ ई. में हुआ था। यह फ़ारसी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं का कवि था। वाक़ेआते मुश्ताक़ी में वहलोल लोदी से लेकर अकबर के राज्यकाल तक का वर्णन है। इसमें शासकों से संबंधित अलौकिक कहानियों की भरमार है।

तारीख़े शेर शाही—का लेखक अब्बास खां सरवानी अकबर की सेवा में था तथा उसकी आज्ञा से उसने इस ग्रन्थ की रचना की (१५७९)। इसमें शेरशाह

से संबंधित अनेक घटनाओं का वर्णन है। हुमायूं तथा शेरशाह से संबंधित घटनाओं के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। इलियट तथा डासन के 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स' के चौथे भाग में इसका अनुवाद है।

सेलातीने अफ़ग़ेना—अहमद यादगार अपनी पुस्तक में अपने को सूर अफ़ग़ानों का सेवक लिखता है। उसका पिता गुजरात में अस्करी का वज़ीर था। ऐशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल ने **तारीखे शाही** के नाम से इसे प्रकाशित किया है। यह पुस्तक बंगाल के शासक दाऊद शाह की आज्ञा से (इसकी मृत्यु १५७६ ई. में हुई) लिखी गयी। इसमें लोदी तथा सूर वंश के शासकों का वर्णन है। मुग़लों से संबंधित घटनाओं का भी वर्णन है। बाबर द्वारा हुमायूं का उत्तराधिकारी मनोनीत करने की घटना का वर्णन जो अहमद यादगार ने किया है, महत्त्वपूर्ण है। हुमायूं के काल की घटनाएं तबक़ाते अकबरी से ली गयी हैं पर कई स्थानों पर इसमें और भी उपयोगी सामग्री है।

मख़ज़ाने अफ़ग़ेना—की रचना नियामतउल्लाह ने १६११ ई. में खां जहां की आज्ञा से प्रारम्भ की। यह ग्रन्थ डार्न ने 'हिस्ट्री ऑफ दी अफ़ग़ान्स' के नाम से अंग्रेजी में अनुवाद किया है। इसमें भी लोदी तथा सूर वंश का इतिहास है।

तारीखें दाऊदी—इस ग्रन्थ का लेखक अब्दुल्ला जहांगीर का समकालीन था। यह देखकर कि लोग अफ़ग़ान सुल्तानों के विषय में धीरे-धीरे भूलते जा रहे हैं, उसने इस ग्रन्थ की रचना की। उसने अपना ग्रन्थ बंगाल के अफ़ग़ान शासक दाऊद शाह (१५७२–७६) को समर्पित किया है, यद्यपि उसकी रचना जहांगीर के काल में हुई। मूल ग्रन्थ अलीगढ़ विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ है।

प्रमुख सहायक ग्रन्थों की सूची

(अ) समकालीन ग्रन्थ

मूल ग्रन्थ

अबुल फ़ज़ल —अकबरनामा, भाग १, कलकत्ता, १८७३-८७।

अबूतुराब वली —तारीख़े गुजरात, कलकत्ता, १९०९।

अब्दुल्लाह —तारीखे दाऊदी, अलीगढ़, १९५४।

अहमद यादगार —तारीख़े शाही, कलकत्ता, १९३९।

गुलबदन बेगम —हुमायूंनामा, लन्दन, १९०२।

जायसी, मलिक मुहम्मद —पदमावत, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

फ़िरिश्ता, मुहम्मद कासिम हिन्दू शाह —तारीखे फ़िरिश्ता, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।

बदायूनी, अब्दुल कादिर —मुन्तख़बुत्तवारीख़, कलकत्ता, भाग १, १८६८।

बायज़ीद व्यात —तारीख़े हुमायूं व अकबर, कलकत्ता, १९४१।

मुहम्मद मासूम —तारीख़े सिन्ध या तारीख़े मासूमी, पूना, १९३८।

मूल ग्रन्थों के अनुवाद

अबुल फ़ज़ल —अकबरनामा, एच. बेवरिज द्वारा अंग्रेजी अनुवाद; आइने अकबरी, भाग १, श्री एच. ब्लाख़मैन तथा डी. सी. फिलॉट द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता १९३९; भाग २ तथा ३, द्वितीय संस्करण एच. एस. जैरेट तथा यदुनाथ सरकार द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता १९४८ तथा १९४९।

अब्दुल्ला मुहम्मद, (हाजी-उद-दबीर) —ज़फरुल वालेह का रास द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, ऐन अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात।

इलियट तथा डासन —हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज़ टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग १, ४ तथा ५, लन्दन, १८७२ तथा १८७३।

ख्वन्दमीर —कानूने हुमायूंनी, डा. बेनी प्रसाद द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, १९४०।

गुलबदन बेगम —हुमायूंनामा, श्रीमती बेवरिज का अंग्रेजी अनुवाद, लन्दन, १९०२।

जहांगीर —जहांगीर की आत्मकथा का रोजर्स द्वारा अंग्रेजी अनुवाद १९०९ तथा १९१४; बृजरत्न दास द्वारा हिन्दी अनुवाद, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१४ संवत्।

जौहर —तज़किरतुल वाक़ेआत अर्थात् जौहर का सम्राट हुमायूं से सम्बन्धित संस्मरण, मेजर चार्ल्स स्टीवर्ट का अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, १९०४।

नानक गुरु —आदि ग्रन्थ।

निजामुद्दीन अहमद —तबक़ाते अकबरी, श्री बी. डे, द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, भाग २ तथा ३, कलकत्ता, १९३६-४०।

फ़िरिश्ता —तारीखे फ़िरिश्ता, जान ब्रिग्स द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, हिस्ट्री ऑफ दी राइज़ ऑफ मोहमेडन पावर इन इण्डिया, भाग २, ३, ४, कलकत्ता, १९०९ तथा १९१०।

बदायूनी —मुन्तख़बुत्तवारीख़ का रेंकिंग, लो तथा हेग द्वारा अंग्रेजी अनुवाद।

बम बेरी. ए —ट्रैवेल्स एण्ड एडवेन्चर्स ऑफ दि टर्किश एडमिरल सीदी अली रेइस।

बाबर —दि मेमायर्स ऑफ बाबर, बाबर की आत्मकथा का श्रीमती ए. एस. बेवरिज द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, लन्दन, १९२१।

बायजीद ब्यूतात —तारीखे हुमायूं व अकबर, डा. बनारसीप्रसाद सक्सेना का अंग्रेजी अनुवाद, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, जिल्द ६, भाग १, १९३०।

बेले, इ. सी. —हिस्ट्री ऑफ गुजरात, (दि लोकल मोहमेडन डाइनेस्टीज ऑफ गुजरात) मीराते सिकन्दरी का अंग्रेजी अनुवाद, लन्दन, १८८६।

मिर्ज़ा हैदर —तारीख़े रशीदी, एलियस तथा रास द्वारा अंग्रेजी अनुवाद ।

रिज़वी, अतहर अब्बास —मुग़ल कालीन भारत, हुमायूं, भाग १, अलीगढ़, १९६१ तथा भाग २, अलीगढ़ १९६२ ।

होदीवाला, एस. एच. —स्टडीज़ इन इण्डो मुस्लिम हिस्ट्री, भाग १, बम्बई, १९३९ ।

(आ) आधुनिक ग्रन्थ

अर्सकिन विलियम —हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, अण्डर दि फर्स्ट टू सावरेन्स ऑफ दि हाउस ऑफ तैमूर, बाबर एण्ड हुमायूं, भाग १ तथा २, १८५४ ।

अवस्थी, आर. एस. —हुमायूं (अप्रकाशित) ।

आगस्टस, फ्रेडरिक काउन्ट ऑफनोअर —एम्परर अकबर, ए. एस. बेवरिज द्वारा अंग्रेज़ी अनुवाद, कलकत्ता, १८९० ।

इब्न हसन —दि सेन्ट्रल स्ट्रक्चर ऑफ दि मुग़ल एम्पायर, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९३६ ।

इरविन, विलियम —लेटर मुग़ल्स, भाग १—तथा २, कलकत्ता १९२२ ।

ईश्वरी प्रसाद —दि लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ हुमायूं, ओरियन्ट, लांगमैन्स, १९५५ ।

एडवर्ड्स एस. एम. तथा गैरेट एच. एल. ओ. —मुग़ल रूल इन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९३० ।

एलफिन्सटन —हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ।

ओझा, गौरीशंकर —राजपूताने का इतिहास ।

कानूनगो, कालिकारंजन —शेरशाह (कलकत्ता १९२१) ।
दाराशिकोह (कलकत्ता १९५२) ।

काम्मिस्सारियट, एम. एस. —हिस्ट्री ऑफ गुजरात (१९३८) लांगमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी ।

खां, सर सैयद अहमद —आसार अस् सनादीद (उर्दू) कानपुर, १९०४ ।

ग़नी, मुहम्मद अब्दुल —ए हिस्ट्री ऑफ पर्शियन लैंगवेज एण्ड लिटरेचर ऐट दि मुग़ल कोर्ट, भाग २, हुमायूं, इलाहाबाद, १९३० ।

ग्रेनार्ड, फरनैण्ड —बाबर : फर्स्ट ऑफ दि मुग़ल्स (लन्दन, १९३१)।

ज़ाफर, एस. एम. —दि मुग़ल एम्पायर (पेशावर, १९३६)।
एज्यूकेशन इन मुस्लिम इण्डिया (१९३६)।

टाड, जेम्स —एनल्स एण्ड ऐन्टीक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, भाग १–२, पापुलर एडीशन, ज़ार्ज रुतलेज़ एण्ड सन्स (लन्दन)।

ताराचन्द —इन्फ्लूएन्स ऑफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, इलाहाबाद, १९३६।

त्रिपाठी, रामप्रसाद —राइज एण्ड फॉल ऑफ दि मुग़ल एम्पायर (इलाहाबाद, १९५५)।
सम ऐसपेक्ट्स ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन (इलाहाबाद, १९५६)।

नाजिम, मुहम्मद —लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सुल्तान महमूद ऑफ ग़ज़नी (कैम्ब्रिज १९३१)।

प्रसाद, डाक्टर बेनी —हिस्ट्री ऑफ जहांगीर, तृतीय संस्करण (इलाहाबाद, १९४०)

बनर्जी, डा. एस. के. —हुमायूं बादशाह, भाग १, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९३८; भाग २, लखनऊ, १९४१।

बर्न, सर रिचर्ड —दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, चतुर्थ भाग, दिल्ली।

बील, टामस विलियम —दि ओरियन्टल बायोग्राफिकल डिक्शनरी, (कलकत्ता, १८८१)।

बेन्द्रे, बी. एस. —ए हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम इन्सक्रिप्शनस् (बम्बई, १९४४)।

ब्राऊन, पर्सी —इण्डियन आर्किटेक्चर, इस्लामिक पीरियड, तृतीय संस्करण, बम्बई।
इण्डियन पेंटिंग्स अण्डर दि मुग़ल्स (आक्सफोर्ड, १९२४)।

ब्राऊन, सी. जे. —दि क्वायन्स ऑफ इण्डिया (कलकत्ता, १९२२)।

मजूमदार, बी. —ए गाइड टू सारनाथ (दिल्ली, १९४७)।

मिर्जा, मुहम्मद वाहिद —दि लाइफ एण्ड वर्क्स ऑफ अमीर खुसरो (कलकत्ता, १९३५)।

मैलिसन जी. बी. —अकबर, आक्सफोर्ड १९०८।

मोरलैण्ड, डब्ल्यू. एच. —इण्डिया ऐट दि डेथ ऑफ अकबर (लन्दन, १९२०)
दि अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया (इलाहाबाद)।

राय, एन. बी. —दि सक्सेसर्स ऑफ शेरशाह (ढाका, १९३४)।

राय, चौधरी डा. एम.एल. —दि स्टेट एण्ड रिलीज़न इन मुग़ल इण्डिया, (कलकत्ता, १९५१)।

रे, सुकुमार —हुमायूं इन पर्शिया (कलकत्ता, १९४८)।

रेऊ, विश्वेश्वरनाथ —मारवाड़ का इतिहास प्रथम भाग, (जोधपुर, १९३८)।

ला, नरेन्द्रनाथ —प्रोमोशन ऑफ लर्निंग इन इण्डिया ड्यूरिंग मोहमेडन रूल (लांगमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी)।

लाल, के. एस. —हिस्ट्री ऑफ दी ख़ल्जीज (इलाहाबाद, १९५०)।

लेनफूल, स्नैली —मेडिवल इण्डिया (लन्दन, १९१६)।
बाबर (दिल्ली, १९५७)।

विलियम्स, एल.एफ.रशब्रुक —ऐन एम्पायर बिल्डर ऑफ दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी—ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर, लॉगमैन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, १९१८।

शर्मा, श्रीराम —ए बिब्लिग्रोग्राफी ऑफ मुग़ल इण्डिया (बम्बई)
स्टडीज़ इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री (शोलापुर, १९५६)।
दी रिलीजस पालिसी ऑफ दी मुग़ल एम्परर्स कलकत्ता, १९४०।

शर्मा, एस. आर. —मुग़ल एम्पायर इन इण्डिया, (बम्बई, १९४०)।

शर्मा, जी. एन. —मेवाड़ एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स (आगरा, १९५४)।

शरण, डा. परमात्मा —स्टडीज़ इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री (दिल्ली, १९५२)।

दि प्राविन्शियल गवर्नमेण्ट ऑफ दि मुग़ल्स (इलाहाबाद, १९४१)।

श्यामलदास, कविराज —वीर विनोद, भाग १ तथा २।

श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल—शेरशाह एण्ड हिज़ सक्सेसर्स (आगरा १९५०)।
अकबर दि ग्रेट (आगरा १९६२)।
मुग़ल एम्पायर (आगरा)।

सरकार, सर यदुनाथ —ए मिलिटरी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (कलकत्ता, १९६०)।

सिंह, रघुवीर —पूर्व आधुनिक राजस्थान (उदयपुर, १९५१)।

सूफ़ी, जी. एम. डी. —अल मिनहाज़ (लाहौर, १९४१)।

स्टुअर्ट, सी. एम. विलियर्स—गार्डन्स ऑफ दी ग्रेट मुग़ल्स (लन्दन, १९१३)।

स्पीयर, टी. जी. पी. —दिल्ली, इसके स्मारक और इतिहास (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४०)।

स्मिथ, वी. ए. —अकबर दि ग्रेट मुग़ल (आक्सफोर्ड, १९१९);
ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन, (बम्बई, तृतीय संस्करण);
दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (आक्सफोर्ड, १९२८)।

हसन, मोहिदिब्दुल —कश्मीर अण्डर दि सुल्तान्स, कलकत्ता, १९४९।

हीराचन्द —बासवाढ़ा राज्य का इतिहास (अजमेर सन् १९३७)
डूंगरपुर राज्य का इतिहास (अजमेर वि.सं. १९९२)।
बीकानेर राज्य का इतिहास (अजमेर, सन् १९३९-४०)।
जोधपुर राज्य का इतिहास (प्रथम खण्ड, अजमेर सन् १९३८)
उदयपुर राज्य का इतिहास (अजमेर)।

हेग, सर उल्सले —दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, तृतीय भाग, (कैम्ब्रिज १९२८)।

हेग, सर उल्सले तथा
हैवेल, इ. बी. —इण्डियन आर्किटेक्चर (लन्दन, १९२७)।
आर्यन रूल इन इण्डिया।

(इ) अन्य ग्रन्थ

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इस्लाम, लन्दन, १९१३-३७।

डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स

(ई) पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख

अवस्थी, आर. एस. —दि डिले इन हुमायूंज एक्सेशन, जरनल, यू. पी. हिस्टॉरिकल सोसाइटी, १९४१।

निजामी, के. एच. —दी सत्तारी सेनट्स एण्ड देअर एटीट्यूड टूवर्ड्स दि स्टेट, मेडिवल इण्डिया, क्वार्टरली, ज़िल्द १, नम्बर, १९५०।

बनर्जी, एस. के. —दि बर्थ ऑफ अकबर, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, कलकत्ता, १९३९।

बेवरिज, एच. —महदी ख़्वाजा, एपीग्रेफिका इण्डो मुसलेमिका, १९१५-१६।

रहीम, ए. —मुग़ल रिलेशन्स विद पर्शिया, इस्लामिक कल्चर, १९३७।

रे, एन. आर. —हुमायूं एण्ड मालदेव, प्रोसीडिंग्स थर्ड इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९३९।

रे, सुकुमार —ए लेटर ऑफ दि मुग़ल एम्परर हुमायूं टू हिज़ ब्रदर कामरान, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि ट्वेन्टी फर्स्ट सेशन ऑफ दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, १९५८, पृ. ३१८-१९।

शर्मा, श्रीराम —हुमायूं एण्ड मालदेव, जरनल इण्डियन हिस्ट्री, १९३२।

श्यामलदास, कविराज —बर्थ डेट ऑफ अकबर, जरनल एशियेटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, १८८६।

श्रीवास्तव, ए. एल. —दी डेट ऑफ अकबर्स बर्थ, हिस्ट्री एण्ड पोलिटिकल साइन्स जनरल, आगरा कॉलेज, आगरा, जनवरी, १९५५।

सक्सेना, बनारसीप्रसाद —मेमॉयर्स ऑफ बायज़ीद, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी स्टडीज़, ज़िल्द ६, भाग १, १९३०।

स्मिथ, वी. ए. —बर्थ ऑफ अकबर, इण्डियन एन्टीक्वेरी, १९१५।

हरिशंकर —सम्राट अकबर की जन्म तिथि, सरस्वती, इलाहाबाद, अप्रैल, १९४६।

अनुक्रमणिका

आ

इ

ख

ग

भ

म

य

र

ह